उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा

[श्री वृन्दावनलाल वर्मा के प्रकाशित उपन्यासो का
आलोचनात्मक विवेचन]

लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच्० डी० उपाधि के हेतु स्वीकृत शोध-प्रबन्ध

लेखक—
डॉ० शशिभूषण सिंहल
बी० ए० (ऑनर्स), एम० ए०, पी-एच्० डी०
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर।

विनोद पुस्तक मन्दिर,
हॉस्पिटल रोड, आगरा

प्रकाशक
राजकिशोर अग्रवाल
विनोद पुस्तक मन्दिर
हॉस्पिटल रोड, आगरा

प्रथम संस्करण
१९६०
मूल्य १०)

मुद्रक : राजकिशोर अग्रवाल
कैलाश प्रिंटिंग प्रेस, बागमुजफ्फरखाँ, आगरा

नानी जी

स्व० श्रीमती लक्ष्मी देवी जी

की

पुण्य स्मृति में-

दो शब्द

श्री वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासो मे बुन्देलखडी पट पर अकित गत-युगीन प्रेम और शौर्य के मोहक चित्रो के प्रति लेखक को बचपन से आकर्षण रहा है । उन उपन्यासो के अध्ययन के साथ मस्तिष्क मे कुछ प्रश्न आये और उपन्यासकार के व्यक्तित्व को निकट से समझने की तीव्र इच्छा जगी । सन् १९५१ मे लेखक को वर्माजी के समीप आने का अवसर मिला । उनके वार्तालाप, सस्मरणो तथा पत्रो आदि से सकलित उपन्यासकार के व्यक्तित्व के प्रकाश मे उपन्यासो के अध्ययन एव विश्लेषण काय को एक नवीन दिशा प्राप्त हो सकी । इस ओर अनवरत अध्ययन, मनन चलता रहा है । विगत सात वर्षो मे वर्माजी के उपन्यासो पर लेखक की एक आलोचनात्मक पुस्तक तथा कुछ फुटकर लेख "अमृत पत्रिका", "आजकल", "साहित्य सदेश" आदि पत्रो मे प्रकाशित हुए है ।

श्री वृन्दावनलाल वर्मा के गत लगभग तीस वर्षो मे रचित ५००० पृष्ठो के १७ उपन्यास* अपने विशद कलेवर के साथ निज का मूल्य रखते है । उनके ऐतिहासिक उपन्यासो मे 'प्राचीन' हमारा मनोरजन तथा कुतूहल-वर्द्धन करने के साथ हमे वर्तमान मे कार्य करने की स्फूर्ति और शक्ति प्रदान करता है । जिस प्रकार चिकित्सक प्राणधारियो की शरीर-रचना को भली प्रकार समझने के लिये ककालो का अध्ययन तथा शवो की चीर-फाड करता है वैसे ही वर्माजी ने वर्तमान को भली प्रकार समझने तथा सुधारने के लिये पुरा-तन का गहन अध्ययन किया है । वे अतीत के अग्राह्य के दुष्परिणाम को सामने रखकर ग्राह्य को उभारते हुए पाठक को उसे ग्रहण करने की प्रेरणा देते है । वर्माजी ने इतिहास के चौखटे मे मानव की शाश्वत समस्याओ और क्रियाओ को ऐसी विधि से सजोया है कि वे बीते युग की कहानी होकर भी हमारे 'आज' की चर्चा है ।

वर्माजी ने ऐतिहासिक तथा सामाजिक, सभी उपन्यासो मे भारत के पतन के मूलाधार 'समाज' को अपनी प्रयोगशाला बनाया है । विभिन्न घातक

---

*वर्माजी के नव-प्रकाशित उपन्यासो, 'भुवन विक्रम' तथा 'माधवजी सिंधिया' को मिलाकर सख्या १९ हो जाती है, इन उपन्यासो का विवेचन देखिए परिशिष्ट ४ मे ।

सामाजिक कुरीतियो, मजदूरो, किसानो की हीन दशा का परिचय देते हुए उन्होने भारत के सामाजिक, सास्कृतिक पुनरुत्थान की योजना प्रस्तुत की है। उनकी दृष्टि निबल को सबल, अव्यवस्थित को सुव्यवस्थित और कुरूप को सुरूप बनाने पर रही है।

वर्माजी का मानव-चरित्र सबधी अध्ययन एव अनुभव उल्लेखनीय है। उन्होने निज के सपर्क मे आये हुए अनेक स्त्री-पुरुषो को सजा सवार कर अपने उपन्यासो मे पात्रो का रूप प्रदान किया है। उनके ऐतिहासिक उपन्यासो में भी पुरानी सज्जा से भूषित पात्र वर्माजी के समकालीन बुन्देलखण्डी हैं। आज के तथा पूर्वकालीन बुन्देलखडी निवासियो मे मूलत साम्य है। वर्माजी ने वर्तमान और पुरातन का समन्वय कर इतिहास की निरतर अमिट आतरिक शृङ्खला को सामने रखा है। उन्होने बुन्देलखडी चारित्रिक व्यक्तित्व को कुछ काल-विशेष की सकुचित परिधि से मुक्त कर स्थायी स्वरूप प्रदान किया है।

वर्माजी के अधिकाश उपन्यासो का घटना-क्षेत्र बुन्देलखड है। बुन्देलखड से वर्माजी का पीढियो से अटूट सबध है। उन्होने यहाँ की प्रकृति नदियो, मैदानो, पहाडो, खडहरो की भयानकता, शुष्कता और सौंदर्य के सजीव दृश्य उपन्यासो मे प्रस्तुत किये है। बुन्देलखडी समाज की भाषा, गीत, त्योहारो, रीति-रिवाजो का सागोपाग चित्रण उनके हाथो हुआ है। वस्तुत वर्माजी के उपन्यासो को पढ़कर बुन्देलखडी जगत् का एक बृहत् चित्र आँखो के आगे खिच जाता है।

प्रस्तुत प्रबन्ध मे वर्माजी के सन् १९५५ तक प्रकाशित समस्त उपन्यासो को एक क्रम मे रखकर उनका विधिवत् आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास है। वर्माजी के उपन्यासो पर इस दिशा मे सामग्री का प्राय अभाव है। गत कुछ वर्षो से उनके उपन्यासो अथवा उनकी औपन्यासिक कला पर आलोचना-ग्रथो मे किंचित् चर्चाएँ, पत्रिकाओ मे कतिपय लेख तथा परीक्षोपयोगी दृष्टि से लिखी गई कुछ पुस्तकाएँ प्रकाश मे आई है। लेखक ने वर्माजी के उपन्यासो के विश्लेषण-कार्य मे भिन्न आधार ग्रहण किया है। उसने (हडसन, श्यामसुन्दरदास, गुलाबराय आदि) विद्वानो द्वारा प्रतिपादित उपन्यास सबधी सिद्धातो के निजी मनन, चिन्तन की कसौटी पर वर्माजी के उपन्यासो को कसा है। इस प्रकार वर्मा जी के उपन्यासो के तत्त्वो के विश्लेषण तथा परस्पर तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा उनके मूल मे निहित उपन्यासकार की कला की खोज एवं उसके विकास का निर्देश-कार्य, लेखक की दृष्टि मे उसका मौलिक प्रयत्न है।

उपन्यास के प्राय सर्वमान्य छ, तत्त्वो के आधार पर वर्माजी के उपन्यासो

के अध्ययन को प्रबन्ध मे छः अध्यायो मे विभाजित किया गया है। यथा, उनके उपन्यासो मे, कथावस्तु, पात्र और चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, वातावरण, लेखन-शैली तथा जीवन-दर्शन। इनसे पूर्व, दो अध्यायो मे क्रमश वर्माजी के व्यक्तित्व की चर्चा है, और उपन्यास का स्वरूप निश्चित करते हुये वर्माजी के उपन्यासो का वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है। प्रथम के अतिरिक्त सभी अध्यायो के आरभ मे अध्याय से सबधित विषय की परिभाषा प्रस्तुत कर उसके अगो एव आवश्यक गुणो की समीक्षा की गयी है। तत्पश्चात् विषय की समीक्षा के आधार पर वर्माजी के उपन्यासो के उस अध्याय-सबधी तत्त्व का अध्ययन किया गया है। उस तत्व की उल्लेखनीय विशेषताओ को अपेक्षित उदाहरण देकर स्पष्ट करते हुए उनका विशद विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयत्न रहा है। अध्याय के अत मे विश्लेषण के फलस्वरूप सकलित सूत्रो का क्रम-बद्ध विवेचन कर निष्कर्ष के रूप मे वर्माजी के उपन्यासो मे उस तत्त्व के प्रयोग पर लेखक ने अपना मत बनाया है।

पहले निवेदन किया जा चुका है कि वर्माजी के व्यक्तिगत सपर्क के प्रकाश मे लेखक को उनके उपन्यासो के अध्ययन मे एक नवीन दिशा के दर्शन हुए है। जहा कही प्रबध मे कोई गुत्थी आयी है वहाँ लेखक ने, आलोचक के ही नही, वरन् उपन्यासकार के दृष्टिकोण मे उसकी पृष्ठभूमि को हृदयगम कर उसके निराकरण का प्रयत्न किया है। ऐसे स्थलो पर, भले ही लेखक और उपन्यासकार के विचार मे साम्य या वैषम्य है, उपन्यासकार के विचारो का उल्लेख किया गया है। लेखक का आशा है इस विधि से अध्ययन मे रोचकता बढी है और समस्याओ के विभिन्न पक्षो पर विचार करने का अवसर मिला है।

प्रबन्ध के प्रथम अध्याय, 'उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा' मे लेखक ने उपन्यासकार के व्यक्तित्व की पृष्ठभूमि मे सचेष्ट परिस्थितियो एव शक्तियो पर विचार किया है। वर्माजी की वर्तमान शारीरिक अवस्था, स्वास्थ्य तथा व्यवहार के साथ उनके परिवार के पारम्परिक सस्कारो, बाल्यावस्था की प्रवृत्तियो तथा जीवन सबधी अनुभवो को एक क्रम मे पिरोकर उनके प्रभाव-स्वरूप वर्माजी के व्यक्तित्व के विकास का अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयत्न है। भारत की बीसवी शताब्दी के युग-धर्म के उनके इतिहास, साहित्य, धर्म, राज-नीति सबधी विचारो पर पडे प्रभाव को उसी विश्लेषण मे ला रखा है। इन सब सूत्रो के आधार पर वर्माजी का व्यक्तित्व खडा कर उसके प्रतिबिंब को उनके उपन्यासो एव लेखनशैली मे आँकने की चेष्टा की गयी है। इस अध्ययन मे लेखक ने वर्माजी के सम्पर्क मे आकर व्यक्तित्व-अध्ययन-प्रक्रिया का विशेष-

तथा गाश्रय लिया है। वर्माजी के व्यक्तित्व से सबधित सामग्री का यत्र-तत्र स चयन तथा वर्माजी के उपन्यासो एव व्यक्तित्व के मध्य काय-कारण-शृङ्खला की स्थापना का काय लेखक का निज का है।

दूसरे अध्याय, 'उपन्यास' और वर्माजी के उपन्यासो का वर्गीकरण' मे उपन्यास के साहित्य से सबध का उल्लेख करते हुए विद्वानो द्वारा प्रस्तुत उपन्यास सबधी परिभाषाओ के आधारभूत तत्त्वो की छान-बीन कर उपन्यास के मौलिक स्वरूप को प्रस्तुत करने का प्रयास है। उस स्वरूप की कसौटी पर वर्माजी के उपन्यासो को कसकर उनका प्रचलित वर्गों मे विभाजन करने के साथ उन उपन्यासो को अन्य उप-विभागो मे विभाजित करने के हेतु उपन्यासो के कुछ नवीन वर्गों की उद्भावना भी की है।

तीसरे अध्याय, 'वर्माजी के उपन्यासो की कथावस्तु' मे कथावस्तु की परिभाषा के साथ उसमे अपेक्षित गुणो तथा उसके प्रकारो का उल्लेख करते हुए लेखक ने वर्माजी के प्रत्येक उपन्यास के कथानक की सश्लिष्ट कथाओ का स्वतन्त्र रूप से अलग रखकर उनका सार प्रस्तुत किया है। उन स्वतन्त्र कथाओ के उपन्यास मे महत्त्व, गुणो तथा परस्पर सपर्क आदि विशेषताओ का विवेचन 'अ' भाग मे करने के उपरान्त भाग 'ब' मे कथाशो के स्रोत उल्लिखित है। ऐतिहासिक उपन्यासो से सबधित सुप्रसिद्ध तथ्यो के प्रमाण मे ऐतिहासिक ग्रन्थो को उद्धृत किया गया है, किन्तु उनके परम्परा अथवा किवदन्तियो सबधी अशो तथा सामाजिक उपन्यासो के स्रोतो की खोज मे लेखक को वर्माजी तथा कुछ बुन्देलखण्ड-निवासियो के सस्मरणो का आश्रय लेना पड़ा है। (ऐसे वार्तालापो अथवा सस्मरणो के स्रोत रूप मे बारबार उल्लेख से प्रबन्ध मे अनावश्यक पुनरावृत्ति दोष आजाने के भय से लेखक ने इनका प्राय उल्लेख नही किया।) अध्याय के अत मे निष्कर्ष-स्वरूप वर्माजी के उपन्यासो मे प्रयुक्त समान कथा सूत्रो का उल्लेख करते समय उन पर किये गये उपन्यासकार के विविध प्रयोगो का विशेष विवरण दिया गया है। इस प्रकार उपन्यासकार की कथा-सबधी मूल कल्पनाओ एव उनके कालानुसार विकास का स्पष्टीकरण है। वर्माजी के ऐतिहासिक कथानको के स्रोत-सम्बन्धी निष्कर्ष प्रस्तुत कर उनकी ऐतिहासिक सामग्री के सचय की विधि को भी स्पष्ट किया गया है। उनके ऐतिहासिक उपन्यासो मे तथ्य, कल्पना के परस्पर मिश्रण की दृष्टि से उनके विकास के क्रम की खोज का प्रयत्न है। उपन्यासो की कथाशो का सपूर्ण उक्त विश्लेषण लेखक का मौलिक अध्ययन है।

चौथे अध्याय, 'वर्माजी के उपन्यासो मे पात्र और चरित्र-चित्रण' मे पात्र, चरित्र, चरित्रो के प्रकार, चित्रणविधि सबधी सिद्धान्तो पर प्रकाश डालते हुए

वर्माजी के पुरुष तथा नारी पात्रा को भिन्न कोटियो मे रखकर उनपर विचार किया गया है। वर्माजी के प्रधान पुरुष पात्रा के चारित्रिक तत्त्वो मे उपन्यास-कार के विभिन्न प्रयोगो को लक्ष्य करना लेखक का ध्येय रहा है। यथा, प्रणयी पात्रो मे क्रमश उग्रता, समर्पण, दृढता, रसिकता तथा निराशा आदि गुणो की प्रधानता का विश्लेषण है। वर्माजी की नारी सम्बन्धी धारणा का उल्लेख करते हुए उपन्यासो मे उनके प्रधान नारी पात्रो के स्वरूप के क्रमिक विकास का परिचय प्रस्तुत है। अन्य कोटि के वर्गगत पात्रो की मुख्य विशेषताओ का उल्लेख करने के पश्चात् निष्कर्ष रूप मे लेखक ने वर्माजी के कथानको एव पात्रो के परस्पर सबध, पात्रो के आकर्षण के रहस्य, पात्रो के स्रोत, चरित्र-चित्रण-विधि आदि विषयो पर प्रकाश डाला है। वर्माजी के पात्रो से सबधित लेखक का यह शोध मौलिक है।

पाँचवे अध्याय, 'वर्माजी के उपन्यासो मे कथोपकथन' मे सवादो की नाटकीयता, तीव्रता, सक्षिप्तता, भावानुकूलता आदि उल्लेखनीय विशेषताओ पर विचार करते हुये उनके प्रयोग मे उपन्यासकार की कला एव उसके विकास पर प्रकाश डाला गया है। वर्माजी के कथोपकथन विषयक गुणो की लेखक द्वारा यह खोज मौलिक है।

छठे अध्याय, 'वर्माजी के उपन्यासो मे वातावरण-सृष्टि' मे उनके अधिकाश उपन्यासो का घटना-क्षेत्र बुन्देलखण्ड निश्चित करने के उपरान्त उपन्यासो की राजनीतिक तथा ऐतिहासिक परिस्थितियो के प्रभाव को सामाजिक परिस्थिति एव मनोवृत्ति पर आँकने का प्रयास है। साथ ही उपन्यासो के प्राकृतिक वाता-वरण की विशेषताओ का उल्लेख करते हुए उपन्यासकार की वातावरण-सृष्टि सबधी विधि का विश्लेषण किया है। वातावरण सम्बन्धी उक्त विश्लेषण लेखक का मौलिक प्रयास है।

सातवे अध्याय, उपन्यासो मे 'वर्माजी की भाषा और लेखन-शैली' मे वर्माजी की भाषा पर विचार करते हुए उनके पात्र सबधी शब्द-चित्रो, उप-माओ, विभिन्न प्रकार के वर्णनो और कहावतो, उक्तियो आदि के प्रयोगो का लेखक ने मौलिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

आठवे अध्याय, 'वर्माजी के उपन्यासो मे जीवन दर्शन' के अतर्गत उप-न्यासो मे प्रत्यक्ष रूप से अथवा कथा के माध्यम से व्यक्त उनकी मान्यताओ एव धारणाओ का विश्लेषण करने के उपरान्त उपन्यासो की प्रमुख विशेष-ताओ (उद्देश्य-सम्बन्धी) का विवेचन किया गया है। इस प्रकार लेखक ने वर्माजी के जीवन सबधी दृष्टिकोण एव उसकी अभिव्यक्ति की विधि निष्कर्ष रूप मे प्रस्तुत की है। लेखक की उक्त गवेषणा मौलिक है।

'परिशिष्ट' मे वर्माजी से हुए गत सात वर्षों के पत्र-व्यवहार मे से उल्लेखनीय बीस पत्रो को उद्धृत किया गया है। इन पत्रो से लेखक के अध्ययन तथा उसकी तत्सम्बन्धी जिज्ञासाओ पर प्रकाश पड सकेगा। साथ ही ये पत्र वर्माजी के व्यक्तित्व एव विचारधारा पर सीधा प्रकाश डालेगे, ऐसी आशा है। इनसे वर्माजी की 'अपनी कहानी, अपनी जुबानी' का आनन्द भी आना सभव है।

गुरुजनो की कृपा के विषय मे बिना कुछ कहे बात समाप्त करने को जी नही चाहता। वर्मा जी के उपन्यासो पर शोध-कार्य मे पथदर्शक (गाइड) डा० दीनदयालजी गुप्त, एम्० ए०, एल्० एल्० बी०, डी० लिट्०, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, का लेखक पर वरद हस्त रहा है। मार्ग मे आई अडचनो तथा कठिन समस्याओ को हल करने मे उनका प्रौढ एव सुलझा हुआ दृष्टिकोण सदा सुलभ रहा। श्रद्धेय डाक्टर साहब जैसे पथ-प्रदर्शक से जो स्नेह और मार्ग-निर्देशन प्राप्त हुआ उस के आगे लेखक नत है।

हिंदी साहित्य के वयोवृद्ध दिग्गज डा० गुलाबरायजी के अमूल्य ग्रन्थो 'काव्य के रूप' तथा 'सिद्धान्त और अध्ययन' से लेखक को उपन्यास सम्बन्धी दृष्टिकोण बनाने मे जो सहायता प्राप्त हुई है, उसका साक्षी स्वय यह प्रबन्ध है। सुप्रसिद्ध आलोचक डा० सत्येन्द्र के अनुभवी एव परिश्रमशील परामर्श के प्रति लेखक आभारी है।

प्रबन्ध-सम्बन्धी विचार-विनिमय के हेतु लेखक श्री वृन्दावनलाल वर्मा के पास झाँसी गया और रहा। उन्होने जिस उत्साह और स्नेह से लेखक को देखा, वह अनिवर्चनीय है। वर्मा जी के सुपुत्र तथा उनकी रचनाओ के प्रकाशक श्री सत्यदेव वर्मा से खोज-कार्य मे जो सामग्री एव सहर्ष सहायता मिली, भुलाई नही जा सकती।

लखनऊ —शशिभूषण सिंहल

दिनाक जनवरी १, १६५८

विषय-सूची

— o —

अध्याय १

उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा

वृन्दावनलाल वर्मा और उनके सस्कार

बलिष्ठ देह और गम्भीर आकृति के, ये हैं झासी वालो के 'बडे भैया' और हमारे उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा। ६८ वर्ष से अधिक आयु है[1] फिर भी उनकी देह मे मल्लो जैसा बल, और स्फूर्ति शेष है। सिर पर पीछे कढे हुए चमकते थोडे से बाल और माथे पर जीवन-सघर्ष की साक्ष्य भरती उभरी लकीरे विद्यमान है। बुदेलखड की प्रचड घाम, शीत, वर्षा और कष्टो मे पलने के कारण उनका गेहुआ रग श्यामल हो चला है।

वृन्दावनलाल वर्मा का वश जाति से कायस्थ किन्तु कर्म से क्षत्रिय रहा है। उनके पूर्व पुरुष महाराज क्षत्रसाल के सैनिक थे। उन्होने तलवार, तमचे की दुनियाँ मे पैठ कर योद्धा-जीवन देखा था। वर्मा जी के प्रपितामह आनन्द-राय मराठो के दीवान और फौजदार थे। सन् १८५७ मे झासी की रानी लक्ष्मीबाई के झडे के नीचे अग्रेजो से लडे। अन्त मे किसी अग्रेज अफसर की गोली खाकर युद्ध मे ही उन्होने प्राण विसर्जन किये थे। पितामह कन्हैयालाल विद्रोह-दमन के पश्चात् अग्रेजो के बन्दी रहे। विक्टोरिया की शाति-घोषणा के उपरान्त उन्हे मुक्ति मिल पाई थी। पिता अयोध्याप्रसाद ने अवश्य इस धारा को मोड दिया। वे साधारण पढ-लिखकर सरकारी नौकर हो गये थे।[2]

वर्मा जी को उत्तराधिकार मे मिली है शौर्य परम्परा और बचपन मे परदादो से मिली वीर सेनानी लक्ष्मीबाई सम्बन्धी कहानियो की धरोहर। यह धरोहर उनके अबोध हृदय को शौर्य-प्रेम का एक अस्पष्ट सन्देश दे गयी थी। उनका शरीर स्वस्थ था, कुछ कर दिखाने का इच्छुक। प्रारम्भ से ये खेलकूद और

---

१ जन्म तिथि...पौष शुक्ला अष्टमी सम्वत् १९४५, ९ जनवरी सन् १८८९—वर्मा जी का पत्र, स० ११; २२. ११ ५५

२ अपनी कहानी...वृन्दावनलाल वर्मा [अपूर्ण, अप्रकाशित]

व्यायाम के घोर प्रेमी रहे है। नदी मे नहाने, तैरने ग्रौर जगलो मे घूमने के शौकीन। खिलाडी एक नम्बर के। हॉकी ग्रौर कबड्डी मे सबसे आगे रहते थे। ग्रब भी उनकी रग-रग मे गर्मी है। व्यायाम करते है ग्रौर उनके शब्दो मे— 'हमे आज भी डड पेलना ग्रच्छा लगता है।'

ऐतिहासिक उपन्यास क्यो लिखे

इस प्रकार वर्मा जी के चित्त पर वीर-प्रसू-भूमि, बुदेलखड की गाथाग्रो ग्रौर वश की परम्पराग्रो के सस्कार थे ही, उन का स्वस्थ शरीर कुछ कर दिखाने को, किसी नेतृत्व को ग्रहण करने को लालायित था। उन्होने बचपन मे जो पुस्तके पढी वे विदेशियो के रग मे रगी हुई थी। उनसे उनके बाल-सुलभ कोमल चित्त मे जमे सस्कारो को एक ठेस लगी। यह ठेस या यह प्रतिक्रिया ही उनके सुप्त कलाकार को जगाने ग्रौर विकसित करने मे सहायक हुई। बचपन मे उन्होने बगला से ग्रनूदित नाटक 'ग्रश्रुमति' पढा। उसमे राणा प्रताप के देश-प्रेम की कथा थी किन्तु साथ ही राणा की किसी पुत्री ग्रश्रुमति की ग्रकबर के पुत्र सलीम से प्रेम की ग्रसगत कल्पना की गयी थी। बालक वृन्दावन को ग्रपने चाचा से यह जानकर ग्रत्यन्त खेद ग्रौर ग्राश्चर्य हुग्रा कि छपी पुस्तको मे गलत बाते भी होती है। उसने निश्चय किया, 'मै गलत नही लिखूगा।' कक्षा ६ मे, उन्होने ग्रगरेज मार्सडन द्वारा रचित 'भारत का इतिहास' पढा। उसमे 'गरम देश' के भारतीय जन का ठण्डे देश-वासी ग्रगरेजो से हारते रहना ग्रनिवार्य बताया गया था। लिखा था, ग्रब राज्य ग्रगरेजो के हाथ मे है, भारत का भविष्य सुरक्षित है। ग्रगरेजो को हराना किसी के वश का नही। ग्रपनी शक्ति ग्रक्षुण्ण बनाये रखने के लिये वे गर्मियो मे ठन्डे पहाडो पर चले जाते है। एक पीढी के बूढे होने पर नये रक्त वाले युवा ग्रगरेज इग्लैंड से ग्राकर उनका स्थान ग्रहण कर लेते है। भिन्न सस्कारो मे पले वर्मा जी के बाल-मन को यह मान्यता न रुची। उन के ग्रबोध चित्त ने एक ग्रौर निर्णय किया, 'पढूँगा ग्रौर खोज करूँगा।' ग्रागे चलकर हाई स्कूल मे उन्होने एक ग्रन्य ग्रगरेज लिखित पुस्तक पढी। उसमे भारतियो के पराक्रम की पुष्टि की गयी थी। उस पुस्तक मे लिखा था, महमूद गजनवी के भारत पर ग्राक्रमण के समय प्रतिरोधी ग्रधनगे पैदल 'घक्करो' ने तीन-चार हजार कवचधारी घुडसवार ग्राक्रमको को पल भर मे चीर डाला था। बालक के चोट खाये इच्छा-सकल्पो को नया बल मिला। भारतियो की वीरता का हाल पढकर सन्तोष मिला, गर्व हुग्रा किन्तु एक शका भी उठ खड़ी हुई। फिर भारत हारा क्यो ? ग्रवश्य कही न कही कोई कसर रही

होगी। क्या थी वह कसर और वह कैसे दूर होगी, यह प्रश्न उसके चित्त मे चक्कर काटने लगा। वाल्टर स्कॉट के दो-एक उपन्यास पढे और कर्नल टॉड का 'राजस्थान' पढा। खूब पढ-लिख कर ऐतिहासिक उपन्यास लिखने की इच्छा जगी। रूप-रेखा अभी सामने न थी और न स्कॉट या टॉड की भाँति लिखने के लिये कोई भूखण्ड चुन पाया था।[1]

बुदेलखड ही क्यो

किशोर वृन्दावन लाल के हृदय पर एक और चोट लगी। वह चोट एक नये मार्ग की ओर इगित कर लुप्त हो गई किन्तु उसका प्रभाव अक्षुण्ण था। बात वर्मा जी से ही सुनिये—'एक पजाबी मित्र के यहाँ व्याह था। इनके पिता और कुछ नातेदार दस-पन्द्रह बरस पहले व्यवसाय के सिलसिले मे झासी मे आ बसे थे। बुदेलखड और बुदेलखडी उनके मिहमानो की चर्चा के विषय थे। मै वहाँ जरा पीछे बैठा था।

'बडा कमबख्त इलाका है जी यह।' एक बोला। दूसरे ने जोडा—'आदमी बडे मरियल सडियल। हा औरते मजबूत होती है।'

—'जगल, पहाड, झील और नदियो के सिवाय और है क्या यहाँ?'

—'जानवर है, जानवर। आदमी से ज्यादा अच्छे।'

मिहमान हँस पडे। मेरे कलेजे मे छुरियाँ सी छिद गई। जिस भूमि ने मेरे माता पिता को जन्म दिया, जहाँ लक्ष्मीबाई का पराक्रम प्रकट हुआ, जिस भूखण्ड मे चन्देले और उनके बाद छत्रसाल हुये वह कमबख्त! जहाँ के आदमियो का आल्हा सब जगह गाया जाता है, जिन्होने औरगजेब के और फिर अग्रेजो के दात खट्टे किये वे मरियल सडियल!! और जानवरो से गये बीते!!! दिन-रात पसीना बहाकर जो अकालो से लडते रहे है, वे इनके मजाक की चीज! जी मे ऐसी आग लगी जो कभी नही बुझी। उस दिन से बुदेलखड की एक एक ककडी, एक एक बूद, एक एक पत्ती और कली मन मे रमने लगी। परन्तु शुरू से ही मै अपनी इस भावना को सकुचित बनने से बचाये रहा। हरिश्चन्द्र का नीलदेवी नाटक, भारतदुर्दशा नाटक, रामायण और महाभारत मेरे सम्बल बने रहे। केवल क्षेत्र के विकल्प की समस्या थी जो अपने आप यो हल हुई।'[2]

---

१ आजकल [मासिक, जुलाई, १९५७]...पृ० १७ के तथा वर्मा जी से व्यक्तिगत वार्तालाप के आधार पर

२ अपनी कहानी

वाल्टर स्कॉट का प्रभाव

सत्तरह–अट्ठारह वर्ष की आयु मे उन्होने वाल्टर स्कॉट के प्राय सभी उपन्यास पढ डाले । उपन्यासो मे स्काटलेड के मनोमुग्धकारी वातावरण के दर्शन कर अपने बुदेलखण्ड के प्रति और भी अनुराग बढा । स्काट से कई प्रेरणाये मिली । ऐतिहासिक कथाओ मे इतिहास के ढाचे को सदैव सच्चा और सही रखने की मौलिक आवश्यकता पर ध्यान गया । परम्पराओ को स्वाभाविकता की तखडी पर तौलने का नियम उपयुक्त जँचा । इतिहास से सम्बन्धित भौगोलिक स्थानो का पूर्ण निरीक्षण कर उसे आत्म-सात् कर लेने पर ही विषय पर लेखनी उठाने का सिद्धान्त मन मे खप गया । कुछ बाते खटकी भी, स्कॉट के अत्यन्त लम्बे वर्णन, राजा सामन्तो के प्रति उसकी अटूट आस्था और समाज के साधारण स्तर या निम्न श्रेणी के लोगो के प्रति उसकी उपेक्षा । उच्च वर्ग के लोगो का तर्क तथा मनोविज्ञान-सम्मत दृष्टि से मूल्याकन करना ही वर्मा जी को युक्तिसगत जान पडा ।[1]

इतिहास के झरोखे से वर्तमान मे

सत्ताइस वर्ष की आयु मे वृदावनलाल जी ने पढ-लिख कर वकालत प्रारम्भ की । इसके बाद के लगभग ग्यारह वर्ष उन्हे लेखनी माँजने मे लग गये । विक्टर ह्यूगो, ड्यूमा, अनातोले फ्रास, मोपासाँ, आदि साहित्यकारो की कृतियाँ भी पढने को मिली । बुन्देलखन्ड की खुली गोद मे भ्रमण करने का उन्हे शौक था ही । शिकार का व्यसन भी साथ लग गया । इस बहाने उन्हे प्रकृति के घनिष्ट सम्पर्क मे आने का पूरा अवसर मिला । एक रात को जगलो मे बेतवा नदी के किनारे शिकार के लिए झाडी की ओट लिये बैठे थे । हलकी बयार की सनसनाहट और ऊपर से धुधली सी चाँदनी । प्रकृति की विशाल गोद और दूर चाँदनी मे कुडार का प्राचीन निर्जन किला झाँई मार रहा था । ऐसी हृदयस्पर्शी बेला मे वर्मा जी के हृदय मे कल्पना और विचारो की आँधी सी आ गयी । कितना प्राचीन है यह किला, न जाने कितने दृश्य इसने देखे होगे । कैसा वैभव रहा होगा यहाँ ! किन्तु आज तो कुछ भी शेष नही ! हृदय मे टीस उठी और उनकी विश्लेषणात्मक वृत्ति करवट लेने लगी । वर्मा जी इस प्रसग मे स्वय लिखते है—'प्राचीन मे कुछ बहुत अच्छा था, कुछ बुरा । बुरे के हम शिकार हुए । अच्छे ने हमे सर्वनाश से बचा लिया । क्या वर्तमान और भविष्य के लिए हम प्राचीन से कुछ ले सकते है ? प्राचीन की गलतियो

१ आजकल [जुलाई, ५७] .. पृ० १८

से बच सकते है। वर्तमान का हरएक क्षण भूत और भविष्य मे परिवर्तित होता रहता है। कोई किसी से अलग नही। इन्हे भली भाँति देखो, परखो और सश्लेषण की विधि अपना कर पढो। बुन्देलखड के इतिहास और भूगोल से परिचित था ही, बहुत सी परम्पराये भी हाथ लग गयी थी। निश्चय किया कि वर्तमान की समस्याओ को लेकर प्राचीन मे रम जाओ और उपन्यास के रूप मे जनता से सामने अपनी बातो को रख दो।'—[1] इसी उधेडबुन मे रात्रि कट गयी। शिकार का कार्यक्रम जहाँ का तहाँ रह गया। प्रात तक एक उपन्यास की रूप-रेखा मस्तिष्क मे खिच गयी। बात १६ अप्रैल, १९२७ की है। लिखना प्रारम्भ किया उन्ही जगलो मे। अदालत की छुट्टियाँ हुई और ठीक दो महीने मे लिखना समाप्त हो गया और सामने आया उनका सर्व प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास—'गढ कु डार'।

वर्मा जी का दूसरा ऐतिहासिक उपन्यास 'विराटा की पद्मिनी' भी ऐसे अन्य सयोग की देन है। शिकार की टोह मे विराटा जा पहुँचे। सयोगवश गाँव वालो से झगडा होते-होते बचा। फिर परिस्थिति मेल-जोल के रूप मे पलट गयी। गाँव वालो से वर्मा जी ने 'पद्मिनी' की कहानी सुनी, उसके शिला पर अकित चरण-चिन्ह भी देखे। उस सूत्र पर लिखा गया उपन्यास। ऐसे अधिकाश उपन्यास वर्मा जी के भ्रमण-वृत्ति के प्रसाद है।

बीसवी शताब्दी और वर्मा जी

वर्मा जी का व्यक्तित्व १९ वी शताब्दी के अन्त और बीसवी के पूर्वार्द्ध से प्रभावित है। जागरूकता की दृष्टि से यह युग भारत के इतिहास मे विशेष महत्त्व रखता है। अत्यन्त सक्षेप मे, इसकी रूप-रेखा का उल्लेख यहाँ वाछनीय है। इन दिनो अङ्गरेजो के साथ योरोप के आविष्कारो ने भारत के स्तब्ध वातावरण मे पदार्पण किया। यकायक रेल, तार, प्रेस, शिक्षा, सफाई की हवा चल उठी। पीडित भारतीय जन ने शनै-शनै नेत्रोन्मीलन कर नवीन प्रकाश मे स्वय का मूल्याकन किया। वह भूत के अग्राह्य को त्याग कर नवीन के ग्राह्य को धारण करने के लिए व्यग्र हो उठा। 'विज्ञानवाद' ने बुद्धि और विचार की रूढियो के बधन से मुक्ति दिलायी। लोक की समस्याओ के आगे परलोक की चिन्ताये फीकी पड गयी।

आर्य समाज [स्थापित सन् १८७५] ने हिन्दुओ को वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान किया। कुरीतियो को तर्क एव औचित्य की कसौटी पर कस कर व्यर्थ

---

१. आजकल [मासिक, जुलाई, १९५७]···पृ० १८

ठहराया गया। अंग्रेजों की शोषक नीति के दुष्परिणाम स्पष्ट हो चले थे। उसका एक मात्र उत्तर था—'अपना राज्य'। इस स्पष्ट या अस्पष्ट उद्देश्य को दृष्टि में रखकर सन् १८८५ में अखिल भारतीय कांग्रेस की स्थापना हुई थी। सामाजिक पुनर्निर्माण का प्रश्न मौलिक होने के कारण गांधी जी के नेतृत्व में काँग्रेस ने बारंबार रचनात्मक कार्यक्रम पर, विशेषकर किसानों की उन्नति, साम्प्रदायिक ऐक्य और अस्पृश्यता-निवारण आदि आन्दोलनों पर बल दिया।[१] 'अपने राज्य' के नारे साथ एक आकांक्षा और जुड़ी हुई थी—'अपनी भाषा'। देश में अंग्रेजी, उर्दू के आधिपत्य के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई। हिन्दी-प्रचार आन्दोलन ने वेग पकड़ा।[२] बाद के वर्ष भारतीय जन की सजगता और संघर्ष के हैं। राष्ट्रीय आन्दोलन, प्रथम तथा द्वितीय विश्व-युद्ध, स्वतंत्रता प्राप्ति तथा देश-विभाजन आदि का लोगों पर व्यापक प्रभाव पड़ा।

'नाटक' में रुचि

वर्मा जी ने जिस समय होश संभाला हिन्दी जगत में नाटकों की धूम थी। हम कह आये हैं कि उन पर पहला प्रभाव डालने वाली पुस्तक थी—'अश्रुमती', नाटक। उन दिनों 'पारसी थियेटर' सर्वसाधारण के मनोरंजन का साधन था। भाषा एवं नाट्य-कला के प्रश्न पर हिन्दी नाटककारों का पारसी रंगमंच से मतभेद था। वर्मा जी ने सन् १९०५ के लगभग झाँसी में 'जनरल राबर्ट्स थियेट्रिकल कम्पनी' के 'ड्रामे' देखे। उन ड्रामों की भाषा ठेठ उर्दू थी और वातावरण भी भारतीयता से कहीं दूर। तभी वर्मा जी के मन में हिन्दी के रङ्ग-मंच की स्थापना की कामना जगी। मराठा नाटक मंडली के अभिनीत नाटक देखे। कुछ नाटक लिख डाले। सन् १९०३ में 'नारान्तक वध' नाटक लिखा और घर की अटारी में खेला भी। १९०८ तक कई नाटक लिखे।[3] इस प्रकार वर्मा जी का साहित्यिक जीवन नाटकों से प्रारम्भ होता है। इस दिशा में वे बढ़ते गये। सन् १९४६ से अब तक उनके १९ नाटक प्रकाशित हो चुके हैं।

वर्मा जी गरीबी में पले थे। बारह वर्ष की अवस्था में उनका विवाह हो गया था। हाई स्कूल पास करने के बाद दो वर्ष छोटी-मोटी नौकरियों में बिताये। फिर ग्वालियर से बी० ए० और आगरा से एल० एल० बी० की

१. काँग्रेस का इतिहास : खंड २ [डा० पट्टाभि सीता रमय्या]...पृ० ५
२. सन् १८९३ में काशी-नागरी-प्रचारणी सभा तथा १९१० में हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की स्थापना।
३. देखिए परिशिष्ट...वर्मा जी का पत्र, सं० २, ता० ९-१२-५०

परीक्षायें पास कीं। ग्वालियर में रियासती 'अन्धेरखाते' के उन्हें कई अनुभव हुए। आगरा में उनके अनेक साहित्यिक मित्र बने। वहीं 'प्रताप' के सम्पादक स्व० गणेशशंकर विद्यार्थी से परिचय हुआ जो अन्त में मित्रता के रूप में परिणत हो गया था।

धर्म सम्बन्धी दृष्टिकोण

वर्मा जी का परिवार 'सनातन धर्म' में आस्था रखता था। 'आर्य समाज' के एक बड़े उपदेशक के व्याख्यानों ने उन्हें घोर आर्य समाजी बना दिया। बी० ए० में उन्होंने डार्विन, बर्कले स्पेन्सर, मार्क्स की पुस्तकें पढ़ीं। धर्म सम्बन्धी पुरानी आस्था की नींव हिल गई। उनका देवी-देवताओं से विश्वास उठ गया और वे 'नास्तिक' बन गये। धीरे-धीरे विचारधारा में प्रौढ़ता आई। उनकी धारणा बन गयी कि विश्व की संचालक कोई महान् शक्ति है, उसका अस्तित्व स्वीकार करना होगा, किन्तु धर्माडम्बरों से उठा वर्मा जी का विश्वास फिर नहीं लौटा। वे अपनी कर्म-विषयक इस धारणा को 'वैज्ञानिक दृष्टिकोण' के नाम से पुकारते हैं।[1]

राजनीति के समीप

राजनीतिक हलचलें वर्मा जी को प्रायः छूती रहीं। 'बंग-विभाजन' के विरोधी जन-आन्दोलन ने वर्मा जी को स्फूर्ति दी। रूस जैसे बड़े देश पर नगण्य जापान की विजय के समाचार ने उनके दुर्बलों के सबल बनने के विश्वास को पक्का किया। तत्कालीन पत्र-पत्रिकाएँ उनकी विचारधारा को परिपक्व करती रहीं। 'प्रयाग समाचार', 'श्री वेंकटेश्वर समाचार', 'बंगवासी' और बा० बालमुकुन्द गुप्त का 'भारत मित्र' वे चाव से पढ़ते थे। 'स्वदेशी' और 'बाइकाट' में वर्मा जी का विश्वास बढ़ा। देश की स्वाधीनता-प्राप्ति और शोषकों के संहार के लिये, बम, पिस्तौल के प्रयोग में उनकी आस्था जमने लगी थी। सन् १९१६ में वकालत प्रारम्भ करने के साथ उनकी 'सक्रिय राजनीति' का द्वार भी खुला। वकील जीवन के कड़ुवे-मीठे अनुभवों के साथ कुछ वर्षों बाद आय बढ़ने लगी। राजनीति और जनकार्य में रुचि बढ़ी। झाँसी के इन्फ्लुएंजे से पीड़ित लोगों की सेवा की और मृतकों के दाह-कर्म कार्य के लिये स्वयं-सेवकों में वर्मा जी सम्मिलित हुए। अप्रेल, १९१९ में

---

१. 'अपनी कहानी' तथा वर्मा जी से व्यक्तिगत वार्तालाप के आधार पर

हुए 'जलियाँवाला काँड' में पीड़ित भारतियों की समवेदना में उन्होंने अपने वकील मित्र राजनारायण के सहयोग से शहर में हड़ताल करायी।

सक्रिय राजनीति

१९२० में काँग्रेस ने कलकत्ता में नई काउंसिलों के बहिष्कार का प्रस्ताव स्वीकृत किया। चुनाव हुए। इलाहाबाद के सुप्रसिद्ध नेता श्री सी० वाई० चिन्तामणि के खरे व्यक्तित्व तथा योग्यता से वर्मा जी विशेषतया प्रभावित हुए थे। वर्मा जी उनके अनुयायी बन 'लिबरल पार्टी' के सदस्य हो गये। यू० पी० कार्उसिल की सदस्यता के लिए चिन्तामणि झाँसी चुनाव-क्षेत्र से खड़े हुए। वर्मा जी और उनके साथियों ने अपने उम्मीदवार की सफलता के लिए जी तोड़ प्रयत्न किया और चिन्तामणि काँग्रेसियों के विरोध पर भी चुन लिये गये। अवध में गरीब किसानों की ओर से लगान न देने का आन्दोलन चला। इसी सम्बन्ध में कानपुर के 'प्रताप' पर किसी जमींदार ने मुकदमा चलाया। सम्पादक गणेशशंकर विद्यार्थी की ओर से वकीलों में वर्मा जी भी थे।

सन् १९२२ की एक दुर्घटना ने वर्मा जी को काँग्रेस से और भी दूर कर दिया। उनके मित्र राजनारायण ने म्यूनिस्पैलिटी की ओर से प्रस्ताव रखाया कि शहर में नल लगाये जायँ और खर्च पूरा करने के लिये जनता पर 'कर' लगाया जाय। शहर के काँग्रेसी नेताओं ने कर या 'हाउस टैक्स' के प्रश्न को अपनी महत्वाकांक्षा और हिंसक भावना पूर्ति का साधन बना लिया। उन्होंने कर के विरोध में राजनारायण के परिवार का 'बाइकाट' कराया। राजनारायण क्षय रोग से पीड़ित थे। उनकी चिकित्सा-सेवा आदि के सभी साधनों पर रोक लग गयी। अन्त में दुर्बल, पीड़ित राजनारायण के प्राण पखेरू उड़ गये। विरोधियों की इस हिंसा से वर्मा जी को भारी ठेस लगी। वे स्वयं लिखते हैं—'मैं काँग्रेस से अलग हो गया और इन नेताओं का विरोध करता रहा। अहिंसा की लम्बी चीख-पुकार करने वाले भी कितना घोर कर्म कर सकते हैं, यह मन में बैठता गया। 'साधुनं प्रति साधुनं' बिलकुल ठीक है—जो इसका पालन न करे वह नीच है, परन्तु हर एक के प्रति पूरी अहिंसा का सिद्धान्त मुझे नहीं जंचता। कभी-कभी हिंसा जरूरी ही नहीं, बिलकुल उचित भी है।'[1]

सन् १९३० में वर्मा जी को कृषि और बागबानी का शौक लगा। उन्होंने बड़े पैमाने पर प्रयोग किए, असफलता हाथ आई और सिर पर आ गया साठ-

---

१· वर्मा जी का पत्र ता० ९-७-१९५७

सत्तर हजार रुपयों का ऋण। वे सन् १९३६ से ३८ तक झाँसी जिलाबोर्ड के अध्यक्ष रहे। वहाँ उन्हें अपनी प्रबन्ध-शक्ति के प्रदर्शन का अवसर मिला।[२] वकालत छोड़ दी। सन् ५१ में झाँसी में प्रदेश के एक प्रमुख काँग्रेसी के विरुद्ध विधान सभा के लिए वर्मा जी ने चुनाव लड़ा किन्तु असफल रहे। जिला कोआपरेटिव बैंक के मैनेजिंग डाइरेक्टर लगभग तीस वर्षों से हैं। आर्थिक कठिनाइयों में बिंध जाने के कारण वर्मा जी की लेखनी दस वर्ष [सन् ३२ से ४२ तक] स्थिर प्रायः रही। सन् ४५ से वे अनवरत गति से लिखते आ रहे हैं।

उपन्यासों पर प्रभाव

वर्मा जी के उपन्यास उनके संस्कारों, प्रभावों और चिन्तन की देन हैं। कहा जा चुका है, वर्मा जी ने इतिहास को वर्तमान की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास और वर्तमान का समन्वय है। उन की दृष्टि राष्ट्र के पुनर्निर्माण पर रही है। भारत के पतन के मूल कारण, 'समाज' को उन्होंने क्या ऐतिहासिक और क्या सामाजिक, सभी उपन्यासों में अपनी प्रयोगशाला बनाया है। सामाजिक कुरीतियों, जाति-पाँति-गत भेदभाव, पतितों के प्रति निष्ठुर व्यवहार, दहेजप्रथा, वैवाहिक सम्बन्ध का मूलाधार 'कुंडली' मात्र को मानना, दासीप्रथा आदि [गढ़ कुंडार, लगन, संगम, कुंडली चक्र, प्रत्यागत, कभी न कभी, कचनार, मृगनयनी] की ओर उन्होंने इंगित किया है। मजदूरों और किसानों की हीन दशा [कभी न कभी, टूटे काँटे] उन्हें चुभी है। स्वतंत्रता आन्दोलन की अपनी योजना उन्होंने 'झाँसी की रानी—लक्ष्मीबाई' में रख दी है। इस उद्योग में साधन के रूप में 'हिंसा-अहिंसा' के प्रश्न पर उन्होंने दृष्टिकोण बनाया है [अचल मेरा कोई]। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सहकारिता के मार्ग पर गाँवों की आर्थिक, सामाजिक, साँस्कृतिक उन्नति की योजना की रूप-रेखा 'अमर बेल' में प्रस्तुत की गई है। जीवन में सुख और प्रगति की प्राप्ति का मूल मंत्र कोरा वैभव-प्रदर्शन या मिथ्याभिमान नहीं, शारीरिक श्रम एवं उत्साह है [सोना]।

वर्मा जी—बुंदेलखंडी !

वर्मा जी बुंदेलखंडी पहले हैं, बाद में कुछ और। वे यहीं उपजे, पले और

---

१. **वर्माजी का पत्र ता० ९-७-५७**

विकसित हुए हैं। जिझौती[1] और उनका सम्बन्ध आज का नहीं पीढ़ियों का है। इसके (बुंदेलखंड के) लिये दीवान आनन्दराय ने गोली खाई तो क्या वर्मा जी की लेखनी तनिक स्याही भी न खाती! उन्हें इस 'दरिद्र-खंड' की विभूति का ज्ञान है। उन्हें यह भी मालूम है कि यहाँ के लोगों के पास पैसे नहीं है फिर भी वे फागें और राछरें गाते हैं। अपनी झीलों और नदी, नालों के किनारे नाचते हैं और रंगीन कल्पनाओं में डूब-डूब जाते हैं। फटे हाल में भी अपने आप में मस्त ये बुंदेलखंडी उनके उपन्यासों में उभर आये हैं। यही नहीं, बुंदेलखंडी नदियों की तीखी धार, गहरे भरके, पहाड़ियों के उतार-चढ़ाव, घने जंगल, सुन्दर फूल और जल-लहरों पर सूर्य की चमकती किरणें, सब की सब उपन्यासों में आ विराजी हैं। बुंदेलखंड से वर्मा जी का यही तादात्म्य उनके उपन्यासों का आकर्षण है, उनका जीवन।

सजीव व्यक्तित्व और बाँकी शैली

वर्मा जी सजीव हैं। वह तथाकथित वृद्धावस्था में भी युवा हैं। उन्हें जीवन का प्रत्येक क्षण, प्रत्येक पग स्फूर्ति दे रहा है—कार्य करने की, मौज करने की और चलते-चलते गा उठने की। उनमें 'मनमौज' और 'उत्फुल्लता' मूर्त हैं। वे संगीतप्रेमी हैं। शिल्पकला से उन्हें प्रेम है। हठयोग, व्यायाम, घुड़-सवारी, आखेट, उन्हें क्या नहीं भाता! झाँसी में वकालत की तो श्यामसी में खेती करते हैं। पूरे 'घुमक्कड़', बुंदेलखंड का चप्पा-चप्पा छान मारा है। स्वच्छन्दता और मौज उनकी लेखन शैली में बसी है। वे सीधी-सादी कहानी कहते हैं एक प्रवाह में, बिना किसी प्रकार की कृत्रिमता के। उनके उपन्यासों को आराम से लेटे हुए पढ़ा जा सकता है। वहाँ विशेष मानसिक श्रम अपेक्षित नहीं। छोटे-छोटे वाक्य एक बाँकापन लिये हुए, मिठास से सिक्त, हृदय को गुदगुदाते से। वर्मा जी के साहित्यिक जीवन को तीस वर्ष होने को आये। इस लम्बे अरसे के बीच साहित्यिक रुचि और लेखन पद्धति में भारी अन्तर आ गया है। वे युग के साथ कदम मिला कर चलने में सजग हैं, उनके उपन्यास इस तथ्य के साक्षी हैं।

---

१ बुंदेलखंड का प्राचीन नाम

अध्याय २

'उपन्यास' और वर्मा जी के उपन्यासों का वर्गीकरण

साहित्य–जीवन–उपन्यास

उपन्यास साहित्य का एक भेद है और साहित्य है भाषा के माध्यम से जीवन की अभिव्यक्ति। मानव ने अपने जीवन में जो देखा और बरता है, उसके सार्वजनिक अभिरुचि एवं महत्व के अंगों पर जो कुछ विचारा और अनुभव किया है, उस सबका सजीव विवरण ही साहित्य है।[1] अभिव्यंजना की दृष्टि से साहित्य के अन्तर्गत रचनाओं के पाँच प्रधान भेद १—कविता, २—नाटक, ३—निबंध, ४—गद्य काव्य तथा ५—उपन्यास और कहानी किये जाते हैं।

जीवन और उपन्यास के अटूट संबंधों को लक्ष्य करते हुए डा० श्यामसुन्दरदास ने उपन्यास को मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा कहा है।[2] नॉविल (उपन्यास) की निम्नलिखित परिभाषा उक्त सूत्र पर प्रकाश डालती है—'नॉविल नाम साहित्य में समकालीन अथवा आधुनिक जीवन के निरीक्षण पर आधारित आचार-विचार के अध्ययन को प्रदान किया गया है। इसमें पात्र, घटनायें, षड्यंत्र (रहस्य) काल्पनिक होते हैं। तभी यह पाठक के लिये नवीन (नॉविल) है किन्तु इसकी नींव वास्तविक इतिहास की समानान्तर रेखाओं पर ही रहती है।

'नॉविल शब्द का तात्पर्य अनुभव की सहज, स्वाभाविक स्थिति के निर्वाह से है। नॉविल एक शृङ्खलाबद्ध कहानी है। यह कहानी वास्तव में ऐतिहासिक रूप से सत्य नहीं है किन्तु वैसी (वास्तविक) सहज ही हो सकती है।[3]

---

१. एन इंट्रोडक्शन टू दि स्टडी ऑफ़ लिट्रेचर···पृ० ११
२. साहित्यालोचन···पृ० १४७
३. दि एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका···१६ वाँ भाग···पृ० ८३३

यहाँ 'काल्पनिक' का तात्पर्य कपोल-कल्पना से नहीं वरन् घटना के ठेठ सत्य के शुष्क बंधनों के छुटकारे से हैं। उपन्यास की कथा और पात्र भले ही वैज्ञानिक सत्य की निश्चित सीमा—'ऐसा हुआ या ऐसा है'—में प्रवेश न कर पायें किन्तु उन सबका मूलाधार जीवन-प्रवाह और मानव सुलभ प्रवृत्तियाँ, रहने के कारण उपन्यास मानव तथा उसके जीवन के निकट रहता है। उपन्यास घटना के मात्र सत्य से नहीं बंधता वरन् उसकी संगति और संभावना से अधिक नियन्त्रित रहता है। इसी तथ्य को स्पष्ट करने के हेतु किसी की अत्युक्ति है—'कथा (उपन्यास) में नामों तथा तिथियों के अतिरिक्त सब बातें सच होती हैं और इतिहास में नामों तथा तिथियों के अतिरिक्त कुछ भी सच नहीं होता।' अतः उपन्यास, कार्य-कारण-शृङ्खला में बंधा हुआ एक गद्य कथानक है। इस विस्तृत, पेचीदा कथा में जीवन के प्रतिनिधि प्राणियों से सम्बन्ध रखने वाली वास्तविक या काल्पनिक घटनाओं द्वारा जीवन के सत्य का सजीव उद्‌घाटन रहता है।

'उपन्यास' की व्युत्पत्ति

उपन्यास का अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द 'नॉविल' का तात्पर्य 'न्यू' अर्थात् नवीन से है। इसका विकास लैटिन शब्द 'नॉविस' से हुआ है।[1] आज के अर्थ में प्रयुक्त हिन्दी का शब्द, 'उपन्यास' प्राचीन नहीं है। बा० गुलाबराय के मतानुसार इसका शब्दार्थ है, सामने रखना। शब्द, उपन्यास (उप+न्यास) के विश्लेषण से उसका एक अन्य स्पष्ट अर्थ संभव है। 'उप', उपसर्ग शब्दों के पहले लगकर उनमें गौणता या न्यूनता आदि कई अर्थों की विशेषतायें उत्पन्न करता है। और, शब्द, 'न्यास' के अर्थों में से एक है स्थापना करना या रखना (प्रामाणिक हिन्दी कोश—रामचन्द्र वर्मा, पृ० १४७ तथा ६४७)।—'उपन्यास' में लेखक 'स्थापना' करता है अपनी कथात्मक सृष्टि की। परमात्मा की सृष्टि वह असाधारण—बृहत्—जगत् है तो लेखक की यह रचना, 'उप (गौण--साधारण--लघु--) जगत्' या 'उपन्यास' है। इस प्रकार, 'उपन्यास' का शब्दार्थ हुआ लघु (जगत् की) स्थापना। डा० सत्येन्द्र 'उपन्यास' शब्द का

---

१. एन० ब्रिटेनिका...भाग १६...पृ० ८३३

स्रोत 'मनुस्मृति' को ठहराते हैं और आधुनिक अर्थ में इसके प्रचलन का श्रेय बंगला लेखकों को देते हैं।[1]

उपन्यास के तत्त्व

उपन्यास के तत्त्वों पर विचार करते समय हडसन ने अत्यन्त सरल रीति से उनकी व्याख्या करते हुए १—कथानक, २—पात्र, ३—कथोपकथन, ४—देशकाल (वातावरण) ५—शैली तथा ६—उपन्यासकार द्वारा प्रस्तुत आलोचना, व्याख्या अथवा जीवन-दर्शन, मुख्य तत्त्व उपन्यास में माने हैं।[2]

उपन्यास जीवन की प्रतिकृति है इसलिए उसका सम्बन्ध मानव व्यापारों, क्रियाकलापों और घटनाओं से होता है। ये सब मिलकर बनते हैं 'कथानक'। इन घटनाओं का विधाता मानव, उपन्यास-सृष्टि का 'पात्र' कहलाता है। उपन्यास-जगत् में पात्रों की बातचीत को 'कथोपकथन' कहते हैं। ये जीवन की घटनायें किसी विशिष्ट समय और किसी विशिष्ट स्थान पर घटित होती हैं। इस समय और स्थान को ही 'परिस्थिति', 'वातावरण' अथवा 'देशकाल' कहते हैं। उपन्यासकार की अभिव्यंजना के ढंग को 'शैली' कहते हैं। यह उपन्यास का पाँचवा तत्त्व है। इन पाँच तत्त्वों के अतिरिक्त एक छठा तत्त्व भी माना जाता है। प्रत्येक उपन्यास में लेखक जाने या अनजाने जीवन और उसकी कुछ समस्याओं का उद्घाटन तथा विवेचन करता है। अर्थात् उपन्यासकार घटनाओं, पात्रों, मनोवेगों आदि को इस प्रकार उपस्थित करता है जिससे थोड़ा बहुत इस बात का पता चलता है कि वह संसार को किस दृष्टि से देखता है और जीवन के प्रति उसका क्या विचार है। इसको हम उपन्यासकार द्वारा प्रस्तुत आलोचना, व्याख्या अथवा 'जीवन-दर्शन' या उपन्यास का 'उद्देश्य' कह सकते हैं।

---

१. ...तो 'परीक्षा गुरु' से उपन्यास का आरंभ एक नये रूप में हुआ। अब यह वार्ता न थी अंग्रेजी शैली का 'नॉवेल', बंगाली शैली का 'उपन्यास' था। पं० किशोरीलाल गोस्वामी जी ने इन पंक्तियों के लेखक को एक बार बतलाया था कि उपन्यास नाम का प्रारंभ बंगाल के बंकिमचंद्र ने किया था। उनका कहना है कि बंकिम बाबू उनके घनिष्ट मित्र थे। बंकिम बाबू एक दिन हुक्का पीते-पीते मनुस्मृति पढ़ रहे थे कि उन्हें उसी में उपन्यास शब्द का पता चला और वही नाम उन्होंने ग्रहण कर लिया था]' समीक्षा के सिद्धांत...पृ० १५७

२. दि स्टडी आफ़ लिट्रेचर...पृ० १७०

उपन्यासों के प्रकार

उपन्यासों के विभेद उनके तत्त्वों और वर्ण्यवस्तु के आधार पर किये जा सकते हैं। पहले तत्त्वों के आधार पर भेदों को लेंगे। उपन्यास के दो मुख्य तत्त्व हैं—कथानक और पात्र। इन दोनों की उपन्यास में प्रधान, गौण अथवा समन्वित स्थिति के आधार पर उपन्यासों को निम्न तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

१—घटना प्रधान, २—चरित्र प्रधान, ३—नाटकीय उपन्यास।

[अ] तत्त्वों के आधार पर

घटना प्रधान उपन्यासों का केन्द्र कथानक है। यहाँ कथानक पात्रों के चरित्र द्वारा विकसित नहीं होता वरन् उसका भविष्य उपन्यासकार की इच्छा शक्ति पर निर्भर है। घटना जैसा रुख ग्रहण करती है वैसी ही गतिविधि कठपुतली जैसे उन पात्रों की हो जाती है। ये उपन्यास मानव की शिशु-सुलभ वृत्ति, जिज्ञासा की तृप्ति मात्र करते हैं। कहानी सुनते समय बालक का केवल एक प्रश्न, एक ही रुचि रहती है—'आगे क्या हुआ ?' ऐसा क्यों हुआ, कैसे हुआ, इन समस्याओं के प्रति वह उदासीन रहता है।

चरित्र प्रधान उपन्यास में दूसरे तत्त्व, पात्रों के चित्रण पर बल रहता है। पात्रों के चरित्र पर विभिन्न कोणों से प्रकाश डालने के लिए उनको भिन्न-भिन्न स्थलों तथा परिस्थितियों में अग्रसर किया जाता है। पात्र घटनाओं के आश्रित नहीं रहते वरन् उनकी गति के अनुसार घटनाओं का संयोजन होता है। पात्र का चरित्र अपने आप में घटना है। उसके विभिन्न अङ्गों को प्रकाश में लाने के लिए असंबद्ध घटनायें मूल में एक पात्र विशेष से संबंधित होने के कारण परस्पर असंबद्ध होते हुए भी संबंधित रहती हैं। इनमें व्यवस्था न दीख पड़ने पर भी एक आन्तरिक व्यवस्था रहती है। फिर भी कथासूत्र पात्रों के पूर्णतया अधीन रहने के कारण शिथिल रहता है।

नाटकीय उपन्यास में दोनों तत्त्वों, कथावस्तु और चरित्र-चित्रण में समन्वय रहता है, घटनायें तथा पात्र परस्पर घात-प्रतिघात करते हुए विकसित होते हैं। पूर्व परिस्थितियों से प्रभावित और अपनी विशेषताओं से उद्वेलित होकर पात्र अपनी क्रियाशीलता के अनुसार कार्यकलाप में जुट जाते हैं। पात्रों की गतिविधि घटना-चक्र को नवीन मोड़ देती है और उनके चरित्र पर नया प्रकाश। इस प्रकार घटना से चरित्र और चरित्र से घटना का विकास होता है। दोनों में कार्य-कारण का सम्बन्ध रहता है। घटनायें एक निश्चित ध्येय

को दृष्टि में रखकर संपादित होती हैं। ध्येय उपन्यास के अन्त में रहता है। उपन्यास की समस्या उसकी 'प्रारम्भ' है, समस्या का उलझाव-सुलझाव 'मध्य', और उसको लेकर किसी निष्कर्ष पर पहुंचना ही उपन्यास का 'अन्त' है। समस्या के सूत्र में ये तीनों स्थितियाँ गुंथी रहती हैं। उपन्यासकार घटनाओं का निर्माण और चरित्रों का विकास निर्धारित योजना के आधार पर करता है। किन्तु यह सब कुछ जीवन के नियमों के क्षेत्र में रह कर करना होता है।

नाटकीय उपन्यास समस्या से बंधा होने के कारण निश्चित–सीमित घटनास्थल को रंगमंच बनाता है। यह देश अथवा स्थल सापेक्ष नहीं वरन् समय सापेक्ष रहता है। उपन्यास की समस्या उदय से लेकर अन्त तक पहुंचने में अनेक घटनायें और उनका काल अपने आप में समेटे रहती है।

वर्माजी के उपन्यास

औपन्यासिक तत्त्वों के संतुलन की दृष्टि से श्री वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों का वर्गीकरण करने से पूर्व उनके उपन्यासों की सूची देना युक्तिसंगत होगा। प्रकाशन काल के क्रम से उनके सन् १९५५ तक प्रकाशित १७ उपन्यासों की सूची इस प्रकार है—

क्रम सं०	प्रकाशन का सन्	उपन्यास	पृष्ठ
१	१९२७	गढ़ कुण्डार	४२१
२	१९२७	लगन	११५
३	१९२७	संगम	३०२
४	१९२८	कुण्डली चक्र	२५२
५	१९२८	प्रेम की भेंट	१२३
६	१९२८	प्रत्यागत	२३५
७	१९३०	विराटा की पद्मिनी	३२७
८	१९४०	मुसाहिबजू	१२०
९	१९४५	कभी न कभी	१९१
१०	१९४६	झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई	५११
११	१९४७	कचनार	४१९
१२	१९४९	अचल मेरा कोई	२६४
१३	१९५०	मृगनयनी	४८२
१४	१९५१	सोना	२४८

१५	१९५३	अमरबेल	४७७
१६	१९५४	टूटे काँटे	३९०
१७	१९५५	अहिल्याबाई	१९०

वर्मा जी के नाम से एक अन्य उपन्यास 'कोतवाल की करामात' प्रकाशित हुआ था किन्तु वे स्वयं उसको अपनी रचना स्वीकार नहीं करते हैं।[२]

वर्मा जी के उपन्यासों में प्रायः दोनों प्रमुख तत्वों, कथानक और पात्रों के परस्पर घात-प्रतिघात द्वारा उनके विकास की योजना रहती है। कथानक उपन्यासकार के मस्तिष्क में पहले से स्पष्ट और पूर्व नियोजित रहता है। वह स्वाभाविक ढंग से कथानक में पात्रों को गूँथता है। पात्रों की प्रतिक्रिया स्वरूप नियोजित मार्ग पर कथानक चलकर वांछित 'अन्त' तक जा पहुंचता है।[२] उपन्यास का घटनास्थल या रंगमंच भी प्रायः सीमित रहता है। इस दृष्टि से 'प्रत्यागत' और 'अमरबेल' तनिक भिन्न पड़ जाते हैं। प्रत्यागत का प्रमुख पात्र मंगल अपना घर, बाँदा छोड़कर कुछ समय के लिये भटकने बम्बई और मलाबार चला जाता है किन्तु उसके लौटने पर कथा का मुख्य भाग बाँदा में ही विकसित होता है। इसी प्रकार अमरबेल के देशराज और अंजना भी दो एक बार अपने, अफ़ीम के अवैध व्यापार के संबंध में लखनऊ, बनारस आदि शहरों की परिक्रमा कर आते हैं। 'मृगनयनी' तथा 'टूटे काँटे' के पात्र भी थोड़े समय के लिए मुख्य घटनास्थल को छोड़कर अन्यत्र भटकते हैं अथवा अन्य स्थलों से सम्बद्ध कुछ गौण कथाओं को इन उपन्यासों में प्रश्रय मिला है। इन उपन्यासों में स्थल-वैभिन्य कम है और सब समय सापेक्ष हैं। प्रत्येक उपन्यास की कथा ध्येय या अन्त को दृष्टि में रखती हुई घटना तथा पात्रों को विकसित करती चलती है।

प्रत्येक उपन्यास में पात्र एवं घटना के परस्पर सन्तुलन, घटनास्थल तथा

१—उपन्यासों की यह सूची वर्मा जी के साहित्य के प्रमुख प्रकाशक, मयूर प्रकाशन, झाँसी द्वारा प्रकाशित वर्माजी की रचनाओं की सूची पर आधारित है। वर्माजी ने भी इन पंक्तियों के लेखक को अपने १३.४.५५ के पत्र में उक्त सूची को प्रामाणिकता प्रदान की है।—वर्माजी के उपन्यासों की रचनाकाल के क्रम की दृष्टि से सूची परिशिष्ट २ में देखिए।

२—'वृन्दावनलाल वर्मा—सम्पादक को पत्र, ८.९.१९४०, 'साहित्य सन्देश', अक्टूबर-नवम्बर, १९४०...पृष्ठ १७२

समय आदि सम्बन्धी निज की विशेषतायें होती हैं। कलाकर की दृष्टि नियमों पर नहीं वरन् सर्वोत्तम रीति से अपनी लक्ष्यपूर्ति पर रहती है। भले ही रूढ़िगत नियमों की लीक उसे छोड़नी पड़े। अतः तत्वों की दृष्टि से उपन्यासों के कथित तीन प्रकारों में से किसी एक की कसौटी पर उपन्यास विशेष को कस कर पूर्णरूपेण खरा पा लेना कठिन है। तीन प्रकारों के मध्य कोई निश्चित विभाजक रेखा खींचना सैद्धान्तिक रूप से भले सम्भव हो किन्तु उपन्यास-रचना में इन विभेदों के गुण परस्पर घुल मिल जाते हैं। फिर भी विभेदगत नियमों को सहज, साधारण रूप से ग्रहण करते हुए हम वर्मा जी के निम्नलिखित उपन्यासों को नाटकीय उपन्यासों की कोटि में रख सकते हैं—

१. गढ़ कुंडार
२. लगन
३. संगम
४. कुंडली चक्र
५. प्रेम की भेंट
६. प्रत्यागत
७. विराटा की पद्मिनी
८. मुसाहिबजू
९. कभी न कभी

१०—झाँसी की रानी—[इसके संबंध में प्रायः प्रश्न उठाया जाता है कि यह जीवन-चरित है अथवा उपन्यास ? जीवन-चरित क्या है, इस विषय पर आगे चलकर विस्तार से विचार किया गया है। यहाँ नाटकीय उपन्यास की दृष्टि से इस रचना पर विचार कर लेना पर्याप्त होगा। इस रचना का निश्चित ध्येय है, लक्ष्मीबाई की, 'स्वराज्य-प्राप्ति'। ध्येय के प्रति लक्ष्मीबाई प्रारंभ से जागरूक है। उपन्यास के मध्य में वह इस दिशा में सक्रिय प्रयत्न करती है। विरोधी धाराओं का संघर्ष घनीभूत हो उठता है और कथा अन्त की ओर तीव्रता से अग्रसर होती है। रानी को भौतिक रूप से स्वराज्य-स्थापना में सफलता नहीं मिलती किन्तु उसे यह संतोष रहता है कि महान् साधना का श्रीगणेश हो गया। लोग इस ध्येय के प्रति जागरूक हो गये। एक दिन आएगा जब सफलता देवी के वरद्-हस्त की छाया भी भारतियों को प्राप्त होगी। इस प्रकार रानी की असफलता में भी सफलता निहित है। कथा अपने निष्कर्ष पर संतुलित गति से जा पहुँचती है। कथा लक्ष्मीबाई के चरित्र के चारों ओर घूमते रहने पर भी चरित्र प्रधान उपन्यासों की

भाँति चरित्र की आश्रित होकर नहीं रह जाती। घटनाओं और चरित्र में कार्य-कारण का सम्बन्ध स्थापित रहता है। लक्ष्मीबाई की चारित्रिक विशेषताओं के कारण नवीन परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं और वे घटनाओं को जन्म देती हैं। साथ ही घटनाचक्र में पड़कर लक्ष्मीबाई का चरित्र स्पष्ट होता चलता है। कथा के प्रारम्भ से अन्त तक पहुँचने में वर्षों का समय लगता है। घटनास्थल क्रमशः बिठूर, झाँसी और ग्वालियर तक सीमित रहता है।

इन सब विशेषताओं को दृष्टि में रखते हुए 'झाँसी की रानी—लक्ष्मीबाई' को नाटकीय उपन्यास स्वीकार करना उचित होगा।]—

११—कचनार
१२—अचल मेरा कोई
१३—मृगनयनी
१४—सोना
१५—अमरबेल
१६—टूटे काँटे

'अहिल्याबाई' को नाटकीय उपन्यासों की श्रेणी में रखना विवादास्पद है। पहला प्रश्न है उपन्यास के ध्येय या 'कार्य' का—अहिल्याबाई में प्रमुख कथा है अहिल्याबाई की। प्रासंगिक कथा है अहिल्याबाई के पुत्रवत् प्रिय मल्हारराव की उच्छृंखलता, आनन्दी से अनबन तथा आनन्दी की हत्या करने पर मल्हारराव के पश्चाताप की। दो गौण कथायें हैं डाकू गनपतराव के प्रायश्चित्त और सुधार, तथा आनन्दी के मल्हारराव के प्रति असफल प्रेम और उसके हाथों मारे जाने की। इनमें गनपतराव और आनन्दी की कथा का निश्चित ध्येय है। मल्हारराव का अन्त उसके उच्छृंखल चरित्र का सूत्र-संकलन मात्र है। मल्हार को आनन्दी की हत्या करने के उपरान्त पश्चाताप है इसका आभास उपन्यासकार देता है। किन्तु यह कहना कि मल्हारराव के पश्चाताप का चित्रण करने के ध्येय से ही उसकी कथा प्रारम्भ से अन्त तक संजोयी गयी है उचित न होगा। मल्हार के जीवन में आनन्दी की हत्या की घटना एकाएक आ जाती है और वह अनमना हो जाता है। उसकी सम्पूर्ण कथा किसी सन्तोषजनक 'अन्त' तक न पहुँच पाने के कारण पाठक के समक्ष प्रश्नवाचक चिन्ह के समान उलझी, अपूर्ण रह जाती है। मल्हार की कथा एक उच्छंखल युवक के जीवन के कुछ चित्र प्रस्तुत करने के अतिरिक्त 'अन्त' का प्रभाव उत्पन्न नहीं कर पाती।

अहिल्याबाई की मुख्य कथा क्रमबद्धता और संगठन की दृष्टि से मल्हार-वाली कथा की अपेक्षा शिथिल है। उसमें निश्चित 'अन्त' का अभाव है।

यह तथ्य अहिल्याबाई की कथा से सम्वद्ध परिच्छेदों का विश्लेषण करने पर स्पष्ट हो जाएगा। [परिच्छेद ३—अहिल्याबाई का न्याय-कार्य, व्यक्तित्व और स्वप्न देखना; ५—मल्हार की अहिल्या से क्षमा-प्रार्थना, अहिल्या का व्यक्तित्व; ६—अहिल्या का दरबारकार्य; १३—विद्रोहियों के प्रति अहिल्याबाई का दृष्टिकोण, मन्दिरों का दर्शन; १४—नवाली के मन्दिरों की यात्रा, १५—रोगिणी सिन्दूरी की सेवा करना; १७—अहिल्याबाई का टोटके में विश्वास; १९—अहिल्याबाई की दानवीरता, गनपतराव डाकू का हृदय-परिवर्तन और अहिल्याबाई द्वारा उसे क्षमादान; २२—अहिल्याबाई का महान् व्यक्तित्व। धर्म-चर्चा, राज्य-कार्य, चाटुकार कवि को हतोत्साहित करना; २३—मल्हार से भेंट, २४—मल्हार के अपनी माता से झगड़ने पर अहिल्याबाई का क्रोध, दरबार में राज्यकार्य और मल्हार के प्रति पुनः स्नेह; २५—महेश्वर में पूर्णिमा के मेले में अहिल्या द्वारा प्रबन्ध, मल्हार के प्रति पक्षपात; २६—अहिल्या द्वारा जामघाट पर बने मन्दिर का निरीक्षण, उसकी राजनीतिक समस्याएँ; २८—अहिल्या की मान्धाता और ओंकारनाथ तीर्थों की यात्रा; २९—अहिल्या की समस्याएँ, अहिल्या का दामाद तथा पुत्री शोक; ३१—अहिल्या का उच्छृंखल सिन्धिया को शाप; ३२—अहिल्या का मन्दिर-दर्शन, मल्हार की दुष्टता के प्रति कोप; ३४—अहिल्याबाई की राजनीतिक समस्याएँ। एक कवि को सही मार्ग बताना; ३५—अहिल्याबाई की न्यायप्रियता और मृत्यु] इन अठारह परिच्छेदों में अहिल्याबाई सम्बन्धी कथा का विश्लेषण बताता है कि ये सूत्र परस्पर असम्बद्ध हैं और किसी ध्येय की ओर केन्द्रित नहीं हैं। एक चित्र अहिल्याबाई की न्यायप्रियता का है तो दूसरा शासन-कौशल का, तीसरा धार्मिकता, चौथा सेवाभाव और पाँचवा अन्धविश्वास का, इत्यादि। इन सब चित्रों को प्रस्तुत करने वाली घटनाओं को किसी ध्येय या अन्त विशेष की शृंखला क्रमबद्ध नहीं करती वरन् अहिल्याबाई के चरित्र-चित्रण के आश्रित होकर ये घटनाएँ पदार्पण करती हैं। ऐसी दशा में घटना तथा चरित्र में कार्य-कारण का क्रमबद्ध सम्बन्ध स्थापित होने का प्रश्न ही नहीं उठता। घटनाएँ चरित्र के विभिन्न पक्ष स्पष्ट करने के लिए संजोयी गयी हैं वे चरित्र के घात-प्रतिघात से उत्पन्न नहीं होतीं। उपन्यास [?] का प्रारम्भिक भाग पढ़कर यदि एकाएक उसका अन्तिम भाग पढ़ा जाय तो न अहिल्याबाई के चरित्र में ही कोई परिवर्तन लक्षित होगा और न मध्य के कथा-सम्बन्धी ज्ञान का अभाव ही खटकेगा। उपन्यास का घटनास्थल भी बढ़ जाता है। अहिल्याबाई के मन्दिरों तथा एकान्त-प्रेम की सूचना देने के लिए उपन्यासकार उसे महेश्वर से ले जाकर मान्धाता और ओंकारनाथ में घुमाता है। 'अहिल्याबाई'

की ये सब विशेषताएँ उसे चरित्र-प्रधान उपन्यास के समीप ले आती हैं किंतु इसमें चरित्र की ऐतिहासिक वास्तविकता के प्रति अधिक आग्रह और रचनात्मक कल्पना का सीमित क्षेत्र होने के कारण यह ग्रन्थ जीवनी अथवा जीवन-चरित की सीमाओं में बहुत कुछ खप जाता है।[1] इसमें आई घटनाओं के अङ्कन की अपेक्षा उनके चित्रण पर अधिक बल दिया है। अहिल्याबाई के चरित्र को केन्द्र मानकर उसके आलोक में प्रायः सभी घटनाओं का चित्रण किया गया है। इस प्रकार अहिल्याबाई में चरित्र प्रधान-उपन्यास तथा जीवन-चरित्र के गुणों का घोल-मेल है। वर्मा जी मूलतः जीवन-चरित लिखना चाहते थे। उन्होंने ग्रन्थ में तत्कालीन वातावरण तथा वर्तमान एवं भविष्य के हेतु 'कुछ' देने के लिए ही जीवन-चरित की प्रणाली त्यागकर उपन्यास लिखने का निश्चय किया था।[2]

१. सारा साहित्य ही मनुष्य का अध्ययन है किंतु जीवनी और आत्म-कथाओं में वह अध्ययन सत्य और वास्तविकता की कुछ अधिक गहरी छाप लेकर आता है।······फिर भी उपन्यास उपन्यास ही है। उसमें रचनात्मक कल्पना का कुछ अधिक पुट रहता है। जीवनीकार भी कल्पना का प्रयोग करता है किंतु वह सामग्री के संयोजन और प्रकाशन की विधि में उससे काम लेता है। फिर भी उसकी कल्पना वास्तविकता से सीमित रहती है। वह कल्पना के अलंकारों से अपने चरित्र नायक की इतनी ही साज-सम्हार कर सकता है जितनी में उसका आकार-प्रकार न बदलने पाये। वह उस माँ की भांति है जो अपने बालक को नहला-धुलाकर, बाल सम्हाल कर तथा धुले कपड़े पहनाकर समाज में भेजती है। कपड़ों के चुनाव में वह अपनी रुचि और कल्पना से कार्य लेती है किंतु वह आकृति की असलियत को बदलने वाले पेण्ट का [या प्राचीन भाषा में कहें तो अङ्गराग का] कम प्रयोग करती है। जीवनीकार [आत्मकथा लेखक नहीं] उपन्यासकार की भाँति सर्वज्ञता का भी दावा नहीं करता है वह द्रष्टा के रूप में रहता है। वह अपने चरित्र नायक के बहुत से रहस्यों को जानता है किंतु फिर भी वह उसके मन की सब बातों को पूरी दृढ़ता के साथ नहीं कह सकता है। अज्ञात विषयों के संबंध में वह अनुमान से ही काम लेता है।

—काव्य के रूप···पृ० २५२

२. ऐतिहासिक उपन्यास में तत्कालीन वातावरण की अवतारणा लेखक के लिये अनिवार्य है। दूसरी कठिनाई है—आज और आने वाले कल के लिए भी तो उसमें कुछ हो। केवल ऐतिहासिकता या मनोरंजन मात्र अभीष्ट नहीं है। जीवन-चरित की प्रणाली से काम बनता न दिखा तो मैंने उपन्यास लिखने की सोची।

···अहिल्याबाई [परिचय] पृ० २

यह रचना-कार्य-कारण-श्रृंखला में सन्तोषजनक रीति से बंधी न होने के कारण उपन्यास की संज्ञा प्राप्त नहीं कर सकती। कथानक का 'ध्येय' विशेष नहीं है। इसीलिए अन्त में अहिल्याबाई की मृत्यु का दृश्य कोई प्रभाव उत्पन्न नहीं कर पाता। वह मुख्य पात्र के अन्त की सूचना भर देता है। हाँ उपन्यास ? का ध्येय है—अहिल्याबाई के चरित्र पर प्रकाश डालना। इस तथ्य को वर्मा जी ने भी स्वीकार किया है।[1]

[ब] वर्ण्य वस्तु के आधार पर

उपन्यासों की वर्ण्य वस्तु के विचार से धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, प्रागैतिहासिक, आर्थिक, यौन और प्राकृतिक (प्रकृति का अंकन करने वाले) आदि अनेक भेद किये जा सकते हैं। इनमें सामाजिक तथा ऐतिहासिक उपन्यासों पर यहाँ विचार करना अभीष्ट है।

सामाजिक तथा ऐतिहासिक उपन्यास

सामाजिक उपन्यास का सम्बन्ध है समाज से। स्थायी तथा सर्वसाधारण महत्व के कुछ सामान्य हितों की पूर्ति के लिए शान्तिपूर्वक प्रयत्नशील सहयोगी मनुष्यों का समूह समाज है। मनुष्यों या व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्ध (शान्तिपूर्वक सहअस्तित्व, मतभेद, द्वन्द्व आदि) तथा उनकी सामान्य हित पूर्ति की दिशा में आई अड़चनें, प्रयत्न एवं निष्कर्ष ही सामाजिक उपन्यास की रीढ़ की हड्डी का कार्य करते हैं।

ऐतिहासिक उपन्यास का सम्बन्ध बीते हुए किसी काल की घटनाओं, चरित्रों और वातावरण से रहता है। ये सब तत्व समाज विशेष के अंग बन कर आते हैं। इस प्रकार ऐतिहासिक उपन्यास सामाजिक उपन्यास की भाँति मनुष्यों के पारस्परिक सम्बन्धों और उनकी समस्याओं की कहानी है। उपन्यासकार इसमें वर्तमान समाज की समस्याओं को भी कलापूर्वक ला रखता है। किन्तु ऐतिहासिक उपन्यास का 'इतिहास' उसमें अपेक्षाकृत प्रधान रहता है। उपन्यास में ऐतिहासिक तथ्यों का निर्वाह, उन तथ्यों के आधार पर उपन्यासकार की अपनी व्याख्या तथा काल विशेष के वातावरण की यथाविधि अवतारणा के मूल में यही इतिहास रहता है। ऐतिहासिक उपन्यास

---

१. **पर आपका यह कहना बिलकुल सही है कि अहिल्याबाई के चरित्र पर प्रकाश डालना ही इस उपन्यास का [या चरित कह लीजिए] ख़ास ध्येय है।**

—वर्मा जी का पत्र, २८-१-५६

की यह विशेषता उसे सामाजिक उपन्यास से भिन्न स्तर पर ला खड़ा करती है।

वर्मा जी की ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में प्रायः चर्चा की जाती है। अतः उनके उपन्यासों को उक्त कसौटी पर कसने से पूर्व इतिहास तथा ऐतिहासिक उपन्यास के रूप और दोनों के परस्पर अन्तर पर विस्तार से प्रकाश डालना आवश्यक हो जाता है।

इतिहास है क्या ?

इतिहास है क्या, इस प्रश्न को लेकर विद्वानों ने तीन मत प्रस्तुत किए हैं। कुछ लोग इतिहास की गतिविधि को स्वचालित और बिना किसी ध्येय विशेष के मानते हैं। उनके मत से इतिहास अपने को दुहराता है। बस ! इतिहास अपने आप को दुहराता क्यों है, क्या इतिहास की प्रगति वास्तव में प्रगति नहीं है ? क्या वह केवल पुनरावृत्ति मात्र है, बिना किसी ध्येय के, बिना किसी लक्ष्य के ? इन सब प्रश्नों के उत्तर में वे मूक हैं। यहाँ मनुष्य जीवन के हाथ में कठपुतली मात्र है। वह किसी अज्ञात की इङ्गित पर खोया सा नाचे जा रहा है। ये विद्वान् रामराज्य और गुप्तकाल के सुनहले स्वप्न देखते हैं। उन्हें विश्वास है, समय की कीली पर घूमता-फिरता इतिहास एक दिन अवश्य फिर से बीता वैभव ला प्रस्तुत करेगा। साथ ही एक मनोरंजक शङ्का उठ खड़ी होती है, तो मुगल साम्राज्यशाही और अंग्रेजी राज्य भी किसी न किसी दिन फिर आ धमकेंगे। इतिहास सम्बन्धी यह अनोखी कल्पना मानव की इच्छा-शक्ति की प्रसाद कही जा सकती है। मानव अतीत के वैभव के पुनरुज्जीवन की कल्पना करता है और यह कल्पना उसे भाती है।

अन्य विद्वान सागर की गोद में उठने और गिरने वाली तरंगों की भाँति इतिहास को आँकते हैं। वे देखते हैं, सरिता पर्वत से श्रवित हो मैदानों पर बहती है और एक दिन सागर में मिल ही जाती है। सागर में भी उसे विश्राम कहाँ, बादल में परिवर्तित हो वह बनती है मेघ, मेघ उमड़ते हैं, गरजते हैं, और बरसते हैं। सूर्य उदय हाता है, चमकता है और अस्त होता है, कल फिर उठने के लिए। दिन के पीछे रात और रातके पीछे दिन दौड़ता है। प्रकृति की यह विश्रामरहित दौड़धूप, जिसका मूलमन्त्र उत्थान-पतन का चक्र जान पड़ता है, उन्हें इतिहास को उत्थान-पतन की आवृत्ति मात्र मानने की प्रेरणा देती है। तह में उपर्युक्त दोनों मत अधिक भिन्न नहीं है। इस दृष्टि से संसार में महान् पुरुषों का और स्फोटक घटनाओं का पदार्पण अभिप्राय शून्य जान पड़ता है।

विद्वानों का तीसरा वर्ग मानव के अस्तित्व को पहिचानने पर बल देता है। वे मनुष्य को प्रकृति या किसी अज्ञात, रहस्यमयी शक्ति (भले ही वह ईश्वर, नियति, प्रकृति या जो कुछ भी कही जाय) के हाथ में कठपुतली कैसे मान लें ? उनके मत से इतिहास मनुष्य निर्मित, लक्ष्य विशेषयुक्त तथा नपी-तुली गतिविधि है। फ्रांस, रूस तथा चीन में १९ वीं शताब्दी में करवटें लेने वाली औद्योगिक क्रांति ने उसकी आँखें खोल दीं। इतिहास की दिशा को, उसके प्रवाह को बदलने या मोड़ने वाले कुछ महापुरुष ही नहीं, मनुष्यों के वर्ग, यूथ के यूथ होते हैं। इतिहास की गति द्वन्द्वात्मक है। यह विचार हमें स्फूर्ति प्रदान करता है। मनुष्य पीछे देखता है। पिछली बातें प्रेरणा देती हैं उसे आगे बढ़ चलने की और अपने साहस, शौर्य, प्रगति और जीवन के प्रति निष्ठा रखने की। यह तीसरा मत ग्राह्य जान पड़ता है। इसमें मनुष्य के अस्तित्व की स्वीकृति तथा उसकी प्रगति की व्यवस्था है। इतिहास हमारे लिए केवल खंडित पाषाणों से भरा अजायबघर नहीं है। उससे स्फूर्ति ग्रहण करनी है। मनुष्य को इतिहास ने बनाया, उसी प्रकार मनुष्य भी इतिहास बनाता है। हर क्षण यह क्रिया चल रही है।[1]

इतिहास—संघर्षों का लेखा-जोखा

प्रकृति, मनुष्य और समाज के मध्य सृष्टि के श्रीगणेश से आज तक द्वन्द्व चलता आया है। इस अनादि, अनवरत द्वन्द्व का लेखा-जोखा मानव का इतिहास है! मनुष्य ने सर्वप्रथम, प्रकृति के विरुद्ध विज्ञान का शस्त्र ग्रहण किया, प्रकृति की मनमानी उसे अखर उठी थी। प्रकृति को बहुत कुछ वशीभूत कर लेने पर द्वन्द्व का चक्र रुका नहीं। मनुष्यों की संख्या बढ़ने लगी। तृप्ति के साधन सीमित थे और आवश्यकताएँ अनेक। जीवन की निर्बाध गति में यह बाधा उसे कैसे सहन होती ? मनुष्य, मनुष्य से सचेत हो गया। आदम के वंशज में आदमखोर की प्रवृत्ति अंगड़ाई ले उठी। मनुष्यों ने भिन्न-भिन्न यूथों में बँटकर मोरचे बनाये और आपस में भिड़ गये। विजेताओं ने शासन की बागडोर सँभाली। वे स्वामी थे और विजित उनके दास। यह कहानी आज तक न जाने कितनी बार दोहराई गई।

आगे चलकर मनुष्य ने समाज का अस्तित्व अनुभव किया। व्यक्ति और समाज की सीमायें कहीं-कहीं आपस में टकरायीं। समाज ने व्यक्ति की उपेक्षा

---

१. आलोचना…५ अक्टूबर, ५३ में 'ऐतिहासिक उपन्यास'…पृ० १० से १२

की ओर व्यक्ति ने समाज के प्रति विद्रोह। द्वन्द्व चैतन्य हो उठा। समाज ने विद्रोह को कुचल दिया अथवा कभी-कभी किसी क्रान्तिकारी ने समाज की धारा को मोड़ कर युग-प्रवर्तक की संज्ञा पाई। इस प्रकार अनन्त काल से मनुष्य और प्रकृति, मनुष्य और मनुष्य तथा मनुष्य और समाज में अनवरत द्वन्द्व होता चला आ रहा है। गत संघर्षों की स्मृति उसे कल की टक्करों के लिए बल देती है, स्फूर्ति देती है, प्रेरणा देती है।

श्री वृन्दावनलाल वर्मा का इतिहास के सम्बन्ध में व्यक्त किया गया मत यहाँ उल्लेखनीय है—'सृष्टि ईश्वर ने रची और चलाई है और उसी की प्रेरणा से यह अब भी चल रही है, इस सिद्धान्त को मैं नहीं मानता। समाज का सृजन आर्थिक विवशताओं से होता है।···काम्बटे ने फ्रान्स में इसको प्रारम्भ किया बर्कले ने इङ्गलैंड में इसे बढ़ाया। और मार्क्स ने इसे परिपक्व किया। इस सिद्धान्त में इतिहास की कोई गुंजाइश नहीं। मैं इसके कुछ अंशों को मानता हूँ और कुछ को नहीं। मेरा अपना अलग सिद्धान्त है।

'मानव का विकास बहुत धीरे-धीरे हुआ है और होगा। वह एक बात में बढ़ता है दूसरी में घटता है। सर्वतोन्मुखी बाढ़ कभी नहीं आती। यही मानव का प्रगतिवाद है।'[1]

इतिहास और ऐतिहासिक उपन्यास

'इतिहास का अर्थ है 'इति-ह-आस' यानी यह ऐसा हुआ। उपन्यास का अर्थ ही है 'नवलिका' [नेवैले, नाविल] या कादम्बरी। पहला घटना का यथार्थ वर्णन करता है। दूसरा कल्पना का रोचक रम्य विलास है। तो क्या दोनों में कोई मौलिक विरोध है, क्या यथार्थ की गौण मिट्टी से ही हमारी कल्पना नहीं बनती और हमारे सपनों का कुछ असर हमारे यथार्थ निर्माण पर पड़े बिना नहीं रहता है और फिर ऐतिहासिक उपन्यास एक कलाकृति भी है। यानी कलाकार व्यक्ति की मेधा और मार्मिक भावना से छनकर नया रूप और रङ्ग दिखलाने वाला समाज दर्शन। कलाकार व्यक्ति समाज-निरपेक्ष नहीं और न ही समाज व्यक्तियों से अप्रभावित रहा है।

अंग्रेजी समालोचक वाल्टर बैगहौट ने ऐतिहासिक उपन्यास और इतिहास की तुलना बहते हुये जल प्रवाह में पड़ी हुई प्राचीन दुर्ग मीनार की छाया से की है। पानी नया है। नित्य परिवर्तनशील है परन्तु मीनार पुरानी है अपने स्थान पर स्थित है। ऐतिहासिक उपन्यास लेखक की भी यही समस्या है कि

१. 'सरगम' ६ मार्च ५१, में 'उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा'।

उसके पैर तो इस जमीन पर हैं वह सांस इस युग और निमिष में ले रहा है परन्तु उसका स्वप्न पुरातन है और फिर भी नवीन है। एक ही ऐतिहासिक विषय पर विभिन्न युग के लेखक इसी कारण से विभिन्न प्रकार से लिखेंगे।[1]

ऐतिहासिक उपन्यासकार और इतिहासकार दोनों के दृष्टिकोण में अन्तर है यद्यपि ये प्रचलित तथ्यों पर आधारित हैं और भूत का ही वर्णन करते हैं। इतिहासकार तथ्यों तथा उनके कारणों को दृष्टि में रखते हुए अनुमान अथवा तर्क द्वारा उन्हें शृङ्खलाबद्ध करता है। वह तथ्यों और कारणों के आधार पर सम्बन्धित विस्मृत घटनाओं आदि का अनुमान लगा सकता है। कल्पना तथा व्याख्या का कार्य उसके क्षेत्र से बाहर है। वह खोजमात्र करके परिस्थिति और घटना का वर्णन करता है उसका निर्माण नहीं। उसके लिये बाह्य घटनायें मुख्य हैं। आन्तरिक भावनाओं के वर्णन से यथाशक्ति बचता है। उन्हें उसी सीमा तक स्पर्श करेगा जहाँ तक बाह्य घटनाओं से वे अनुमेय हैं। उसके लिये राष्ट्र मुख्य है और व्यक्ति गौण। अतः उसका क्षेत्र अधिक व्यापक नहीं हो पाता।

दूसरी ओर, ऐतिहासिक उपन्यासकार तथ्यों पर आधारित होते हुए भी कल्पना और व्याख्या का प्रयोग करने के लिये स्वतन्त्र है। वह वैज्ञानिक की भाँति परिस्थितियाँ उत्पन्न कर उन पर सामाजिक प्रयोग करता है। वह पात्रों के मानसिक विश्लेषण के साथ विश्वासपात्र की भाँति उनके आन्तरिक रहस्य का दिग्दर्शन कराता है। उसकी दृष्टि में व्यक्ति का महत्त्व अधिक है, वह पात्रों को मनुष्य के दृष्टिकोण से ग्रहण करता है। मनुष्य के वास्तविक जीवन का बहुत सा अंश अव्यक्त रहता है। वह उसके जीवन के अनावश्यक व्यक्त को छोड़कर उल्लेखनीय अव्यक्त को व्यक्त करता है जब कि इतिहासकार व्यक्त का भी केवल उतना ही अंश ग्रहण करता है जो राष्ट्र व जाति के उत्थान पतन से सम्बन्धित है। व्यक्ति को प्रमुखता देने के कारण उपन्यासकार जीवन के अधिक समीप है।

कल्पना के इतने विस्तृत क्षेत्र में स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण करते समय ऐतिहासिक उपन्यासकार केवल उपन्यासकारिता में रमा रह कर 'इतिहास' के प्रति उदासीन नहीं रह सकता। उसका कर्त्तव्य-निर्वाह उसी समय सम्भव है जब वह उपन्यास में प्रचलित और अप्रचलित ऐतिहासिक तथ्यों को बिना तोड़े मरोड़े ज्यों का त्यों रहने दे। तथ्य का गला घोटकर कल्पना, व्याख्या, संगति और सम्भावना सब निष्प्रभ हैं, निष्प्राण हैं। उपन्यासकार का कौशल इसी में है, वह दोनों मुख्य तत्त्वों—इतिहास और उपन्यास—को ऐसे घुले-

---

१. 'आलोचना'...५, में 'ऐतिहासिक उपन्यास'

मिले रूप में ले आये जैसे दूध और चीनी। उन्हें अलग-अलग पहिचान लेना असम्भव जान पड़े।

कथावस्तु को शृङ्खलाबद्ध तथा सजीव रूप प्रदान करने के लिये उपन्यासकार को परम्पराओं तथा किंवदन्तियों का आश्रय लेना होता है। वह अपने आदर्श तथा पसंद की कसौटी पर खरी उतरनेवाली परम्पराओं को चुनकर उन्हें उपन्यास में जहाँ-तहाँ सजा देता है। साथ ही उसे कुछ काल्पनिक चरित्रों को स्थान देना होता है। उपन्यासकार की यह देन यदि तर्कयुक्त, अर्थपूर्ण तथा आनुपातिक है, और तथ्यों को ठेस नहीं पहुँचती तो ग्राह्य है। ऐतिहासिक उपन्यासों में खप सकती है।

ऐतिहासिक उपन्यास—क्यों ?

प्राचीन गाथायें पाठकों के मनोरंजन और कुतूहलवर्द्धन के अतिरिक्त उन्हें बल भी प्रदान करती हैं। ऐतिहासिक उपन्यासकार इतिहास के चौखटे में मानव की शाश्वत समस्याओं और क्रियाओं को ऐसे ढङ्ग से संजोता है कि वे बीते युग की कहानी होकर भी 'आज' की चर्चा है। वह वर्तमान समस्याओं की नींव पर इतिहास की अद्भुत, शृङ्गार, वीर, रौद्र, वीभत्स और करुण रस की चुभने वाली हृदयस्पर्शी कहानियों की दीवारें उठाता है और उन पर टिकाऊ कल्पना की छतें पाट कर सुन्दर भवन खड़ा कर देता है। ऐतिहासिक घटनाओं की प्रामाणिकता में पाठक को विश्वास होता है। वह उपन्यास के पृष्ठों में उलझता हुआ वर्तमान समस्याओं की कटुता और तत्सम्बन्धी अपने दुराग्रहों को क्षण भर के लिये भुला बैठता है। इसी बीच उपन्यासकार तटस्थ पाठक को चुपचाप अदृश्य प्रेरणा देता है और पाठक न्यायोचित सुझावों को निष्पक्ष भाव से ग्रहण कर लेता है—बिना किसी झिझक के। इस विषय में वर्मा जी का वक्तव्य उल्लेखनीय है—'उपन्यास और कहानी आप को आज भी दैनिक समाचार पत्र की अपेक्षा किसी दूसरे समय और वातावरण में उठा ले जाती है। आप अपने तत्कालीन क्षण को भूल जाते हैं और कहानी के क्षणों में विचरने लगते हैं। मैं आप लोगों को कभी सैकड़ों वर्ष पीछे ले जाता हूँ और कभी उससे भी अधिक परन्तु इतिहास की उदासीनता में आप को फिर भी जकड़े रहता हूं। किसी देश का इतिहास भूत और वर्तमान से अलग रह कर नहीं चलता। भूत में ग्राह्य और अग्राह्य दोनों ही हैं। भूत के ग्राह्य को लेना और अग्राह्य को छोड़ देना वर्तमान के लिए उतना ही आवश्यक है जितना भविष्य के लिए वर्तमान की सुरुचता और सुघड़ता का। मैं गौरव गाथा द्वारा वर्तमान को भुलाता नहीं हूँ। और न

पाठक को पलायनवादी बनाता हूँ। मैं उनको उत्तेजित करके भविष्य के लिए प्रबल बनाता हूँ। मैं ताश के सुन्दर पत्ते बनाता हूं। आप उनसे तुरुप, ब्रिज चाहें जो खेलें, परन्तु खेलें सहानुभूति, ईमानदारी और खिलाड़ीपन के साथ। मैं केवल लकड़ी का खेल नहीं सिखाता जिससे केवल हाथ-पांव तोड़े जाएँ या खोपड़ी का भंजन किया जाए। वर्तमान समस्याओं का हल अचेत मन पर हमला करने से ज्यादा आसान होगा और सचेत मन पर हमला करने से कम। जब मैं शताब्दियों पहले के वातावरण में पाठकों को उठा ले भागता हूँ, तब वे वर्तमान का कोई भी आग्रह या दुराग्रह साथ नहीं ले जा पाते। फिर वहीं उनके अचेत मन में प्रवेश करके जो कुछ करना चाहता हूँ कर डालता हूँ। वे जब उपन्यास को समाप्त करने के बाद वर्तमान में लौटते हैं, तब अपने आप को कुछ अधिक सशक्त, स्फूर्तिमय और बढ़ा हुआ पाते हैं। उनको मैं पुराने वातावरण में ले जाकर पुरातन की ग्राह्य और अग्राह्य दोनों मूर्तियाँ दिखाता हूँ जिससे वे वर्तमान में लौट कर पुरातन के सड़ियलपने को वहीं छोड़ आएँ और सशक्त को अपने साथ रखकर वर्तमान की समस्या से भिड़ने में अपने आपको समर्थ पाएँ। 'गढ़ कुंडार', 'विराटा की पद्मिनी', 'लक्ष्मी बाई', 'कचनार' इत्यादि में ग्राह्य और अग्राह्य आप दोनों पाएंगे।······

'···पहली बार पढ़े तो मनोरंजन होता है, कुछ स्फूर्ति मिलती है। पाठक पलायनवादी किसी भी हालत में नहीं बनता। पलायनवाद तो सैक्स सम्बन्धी उपन्यास कराते हैं। मज़दूरों को किसी कारखाने में क्या और क्यों मिलना चाहिए ? किसको मिटा कर कौन आगे बढ़े। यह मैं नहीं बतलाता और न सिखाता हूँ। मैं तो निर्बल को सबल बनाना चाहता हूँ और यह भी दूसरे का खून बहाए बिना। यदि मेरे कुछ पाठक समझें कि यह सम्भव नहीं, तो मैं कहूँगा कि वे भारतीय या अभारतीय संस्कृति के इतिहास को समझे नहीं। मैं स्काट, ह्यूगा से भिन्न ऐतिहासिक उपन्यासों में आजकल की समस्याओं का भी समावेश करता हूं। 'लक्ष्मीबाई' उपन्यास में नारायण शास्त्री ब्राह्मण और छोटी नाम की भंगिन का प्रणय एक समस्या है न। पलायन के लिए लोग 'चन्द्रकान्ता' पढ़ सकते हैं, पर मेरा उपन्यास नहीं।'

राजनीतिक समस्याएं भी उनके क्षेत्र से बाहर नहीं हैं। वे कहते हैं—मेरे उपन्यास आज के राजनीतिक प्रश्नों का उत्तर नहीं देते तो करते ही क्या हैं ? 'लक्ष्मी बाई' में बाबा गंगादास और लक्ष्मीबाई की बातचीत, अंग्रेजों से झाँसी की जनता की लड़ाई, उसी उपन्यास में बाँदा के नवाब, राय साहेब, पेशवा, तात्या इत्यादि के चरित्र इसके जवाब हैं। पूरा उपन्यास पढ़ने पर

वर्तमान प्रश्नों का उत्तर मिल जाएगा। श्रौर बिना किसी विशेष राजनीतिक दल का नाम लिए, बिना किसी को चिढ़ाए-कुढ़ाए ही श्रार्थिक प्रश्नों का उत्तर मिलेगा। हाँ, मुद्रास्फीति, पूंजी श्रौर श्रमवाद इत्यादि के शब्द नहीं होंगे, क्योंकि सीधी बात है कि उपन्यास सम्पत्ति-शास्त्र की पुस्तक नहीं है। मैं श्रमजीवी हूं श्रौर श्रम का पुजारी। श्रम का श्राराधक, चाहे श्रम हाथ-पैर का हो, चाहें दिमाग़ का हो। दिमाग का श्रम श्रधिक पैना, श्रधिक मूल्यवान श्रौर श्रधिक महत्त्व का होता है। श्रौर रहेगा। यह सब मेरे ऐतिहासिक श्रौर सामाजिक उपन्यासों में मिलेगा। सामन्तों के निकम्मेपन श्रौर दुष्परिणाम का चित्र मेरे उपन्यास 'मुसाहिबजू' में पाइएगा।'[1]

वर्मा जी के उपन्यासों को वर्णवस्तु के दृष्टिकोण से निम्नलिखित दो भागों में बांटा जा सकता है।

[अ] सामाजिक उपन्यास

१. लगन
२. संगम
३. कुंडलीचक्र
४. प्रेम की भेंट
५. प्रत्यागत
६. कभी न कभी
७. श्रचल मेरा कोई
८. श्रमरवेल

[ब] ऐतिहासिक उपन्यास

१. गढ़ कुण्डार
२. विराटा की पद्मिनी
३. मुसाहिबजू
४. झाँसी की रानी—लक्ष्मीबाई
५. कचनार
६. मृगनयनी
७. टूटे कांटे
८. श्रहिल्याबाई

---

१. **'सरगम'...९, 'उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा—**

इनके अतिरिक्त 'सोना' उपन्यास अपनी विशेषताओं के कारण प्रथक वर्ग में रखा जा सकता है। इसके कथानक और पात्र बुन्देलखंडी लोक कथाओं से संजोये गये हैं। इन कथाओं को मनोविज्ञानसम्मत बनाने का प्रयत्न है। कथाओं की कड़ियों को जोड़ने का कार्य उपन्यासकार की कल्पना और अनुभवों ने किया है। इस प्रकार यह तीसरा वर्ग हुआ।

[स] लोक कथात्मक उपन्यास

१. सोना

अब सामाजिक तथा ऐतिहासिक उपन्यासों को क्रमशः समस्याओं, क्षेत्र तथा ऐतिहासिक पूर्णता-अपूर्णता तथा काल के आधार पर उपविभागों में विभाजित किया जा सकता है।

[अ] सामाजिक उपन्यासों का वर्गीकरण

मुख्य कथाओं की आधार भूमि प्रस्तुत करने वाली समस्याओं की दृष्टि से सामाजिक उपन्यासों का वर्गीकरण—

(क) वैवाहिक समस्या

[इसके अन्तर्गत सामाजिक प्रथा, विवाह, से सम्बन्धित समस्याएँ ली जा सकती हैं। ये समस्याएँ हैं दहेज के प्रश्न पर सम्बन्धियों में मनमुटाव, विवाह के अवसर पर आपसी झगड़े, वर-वधू की कुंडलियों के मिलने का प्रश्न तथा स्त्री पुरुष के मध्य प्रेम, जो विवाह का आधार बनता है, या अपनी उन्मुक्तता के कारण रूढ़िगत समाज से टकराकर उस सागर में बरस भाँति-भाँति की लहरें उठा देता है]

१—लगन [दहेज के प्रश्न पर सम्बन्धियों में मनमुटाव तथा पति और पत्नी की एक दूसरे को प्राप्त करने की लगन]

२—संगम [दहेज के प्रश्न पर सम्बन्धियों में मनमुटाव। विवाह के अवसर पर आपसी परिहास के कारण सक्रिय झगड़ा। इस झगड़े का दुष्परिणाम उपन्यास के अन्त तक प्रभाव रखता है]

३—कुंडली चक्र [असफल प्रेम। मात्र कुंडली मिलाकर विवाह करा देने का दुष्परिणाम]

४—प्रेम की भेंट [युवक-युवती का परस्पर प्रेम और उसमें बाधा]

५—कभी न कभी [विवाह निश्चित करने की समस्या। इस प्रसंग में टीपना अथवा कुंडली का विशेषतया उल्लेख आता है]

६—अचल मेरा कोई [अनमेल विवाह और प्रेम-त्रिकोण]

(ख) धर्म-परिवर्तन-समस्या

१—प्रत्यागत [युवक मंगल के बलपूर्वक मुसलमान बनाये जाने पर उसके हिन्दू-समाज में प्रत्यागमन की समस्या]

(ग) ग्राम-सुधार-समस्या

१—अमरबेल [सहकारिता आन्दोलन द्वारा ग्रामीण समाज के पुनर्गठन और ग्राम निर्माण कार्य की समस्या]

सामाजिक उपन्यास ग्राम, नगर या ग्राम-नगर दोनों क्षेत्रों को लेकर चलते हैं। क्षेत्र की दृष्टि से सामाजिक उपन्यासों के तीन विभाग किये जा सकते हैं :—

(घ) ग्रामीण समाज सम्बन्धी

१—लगन [बरौल और बजटा]

२—प्रेम की भेंट [तालबेहट]

(ङ) नागरिक समाज सम्बन्धी

१—प्रत्यागत [बाँदा] प्रधान पात्र कुछ समय के लिये बम्बई तथा मलाबार में भी ठोकरें खाने चला जाता है।

(च) ग्रामीण–नागरिक–समाज सम्बन्धी

[इन उपन्यासों में कथा ग्राम तथा नगर के समाज से सम्बन्ध रखती है या नगर तथा ग्राम की कथायें साथ-साथ चलती हैं]

१—संगम [बरुआ सागर, ढिमलौनी…झाँसी]

२—कुंडली चक्र [मऊसहानिया, सिंगरावन…बड़ा गाँव छावनी]

३—कभी न कभी [बनगंवा…बलवन्तनगर]

४—अचल मेरा कोई [अचल, सुधाकर, कुन्ती की मुख्य कथा शहर तथा पंचम, गिरधारी की प्रासंगिक कथा गाँव में चलती है। गाँव तथा शहर के नाम का उल्लेख उपन्यास में नहीं किया गया है]

५—अमरबेल [घटनायें सुहाना, बाँगुर्दन गाँवों में केन्द्रित रहती हैं फिर भी मुख्यपात्र देशराज और अंजना का सम्पर्क शहरी जीवन से विशेष रूप से रहता है और वे शहरी स्पर्श गाँव में लाने में सफल होते हैं]

[ब] ऐतिहासिक उपन्यासों का वर्गीकरण

ऐतिहासिक उपन्यास किसी विगतकाल के वातावरण को अपने आप में संजोये रहते हैं। अतीत के वे धूमिल आकर्षक दिन ही पाठक के चित्त को

लुभाने के शक्तिशाली साधन हैं। इस दृष्टि से ऐतिहासिक उपन्यासों के दो भेद किये जा सकते हैं।

१—वे उपन्यास जिन्हें आकर्षण प्रदान करने के लिये विगत युग के वातावरण मात्र की पृष्ठभूमि पर खड़ा किया जाता है। उस वातावरण में घटित होने वाली घटनाएँ, घूमने-फिरने वाले पात्र किसी भी युग की देन हों अथवा उपन्यासकार की कल्पना ही उनकी स्रष्टा हो सकती है। दूसरे प्रकार के ऐतिहासिक उपन्यास वे हैं जिनमें ऐतिहासिक वातावरण के अतिरिक्त अधिकांश घटनाएँ तथा पात्र भी ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित रहते हैं। इन ऐतिहासिक तथ्यों को सजीव तथा शृंखलाबद्ध रूप प्रदान करने के लिये उपन्यासकार निजकी कल्पना तथा व्याख्या का सहयोग देता है। केवल ऐतिहासिक वातावरण वाले तथा ऐतिहासिक वातावरण, कथावस्तु और पात्रों से युक्त उपन्यासों को श्री शिवनारायण श्रीवास्तव ने क्रमश: ऐतिहासिक प्रेमाख्यानक उपन्यास तथा शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास की संज्ञा दी है।[1] इसी प्रसंग में उन्होंने 'गढ़ कुंडार' की सम्पूर्ण कथा तथा समस्त पात्रों को ऐतिहासिक और 'बिराटा की पद्‌मिनी' के इन तत्त्वों को काल्पनिक माना है। यह निष्कर्ष सरसरी दृष्टि का परिणाम जान पड़ता है। वास्तव में 'गढ़ कुंडार' की केवल मुख्य कथा और कुछ मुख्य पात्र ऐतिहासिक है। अतः शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास से हमारा तात्पर्य होगा उसकी मुख्य कथा तथा मुख्य पात्रों की इतिहास-सम्मतता से। 'बिराटा की पद्‌मिनी' के पात्र और कथा भी काल्पनिक नहीं है, इस तथ्य पर आगे प्रकाश डाला जाएगा।

(क) शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास

१—गढ़ कुंडार
२—मुसाहिबजू
३—झाँसी की रानी–लक्ष्मीबाई
४—मृगनयनी
५—अहिल्याबाई

(ख) ऐतिहासिक प्रेमाख्यानक उपन्यास

१—बिराटा की पद्‌मिनी
२—कचनार
३—टूटे काँटे

इन आठ ऐतिहासिक उपन्यासों की कथाएँ विभिन्न कालों से सम्बन्ध रखती

---

१. हिंदी उपन्यास···पृ० ४२

हैं। अतः कालक्रमानुसार इन का एक अन्य वर्गीकरण किया जा सकता है-

(क) तेरहवीं शताब्दी

१—गढ़ कुंडार [इसका सम्बन्ध १३ वीं शती के अन्तिम भाग से है— खंगारों के नाश पर उपन्यास का अन्त होता है। यह घटना सन् १२८८ की है। उपन्यास की घटनाओं का प्रारंभ लगभग एक वर्ष पूर्व होता है]

(ख) पन्द्रहवीं शताब्दी का अन्त और सोलहवीं का प्रारंभ

२—मृगनयनी [मृगनयनी के पति मानसिंह तोमर का ग्वालियर में राज्यकाल सन् १४८६ से १५१६]

(ग) १८ वीं शताब्दी

३—बिराटा की पद्मिनी [दिल्ली में उस समय फ़रुखसियर का राज्य था। सन् १७१३ से १७१६। सैयद भाइयों का अस्त]

४—टूटे काँटे [मुहम्मदशाह का राज्यकाल १७१६ से १७४८। नादिर-शाह का आक्रमण १७३६]

५—अहिल्याबाई [देहान्त १३—८—१७६५]

६—कचनार [१७६०…१८००]

(घ) १६ वीं शताब्दी का पूर्व और मध्य काल

७—मुसाहिबजू [सन् १८०० के बाद]

८—झाँसी की रानी—लक्ष्मीबाई [सन् १८५७ के विद्रोह के आसपास का काल]

———

अध्याय ३

वर्मा जी के उपन्यासों की कथावस्तु

कथावस्तु

उपन्यास का संबंध घटनाओं और व्यापारों से, अर्थात् उन बातों से है जो सहन या संपादित की जाती हैं। इनको ही हम उपन्यास की 'वस्तु' या 'कथानक' कहते हैं। उपन्यास जीवन की प्रतिकृति है किन्तु जीवन का स्वरूप किसी सुयोजित साँचे में ढलकर खड़ा नहीं होता। जीवन-प्रवाह वर्षा-जल की भाँति बिना किसी उद्देश्य, बिना किसी योजना के चलता रहता है। उपन्यास कलाकृति है, उसमें जीवन एक विशेष दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया जाता है। वह जीवन की नींव पर खड़ा मनोरम भवन है। यह भवन असंभव को संभव कर दिखाता है। इसकी भित्तियों पर जीवन के चुने हुए चित्र रहते हैं, उनमें एक क्रम रहता है। ये थोड़े से चित्र एक योजना को दृष्टि में रखकर अङ्कित होने के कारण जीवन की पूरी झाँकी देने में समर्थ हैं।

उपन्यास में एक सन्देश रहता है। उपन्यासकार उस सन्देश—लक्ष्य—को दृष्टि में रखकर जीवन से घटनायें चुनकर उन्हें एक क्रम में संवारता है। संयोजन में अनावश्यक घटनाओं को छोड़ आवश्यक घटनाओं को (भले ही वे जीवन में गौण रही हों) महत्त्व प्रदान करता है। वह जीवन की विशृङ्खलता में भी कोई शृंखला, कोई क्रम, कोई योजना ढूँढ़ निकालता है। उसका कार्य फोटोग्राफर का नहीं वरन् चित्रकार, मूर्तिकार या कुम्हार जैसा है। जीवन उसके लिये कुम्हार के गारे के समान है। वह उस मिट्टी को काट छाँट कर एक नूतन, सोद्देश्य, संगठित रूप प्रदान करता है। अतः कथानक घटनाओं का संकलन मात्र नहीं है, वह किसी लक्ष्य को दृष्टि में रखकर जीवन से संग्रहीत घटनाओं की सुसंगठित क्रमबद्ध योजना है।

कथावस्तु के ढाँचे को सुदृढ़ बनाने में दो तत्त्वों का हाथ रहता है—इतिवृत्तात्मक और रसात्मक। इतिवृत्त घटनाओं के मध्य संयोग स्थापित कर कथा

को अग्रसर करता है; घटनायें प्रारंभ से लेकर अन्त तक इस संतुलन और अनुपात में रहें कि उनका क्रम अटूट रहे और कथा का अन्त उन सब क्रिया-कलापों का तर्कसंगत निष्कर्ष जैसा जान पड़े। हृदयस्पर्शी घटनाएं रसात्मक स्थल हैं। इतिवृत्तात्मक और रसात्मक स्थलों पर आनुपातिक प्रकाश डाल कर पाठक के हृदय में वांछित प्रभाव उत्पन्न करने में उपन्यासकार की कला है।

अच्छा कथानक

बा० गुलाबराय ने अच्छे कथानक के पाँच गुण स्वीकार किये हैं, उन्हें संक्षेप में यहाँ दिया जाता है—

१—**मौलिकता**—मौलिकता का प्रश्न बड़ा जटिल है। वैसे तो जितने उपन्यास हैं उन सबके कथानक पन्द्रह-बीस मूल समस्याओं में घटाये जा सकते हैं। कथा में विषय की नवीनता हो तो बहुत अच्छी बात है किन्तु वर्णन का ढंग अवश्य नवीन होना चाहिए। समीक्षक इसी मौलिकता को देखता है।

२—**कौशल**—कथावस्तु में संबंध-निर्वाह और उसकी उलझनों को सुलझाने की चतुरता है। पेचीदा कथानकों में, विशेषकर उनमें जिनमें कि एक से अधिक कथायें समानान्तर रूप से चलती हैं, कौशल की बहुत आवश्यकता रहती है।

३—**संभवता**—उपन्यास में सत्य की कसौटी संभावना ही है। उपन्यास एक कलाकृति है, उसमें सत्य का सुन्दर रूप से प्रदर्शन किया जाता है। इस कारण उपन्यास घटनात्मक सत्य से नहीं बँधता किन्तु वह कोई ऐसी बात भी नहीं कहता जो संभव और घटनीय न हो। उपन्यास में कल्पना वास्तविकता का अनुसरण करती है किन्तु वहाँ वास्तविकता की मक्खीमार नकल नहीं होती। कलाकार फोटोग्राफर नहीं वरन् चित्रकार होता है। साधारण मनुष्य जिन बातों में बेखबर रहता है कलाकार उनके विषय में सचेत रहता है। वह चलती दुनियाँ के परिवर्तनशील दृश्यों में शाश्वतता को पकड़ता है। उसकी दृष्टि व्यापक होती है। वह ऐसा चित्र देता है जिसमें मनुष्य का आत्म-भाव निखर आये। कलाकार जीवन का सत्य ही नहीं देता वरन् सत्य के हार्द को समझने की दृष्टि भी देता है।

४—**संगठितता**—उपन्यास कलाकृति है। यद्यपि जीवन का प्रवाह किसी कटे-छटे ढाँचे के अनुकूल नहीं है तथापि उपन्यास के कथानक में संगठन, क्रम और संगति का होना आवश्यक है। संगठन से अभिप्राय यह है कि न कोई आवश्यक बात छूटे और न कोई अनावश्यक बात आये। इसके साथ यह भी वाँछनीय है कि घटनाएँ कार्य-कारण-शृङ्खला में बंधकर क्रमागत रूप में

दिखाई दें। संगठन-क्रम और संगति का निर्वाह स्वभाविक रूप से ही होना चाहिए अन्यथा इनके अतिरेक से कृत्रिमता का दोष आ जाएगा।

५—रोचकता—रोचकता जीवन के लिए चाहे आवश्यक न हो किन्तु उपन्यास के लिए अत्यन्त आवश्यक है। रोचकता के लिए कुतूहल और नवीनता चाहिए। क्षण-क्षण में नवीनता प्राप्त करते रहना सौन्दर्य का व्यापक गुण है। नॉविल शब्द का ही अर्थ है नवीन। घटनाओं के एक दूसरे से संबंधित रहते हुए भी आकस्मिक और अप्रत्याशित को कथानक में स्थान मिलना चाहिये। वह अप्रत्याशित ऐसा हो जो कार्य-कारण-शृङ्खला से बाहर न होता हुआ भी पाठक की कल्पना से बाहर हो। आकस्मिक संयोग का प्रयोग किया जा सकता है किन्तु इसके बाहुल्य से कृत्रिमता दिखाई देने लगती है। रोचकता के लिए न तो अधिक ब्योरे की आवश्यकता है और न उसकी उपेक्षा की। वैचित्र्य में एकता का गुण शैली का ही प्राण नहीं वरन् रचना मात्र का जीवन रस है।[१]

कथानक के प्रकार

कथानक गठन की दृष्टि से दो वर्गों में बाँटे जा सकते हैं— १—शिथिल कथानक २—सुगठित कथानक। पहले वर्ग का कथानक एक दूसरे से फूटने वाली घटनाओं से संयोजित नहीं रहता वरन् मुख्य पात्र के चरित्र को स्पष्ट करने वाली परस्पर असंबंधित अनेक घटनाओं को लेकर उसका निर्माण होता है। उन घटनाओं में तारतम्य या कार्य-कारण का संबंध नहीं रहता, वे केवल मुख्य पात्र के चारों ओर घूमती हैं। सुगठित कथानक में किसी निश्चित योजना को दृष्टि में रखते हुए घटनाओं को परस्पर गूँथा जाता है। ऐसी दशा में उपन्यासकार के मस्तिष्क में कथा का पूरा ब्योरा उपन्यास-रचना से पूर्व रहता है। उस योजना में पात्र और घटनायें उपयुक्त स्थान ग्रहण कर लेते हैं। उन सब के मूल में कथा-सूत्र रहता है जो सबको मिलाता हुआ 'परिणाम' या 'अन्त' की ओर ले जाता है।

सुगठित तथा पूर्वनियोजित कथानक अपनी चुस्ती और सौंदर्य के कारण पाठकों के आकर्षण का विषय रहता है किन्तु कथानक अत्यधिक योजनाबद्ध होने पर उसमें संयोग, दैवयोग या आकस्मिकता के बहुप्रयोग के फलस्वरूप, वह यंत्रचालित-सा और अस्वाभाविक हो जाता है। संयोग जीवन में आते हैं किन्तु उपन्यास में पग-पग पर मनोवांछित विधि से घटनाओं का घटना और पात्रों का पदार्पण, पाठकों को उपन्यासकार की मनमानी जैसा

१—काव्य के रूप...पृ० १७२ से १७८

जान पड़ेगा। उनकी बुद्धि संयोगों की बाढ़ के प्रति विद्रोह कर उठेगी। अतः पूर्वनियोजित कथानक को स्वाभाविक गति से अग्रसर होना चाहिए।

कथानक एक या एक से अधिक कथाओं द्वारा निर्मित होने की दृष्टि से सरल तथा पेचीदा कथानकों की दो श्रेणियों में विभाजित किये जा सकते हैं। सरल कथानक में केवल एक कथा होती है। पेचीदा कथानक में दो या दो से अधिक कथाएं मिलकर चलती हैं। ऐसी दशा में कथाओं का परस्पर ऐसी रीति से गूँथा जाना आवश्यक है कि वे सब किसी बड़ी सरिता में स्वतः आ मिलने वाली जल-धाराओं जैसी स्वाभाविक और कथानक की अनिवार्य, अविभाज्य अङ्ग सी जान पड़ें।

उपन्यास में कथावस्तु नाटक की भाँति दो प्रकार की होती है, अधिकारिक और प्रासंगिक। अधिकारिक, प्रधान पात्रों सें सम्बन्ध रखने वाली मुख्य कथा है। इसका सूत्र प्रारम्भ से फल-प्राप्ति तक रहता है। प्रासंगिक—प्रसंगवश आयी या गौण कथा है। इसका संबंध सीधा नायक से न रह कर अन्य पात्रों से रहता है। यह मूल कथा की गति को बढ़ाने के लिए रहती है। इसकी फल-सिद्धि नायक के अतिरिक्त किसी अन्य को होती है। यह नायक की अभीष्ट फल-सिद्धि से भिन्न होती है किन्तु नायक का इससे हित साधन अवश्य होता है। इसके दो प्रकार हैं—पताका और प्रकरी। अधिकारिक के साथ अन्त तक चलने वाली प्रासंगिक कथा 'पताका', तथा उसके बीच में ही रुक जाने वाला कथा-प्रसङ्ग 'प्रकरी' है।[1]

अब हम प्रत्येक उपन्यास की कथावस्तु पर विस्तार-पूर्वक विचार करेंगे।

गढ़ कुण्डार

१. 'गढ़ कुंडार' की मुख्य कथा कुंडार के राजकुमार नागदेव के असफल प्रणय और खङ्गार-राज्य के पतन की गाथा है। नागदेव बाल सखा अग्निदत्त सहित शिकार की टोह में घूमते फिरते भरतपुरा की गढ़ी में जा ठहरता है। गढ़ी में माहोनी के सोहनपाल बुन्देला से उसकी भेंट होती है। सोहनपाल के साथ राज्य-वितरण के समय अन्याय हुआ था। वह अपने भाई से राज्य की पुनर्प्राप्ति के हेतु कुण्डार से सहायताप्राप्ति की आशा में वहाँ ठहरा था। उसी रात्रि गढ़ी पर मुसलमान सेना की एक टुकड़ी आक्रमण करती है। युद्ध में घायल हुए नागदेव की परिचर्या सोहनपाल की कुमारी पुत्री हेमवती करती है। नागदेव हेमवती पर पूर्णतया आसक्त हो जाता है। वह उसे प्रेमपत्र लिखता है किन्तु वह पत्र उस तक नहीं पहुँचता।

---

१. काव्य के रूप...पृ० २८

नागदेव सोहनपाल को कुण्डार की सहायता का आश्वासन देता है। सोहन अपने सहायकों सहित सारौल डेरा डालता है और उसकी कन्या, पुत्रादि कुण्डार में ठहरते हैं। मुसलमानों के एक अन्य आक्रमण के समय नागदेव सारौल की गढ़ी में हेमवती के समक्ष प्रेम प्रकट करता है। हेमवती बुन्देला-पुत्री और नागदेव खंगार ! ऐसा वैवाहिक सम्बन्ध ! असम्भव !! हेमवती नागदेव का तिरस्कार कर उसकी प्रणय-याचना ठुकरा देती है। बुन्देले भी इस प्रस्ताव को ठुकराते हैं। नागदेव रात्रि में हेमवती-हरण का प्रयत्न करता है और असफल रहता है। हेमवती आदि कुण्डार से भाग निकलते हैं। नागदेव द्वारा अपमानित अग्निदत्त भी बुन्देलों से जा मिलता है। वे सब कुंडार से अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए छल का आश्रय ग्रहण करते हैं। सोहनपाल नागदेव से हेमवती के विवाह का प्रस्ताव भेजता है। विवाहोत्सव के अवसर पर खङ्गार अपनी रीति के अनुसार खूब सुरा ढालते हैं और अचेतप्राय: हो जाते हैं। उस समय बुन्देले आक्रमण कर खङ्गारों को समाप्त कर देते हैं। कुण्डार पर सोहनपाल बुन्देला का अधिकार हो जाता है।

२. दूसरी कथा है अग्निदत्त के असफल प्रणय, अपमान और प्रतिशोध चुकाने की। वह ब्राह्मण है, खङ्गार नागदेव की बहन मानवती से प्रेम करता है। मानवती के विवाह के अवसर पर उसे ले भागने की योजना बनाता है। मानवती की किंकर्तव्य-विमूढ़ता तथा भय के कारण अग्निदत्त मनोरथ में असफल रहता है। एकाएक नागदेव के घटनास्थल पर आ जाने से रहस्य खुल जाता है। अग्निदत्त को नागदेव के हाथों अपमानित होकर भागना पड़ता है। प्रतिशोध की अग्नि में सुलगता अग्निदत्त बुन्देलों को कुण्डार-विनाश में योग देता है। अंत में एक खेत में पड़ी प्रसूता मानवती की रक्षा में पागलों की भाँति लड़ते हुए पुण्यपाल के हाथों मारा जाता है।

३. तीसरी कथा है दिवाकर और तारा के नैसर्गिक सफल प्रणय की। दिवाकर सोहनपाल के सेवक-मित्र धीर प्रधान का पुत्र है। वह सोहनपाल के पुत्र, पुत्री के साथ कुण्डार जा ठहरता है। वहाँ वह अग्निदत्त की सरला, सुन्दरी बहन तारा के दर्शन करता है। तारा अपने पिता के निर्देशानुसार पति-प्राप्ति के लिए अग्नि भैरव के नित्य पूजन का व्रत लेती है। पूजन के लिए देवरा की चौकी से नित्य कनैर के फूल दिवाकर लाता है। दोनों परस्पर आकृष्ट होते हैं। तारा ब्राह्मण और दिवाकर कायस्थ ! दिवाकर का वर्णाश्रम-धर्म-भीरु हृदय इस समस्या को लेकर अन्तर्द्वन्द्व में उलझ जाता

है। वह हेमवती की रक्षा करता हुआ घायल हो उसके साथ कुण्डार छोड़ जाता है।

नाग-हेमवती के विवाह के पूर्व दिवाकर बुन्देलों के षड्यंत्र की तीव्र आलोचना करता है। बुन्देले उसे विक्षिप्त और भयानक समझ देवरा चौकी के तलघरे में बन्द कर जाते हैं। तारा कुंडार से आकर उसे तलघरे से मुक्त करती है और दोनों इस कंटकाकीर्ण संसार को त्याग कर योग-साधना के लिए कहीं चले जाते हैं।

४. सैनिक अर्जुन कुम्हार और सामन्त हरि चन्देल। अर्जुन सरल,उजड्ड बुन्देलखण्डी है। भरतपुरा गढ़ी के फाटक पर उसकी अग्निदत्त और नागदेव से भेंट होती है। वे उसकी निर्भीक कर्कशता पर खीझते नहीं रीझते हैं। नाग अर्जुन द्वारा हेमवती को प्रेम-पत्र प्रेषित करता है किन्तु स्वामिभक्त अर्जुन वह पत्र हरिचन्देल को सौंपना अपना कर्त्तव्य समझता है। नाग के क्रोध की आशंका पर दोनों स्वयं व्यक्तिगत रूप से अपराध ओढ़ने को कटिबद्ध हैं किन्तु बात खुलती नहीं। हरिचन्देल नाग के विवाह के अवसर पर बुन्देलों द्वारा मारा जाता है।

५. अत्तीबेग़ और इब्नक़रीम। भरतपुरा की गढ़ी के मुसलमान आक्रमकों में से दो—अत्तीबेग़ और इब्नकरीम—बन्दी बनाये जाते हैं। धूर्त्त छली अत्ती कुंडार भेजे जाते समय भाग निकलता है और पुनः थोड़े दिनों बाद मुसलमान आक्रमकों को ले आता है। दृढ़, वीर इब्नक़रीम को नागदेव कुण्डार की सेवा में रख लेता है। अत्तीबेग के आक्रमण की सूचना इब्नक़रीम अपने स्वामी को देकर युद्ध में अत्तीबेग़ का वध करता है। नागदेव के विवाह के अवसर पर इब्नक़रीम स्वामी की रक्षा करता हुआ मारा जाता है।

× × ×

(अ) जैसा कि कहा जा चुका है नागदेव के असफल प्रणय और कुण्डार-राज्य के पतन की कथा 'गढ़ कुण्डार' में अधिकारिक है। इसमें विकास की पाँचों अवस्थायें स्पष्टतया लक्षित होती हैं। दूसरे परिच्छेद 'अर्जुन पहरेदार' में परिस्थिति की व्याख्या है। नागदेव आदि के परिचय और पारस्परिक सम्बन्धों की सूचना मिलती है। 'भरतपुरा की गढ़ी' [परि० ३] में सोहनपाल की कुण्डार से सहायता-याचना तथा नाग के हेमवती के प्रति आकर्षण का प्रसङ्ग प्रारम्भ होता है, इसे प्रारम्भिक संघर्षमय घटना कह सकते हैं। नाग की हेमवती के प्रति तीव्र लालसा, हेमवती आदि का कुण्डार में आकर रहना तथा खंगारों की ओर से इस सम्बन्ध को स्थापित करने के प्रयत्नों के साथ कार्य चरम सीमा की ओर बढ़ने लगता है। यह अवस्था 'आखेट'

[परि० २७] से मानी जा सकती है। फिर आती है चरम सीमा— 'आक्रमण' [परि० ४७] में हेमवती द्वारा नाग की प्रणय-याचना का ठुकराना। यहाँ आकर खंगार बुन्देलों का संघर्ष स्पष्ट हो उठता है। कथा किसी अंधकारमय भविष्य की ओर तीव्रता से अग्रसर होती है। यह कार्य की ओर झुकाव की अवस्था 'कुण्डार में धीर प्रधान' [परि० ६७] तक चलती है—खंगार-विनाश-षड्यंत्र के आयोजन तक। राजा हुरमतसिंह द्वारा नाग-हेमवती-विवाह की स्वीकृति तथा विवाह के अवसर पर खंगार नाश की घटनायें 'महोत्सव' [परि० ७४] पर पहुंचकर परिणाम या अन्तिम अवस्था को प्राप्त हो जाती हैं।

अग्निदत्त की कथा प्रासंगिक है, मुख्य कथा से प्रारंभ से लेकर अन्त तक गुंथी हुई। अग्निदत्त नागदेव का बाल सखा है। दोनों दूसरे परिच्छेद में साथ साथ पदार्पण करते हैं, दोनों प्रेम-मार्ग के पथिक हैं। अग्निदत्त नागदेव की बहन मानवती से प्रेम करता है। दोनों प्रेमियों—नाग, अग्निदत्त—का लक्ष्य संदिग्ध है, उलझा हुआ। आगे चलकर नाग को हेमवती-हरण में असफलता मिलती है। वह लौटता है चोट खाया, झुंझलाया। अग्निदत्त को मानवती के साथ पलायन के हेतु उद्यत पा आग बबूला हो उठता है। वह अग्निदत्त का मान-मर्दन कर उसे कुण्डार से निष्कासित करता है। नाग अग्निदत्त के मनोरथ को विफल करता है और अग्निदत्त करता है नाग और कुण्डार के विनाश में सहायता। ७४ वें परिच्छेद में खंगार-नाश और ७६ वें में अग्निदत्त का वध है। दोनों कथायें साथ प्रारम्भ होकर साथ परिणाम पर पहुँचती है। विकसित भी एक साथ होती हैं, कंधे से कंधा भिड़ाकर। अग्निदत्त की कथा मुख्य कथा की गति बढ़ाती है और उसकी फल-प्राप्ति या 'कार्य' में योग देती है।

दिवाकर और तारा के प्रणय वाली तीसरी कथा का सूत्रपात २६ वें परिच्छेद 'तीन आश्चर्य' से होता है। दिवाकर, सोहनपाल के सहायक धीर प्रधान के पुत्र तथा अग्निदत्त की बहन तारा के मध्य प्रणय पनपता है। दिवाकर बुन्देलों का सहायक है और नाग की हेमवती-हरण-योजना में बाधक सिद्ध होता है। इस घटना के अतिरिक्त यह कथा मुख्य कथा पर कोई विशेष प्रभाव नहीं डालती। यह, मुख्य कथा को काटती पीटती और उसमें जहाँ तहाँ उभरती हुई चलती है। उसके परिणाम 'महोत्सव' से भी यह बचकर निकल जाती है। नागदेव के विवाह-षड्यंत्र में बुन्देले भावुक दिवाकर को विक्षिप्त समझ सम्मिलित नहीं करते। उसे देवरा के तलघरे में बन्द कर छोड़ जाते हैं। कुण्डार में बुन्देलों और खंगारों के मध्य मारकाट मचती है और

इधर तारा घोड़े पर सवार हो कुण्डार त्याग दिवाकर से देवरा में जा मिलती है। दोनों 'योग-साधना' के लिये चल पड़ते हैं। मुख्य कथा का संघर्ष और विनाशमय परिणाम इस कथा के नेपथ्य में रहता है, संकेत जैसा।

नाग-अग्निदत्त की कथाओं के अतिरिक्त इस तीसरी प्रणय कथा के द्वारा आदर्श प्रणय के चित्रण का लक्ष्य उपन्यासकार की दृष्टि में रहा है। नाग का प्रेम एकांगी है, उसमें लोलुपता और हठ है। अग्निदत्त के प्रेम में प्रचंडता प्रधान है। वह परिस्थिति और मर्यादा के प्रति उदासीन है। निराश होने पर उसका प्रेम प्रतिक्रिया का रूप धारण कर लेता है। दिवाकर और तारा के प्रणय का स्तर इन दोनों कथाओं से भिन्न है। दोनों का प्रणय मन्दिर और पूजन के वातावरण में प्रस्फुटित होता है, मूक, नियंत्रित और परस्पर न्यौछावर हो जाने की भावना लिए। यह कथा मुख्य कथा के परिणाम के बाद भी चलती है उससे अलिप्त रहकर। अन्तिम परिच्छेद [७७] पर दिवाकर, तारा के पलायन के साथ उपन्यास समाप्त हो जाता है। यह कथा स्वतन्त्र है, मुख्य कथा को केवल कहीं-कहीं छूती हुई। उपन्यास में इसका गुम्फन कुछ ऐसी विधि से हुआ है कि साधारण पाठक को इसकी उपस्थिति खटकती नहीं, प्रिय लगती है।

अर्जुन कुम्हार और उसके स्वामी हरिचंदेल की कथा मुख्य कथा में प्रकरी का कार्य करती है। नाग हेमवती के हेतु अर्जुन को प्रेम-पत्र देता है। पत्र गन्तव्य स्थान तक न पहुँचने के कारण नाग की हेमवती के प्रति भ्रमपूर्ण धारणा पुष्ट होती जाती है। यही भ्रम हेमवती द्वारा नाग के अपमान और कुंडार-पतन का कारण बनता है। सैनिक अत्तीवेग तथा इब्नक़रीम की कथा तत्कालीन मुसलमान सैनिकों के चरित्र के दो विभिन्न पहलू प्रस्तुत करती है—एक ओर स्वार्थी आक्रमक अत्तीबेग तो दूसरी ओर उसूल का पाबन्द, स्वामिभक्त इब्नक़रीम। यह कथा मुख्य कथा की घटनाओं से संबद्ध है किन्तु उसे विशेषतः प्रभावित नहीं करती।

(ब) स्थानीय इतिहास में मुख्य कथा का सूत्र इस प्रकार मिलता है। घटना सन् १२८८ की है। माहोनी के राजा बीरबल [वीरपाल] ने राज्य वितरण करते समय अपने अनुज सोहनपाल के साथ न्यायोचित व्यवहार नहीं किया। लिखा है—'असंतुष्ट सोहनपाल कुंडार के खंगार राजा नाग के पास सहायता-प्राप्ति के लिये गया। नाग ने सहायता का वचन दिया किन्तु शर्त लगाई कि सोहनपाल को उससे खान-पान का और वैवाहिक संबंध स्थापित करना होगा। इस प्रस्ताव पर सोहनपाल के रोष की सीमा नहीं रही, वह तुरंत खंगार-दरबार को छोड़कर जाने के लिये तत्पर हो गया। उसकी

गतिविधि पर दृष्टि रखी गयी। नाग उसे बलपूर्वक रोकने तथा अपने प्रस्ताव के अनुसार विवश करने पर कटिबद्ध था। सोहनपाल ने भागकर धंधेरादेव के वंशज मुकुटमणि चौहान के यहाँ शरण ली। मुकुटमणि राजा के अधीन ४०० सैनिकों का स्वामी था। मुकुटमणि ने (नाग के विरुद्ध) सहायता देना अस्वीकार किया और इस विषय में केवल तटस्थ रहने का आश्वासन दिया। इसके उपरान्त सोहनलाल ने क्रमशः चौहान और कछवाहों से सहायता प्राप्ति का विफल प्रयत्न किया। अन्ततोगत्वा करेरा के जागीरदार, पुण्यपाल नामक पंवार राजपूत ने सहायता का वचन दिया। दोनों ने नाग को उसके राज्य से युद्धकौशल द्वारा बहिष्कृत करने का षड्यन्त्र रचा। वह राज्य तेरह लाख रुपये के मूल्य का था। यह तय हुआ कि सोहनपाल कुंडार जाकर नाग के विवाह सम्बन्धी प्रस्ताव की स्वीकृति का बहाना करे और राजा तथा उसके संबंधियों को अपने घर पर निमंत्रण दे। योजना पूरी उतरी। और जब राजा नाग अपने बन्धुओं तथा मंत्रियों सहित सोहनपाल के घर आया, उन सब का सोहनपाल के संगी साथियों ने विश्वासघात कर वध कर डाला। इस प्रकार सोहनपाल कुंडार का राजा हो गया और उसने सम्पूर्ण कुंडार राज्य पर अधिकार प्राप्त कर लिया। उसने पुण्यपाल तथा मुकुटमणि को अपना मन्त्री नियुक्त किया और पुण्यपाल को अपनी पुत्री विवाह दी। दहेज में इटौरा गाँव दिया और अपने छोटे भाई दयापाल को एक लाख की जागीर लगा दी।'[1]

'गढ़ कुंडार' में उक्त तथ्य ज्यों के त्यों हैं, उपन्यासकार ने उन्हें अपेक्षाकृत सजीव बनाने के लिये कहीं कहीं हेरफेर की है। ये किंचित् परिवर्तन इस प्रकार हैं—

१—कुंडार का राजा नागदेव का पिता हुरमतसिंह है नागदेव नहीं—पिता द्वारा पुत्र के विवाह की बात चलाना अधिक स्वाभाविक और रोचक लगती है।

२—नाग के सोहनपाल की पुत्री के प्रति प्रेम का विवरण—यह कल्पना तथ्य में प्राण डालती है। सोहनपाल की पुत्री के प्रति नाग की विशेष रुचि ही उस प्रस्ताव के मूल में रही होगी।

३—विवाह (?) के हेतु सोहनपाल का बन्धु बान्धवों सहित कुंडार पहुँचकर मदिरापान से मदमत्त वरपक्षियों का नाश। मदिरापान वाला तथ्य

१—झाँसी गजेटियर [यूनाइटेड प्रांविसेज़ आगरा व अवध के गजेटियर्स का चौदहवाँ ग्रन्थ] पृ० १८८, १८९

परम्परा में प्रचलित है। ऐसी ही स्थिति में शक्तिशाली खंगारों का नाश संभव था।

हेमवती का वास्तविक नाम रूपकुमारी था। उसका विवाह सोहनपाल के सहायक करेरा के पँवार सरदार पुण्यपाल के साथ हुआ था। उपर्युक्त सभी चरित्रों का उपन्यास में उपयोग किया गया है। हुरमतसिंह की पुत्री, मानवती भी ऐतिहासिक है। खंगार नाश के समय उसका नवजात पुत्र बच रहा था। अनेक खंगार उसी बालक की संतान हैं, ऐसा कहा जाता है।

विष्णुदत्त का पुत्र अग्निदत्त, पुत्री तारा, धीर प्रधान का पुत्र दिवाकर, अर्जुन, हरिचंदेल, इब्नक़रीम तथा अत्तीबेग काल्पनिक हैं और उनकी कथायें भी उपन्यासकार की कल्पना की देन हैं।

अग्निदत्त के विवरण में निश्चय की दृढ़ता, क्रुद्ध होने पर छुरी का उत्तर तलवार से देना, अपमान राई-रत्ती भर न सहना, उन्मादक प्रेम की उपासना, परवश कोई काम न करना, जुझौती की वीर गाथाओं को अपनी वंश—विरुदावली समझना तथा मित्रता से अंततम भाव की टक्कर हो जाने पर उसे भी एक ओर रख देना, यह सब बातें उसे 'जिझौती' का निवासी तथा १३ वीं अथवा १४ वीं शताब्दी का पुरुष सिद्ध करने के लिए यथेष्ट हैं। इन्हीं गुणों को अग्निदत्त में विभिन्न स्थलों पर उभारा गया है।

दिवाकर की कथा का आधार वर्मा जी की निज की कोई अनुभूति है। उसमें शौर्य तथा वीरता के गुण तत्कालीन हैं किन्तु उसकी दार्शनिकता और पलायनवादी झोंक आज के नवयुवक जैसी है।

वर्मा जी ने अर्जुन कुम्हार में मित्र दुर्जन कुम्हार का प्रतिबिंब और इब्नक़रीम में अपने बहादुर साथी शिकारी करामात मियां का चित्र प्रस्तुत किया है। अन्य पात्रों में भी उन्होंने अपने सम्पर्क में आये व्यक्तित्वों को ला रखा है। ये चरित्र आज के होते हुए भी विगतकालीन मानवीय प्रवृत्तियों के परिचायक हैं। आज़ भी बुन्देलखंड के मूल निवासी आधुनिक सभ्यता के सम्पर्क में कम आ पाये हैं। उनमें परम्परागत गुण थोड़े बहुत बदल कर ज्यों के त्यों स्थित ।

लगन

दहेज के प्रश्न पर संबंधियों के मनमुटाव तथा वर, वधू की परस्पर एक दूसरे को प्राप्त करने की लगन, 'लगन' उपन्यास की कथा है। बजटा के शीबू माते के पुत्र देवसिंह का बरौल के बादल चौधरी की कन्या रामा से

विवाह होने पर भी वधू की विदा नहीं होती। दहेज में निश्चित सौ भैंसें न मिलने के कारण ही बात बढ़ जाती है। बादल की रामा को अन्यत्र 'बिठलाने' की योजना की सूचना पा द्वेषी शीबू को प्रसन्नता और भावुक देवसिंह को पीड़ा होती है। देवसिंह विवाहिता पत्नी को इस प्रकार त्यागने के लिए तत्पर नहीं है। रामा के 'कराव' की चर्चा पहाड़ी के छैला युवक पन्नालाल से चलने पर देवसिंह की पीड़ा तीव्र हो उठती है। पन्ना लम्पट और कामुक था। देवसिंह रात्रि में बजटा बरौल के मध्य स्थित विशाल बेतवा नदी को तैर बरौल में रामा से छिपकर कई बार भेंट कर आता है।

एक बार अमावस्या की रात्रि में देवसिंह रामा की अटारी के पास जाकर पुकारता है। पन्नालाल बादल के यहाँ अतिथि के रूप में ठहरा हुआ था। वह रामा की सूनी अटारी में वासनापूर्ति की इच्छा से उसे खोज रहा था। पन्ना देवसिंह को ऊपर आने देता है और उसे धर दबाता है। रामा अटारी तक देवसिंह से मिलने आती है किन्तु वस्तुस्थिति को समझ कर बरौल से भाग कर बजटा, शीबू माते के पास जा पहुँचती है। देवसिंह मारपीट में पन्ना को अधमरा कर देता है। बादल आदि के आ जाने पर देवसिंह का सत्कार होता है और तिरस्कृत पन्ना घर लौट जाता है।

पुत्र के एकाएक लोप हो जाने से व्याकुल शीबू रामा को सत्कारपूर्वक घर छोड़कर साथियों सहित बरौल पहुँचता है। वहाँ दोनों संबंधी निष्कपट हृदय से प्रेमपूर्वक मिलते हैं। तीसरे दिन बादल भैंसें शीबू के घर पहुँचा देता है।

× × × ×

(अ) 'लगन' की कथा सीधी सादी है। रामा और देवसिंह के वैवाहिक झगड़े की समस्या पन्नालाल के बीच में आ जाने के कारण उलझती है। दोनों की मिलने की लगन बढ़ती है और परस्पर मिलते जुलते हैं। पन्ना की कुटिलता इस रहस्य के उदघाटन में सहायक होती है। इस प्रकार पन्ना का चरित्र कथा को उलझाने के बाद उसे गति प्रदान कर परिणाम तक पहुँचाने का महत्वपूर्ण कार्य करता है।

(ब) यह घटना बरौल की ही है। देवसिंह का असली नाम नन्दलाल है। नन्दलाल का चढ़ी बेतवा को रात्रि में पार करने का पराक्रम किंवदन्ती के रूप में अब भी आसपास के देहातों में प्रसिद्ध है।

संगम

१—'संगम' उपन्यास की कथा एक लोभी पिता के बिगड़े हुए पुत्र के विवाह-संबंध में उत्पन्न हुए मनमुटाव को लेकर प्रारंभ होती है। उलझी

हुई परिस्थिति अन्त में शनैः शनैः सुलझती है और विरोधी धाराओं का मिलन होता है, संगम होता है। झाँसी का ब्राह्मण भिखारीलाल निर्धन और लोभी है। वह अपने पुत्र सम्पतलाल का विवाह बरुआसागर के धनीराम नाई के यहाँ पली ब्राह्मण-कन्या जानकी से करने के लिये बरात ले जाता है। भिखारीलाल के लोभ और हृदय की संकीर्णता के कारण विवाह के वातावरण में तनाव आ जाता है। बरात के नाई नन्दराम और एक कन्या पक्षी व्यक्ति का उपहास मारपीट का रूप धारण कर दोनों पक्षों में घमासान करा देता है। झाँसी पहुँचकर नन्दराम अदालत में दावा दायर कर धनीराम आदि के नाम वारंट निकलवाता है। इस कार्य में भिखारीलाल की सहमति थी। ससुराल में दो दिन का सुख भोगने के बाद जानकी को अपमान और सास का दुर्व्यवहार बुरी तरह खटकने लगता है। भिखारीलाल का सम्पन्न निकट संबंधी सुखलाल, जो विवाह के अवसर पर उपस्थित था, धनीराम से सहानुभूति रखता है। सुखलाल आदि के विरोधी हो जाने के कारण नन्दराम मुकदमे में हार जाता है। भिखारीलाल और सुखलाल में घोर शत्रुता ठन जाती है।

झाँसी में प्लेग फैलता है। प्रायः सभी निवासी भाग कर जहाँ-तहाँ शरण लेने का उद्योग करते हैं। संपतलाल निर्द्वन्द्व हो झाँसी में रहने के लिये जानकी को बरुआसागर पहुँचा आता है। नशा-पानी तथा मलाई मिठाई का निर्बाध क्रम बनाये रखने के लिये वह अपने मित्रों की भाँति सूने मकानों के ताले तोड़कर चोरी करने में भाग लेता है। वैर-प्रतिशोध में नन्दराम सुखलाल पर गोली चलाकर उसकी हत्या का प्रयत्न करता है। बाद में लालमन डाकू सुखलाल को उठा ले जाता है, उसकी शुश्रूषा करता रहता है। झाँसी में सुखलाल की मृत्यु का समाचार फैलता है। सम्पतलाल सुखलाल को अपना संबंधी सिद्ध कर उसकी धनराशि का दावेदार बनने का सुख-स्वप्न देखता है। दावे के लिये कोर्ट फीस के हेतु भिखारी को एक हज़ार रुपया ऋण मिल जाता है किन्तु पूरी फीस के लिये रुपये की आवश्यकता बनी रहती है। धन-प्राप्ति के लिये सम्पत और उसका मित्र चुखर एक षड्यन्त्र रचते हैं। सम्पत स्त्री का रूप धारण करता है। स्त्रियों का व्यापार करने वाले एक पंजाबी के हाथ चुखर सम्पत को बेच देता है। भिखारीलाल के पास रुपया पहुँच जाता है। सम्पत को पंजाबी के साथ रेल यात्रा करनी होती है।

बरुआसागर में परित्यक्ता जानकी का मन न लगता था। वह धनीराम के साथ मथुरा आदि की यात्रा के लिये रेल में बैठती है। एक ही डिब्बे में धनीराम, जानकी तथा सम्पत, पंजाबी के यात्रा करने का संयोग होता है।

घूंघट में छिपा हुआ सम्पत भेद नहीं छिपा पाता । अगले स्टेशन पर उसका षड्यन्त्र खुल जाता है । धनीराम और जानकी भी वहीं रुक जाते हैं । सब झाँसी लौटते हैं । धनीराम सम्पतलाल की ज़मानत करता है । सम्पत में परिवर्तन आता है । वह पश्चाताप का अनुभव करता है किन्तु सम्पत का विरोध करने पर भी भिखारी सुखलाल की सम्पत्ति वाला दावा नहीं छोड़ता । भिखारीलाल की एकतरफा विजय होती है । कानून की पकड़ में न आ सकने के कारण सम्पत भी षड्यन्त्र वाले मुकदमे से रिहा हो जाता है । तुरन्त समाचार प्राप्त होता है कि सुखलाल जीवित है । भिखारीलाल की आशाओं का महल क्षण भर में धराशायी हो जाता है । दावे सम्बन्धी मुकदमे पर पुनर्विचार होता है । फिर भी सुखलाल उदारता का व्यवहार करता है । भिखारीलाल को क्षमा कर देता है ।

२—दूसरी कथा है सुखलाल की । सुखलाल संपतलाल के विवाह में बरा में उपस्थित रहता है । वहाँ मारपीट होने पर लोगों को शान्त करता है । झाँसी में नन्दराम को मुकदमेवाजी से रोकने का भरसक प्रयत्न करता है । रोकथाम में असफल होने पर नन्दराम पर ऋण न चुकाने के अभियोग में अपनी ओर से दावा करता है । नन्दराम पर डिग्री हो जाती है । भिखारी-लाल आदि विरोधीजन सुखलाल के चरित्र को लेकर उसे समाज में अपमानित करने का भरसक प्रयत्न करते हैं । सुखलाल विधुर था । उसकी एक अहीरिन रखेल थी । रखेल से एक पुत्र था रामचरण । यह सम्बन्ध सुखलाल के लोकापवाद का कारण बनता है । सुखलाल रामचरण से सम्पर्क त्याग देता है ।

प्लेग के दिनों में सुखलाल ढिमलौनी गाँव में डेरा डालता है । वह नन्दराम से डिग्री का रुपया वसूल करने पर कटिबद्ध रहता है । नन्दराम के हृदय में घोर प्रतिशोध की ज्वाला दहक उठती है । वह झाँसी से वैलगाड़ी में ढिमलौनी को लौटते हुए सुखलाल को मार्ग में गोली मार कर भाग जाता है । बाद में डाकू लालमन मृतप्रायः सुखलाल को उठा कर ले जाता है । उसकी अत्यन्त मनोयोग से शुश्रूषा कर रक्षा कर लेता है । पुनर्जीवन प्राप्त कर सुखलाल क्षमा और उदारता का मार्ग पकड़ता है । रामचरण और गंगा का विवाह करके अपनी सम्पत्ति रामचरण और पुत्री राजावेटी में आधी-आधी बाँट कर स्वयं तीर्थ यात्रा पर चला जाता है ।

३—तीसरी कथा है नन्दराम नाई के वैर-प्रतिशोध की । बरात में दावत के अवसर पर कन्यापक्ष के लोगों से कटु उपहास करने में नन्दराम अग्रणी रहता है । मारपीट वही प्रारम्भ करता है और पिटता भी है । गाँव की पुलिस

धनीराम का पक्ष लेती है। नन्दराम झाँसी में इसी घटना को लेकर दावा दायर करता है किन्तु दावा खारिज हो जाता है। नन्दराम का धनीराम और सुखलाल से वैर हो जाता है। धनीराम नन्दराम पर झूठे दावे के प्रत्युत्तर में दावा कर डिग्री करा लेता है। सुखलाल अपने पहले दिये हुए ऋण के सम्बन्ध में उस पर डिग्री कराता है। निर्जन मार्ग में बैलगाड़ी पर जाते सुखलाल को गोली मारकर प्रतिशोध चुका नन्दराम जंगल में जा छिपता है। वह महीनों भूखा, प्यासा जंगलों में मारा-मारा फिरता है। पुलिस के भय से और आतम-ग्लानि के कारण उसका जीना दूभर हो जाता है। मजिस्ट्रेट के सामने अपने आप को हत्यारा स्वीकार कर हत्या का प्रायश्चित्त करता है। नन्दराम को हत्या के अभियोग में दस वर्ष की कैद होती है।

४—चौथी कथा लालमन डाकू से सम्बन्ध रखती है। लालमन से दूर-दूर तक लोग काँपते हैं। लालमन सुखलाल और जानकी से सम्बन्ध मानता है। जानकी के विवाह में गुप्त रूप से भाग लेने जाता है और पंगत के समय उद्दण्ड नन्दराम को दण्डित करता है। वह धनीराम को नन्दराम पर कानूनी कार्य-वाई करने का आदेश देता है। इसके उपरान्त जंगल में पड़े मृतप्रायः सुखलाल की रक्षा कर उसे अपने एक साथी सहित ढिलमौनी के मकान में रखने आता है। लौटते समय उस पर बगल से रामचरण प्रहार करता है। मार्मिक चोटें खाने के कारण लालमन मृतप्रायः होकर गिर पड़ता है। सुबह पुलिस उसे झाँसी के अस्पताल भेजती है। वहाँ लालमन अपना अन्तिम बयान देकर मर जाता है।

५—पाँचवी कथा है सुखलाल की अहीरिन रखेली से उत्पन्न पुत्र रामचरण के अपमान और कर्तव्यपरायणता की। वह सुखलाल की रखेली का पुत्र होने के कारण उपेक्षित है। स्वाभिमाना है और सेवाभाव वाला। झाँसी में प्लेग पीड़ितों की सेवा करता है। पुलिस की अकर्मण्यता की आलोचना करने के फलस्वरूप उसका कोपभाजन बन जाता है। सुखलाल की हत्या के आरोप में उसे जेल का द्वार भी देखना पड़ता है। वह मृत घोषित, सुखलाल की सम्पत्ति भिखारीलाल के चंगुल से बचाकर सुखलाल की पुत्री राजावेटी को दिलाने का भरसक प्रयत्न करता है। ढिमलौनी में लालमन डाकू से उसकी मुठभेड़ होने पर लालमन उसके हाथों मारा जाता है। रामचरण को सुखलाल अपनी सम्पत्ति का अर्द्ध भाग देता है और उसका विवाह अपनी आश्रिता विधवा, गंगा से करा देता है।

× × ×

(अ) सुखलाल की प्रासंगिक कथा का उपन्यास में विशेष महत्व है।

नन्दराम लालमन तथा रामचरण की कथाओं से इसका सीधा और पुष्ट सम्बन्ध है। सुखलाल की हत्या के पश्चात् भी उसकी मृत्यु की घटना सभी कथाओं को प्रभावित कर विकसित होने में योग देती है।

सम्पत का विवाह एक ऐसी घटना है जहाँ से सभी कथाओं का स्रोत फूटता है। सुखलाल उस अवसर पर घराती-बराती लोगों के मध्य उत्पन्न हुए तनाव को समाप्त करने का प्रयत्न करता है। आगे चलकर इसी प्रश्न पर उसके भिखारीलाल तथा नन्दराम से सम्बन्ध बिगड़ते हैं। क्रुद्ध नन्दराम द्वारा सुखलाल की हत्या के पश्चात् भिखारी मृत सुखलाल का निकट सम्बन्धी बन उसकी धनराशि हड़पने का प्रयत्न करता है। इस प्रयत्न में दुर्गति होने पर सम्पत सुधरता है और सुखलाल के जीवित होने के समाचार पर भिखारी के काल्पनिक महल धराशायी हो जाते हैं। मुख्य कथा को बढ़ाकर निष्कर्ष पर पहुँचाने का श्रेय सुखलाल को है।

लालमन विवाह के अवसर पर उद्दंड नन्दराम को पीटकर उसकी प्रतिकार की भावना को उद्दीप्त करता है। नन्दराम की गोली से आहत सुखलाल की रक्षा कर उसकी कथा में योग देता है। लालमन के अन्त का श्रेय रामचरण को है।

रामचरण सुखलाल का अहीरिन से उत्पन्न पुत्र होने के कारण समाज और सुखलाल के तिरस्कार का भागी है। पुलिस उस पर सुखलाल की हत्या का आरोप लगा अत्याचार करती है। वह सुखलाल की औरस पुत्री के अधिकार के हेतु भिखारीलाल के विरुद्ध मुकदमा लड़ता है। अन्त में लालमन उसी के द्वारा मारा जाता है। रामचरण की कथा सुखलाल और भिखारी की कथाओं को छूती है किन्तु लालमन के अतिरिक्त किसी अन्य कथा को विशेषतया प्रभावित नहीं करती। रामचरण का प्रसङ्ग अन्य कथाओं से प्रायः स्वतन्त्र है, उसके द्वारा आधुनिक सामाजिक मनोवृत्ति तथा सच्चरित्र उत्साही युवक के प्रयत्नों का परिचय दिया गया है।

(ब) उक्त पाँचों कथाओं की सभी घटनाएँ सत्य हैं। ये सब भिन्न-भिन्न समय पर विभिन्न स्थलों पर घटित हुई हैं। मुख्य कथा झाँसी में बीती थी। सुखलाल, नन्दराम और रामचरण की कथाएँ परस्पर सम्बन्धित थीं, इनका घटनास्थल अन्य स्थान है। लालमन दतिया रियासत के कुख्यात मन्नूलाल डाकू का प्रतिबिम्ब है। उसके सम्बन्ध में प्रचलित चर्चाओं में से कुछ को चुनकर कथा का रूप प्रदान किया गया है।

गाँव से बाहर एक कोठरी में रात्रि व्यतीत करते हैं। प्रातःकाल ललित दोनों का विवाह भुजबल वाले मण्डप के नीचे करा देता है।

सरकार अजित को उसे मिले घड़े का आधा धन पुरस्कार में देने की घोषणा करती है। ललित पूना को दो गाँव और मकान भेंट करता है। अजित रतन से मिलता है और उसका पुराना फोटो वापिस कर देता है।

३—तीसरी कथा है धूर्त्त भुजबल और उसके कामुक जमींदार-मित्र शिवलाल की। शिवलाल ऋणग्रस्त है। भुजबल रतन से विवाह होने पर शिवलाल को ललित से ऋण दिलाता है और उससे जमीन और धन प्राप्त करने के लिए उसे पूना से विवाह करा देने का मिथ्या आश्वासन देता है। साथ ही पूना के मामा लालसिंह को शिवलाल का भय दिखाकर शीघ्रातिशीघ्र पूना से अपना विवाह कर देने का आग्रह करता है। जमींदारी-विक्रय की कार्यवाही में धोखाधड़ी करने के अभियोग में ललित शिवलाल को गिरफ्तार कराता है। शिवलाल की काम-लिप्सा अतृप्त रह जाती है। जमींदारी के विक्रय को लेकर ललित के साथ धोखाधड़ी करने के अपराध में उसे कई वर्ष के कारावास का दण्ड मिलता है।

४—चौथी कथा है जमींदारों के अत्याचार से पीड़ित निरीह किसान पैलू और बुद्धा की। पैलू और बुद्धा शिवलाल से ऋण माँगने आते हैं। भुजबल लगान न देने पर दोनों की भर्त्सना करता है। एक अन्य अवसर पर वह बुद्धा को न लगान देने के कारण निर्दयतापूर्वक पीटता है। अजित बीच में पड़कर बुद्धा की रक्षा करता है और शुश्रूषा के लिए उसे सिंगरावन ले जाता है। पूना द्वारा अजित को प्रेषित, रक्षा का प्रार्थना-पत्र पैलू सिंगरावन से अजित के पास शहर ले जाता है। पैलू ही शिवलाल को भुजबल के पूना से बलात् विवाह करने के दुष्प्रयत्न की सूचना देता है। पैलू और बुद्धा अजित के इङ्गित पर भुजबल और पूना के विवाह के विरुद्ध ग्रामीणों में प्रचार करते हैं।

× × ×

(अ) रत्नकुमारी के बेमेल विवाह की दुर्घटना 'कुंडली' की वेदी पर बलि हो जाने वाले युवक-युवती की करुण कथा है। पूना-अजित का प्रणय पुनीत साधना का सन्देश देता है। भुजबल धूर्तता का और शिवलाल पतित जमींदार वर्ग का प्रतीक है। बुद्धा, पैलू की दलित किसानों की कहानी है जो आश्रय मिलने पर अपने आप में बल का अनुभव भी करते हैं।

अजित कुमार की प्रासंगिक कथा दूसरे परिच्छेद से प्रारम्भ होकर मुख्य कथा के साथ चलती है। अजित रतन का अध्यापन-कार्य करते हुए उसके

प्रति आकृष्ट होता है, अपमानित होने पर उसके मार्ग से हट जाता है। तत्पश्चात् वह भुजबल की साली पूना के प्रति कुछ आकृष्ट होता है। पूना की प्रार्थना पर भुजबल के कामुक पंजे से रक्षा कर उसे पत्नी के रूप में ग्रहण करता है। पैलू और बुद्धा, सताए हुए किसानों तथा पूना के प्रश्न पर भुजबल से अजित का संघर्ष होता है। अजित का पूना तथा भुजबल के कारण मुख्य कथा से अन्त में पुनः सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। भुजबल अजितकुमार के मार्ग में आ रत्नकुमारी से विवाह करता है और अजित का पूना से परिचय कराता है। पूना से स्वयं विवाह करने का प्रयत्न करता है किन्तु अजित के मध्य में आ जाने के कारण उसे असफलता मिलती है। इस प्रकार ललित और रत्नकुमारी और अजितकुमार की कथा को अग्रसर करने में भुजबल की कथा का मुख्य हाथ है।

शिवलाल तथा भुजबल के अत्याचार से पीड़ित किसान पैलू और बुद्धा की कथा भुजबल तथा अजित में संघर्ष उत्पन्न करने में सहायक है। अजित को पूना के समीप लाने में पैलू और बुद्धा का विशेष हाथ रहता है।

(ब) रत्नकुमारी और भुजबल के अनमेल विवाह की कथा सत्य घटना के आधार पर है किन्तु भुजबल के दूसरे विवाह की बात काल्पनिक है। अजित और पूना के प्रेम की घटना अन्य स्थल की है, उसे मुख्य कथा में जोड़ा गया है। किसान पैलू और बुद्धा की कथा एक अन्य स्थान, भरतपुरा की है। इस प्रकार विभिन्न स्थानों पर भिन्न समय में ही घटी घटनाओं के आधार पर कथा-सूत्र तैयार किया गया है। ललितसेन और शिवलाल के चरित्र और उनसे सम्बन्धित घटनाएँ काल्पनिक हैं।

प्रेम की भेंट

१—धीरज का सरस्वती से पुनीत प्रेम, धीरज का सरस्वती को एक साड़ी प्रेम की भेंट के रूप में देना और ईर्ष्यालु प्रेमिका उजियारी के कारण धीरज की अकाल मृत्यु की कथा 'प्रेम की भेंट' की मुख्य कथा है। धीरज अपने गाँव में अकाल पड़ जाने के कारण दूर के सम्बन्धी कम्मोद के यहाँ ताल बेहट में शरण लेता है। कम्मोद के साथ एक पुत्री है सरस्वती और दूर के सम्बन्ध की विधवा बहू उजियारी। कम्मोद धीरज को अपने खेतों में साझीदार बना लेता है। शनैः शनै धीरज को ज्ञात हो जाता है कि उसकी पुस्तकें संवारने और रात्रि में पास में जल का लोटा भरकर रखने वाली और कोई नहीं सरस्वती है। धीरज सरस्वती को हृदय दे बैठता है और उसे कभी भी कष्ट न होने देने का निश्चय करता है। उजियारी छिपकर दोनों के बीच बढ़ते स्नेह को

लक्ष्य कर ईर्ष्या से सुलग उठती है । वह धीरज के समक्ष अपना प्रचंड प्रेम प्रकट करती है । धीरज उसके अप्रत्याशित व्यवहार से चिन्तित हो उठता है ।

ईर्ष्यालु उजियारी सरस्वती के लिये खीर बनाती है और उसमें विष डाल देती है । उजियारी के बाहर जाने के बाद धीरज खेत से लौट कर आता है और षड्यन्त्र से अनभिज्ञ सरस्वती के आग्रह पर खीर खा लेता है । अन्त में सरस्वती से स्वयं अन्यत्र चले जाने के लिये विदा माँगता है और रोने लगता है । एकाएक कम्मोद आ जाता है और धीरज पर क्रुद्ध होता है । खीर के विष से धीरज की तबियत बिगड़ने लगती है । सरस्वती को सन्निपात हो जाता है । वह धीरज के प्रति अपना प्रेम प्रकट कर उसके समीप पहुंचने का आग्रह करती है । धीरज अचेतावस्था में स्वप्न में सरस्वती को पा लेता है । अधीरा, अचेत सरस्वती एकाएक पूछती है, 'आ गये वह ?' और उधर धीरज अन्तिम श्वास लेता है ।

२—दूसरी कथा है नन्दन के सरस्वती के प्रति, सरल, अपूर्ण प्रेम की । नन्दन कम्मोद के यहाँ आश्रय लेता है । कम्मोद उसे सरस्वती का वर मनोनीत कर आदरपूर्वक रखता है । सरस्वती उसकी उपेक्षा करती है । नन्दन सरस्वती से प्रेम-पत्र में प्रणय याचना करता है । रुग्णा सरस्वती उसके प्रति पूर्णतया उपेक्षा प्रदर्शित करती है और बिल्कुल बात न करने का आदेश देती है । नन्दन मौन साधकर रह जाता है ।

× × ×

(अ) धीरज, सरस्वती और उजियारी का प्रेम-त्रिकोण 'प्रेम की भेंट' की मुख्य कथा का आधार बनता है । धीरज और सरस्वती में प्रेम है । उजियारी ईर्ष्या के कारण सरस्वती को विष देना चाहती है किन्तु संयोगवश विषमय खीर धीरज खा लेता है । नन्दन की उपकथा एक और प्रेम-त्रिकोण प्रस्तुत करती है । सरस्वती से धीरज प्रेम करता है और नन्दन भी सरस्वती की मन ही मन आराधना करता है । नन्दन कम्मोद की दृष्टि में सरस्वती का मनोनीत वर है । उसके कारण सरस्वती और धीरज के प्रेम के फलीभूत होने में कम्मोद बाधा डालता है । इस प्रकार नन्दन मुख्य कथा को उलझाने और अग्रसर करने में सहायक है ।

(ब) धीरज और सरस्वती के प्रेम की मूल घटना छतरपुर रियासत के एक गाँव की है । गाँव का नाम और घटना का काल अज्ञात है । सूत्र इस **प्रकार** है, एक सुन्दरी युवती का किसी युवक से प्रेम हो गया किन्तु उसका विकास न हो पाया । युवती के माता, पिता मार्ग की बाधा बने । युवती एकाएक बीमार पड़ी और मर गयी । युवक को इस दुर्घटना का पता न था । उसे

युवती के घर की टहलनी से सूचना मिली । युवक ने कूड़े के ढेर पर पड़े, मृत युवती की चुनरी के टुकड़े को हृदय से लगा लिया । इसके बाद वह पागल हो गया और फिर मर गया । उजियारी की ईर्ष्या की कथा अन्य स्थल की है । नन्दन का प्रसंग काल्पनिक है ।

प्रत्यागत

१---बलपूर्वक मुसलमान बनाये जाने के पश्चात् हिन्दू-धर्म में प्रत्यागत, मंगल की कथा 'प्रत्यागत' की मुख्य कथा है । मंगल बाँदा के धर्मभीरु, सम्पन्न ज्योतिषी टीकाराम का लाड़ला पुत्र है । वह युवा होने पर भी कमाता नहीं है । पिता से अनबन हो जाने पर मंगल विदेश में धनोपार्जन के लिये चुपचाप रेलगाड़ी से बम्बई की ओर चल पड़ता है । पूना में मंगल की एक मलाबारी मुसलमान रहमतुल्ला से भेंट होती है । मंगल जीविकोपार्जन तथा खिलाफत-आन्दोलन के आकर्षण में उसके साथ मलाबार पहुँच जाता है । वहाँ एक मस्जिद में उसे बलपूर्वक मुसलमान बना लिया जाता है ।

मलाबार का उपद्रव शांत हो जाने पर पुलिस की सहायता से मंगल न चाहते हुए भी बाँदा पहुँचा दिया जाता है । हृदय की दुर्बलता के कारण अपने मुसलमान हो जाने की बात वह सब पर प्रकट कर देता है । मङ्गल को पुनः हिन्दू धर्म में लाने की विधि और उसके प्रायश्चित्त का महत्वपूर्ण प्रश्न उठ खड़ा होता है । टीकाराम उसे प्रायश्चित्त की अवधि तक दूसरे मकान में अलग ठहरा देते हैं । मंगल प्रायश्चित्त में पंच-गव्य ग्रहण करने के लिये तत्पर नहीं । पं० नवलबिहारी और उसके दल के लोग मंगल के प्रायश्चित्त की योजना में असहयोग करते हैं । वे लोग सभा करके टीकाराम के सम्पूर्ण परिवार का बहिष्कार करते हैं । मंगल तथा उसके परिवार के प्रायश्चित्त के अन्तिम दिन नवलबिहारी के दल का असहयोग होने पर भी बाबूराम, ठाकुर हेतसिंह तथा पीताराम अहीर के सहयोग से भोज में प्रायः सभी जाति के गण्यमान्य लोगों के पुत्र भाग लेते हैं । मंगल का बहिष्कार चल नहीं पाता ।

मंगल नवलबिहारी के निजी मन्दिर में देव-दर्शन का आग्रह करता है । नवलबिहारी के घोर विरोध करने तथा पुलिस बुलाने पर भी मंगल और उसके परिवार का देव-दर्शन तथा चरणामृत-पान सफलतापूर्वक सम्पन्न होता है । नवलबिहारी मंगल आदि के विरुद्ध दावा दायर कर अपवित्र मङ्गल के बल-पूर्वक देवदर्शन के फलस्वरूप भगवान के कोप और चमत्कार सम्बन्धी मिथ्या बातों का प्रचार करता है । जनमत नवलबिहारी के विरुद्ध हो जाता है । देव-मूर्ति के अपमान का अपराधी निश्चित करने के लिये पंचायत होती है । एक बालक द्वारा पंचायत में पर्ची उठवाने पर नवलबिहारी के लिये निकलता है—

'दोषी' । झगड़ा समाप्त हो-जाता है और नवलबिहारी के प्रायश्चित्त की व्यवस्था भी होती है ।

२—दूसरी कथा है पं० नवलबिहारी और उसकी रामायणवादिनी सभा के सदस्यों की । सभा में वार्षिक रामलीला के लिये चन्दा देने की समस्या पर हेतसिंह और पीताराम में कहा-सुनी होने पर पीताराम अपने जाति के लोगों की अलग कीर्तन-मंडली की स्थापना करता है । नवलबिहारी का मंगल के प्रायश्चित्त में असहयोग है किन्तु हेतसिंह सहयोग देता है । नवलबिहारी की मंडली मंगल के प्रायश्चित्त जैसे रुचिकर प्रसंग में उलझ जाने के कारण रामलीला के आयोजन में शिथिल पड़ जाती है । दूसरी ओर पीताराम की मंडली रामलीला की जोरदार तैयारी करती है । नवलबिहारी द्वारा एक सर्वजातीय सभा बुलाकर टीकाराम के परिवार का बहिष्कार स्वीकृत कराने पर भी पीताराम की मंडली मंगल के प्रायश्चित्त में सहयोग देती है ।

× × ×

(अ) नवलबिहारी और उसकी रामायणवादिनी सभा के सदस्यों की प्रासंगिक कथा है । यह मङ्गल की कथा को उलझाने में कारण बनती है । नवलबिहारी का उपहास करने पर टीकाराम मंगल पर क्रुद्ध होता है और क्षुब्ध मंगल घर छोड़ कर चला जाता है । मंगल की कथा का उत्तरार्द्ध भी उससे प्रभावित होता है । नवलबिहारी मंगल के प्रायश्चित्त कर हिन्दू धर्म में प्रत्यागमन में असहयोग करता है । किन्तु उसके मंडल के सदस्य हेतसिंह और पीताराम आदि मंगल को सहयोग देते हैं । मंगल के नवलबिहारी के मन्दिर में देवदर्शन के हठ और नवलबिहारी द्वारा विरोध से कथा चरम सीमा पर आ जाती है । नवलबिहारी के षड्यन्त्र के उद्घाटन से समस्या सुलझती है और कथा समाप्त हो जाती है ।

प्रासंगिक कथा उपन्यास के मध्य में हेतसिंह और पीताराम के परस्पर मनमुटाव को लेकर स्वतन्त्रतापूर्वक चलती है । इस कथांश के द्वारा उपन्यासकार लोगों के जातिगत अभिमान और दुराग्रह का चित्रण करता है ।

(ब) मंगल के धर्म-परिवर्तन तथा हिन्दू-धर्म में प्रत्यागमन की घटना ललितपुर की है । उसके प्रत्यागमन का घोर विरोध झाँसी में हुआ था । विरोधी आन्दोलन का अगुआ नवलबिहारी जैसा व्यक्ति था । ये घटनाएँ एक साथ बाँदा में आरोपित की गयी हैं ।

बिराटा की पद्मिनी

१—बिराटा की पद्मिनी कुमुद के अद्भुत देवोपम व्यक्तित्व तथा कुमुद और राजकुमार कुंजरसिंह के प्रणय की कहानी 'बिराटा की पद्मिनी'

की मूलकथा है। पालर ग्राम में 'दुर्गा की अवतार' सुन्दरी पुजारिणी कुमुद के दर्शनार्थ लोग दूर-दूर से आते हैं। वहीं डेरा डाले हुए दलीप नगर के राजा नायकसिंह का दासी-पुत्र, युवा कुंजरसिंह राज्य के सरदार लोचनसिंह के साथ कुमुद के दर्शन करने देवी के मन्दिर में आता है। उस क्षणिक दर्शन में कुमुद तथा कुंजर के हृदय में एक दूसरे के लिए स्थान बनता है। उसी अवसर पर मन्दिर के बाहर बैठे हुए कालपी के फौजदार अलीमर्दान के दो मुसलमान सिपाहियों के असभ्यतापूर्ण व्यवहार के फलस्वरूप लोचनसिंह से उनकी मार-पीट हो जाती है। सिपाही भाग जाते हैं। पालर में युद्ध और आशंका के बादल मंडराने लगते हैं। बाद में पालर पर अलीमर्दान के आक्रमण की आशङ्का से सुरक्षा के हेतु कुमुद और उसका पिता नरपतिसिंह दाँगी राजा सबदलसिंह के बिराटा में नदी के समीप स्थित मन्दिर में शरण लेते हैं। वहाँ भी कुमुद की मान्यता तथा पूजा देवी के रूप में प्रबल रूप से चल पड़ती है।

चिरकाल से अस्वस्थ दलीपनगर के सनकी राजा नायकसिंह के देहान्त के उपरान्त मन्त्री जनार्दन शर्मा के षड्यन्त्र से राज्य देवीसिंह नामक राजा के प्रिय एक साधारण ठाकुर को मिल जाता है। पराजित, अदृढ़-चित्त, निराश कुंजरसिंह दलीपनगर-राज्य की पुनर्प्राप्ति के हेतु सहायताप्राप्ति का उद्योग करता घूमता-फिरता बिराटा के मन्दिर में जा पहुँचता है। कुमुद के दर्शन कर उसके हृदय की हूक जग उठती है। कुमुद में कुंजर के प्रति सहानुभूति तो थी उसके मूक हृदय का द्वार भी कुंजर के लिये खुल जाता है। कुंजरसिंह को विराटा के राजा सबदलसिंह से भविष्य में सहायता का शिथिल वचन तथा मन्दिर में टिके रहने की स्वीकृति मिल जाती है।

अलीमर्दान और देवीसिंह की सेनाओं में भयङ्कर युद्ध छिड़ता है। देवीसिंह को बिराटा की सहायता नहीं मिल पाती वरन् कुंजरसिंह की तोपों के प्रत्युत्तर में उसकी तोपें रामनगर की गढ़ी से बिराटा पर गोलों की भयङ्कर वर्षा करती हैं। उधर अलीमर्दान कुमुद की प्राप्ति के लिये बिराटा पर गोलों की वर्षा कराता है और स्वयं सेना का एक दस्ता ले नदी पार कर बिराटा के मन्दिर पर झपटता है। दूसरी ओर से देवीसिंह की सेना अलीमर्दान का प्रतिरोध करती हुई बिराटा की ओर बढ़ती है। बिराटा के निवासी अन्तिम समय जान 'जौहर' करते हैं। कुंजर कुमुद से अन्तिम विदा लेता है।

कुंजरसिंह से देवीसिंह की मुठभेड़ हो जाती है। कुमुद बेतवा नदी की लहरों में जल समाधि लेने के लिये बढ़ती है और उसके पीछे लपकता हुआ अलीमर्दान। यह देखकर कुंजरसिंह शिथिल पड़ जाता है और दूसरे क्षण ही देवीसिंह की तलवार से उसका सिर कट कर दूर जा

पड़ता है। उधर कुमुद ने ढालू चट्टान के छोर पर पहुँच कर गाया—'उड़ गये फुलवा रह गई बास' और जलराशि की अनन्त गोद में जा समाई। अलीमर्दान मुट्ठी बाँधे खड़ा रह गया। लहरों पर पवन में वह गीत गूंज रहा था—

'उड़ गये फुलवा रह गई बास !'

२—दूसरी कथा है परित्यक्ता गोमती की। पालर में कुमुद के पड़ोस में गोमती रहती है। गोमती का विवाह देवीसिंह से होने जा रहा था। बरात के मार्ग में ही राजा नायकसिंह की सेना की मुठभेड़ कालपी की सेना से हो जाती है। दूल्हा देवीसिंह मुसलमान सेना से लड़कर असाधारण शौर्य और राज्यभक्ति का परिचय देता है और अन्त में मर्माहत होकर गिर पड़ता है। कालपी की सेना भाग जाती है। घायल देवीसिंह नायकसिंह की सेना के साथ दलीपनगर चला जाता है। गोमती का विवाह जहाँ का तहाँ रह जाता है। पालर में अलीमर्दान के आक्रमण की आशङ्का से गोमती बिराटा में कुमुद के पास मंदिर में शरण लेती है। देवीसिंह के दलीपनगर के राजा हो जाने का समाचार प्राप्त कर गोमती फूली नहीं समाती। दलीपनगर के मृत राजा की विद्रोहिणी छोटी रानी का अनुचर रामदयाल भी अलीमर्दान की काम-लिप्सा की पूर्ति के हेतु कुमुद की खोज में बिराटा के मन्दिर में आ पहुँचता है। काइयाँ रामदयाल स्वयं को देवीसिंह का विश्वस्त अनुचर प्रकाशित कर गोमती का सामीप्य, विश्वास और स्नेह सहज ही प्राप्त कर लेता है। आशाओं से पुलकित गोमती देवीसिंह की अवहेलना का समाचार पा स्तब्ध रह जाती है। एक बार देवीसिंह बिराटा आता है। वहाँ उससे तिरस्कृत हो गोमती अचेतावस्था में गिर पड़ती है। कुमुद संतप्ता गोमती को शान्ति प्रदान करने और सुरक्षा की दृष्टि से उसे अन्यत्र भेजने का प्रस्ताव करती है। गोमती को किसी सुरक्षित गाँव में ठहराने का भार रामदयाल को मिलता है। रामदयाल गोमती को अलीमर्दान की छावनी में छोटी रानी के डेरे पर जा ठहराता है। मार्ग में रामदयाल गोमती पर प्रेम प्रकट कर अपने जीवन को सुधारने का सच्चा प्रण करता है। भग्नहृदया गोमती रामदयाल की प्रणय याचना के प्रति निरपेक्ष रहती है। उसका जीवन के प्रति उत्साह समाप्त हो चुका है। वह युद्ध में मारी जाती है।

३—तीसरी कथा है कालपी के फौज़दार अलीमर्दान की कुमुद के प्रति कामलिप्सा तथा देवीसिंह से युद्ध की। अलीमर्दान की सेना की एक टुकड़ी से राजा नायकसिंह से पालर में मुठभेड़ हो जाने पर अलीमर्दान का ध्यान कुमुद और दलीपनगर की ओर आकृष्ट होता है। वह दलीपनगर से प्रतिशोध लेने तथा कुमुद को प्राप्त करने के लिये सेनासहित पालर में डेरा डालता है। युद्ध कई मोर्चों पर होता है। अन्त में दिल्ली से बुलावा आने पर वह

सेना को कई भागों बाँट कर स्वयं कुमुद को ले भागने की योजना बनाता है। उसकी टुकड़ी देवीसिंह की सेना से घमासान करती है और अलीमर्दान बिराटा के मन्दिर पर जा धमकता है। वह नदी की ओर अग्रसर होती हुई कुमुद का पीछा करता है और कुमुद के बेतवा में छलाँग लगाने के पश्चात् स्तब्ध रह जाता है। देवीसिंह से युद्ध नहीं करता वरन् सन्धि करके लौट जाता है।

४—चौथी कथा है नायकसिंह की सहसा प्रवर्तनी प्रचंड छोटी रानी की। राजा नायकसिंह की मृत्यु के उपरान्त जनार्दन शर्मा के षड्यन्त्र से देवीसिंह के राजा हो जाने पर कुंजरसिंह को प्रबल बिरोध करने के लिये प्रोत्साहित करने का वह असफल प्रयास करती है। तदुपरान्त छोटी रानी के जीवन का ध्येय जनार्दन तथा देवीसिंह का नाश मात्र रह जाता है। वह अलीमर्दान को राखीबन्द भाई बनाकर उसके सहयोग से सिंहगढ़ में कुंजरसिंह से जा मिलती है। सिंहगढ़ के पतन के फलस्वरूप रानी लोचनसिंह द्वारा बन्दी बनाई जाती है। वह पुनः बड़ी रानी के साथ दलीपनगर से भाग कर रामनगर की गढ़ी में देवीसिंह के विरुद्ध मोर्चा स्थापित करती है। रामनगर के पतन के पश्चात् अलीमर्दान की छावनी में शरण लेती है। रामदयाल गोमती को लाकर उसी के पास ठहराता है। जनार्दन-देवीसिंह से प्रतिशोध लेने की धुन में पागल की भांति लड़ती- भिड़ती छोटी रानी लोचनसिंह द्वारा मारी जाती है।

× × ×

(अ) ठाकुर देवीसिंह का चरित्र और अलीमर्दान की प्रासंगिक कथा-पताका मुख्य कथा को उलझा कर विकसित करने तथा परिणाम तक पहुँचाने में योग देती हैं। देवीसिंह जनार्दन शर्मा के षड़यन्त्र द्वारा कुंजरसिंह का अधिकार छीन दलीपनगर का राज्य प्राप्त कर लेता है। देवीसिंह और कुंजरसिंह की परस्पर शत्रुता के कारण ही बिराटा को दलीपनगर की सेनाओं की रक्षा अन्त में प्राप्त नहीं हो पाती। देवीसिंह और कुंजरसिंह में द्वन्द्व होता है और कुंजरसिंह मारा जाता है। अलीमर्दान कुमुद के प्रति अपनी कुत्सित इच्छा के कारण युद्ध-भूमि में उतरता है। वह बिराटा से युद्ध करता है। अलीमर्दान के कारण कुमुद को बेतवा में कूद कर जल-समाधि लेनी पड़ती है।

राजा नायकसिंह पालर में कालपी की सेना से टक्कर ले कर अलीमर्दान को दलीपनगर तथा पालर की देवी कुमुद के प्रति आकृष्ट करता है। कालपी तथा दलीपनगर की सेनाओं की टक्कर के अवसर पर दूल्हा देवीसिंह भी

रङ्गमंच पर प्रकट होता है। उसकी वीरता से प्रभावित हो नायकसिंह देवीसिंह को अपने साथ दलीपनगर ले जाता है। मृत्यु के समय राजा नायकसिंह के अपने उत्तराधिकारी के विषय में स्पष्टरूप से घोषणा न करने के कारण देवीसिंह और कुंजर के मध्य संघर्ष होता है।

छोटी रानी की कथा प्रकरी है। वह अपने प्रचण्ड द्वेष के कारण देवीसिंह को युद्धक्षेत्र में ले जाती है। अलीमर्दान को अपना राखी बन्द भाई बना कर उसके तथा देवीसिंह के मध्य वैमनस्य की जड़ें और भी गहरी करती है। छोटी रानी का विश्वस्त सेवक रामदयाल कुमुद के विषय में अलीमर्दान को सूचना देते रह कर मुख्य कथा को परिणाम की ओर अग्रसर करने में सहायक होता है।

गोमती की कथा को उलझाने में देवीसिंह का हाथ है। कुमुद के पास रहने के कारण गोमती की कथा सोलहवें परिच्छेद से लेकर ८१ वें परिच्छेद तक मुख्य कथा के साथ मिलकर चलती है। गोमती की मृत्यु भी उपन्यास के अन्तिम परिच्छेद १०६, में मुख्य कथा की समाप्ति के साथ होती है।

(ब) 'बिराटा की पद्मिनी' की कथायें विभिन्न कालों से उठाकर एक सूत्र में गूंथ दी गयी हैं। कुमुद की कथा ऐतिहासिक है, लगभग सन् १७०० की बिराटा गांव [परगना-तहसील मोंठ, ज़िला झांसी] की दस्तूरदेही, मिसिल बन्दोबस्त, सन् १८६२, में इस घटना का उल्लेख है। उर्दू में लिखा हुआ है 'बिराटा में दांगी जाति की 'पद्मिनी' थी। नबाव कालपी के हमले की वजह से उसे बेतवा नदी में समाधि लेनी पड़ी।' उसके पैर के चिह्न पक्के बने हुए हैं। वहाँ हर साल मेला लगता है। उस समय कालपी का नवाब अलीमर्दान था। यही बात बिराटा के आसपास इस रूप में प्रचलित है; एक दांगी कन्या थी जिसे आसपास दुर्गा माता का अवतार समझा जाता था। उसके रूप और लावण्य की कीर्ति किसी मुसलमान सरदार के कानों तक पहुँची और वह अपनी कामुकवृत्ति को तृप्त करने के लिये सेना लेकर चढ़ आया। बिराटा के दांगी लोग अपनी देवी की रक्षा के लिये लड़ मरे और तथाकथित देवी ने बेतवा की धारा की शरण ली। बाद में उसके चट्टान पर चरण-चिह्न अंकित करा दिये गये। उस स्थल पर अब भी प्रतिवर्ष मेला लगता है।

इसी कथा में वर्मा जी ने दतिया राज्य की राज्य-प्राप्ति संबन्धी संघर्ष की कहानी ला मिलाई है। नायकसिंह, देवीसिंह तथा कुंजरसिंह आदि उसी प्रसंग की देन हैं। घटना कुमुद के ५५ वर्ष बाद की है।

देवीसिंह का वास्तविक नाम भवानीसिंह था। ये दतिया के महाराजा हुए हैं, महाराज विजय बहादुर सिंह के दत्तक पुत्र थे। उपन्यास के नायकसिंह

श्रौर महाराज विजय बहादुर सिंह एक ही व्यक्ति हैं। ये विलासी प्रकृति के थे श्रौर श्रनेक प्रकार के रोगों से ग्रस्त भी। सन्तान की इच्छा से इन्होंने दो विवाह किये किन्तु कोई पुत्र न हुश्रा। हाँ, एक दासी से पुत्र श्रवश्य हुश्रा, उपन्यास का 'कुंजरसिंह'। पंचनद ग्राम में इन्होंने प्राण त्यागे। मरते समय उन्होंने कुछ कहना चाहा। राज पुरोहित ने घोषणा की कि उन्होंने देवीसिंह (भवानीसिंह) को राज्य दिया है। छोटी रानी इस षड्यन्त्र के विरुद्ध थी। छोटी रानी ने प्रण किया कि जब तक राजपुरोहित (उपन्यास के जनार्दन शर्मा] का सर काट कर न लाया जायगा तब तक वे श्रन्न न ग्रहण करेंगी। सर काट कर लाया गया, तभी उन्होंने श्रन्न ग्रहण किया। यह घटना झांसी के निकट एक ग्राम गोरामछिया की है।[१]

रण-दूल्हा वाली कथा श्रलग से है। वर्मा जी ने उसे देवीसिंह की कथा में ला पिरोया है। यह घटना बहादुरशाह के काल की है। जिस समय नायकसिंह (विजय बहादुर सिंह) के पिता मुसलमानों से कालपी की रक्षार्थ युद्ध करने गये थे, एक दूल्हा विवाह करके पत्नी सहित लौट रहा था। दूल्हा से यह सब न देखा गया। तलवार लेकर मातृभूमि की रक्षा के लिये मैदान में श्रा कूदा। खूब लड़ा श्रौर मारा गया। उसके रक्तरंजित मौर, शस्त्र तथा विवाह के कपड़े श्राज भी सेंहुड़े (सिंहगढ़) के किले में सुरक्षित हैं।

गोले उगलतीं तोपें श्रौर रात ही रात नदियों को तैर कर पार करती सेनायें किसी न किसी रूप में रही श्रवश्य थीं। कुंजरसिंह श्रौर देवीसिंह (भवानीसिंह) के बीच राज्य के प्रश्न पर श्राये दिन युद्ध होते रहते थे। श्रन्त में देवीसिंह ने कलकत्ते से सहायता प्राप्त कर दतिया का राज्य श्रधिकृत किया। कुंजरसिंह का वास्तविक रूप श्रन्त में श्रसफल रहा था किन्तु मारा नहीं गया था। उपन्यास में देवीसिंह के हाथों उसका बध दिखलाया गया है।

विभिन्न काल की उक्त दो घटनायें एक लड़ी में गूँथ दी गयी हैं; ये हैं, कुमुद का श्रलीमर्दान के कारण जलराशि में तिरोहित होना तथा कुंजरसिंह का राजगद्दी से वंचित होना। कुमुद श्रौर कुंजरसिंह के मध्य प्रणय-संबंध स्थापित कर दोनों घटनाश्रों को घुला-मिला दिया गया है। वर्मा जी ने दोनों पात्रों को समकालीन कल्पित करके कथा में निज की व्याख्या तथा कल्पना को स्थान दिया है। कुंजरसिंह राजा का दासी पुत्र था, बलिष्ठ श्रौर सुन्दर रहा होगा। निरन्तर सामाजिक श्रवहेलना तथा राज्य की उपेक्षा सहने के

१—बुंदेलखंड का इतिहास (पृ० ३७४), बिराटा की पद्मिनी (भूमिका), वर्मा जी के संस्मरणों तथा जन-श्रुतियों के श्राधार पर कुंजरसिंह का वास्तविक नाम था श्रर्जुनसिंह।

कारण उसका सांसारिक दौड़धूप से उदासीन हो जाना स्वाभाविक है। कुमुद के रूप तथा नैसर्गिक लावण्य की चर्चा चारों ओर थी। कुंजरसिंह उसके दर्शनार्थ गया होगा। यदि उसके हृदय के किसी कोने में इस दैवी सौंदर्य के प्रति कुछ ममता जाग उठी हो तो क्या आश्चर्य ! कुमुद भी शायद अपने इस भावुक, अभागे भक्त पर और लोगों से अधिक कृपा करती रही होगी।

कुमुद वाली घटना पूर्णतः ऐतिहासिक है। भले ही वह देवी अथवा साधारण नारी, कुछ रही हो। आज भी वहाँ के निवासी उसे देवी मानते हैं। जिस चट्टान से वह नदी में कूदी थी, उस पर अब भी कुमुद के चरण-चिह्न अंकित हैं। ऐतिहासिक परम्परा में कुमुद देवी के रूप में मिली है। वह अविवाहिता थी। अन्धविश्वास और श्रद्धा के अतिरिक्त उसे मनोवैज्ञानिक तथा संभवता के दृष्टिकोण से ग्रहण करना वर्मा जी को अभीष्ट था। इस उपन्यास की मुख्य कला, देव और मनुष्य का, बल और दुर्बलता का अनुपम मिश्रण है। कुमुद और कुंजरसिंह के बीच प्रणय की कल्पना से दो लक्ष्य सिद्ध किये गये हैं। उपन्यास में सजीव, साकार, रोमांस का पदार्पण तथा देवी के पहलू में धड़कते हुये मानवीय हृदय की खोज। वर्मा जी ने उसके हाथों जंगली फूलों की गुंथी माला कुंजरसिंह के गले में डलवा ही दी।

गोमती और देवीसिंह के असफल सम्बन्ध की कल्पना 'गढ़ कुंडार' की देन है। वहाँ के नागदेव और हेमवती यहाँ गोमती और देवीसिंह हैं। रामदयाल काल्पनिक है। यहाँ उस जैसे नीच व्यक्ति को भी नारी (गोमती) के प्रेम से उठता हुआ दिखाना अभीष्ट है।

मुसाहिबजू

१. मुसाहिबजू दलीपसिंह की आर्थिक दुरावस्था, उसकी पत्नी की कर्तव्यपरायणता तथा मुसाहिबजू द्वारा अपने सेवकों की रक्षा की कहानी 'मुसाहिबजू' की मुख्य कथा है। सेवकों के भोजन आदि के व्यय के लिये मुसाहिबजू की पत्नी चरखारीवाली अपनी पहुँचियाँ गिरवी रखा कर रुपया मँगाती है। एक अवसर पर वह अपने पास आवश्यक आभूषण न होने के कारण रनिवास में आयोजित उत्सव में भाग लेने नहीं जा पाती और संतप्त हो एकान्त में रोती है। मुसाहिब के स्वामिभक्त सेवक अपनी स्वामिनी का दुःख टालने के लिये सेठों और उनकी स्त्रियों की बैलगाड़ी को लूटते हैं। लूटे हुए आभूषणों को गढ़े हुए धन की खुदाई से प्राप्त हुआ बताकर चरखारीवाली के पास भिजवा

देते हैं। बैलगाड़ी में बैठी सुभद्रा नाम की स्त्री लुटेरों में से मुसाहिबजू के लल्ली सिपाही को पहचान लेती है। लुटे हुए सेठों की पुकार राजा तक पहुँचती है। राजा मुसाहिब को, उसके लुटेरे सेवकों को दण्ड के लिये प्रस्तुत करने की आज्ञा देता है। मुसाहिब अपने सेवकों के अपराध को स्वयं ओढ़ लेता है। सेवकों को राजा के पास नहीं भेजता वरन् उससे युद्ध की तैयारियाँ करता है किन्तु राजा का कोतवाल संघर्ष को बचाने के लिये युक्तिपूर्वक मुसाहिब को राज्य छोड़कर चले जाने के लिये मना लेता है। मुसाहिब को राज्य छोड़कर जाते देख राजा का हृदय पसीज उठता है। राजा स्वयं जाकर मुसाहिब दलीपसिंह को मनाता और प्रजापालन का उपदेश देता है।

२. दूसरी कथा है मुसाहिब के रसिक सिपाही लल्ली और कुंजी महाजन की पुत्री सुभद्रा की। सुभद्रा विवाहिता होने पर भी ससुराल में अनबन के कारण प्रायः पिता के पास रहती है। लल्ली जब कभी उसके पास आता है रसमय वार्तालाप करने का प्रयत्न करता है। सुभद्रा द्वारा प्रकट की गयी उपेक्षा भी उसे समीप आने का निमन्त्रण-सा देती है। लल्ली बैलगाड़ी की स्त्रियों के आभूषणों की लूट में भाग लेता है। इन स्त्रियों में सुभद्रा भी थी। लूट का माल चरखारीवाली को भेजने के बाद चाँदी के आभूषण लल्ली के पास रह जाते हैं। वह उन आभूषणों को सुभद्रा की भेंट करने जाता है। सुभद्रा उसका तिरस्कार करती है। एकाएक कुंजी सेठ के आ जाने पर लूट की बात स्पष्ट हो जाती है और सेठ लोग राजा से अपराधियों को दण्ड देने की प्रार्थना करते हैं।

× × ×

[अ] मुख्य कथा सामन्तों की सेवकप्रियता और तथाकथित स्वाभिमान की परिचायक है। लल्ली सिपाही और सुभद्रा का प्रसंग कथा में प्रकरी के रूप में प्रयुक्त है। लल्ली डाके में भाग लेता है, सुभद्रा लुटने वालों में से एक थी। लल्ली द्वारा सुभद्रा को डाके के गहने भेंट करते समय रहस्योद्घाटन हो जाता है और मुख्य कथा चरम सीमा की ओर अग्रसर होती है।

[ब] मुख्य कथा की घटना दतिया की है। इसे वर्मा जी ने छोटू नाई से सुना था। सुभद्रा-लल्ली की कथा काल्पनिक है।

कभी न कभी

१. दो मित्रों, देवजू और लछमन के मध्य लीला आती है। पहले देवजू और लीला के विवाह की योजना थी किन्तु लछमन और लीला के

मध्य एक दूसरे के प्रति झुकाव देख देवजू दोनों का विवाह हठपूर्वक करा देता है। सोचता है उसे भी सुख, शान्ति प्राप्त होंगे कभी न कभी, यही 'कभी न कभी' की मुख्य कथा है। बलवन्तनगर में इमारतों पर कार्य करने वाले दो मज़दूर हैं, देवजू और लछमन। स्वाभाविक स्नेह और घटनाओं के संयोग से दोनों में प्रगाढ़ मित्रता हो जाती है। दोनों 'पगड़ी-बदल' भाई बन जाते हैं, देवजू बड़ा और लछमन छोटा। काम की खोज में आये हुए एक व्यक्ति हीरा-लाल और उसकी युवती पुत्री लीला से उनका परिचय होता है। लछमन हीरालाल पर देवजू से लीला का विवाह कर देने का बल देता है। हीरालाल लछमन से ही लीला का विवाह करने के मत पर स्थिर रहता है। लीला भी लछमन के प्रति आकृष्ट होती है। लछमन का विचार बदलने लगता है। लछमन के बदले हुए व्यवहार और विचार को लक्षित कर देवजू को क्लेश होता है। मजदूरों के मेट की ओर से संकट की आशंका से हीरालाल और लीला देवजू-लछमन के डेरे पर आ टिकते हैं। देवजू और लछमन में लीला के प्रश्न को लेकर विवाद छिड़ जाता है। अन्त में देवजू लछमन और लीला का विवाह करा देने का निश्चय करता है और सोचता है उसे भी सुख मिलेगा, कभी न कभी।

२. दूसरी कथा है मेट के लीला के प्रति आकर्षण की। जहाँ लीला आदि काम करते हैं उस काम का निरीक्षक मेट लीला के लछमन के साथ विवाह पर बल देता है। देवजू को वह उपयुक्त वर के रूप में स्वीकार नहीं करता। स्वयं टीपनों को मिलाने का विशेषज्ञ होने का दावा भरता है और किसी न किसी व्याज से लीला के निकट आने का प्रयत्न करता रहता है। एक सन्ध्या को काम के बहाने लीला को अपने डेरे पर लाकर उसके समक्ष अपना प्रेम प्रकट करता है। लीला उस के प्रति पहले उदासीनता, फिर उपेक्षा प्रकट करती है। इसी बीच देवजू आकर मेट की भर्त्सना कर लीला को साथ डेरे पर ले जाता है।

× × ×

(अ) लीला, लछमन और देवजू का एक प्रेम-त्रिकोण बनता है। लछमन, देवजू की मैत्री समाप्ति के बिन्दु पर आ जाती है किन्तु देवजू त्रिकोण में से स्वयं पीछे हटकर परिस्थिति को सम्भाल लेता है। लछमन तथा लीला के विवाह का आयोजन होता है। मेट लछमन को देवजू की अपेक्षा सरल तथा उदार पाता है। वह लीला तथा लछमन के सम्बन्ध पर बल देता है। लछमन को लीला के प्रति उन्मुख करने में मेट का विशेष सहयोग है।

मेट के लीला को अपने डेरे पर ले जाकर उसके प्रति प्रेम प्रकट करने का प्रसङ्ग स्वतन्त्र रूप से विकसित हुआ है। उपन्यासकार ने यहाँ लीला को प्राप्त करने के तीन इच्छुक प्रस्तुत कर दिये हैं, लछमन, देवजू और मेट। देवजू मेट और लीला के वार्तालाप के मध्य पहुँच मेट की भर्त्सना कर लीला को साथ ले आता है। उसके इस कार्य को लेकर देवजू और लछमन की आन्तरिक कटुता विवाद के रूप में उभर आती है। देवजू मेट के अत्याचार की आशंका दिखाकर ही हीरालाल को लीला और लछमन का विवाह तुरन्त कर देने के लिये तैयार करता है। इस प्रकार मेट का प्रसंग कथा को अन्त की ओर अग्रसर करने में सहायक है।

[ब] उक्त दोनों कथायें झाँसी ज़िले में चिरगाँव-रामनगर के मध्य सन् १९४२ में सड़क बनाने वाले मज़दूरों से सम्बन्ध रखती हैं। बलवन्त-नगर झाँसी का पुराना नाम है।

झाँसी की रानी — लक्ष्मीबाई

झाँसी की रानी की मुख्य कथा बालिका मनू के झाँसी की रानी बनने, विधवा होने पर सन् १८५७ में स्वराज्य-स्थापना के दृष्टिकोण से झाँसी में राज्य सम्भालने तथा अन्त में अँगरेज़ों से मोर्चा लेते हुए प्राणोत्सर्ग करने की कहानी है। बिठूर में बाजीराव द्वितीय के आश्रित मोरोपन्त की पुत्री मनूबाई राष्ट्रप्रेम और महत्वाकांक्षाओं से ओतप्रोत है। वह भारत के स्वतन्त्र होने तथा देश के गौरवपूर्ण दिनों के लौटने की आशा में डूबी रहती है। उसका विवाह झाँसी के विधुर प्रौढ़ राजा गंगाधरराव से हो जाता है। मनू का ससुराल में नामकरण होता है, लक्ष्मीबाई। लक्ष्मीबाई की वृत्ति गंगाधरराव के अति रसिक, आलसी, सहजकोपी स्वभाव से मेल नहीं खाती। वह महलों के बन्धन में रहकर भी व्यायाम और घुड़सवारी का नित्य अभ्यास करती रहती है। अपनी दासियों काशी, सुन्दर, मुन्दर आदि को सहेली के रूप में ग्रहण कर प्रोत्साहन दे उन्हें योद्धा बनाती है। गंगाधरराव भयंकर रूप से रोगग्रस्त हो जाने पर दामोदरराव नामक बालक को दत्तक पुत्र स्वीकार कर लेते हैं। राजा की मृत्यु पर रानी धैर्य और दृढ़ता का आश्रय लेती है और अपने बाल-सखाओं तात्या टोपे तथा नाना साहब से समय-समय पर देश को स्वतंत्र करने की योजना पर विचार करती रहती है। अँगरेजों द्वारा दत्तक पुत्र की अस्वीकृति तथा झाँसी पर उनके अधिकार स्थापित कर लेने पर वह भविष्य में योजना पूर्ण हो जाने तक शान्त रहने का निश्चय करती है। सहयोगियों का सैनिक-शिक्षण तथा जनता में अँगरेज़ों के विरुद्ध प्रचार कार्य वेग पकड़ता है।

चौथी जून, १९५७ को भारत के अन्य नगरों के समान झाँसी में अँगरेज़ी शासन के विरुद्ध विद्रोह के लक्षरण प्रकट हुए । रानी झांसी के सभी गण्यमान्य जनों के अनुरोध पर झांसी का शासन-भार ग्रहरण कर सुप्रबन्ध स्थापित करती है। टीकमगढ़ के दीवान नत्थे खाँ की विशाल सेना के आक्रमरण और विरोधियों द्वारा नगर में उत्पन्न साम्प्रदायिक तनाव आदि अनेक समस्याओं को लक्ष्मीबाई पराक्रम तथा दृढ़ता से हल करती है ।

अँगरेज़ी सेना का जनरल ह्यू रोज़ विद्रोहियों का दमन करता हुआ झाँसी के समीप आ पहुँचता है । दोनों ओर से तोपों का भयंकर युद्ध प्रारंभ होता है । रानी की स्त्री-सेना अत्यन्त वीरतापूर्वक कार्य करती है जिसका परिचय पा रोज़ भी दाँतों तले उँगली दबा जाता है । दूल्हाजू तोपची अपनी सहायक, नारी-सेना की सदस्या सुन्दर से प्रेम प्रकट करता है किन्तु सुन्दर से तिरस्कृत तथा रानी द्वारा अपमानित होने पर अँगरेजों से जा मिलता है । झांसी किले के ओर्छा फाटक पर वह अँगरेजी सेना को मार्ग दे देता है । पराजय होती है और रानी को कुछ चुने हुए सहायकों के साथ लड़ते हुए झांसी को त्याग कर कालपी में तात्या टोपे और रावसाहब की छावनी में शरण लेनी पड़ती है ।

रावसाहब आलसी और विलासी योद्धा है । लक्ष्मीबाई के अनेक बार चेतावनी देने तथा विजय के पर्याप्त साधनों के होने पर भी अपनी अक्षमता के कारण अँग्रेज़ों से पराजित हो कालपी छोड़कर भागता है । रानी अपनी योजना, उत्साह तथा परिश्रम से रावसाहब को ग्वालियर पर विजय प्राप्त करने में भारी सहयोग देती है । रावसाहब वहाँ सम्पूर्ण समय उत्सव मनाने तथा नाचरंग में व्यतीत करता है । चेतावनियों का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । रानी निराश हो ग्वालियर के आसपास घूमती हुई बाबा गंगादास नामक उच्चकोटि के संन्यासी से भेंट करती है । गंगादास गीता के 'कर्मयोग' संबंधी उपदेश पर बल देकर उसे बिना किसी प्रकार की आशा-निराशा हृदय में रखे अविरत प्रयत्न का उपदेश देते हैं । रानी की निराशा विदा ले जाती है । वह उसी परिस्थिति में जीवन-पर्यन्त भरसक उद्योग करने का निश्चय करती है । अँगरेजी सेना का ग्वालियर पर प्रबल आक्रमण होने पर ग्वालियर राज्य की सेनाएँ रावसाहब से विमुख हो जाती हैं । रानी के थोड़े से सैनिक असाधारण पराक्रम प्रदर्शित करते हैं । पराजय अवश्यम्भावी थी, रानी को पलायन करना होता है । पीछा करते अँगरेजो से लड़ते-भिड़ते वह मर्माहत होती है और बाबा गंगादास की कुटी पर पहुँच कर रानी की गौरवमय इहिलोक-यात्रा समाप्त हो जाती है ।

२—दूसरी कथा है मोतीबाई तथा खुदाबख्श के प्रेम और उनके झाँसी के स्वातन्त्र्य-संग्राम में सहयोग की। राजा गंगाधरराव की नाटकशाला में मोतीबाई प्रतिभा सम्पन्ना सुन्दरी अभिनेत्री है। गंगाधरराव उसके तथा अपने सरदार खुदाबख्श के मध्य आकर्षण देख खुदाबख्श को देश-निष्कासन की आज्ञा देता है। खुदाबख्श के हृदय में फिर भी राजा या झाँसी के लिए कोई दुर्भावना नहीं आती। मोतीबाई और खुदाबख्श में प्रेम था। मोतीबाई उसकी स्वामिभक्ति की परीक्षा ले उसे रानी के विश्वासपात्र सहायकों में सम्मिलित कर लेती है। दोनों राज्य की स्वतन्त्रता-प्राप्ति होने तक विवाह न करने का निश्चय करते हैं। सागरसिंह डाकू का दमन करने के लिये गया हुआ खुदाबख्श घायल हो जाता है। रानी स्वयं जाकर सागरसिंह को बन्दी बनाती और खुदाबख्श को 'कुँवर' की उपाधि प्रदान करती है।

अंगरेजों के ओर्छा फाटक से झाँसी के किले में प्रविष्ट होने के समय खुदाबख्श तोपों से गोलों की भयङ्कर वर्षा करता है और अँगरेजों की गोली से मारा जाता है। मोतीबाई भी तोपों पर लड़ती हुई गोली खाकर रानी की गोद में प्राण छोड़ती है।

३—तीसरी कथा है ब्राह्मण नारायण शास्त्री तथा मेहतरानी छोटी के वर्णाश्रम विरुद्ध प्रेम तथा देश-प्रेम की। गंगाधरराव के समय में झाँसी के सवर्ण जाति के लोग जनेऊ धारण करने का आन्दोलन छेड़ते हैं। विद्वान् नारायण शास्त्री उनका पक्ष लेता है। नारायण शास्त्री तथा छोटी भंगिन में प्रेम था। आन्दोलन के विरोधीजनों द्वारा इस वर्णाश्रम-विरुद्ध प्रेम की सूचना पा राजा गंगाधरराव दोनों को देश-निष्कासन का दण्ड देता है।

छोटी अँगरेजों के भारतीय सैनिकों की छावनी में नाचती गाती है और उन्हें अँगरेजों के विरुद्ध उभारती है। ग्वालियर हस्तगत कर लेने पर रावसाहब द्वारा किये गये नृत्य-गान के आयोजन में छोटी भी भाग लेने पहुँचती है। रावसाहब उसके सौन्दर्य और सीधे-सादे नृत्य-गान पर मुग्ध हो जाता है किन्तु छोटी और नारायण शास्त्री की जाति-पाँति और सम्बन्ध का बोध होने पर छोटी के देश-निष्कासन की आज्ञा देता है। नारायण और छोटी जाति-पाँति के जटिल बन्धन के मुक्ति-प्राप्ति के हेतु वैष्णव हो जाने का संकल्प कर ग्वालियर त्याग देते हैं।

४—चौथी कथा है तात्या टोपे के स्वातन्त्र्य-संग्राम सम्बन्धी कार्य तथा जूही के उसके प्रति असफल प्रेम की। तात्या बाजीराव द्वितीय का सेवक था और रानी लक्ष्मीबाई से उसकी बाल्यावस्था से परिचित था। तात्या

टोपे स्वातन्त्र्य-युद्ध की योजना सम्बन्धी मन्त्रणा करने तथा देश के समाचार देने के लिये अनेक बार लक्ष्मीबाई से मिलने आता है।

रानी की स्त्री-सेना की सदस्या जूही छावनियों में नृत्य, गान कर सैनिकों को अँगरेज़ों के विरुद्ध भड़काने का कार्य करती है। जूही तात्या से प्रेम करने लगती है। उससे बात करने के लिये, प्रोत्साहन के दो शब्द सुनने के लिए जूही लालायित है। अपने लक्ष्य-पूर्ति की धुन में ही खोये रहने वाले तात्या को इन विषयों पर मनन करने का अवकाश नहीं है किन्तु मोतीबाई द्वारा जूही को प्रोत्साहित करने की प्रार्थना को स्वीकार कर वह उससे स्नेहपूर्वक बात कर लेता है। जूही को मानो सब कुछ मिल गया। झाँसी का अँगरेजों से युद्ध छिड़ जाने पर जूही काशीबाई के साथ तात्या को झाँसी की सहायता का संदेश देने जाती है। तात्या झाँसी की सहायता के लिए नहीं पहुँच पाता। मार्ग में ही पराजित हो सेना सहित लौट जाता है।

रानी के कालपी में रावसाहब की छावनी में शरण लेते समय साथ जूही भी रहती है। रावसाहब तात्या द्वारा जूही को अपनी मण्डली में नृत्य करने का सन्देश भिजवाता है। स्वामिभक्त तात्या जूही की कोमल भावनाओं का बिना कोई विचार किए हुए उससे नृत्य के लिए चलने का आग्रह करता है। स्वाभिमनिनी जूही के हृदय को ठेस लगती है। वह स्पष्ट रूप से आग्रह को ठुकरा देती है। ग्वालियर में रावसाहब राग-रङ्ग में डूब जाता है। तात्या की दबी हुई वासना भी उभर आती है। वह नर्तकियों पर नेत्र गड़ा कर प्रशंसा में सिर हिलाता है। जूही ग्लानि और अभिमानवश वहाँ से उठ आती है। ग्वालियर में अंगरेजों से अन्तिम युद्ध में कुंठिता जूही तोपों से गोलों की भयानक वर्षा करती है और शत्रु की तलवार द्वारा समाप्त हो जाती है।

५—पाँचवीं कथा है दीवान रघुनाथसिंह तथा मुन्दर के प्रणय और स्वातन्त्र्य-युद्ध में प्राणोत्सर्ग की। गंगाधरराव के देहान्त तथा अँगरेजों द्वारा झाँसी पर अधिकार प्राप्त कर लेने के उपरान्त रघुनाथसिंह रानी लक्ष्मीबाई से स्वराज्य-प्राप्ति विषयक मन्त्रणा करने आता है। दीवान नत्थेखाँ द्वारा झाँसी पर आक्रमण के समय रघुनाथसिंह पीछे से सेना सहित आकर उसके पैर उखाड़ देता है। रानी लक्ष्मीबाई पुरस्कार के रूप में उसे अपनी सहेली मुन्दर के हाथों लड्डू खिलवाती है। अँगरेजों से युद्ध के समय तोपखाने में रघुनाथसिंह और मुन्दर साथ कार्य करते हैं। दोनों में एक दूसरे के प्रति प्राणोत्सर्ग की भावना उमँगती है। ग्वालियर के अन्तिम युद्ध में दोनों शीघ्र ही स्वर्ग में मिलने की कामना करते हैं। मुन्दरबाई युद्ध करते हुए एक अँगरेज

की पिस्तौल की गोली से मारी जाती है। रघुनाथसिंह रानी लक्ष्मीबाई के शव के साथ मुन्दरबाई के शव का दाह गंगादास की कुटी में करने के पश्चात् अंगरेजों के एक रिसाले से टक्कर लेता हुआ प्राण छोड़ता है।

६—छठी कथा है डाकू सागरसिंह के रानी के सरदार बनने तथा अंगरेजों से युद्ध करते हुए प्राण देने की। अँगरेजों के शासनकाल में सागरसिंह झाँसी के जेल में बन्दी बना कर लाया जाता है किन्तु दरोगा बख्शिश अली की असावधानी के कारण निकल भागता है। रानी अपने शासन-काल में स्वयं सागरसिंह को बन्दी बना क्षमा प्रदान कर उसे अपनी सेना में स्थान देती है। अँगरेजों के युद्ध के समय सागरसिंह उनके प्रवाह को रोकने के लिये अपने साथियों सहित किले के बाहर निकल कर प्रतिरोध करते हुए मारा जाता है।

+ + +

(अ) रानी लक्ष्मीबाई की बाल्यावस्था से लेकर मृत्यु तक की कथा—सम्पूर्ण जीवन वृत्त-को लेकर उपन्यास की रचना की गयी है। उपन्यासकार ने इसे जीवन चरित् न बनाकर उपन्यास का स्वरूप प्रदान किया है। उपन्यास का ध्येय या 'कार्य' रहता है—स्वराज्य-प्राप्ति। मनूबाई बचपन से देश की स्वतंत्रता के स्वप्न देखती है। झाँसी के राजा से विवाहित होने तथा झाँसी का राज्य संभालने पर भी उसकी दृष्टि से वह महान् लक्ष्य ओझल नहीं होता है। उसके लिये झाँसी की राज्य-प्राप्ति स्वर्ग की सीढ़ी नहीं है वरन् देश में स्वराज्य-स्थापना की दिशा में एक पग मात्र है। रानी लक्ष्मीबाई अनेक कठिनाइयों का सामना कर झाँसी के राज्य-भार को वहन करती है। अँगरेजों से युद्ध होता है और अन्त में रानी झाँसी से पलायन करती है। यहाँ जान पड़ता है कि झाँसी की रानी, लक्ष्मीबाई द्वारा झाँसी छोड़ने पर कथा की चरम सीमा आ गयी है किन्तु यदि उपन्यास की कथा के 'कार्य' को दृष्टि में रखा जाए तो कथा की चरम सीमा अभी दूर है। रानी तो झाँसी की विदेशी शासन से मुक्ति के द्वारा जन-जन में स्वराज्य की वांछा और उसके लिए तत्पर होने की शक्ति जगाना चाहती थी। उसका लक्ष्य झाँसी छोड़कर भी अक्षुण्ण रहता है। वह रावसाहब के साथ अँगरेजों से टक्कर लेती है और ग्वालियर पर अधिकार प्राप्त कर लेती है। रावसाहब आदि अपने सहयोगियों के आलस्य, विलास और निश्चिन्तता को देखकर रानी के हृदय में निराशा जाग्रत होती है। वह स्वयं को असमर्थ और लक्ष्य से दूर पाकर साहस खो बैठती है। कहीं पाठक लक्ष्मीबाई को असफल न कह बैठें, उसकी महान् साधना को कहीं दुस्साहस मात्र कहकर निःश्वास न छोड़ें, अतः उपन्यासकार आगे उसे बाबा गंगादास के सम्पर्क में लाता है। झाँसी के पतन को रानी की उद्देश्य-पूर्त्ति में असफलता कहना भ्रम

होगा। झाँसी तो उसके महान उद्देश्य की दिशा में एक पग था, केवल एक प्रयोग। रानी ने तो उस महान् उद्देश्य की माला में अपने प्रयत्न का पुष्प गूँथ दिया। यह उसकी सफलता ही थी। बाबा गंगादास के रानी से वार्तालाप द्वारा उक्त विचार स्पष्ट हो जाता है।

रानी—'हम लोग कैसे स्वराज्य स्थापित कर पावेंगे।'

बाबा—'गड्ढे कैसे भरे जाते हैं? नींव कैसे पूरी जाती है? एक पत्थर गिरता है, फिर दूसरा, फिर तीसरा और चौथा, इसी प्रकार और। तब उसके ऊपर भवन खड़ा होता है। नींव के पत्थर भवन को नहीं देख पाते। परन्तु भवन खड़ा होता है उन्हीं के भरोसे—जो नींव में गड़े हुये हैं। वह गड्ढा या नींव एक पत्थर से नहीं भरी जाती। और, न एक दिन में। अनवरत प्रयत्न, निरन्तर बलिदान आवश्यक है।'

रानी—'हम लोगों के जीवन काल में स्वराज्य स्थापित हो जायगा?'

बाबा—'यह मोह क्यों? तुमने आरम्भ किये हुये कार्य को आगे बढ़ा दिया है। अन्य लोग आयेंगे। वे इसको बढ़ाते जायेंगे। अभी कसर है। स्वराज्य स्थापना के आदर्शवादी अपने-अपने छोटे-छोटे राज्य बनाकर बैठ जाते हैं। जनता और उनके बीच का अन्तर नहीं मिटता—घटता ही बहुत कम है। जनता त्रस्त बनी रहती है। जब जनता का पूरा सहयोग राज्य को प्राप्त हो जाय और राजा टीम टाम तथा विलासता का दासत्व छोड़कर प्रजा का सेवक बन जाय तब जानो स्वराज्य की नींव भर गई और भवन बनना आरम्भ हो गया। शाश्वत धर्म का रूप बिगड़ गया है। इसके सुधार के बिना वह भवन खड़ा न हो पायगा।'

रानी—'हम लोग प्रयत्न करते रहें?'

बाबा—'अवश्य। तुम तो भगवान कृष्ण और गीता की भक्त हो।'—

अन्त में रानी स्वराज्य के लिये अंगरेजों से वीरतापूर्वक लड़ती हुई घायल होती है। रानी के होठ हिल रहे थे। लोगों की समझ में केवल ये शब्द आये—'···दह···ति···नै···यं···पावक···' रानी की इहिलीला समाप्त हो गयी।

बाबा गंगादास ने कहा, 'प्रकाश अनन्त है। वह कण कण को भासमान कर रहा है। फिर उदय होगा। फिर प्रत्येक कण मुखरित हो उठेगा।' बाबा ने विषादग्रस्त सरदारों को सचेत किया—'झांसी की रानी के सिधार जाने को अस्त होना कहते हो। यह तुम्हारा मोह है। वह अस्त नहीं हुई। वह अमर हो गई।'

यहाँ रानी की जीवन-लीला समाप्त होती है और उसकी सफलता के विषय

में उठी हुई शंका का समाधान हो जाता है। पाठक की भावना के साथ कथा इस स्थल पर आकर खिंचते हुए ऊपर जा तनती है और उपन्यास समाप्त। यही कथा का चरम स्थल है।

उपन्यास, झाँसी की रानी— लक्ष्मीबाई के प्रबल व्यक्तित्व के चारों ओर घूमने के कारण रानी की कथा के अतिरिक्त अन्य किसी पुष्ट प्रासंगिक कथा को जन्म नहीं दे सका है। नाना साहब, रावसाहब तथा टोपे के स्वातंत्र्य संग्राम में भाग लेने की एक क्षीण प्रासंगिक कथा दीख पड़ती है। मनू इनके साथ पलती और भारतीय एकता तथा स्वातंत्र्य के स्वप्न देखती है। लक्ष्मीबाई के झांसी पहुँचने पर नाना और तात्या उससे प्रायः मिलने आते हैं और योजना के संबंध में मंत्रणा करते हैं। अन्त में झांसी छोड़ने के उपरान्त रानी राव-साहब और तात्या के साथ ही अँगरेजों से युद्ध करती है। प्रासंगिक कथा मुख्य कथा से प्रारंभ और अन्त में मिलने पर भी अत्यन्त क्षीण है। उपन्यास के मध्य में यह प्रायः लुप्त रहती है। इसका विकास स्वतंत्र रूप से नहीं होता। केवल लक्ष्मीबाई के व्यक्तित्व और कथा की पूर्ति के लिये ही इसका प्रयोग हुआ है।

मोतीबाई-खुदाबख्श, नारायण शास्त्री-छोटी, रघुनाथसिंह-मुन्दर की प्रणय कथाएँ, तात्या के प्रति जूही के आकर्षण, तथा सागरसिंह की वीरता तथा राव साहब की असफलता की घटनाओं का मुख्य कथा में प्रकरी के रूप में प्रयोग हुआ है। मोतीबाई-खुदाबख्श के आकर्षण और क्षुब्ध गंगाधरराव द्वारा खुदाबख्श के देश-निष्कासन का प्रसंग मुख्य कथा के प्रारंभ से पूर्व आता है। लक्ष्मीबाई द्वारा झाँसी का शासन भार संभालने पर दोनों स्वामिभक्ति का परिचय देते हुए परस्पर निकट आते हैं। ७६ वें परिच्छेद में कथा समाप्त हो जाती है। नारायण शास्त्री और छोटी के प्रेम तथा उनके झांसी से निष्कासन की कथा ६,११,१२ परिच्छेद में आने के अनन्तर उनके दर्शन केवल ४२ तथा ८६ वें परिच्छेद में होते हैं। दोनों के अमर प्रेम का परिचय मिलता है। झांसी छोड़ने पर भी झांसी और स्वराज्य के प्रति दोनों के हृदय में मोह है। प्रेम जाति-पाँति को नहीं देखता किन्तु समाज की निष्ठुर और लोलुप प्रवृत्ति उसे फूटी आँख नहीं देख सकती। घटना समस्यामूलक, तत्का-लीन सामाजिक मनोवृत्ति की परिचायक तथा झाँसी के जन-मन के स्वातंत्र्य-प्रेम की द्योतक है।

रघुनाथसिंह तथा मुन्दर की प्रेमकथा खुदाबख्श और मोतीबाई की कथा की भाँति उपन्यास में रोमाँस की सृष्टि करती है। प्रेम की प्रेरणा इन सब को झाँसी के लिये जूझ मरने को उकसाती है। झाँसी में स्वराज्य-स्थापन के

उपरान्त ही वे 'अपना संसार' बसाने की सोचते हैं। रानी के सरदारों की अपूर्व कर्तव्य-भावना का इन कथाओं से परिचय मिलता है। सागरसिंह का स्वाभिमानी, वीर पुरुष के रूप में चित्रण हुआ है। ये सब स्वातंत्र्य-संग्राम के सेनानी हैं। मुख्य कथा के विकास के अनुसार इनकी कथायें बीच-बीच में आती हैं। रावसाहब की अकर्मण्यता और विलास का प्रसंग मुख्य कथा को निखार कर चरम सीमा पर ले आता है।

(ब) झाँसी के पूर्व इतिहास, मनू (लक्ष्मीबाई) की बाल्यावस्था, झाँसी में लक्ष्मीबाई, झाँसी के पतन और लक्ष्मीबाई के प्राणान्त से सम्बन्धित सम्पूर्ण घटनाओं को इस उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है। लेखक का ध्यान सब ओर से सिमट कर केवल लक्ष्मीबाई में केन्द्रित है। अन्य कथायें भी घूम-फिर कर लक्ष्मीबाई के व्यक्तित्व की ओर ही इङ्गित करती हैं। अतः उपन्यास में जीवनी, और जीवनी में इतिहास उभर कर छा गया है। उपन्यास, इतिहास को सजीव बनाने के लिए अपनाया गया। उपन्यास इतिहास का रंग देकर नहीं सजाया गया है वरन् इतिहास को उपन्यास का रूप देकर संवारा गया है।

उपन्यास के प्रारम्भ में 'प्रस्तावना' शीर्षक से दो परिच्छेदों के ८ पृष्ठों में झाँसी-राज्य का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। बाजीराव पेशवा प्रथम ने झाँसी-राज्य शिवराव भाऊ को सौंपा था। शिवराव भाऊ के तीन पुत्र थे, कृष्णराव, रघुनाथ राव तथा गंगाधर राव। कृष्ण राव के पश्चात् उसका पुत्र रामचन्द्र राव गद्दी पर बैठा। रामचन्द्र राव की माता सखूबाई स्वयं शासन करना चाहती थी और स्वभाव से अत्यन्त निर्मम थी। उसने राज्यलिप्सा के कारण अपने पुत्र की हत्या का षड्यंत्र रचा। षड्यन्त्र असफल रहा। सखू कैद कर ली गई। आगे चल कर रामचन्द्रराव की असामयिक मृत्यु हो गई। वह निस्संतान था। गद्दी रघुनाथराव को मिली किन्तु उसकी निष्क्रियता के कारण राज्य 'कोर्ट' हो गया। रघुनाथराव भी निस्सन्तान मरा। गद्दी के कई दावेदार हो गये किन्तु कम्पनी सरकार ने गंगाधरराव का पक्ष ग्रहण किया। गंगाधरराव को गद्दी तो मिली परन्तु राज्य पर कुप्रबन्ध और ऋण का इतना बोझ था कि फिर 'कोर्ट' हो गया। शासन का अधिकार गंगाधर को विवाह के बाद ही मिला था। ये सब तथ्य ज्यों के त्यों इतिहास से ग्रहण किये गये हैं।[1]

उपन्यास में चित्रित लक्ष्मीबाई के व्यक्तिगत जीवन की कुछ मार्मिक घट-

---

१. श्री दत्तात्रय बलवंत पारसनीस द्वारा मराठी में रचित, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' के हिंदी अनुवाद के पहले अध्याय में पृष्ठ ६ से १८ तक ,झाँसी का वर्णन' में ये तथ्य विस्तारपूर्वक दिये गए हैं।

नायें इतिहास में उसी रूप में मिलती हैं। लक्ष्मीबाई का बाल्यावस्था का नाम मनू था। मनू ने हाथी पर चढ़ने का हठ किया किन्तु नानासाहब ने उसे न बिठाया। मनू का हठ फिर भी न छूटा, उसके पिता मोरोपंत को क्रोध आ गया। बोले—'क्या तेरे भाग्य में हाथी बदा है ?—क्यों निरर्थक हठ करती है ?' मनू ने चपलता पूर्वक उत्तर दिया, 'हाँ, मेरे भाग्य में एक छोड़ दस हाथी बदे हैं।'

दूसरी घटना है विवाह के समय की। जिस समय भाँवरें पड़ रही थीं और वर, कन्या के दुपट्टों की गाँठ पुरोहित बाँध रहा था, मनू ने कहा—'पुरोहितजी जरा गाँठ खूब मजबूत बांधना।'

गंगाधर राव की मृत्यु के उपरान्त उनका दत्तक पुत्र कम्पनी सरकार ने स्वीकार नहीं किया। झाँसी को अंगरेजी राज्य में मिला लेने का समाचार मेजर एलिस ने लक्ष्मीबाई को सुनाया। लक्ष्मीबाई के मुँह से निकला, 'मैं झाँसी न दूँगी।'

इसी प्रकार गंगाधरराव द्वारा राजेन्द्र बाबू के ताज़ीम न करने पर उसे दंड देने की घटना है।[1]

लक्ष्मीबाई के पिता मोरोपंत बाजीराव द्वितीय के बिठूर में आश्रित थे। मनू बाजीराव के दत्तक पुत्र नाना साहब तथा उसके भाई राव साहब के साथ पली। तात्या दीक्षित के प्रयत्नों के फलस्वरूप उसका विवाह झाँसी के शासक गंगाधरराव से हुआ। गंगाधरराव का स्वभाव बहुत अच्छा न था। गंगाधरराव की मृत्यु के पश्चात् उनका दत्तक पुत्र अंगरेजों द्वारा अस्वीकार कर दिया गया। झाँसी राज्य कम्पनी के अधिकार में चला गया। सन् १८५७ में देश भर में विद्रोह की ज्वाला भड़की, रानी भी उसमें सम्मिलित हो गई। झाँसी का शासन उसने किया। दूल्हाजू नामक व्यक्ति के विश्वासघात के कारण अँगरेज किले में घुस आये। रानी ने राव साहब की सेना में शरण ली। कालपी में सेनायें ठहरीं। राव साहब की निष्क्रियता के कारण कालपी अंगरेजों के हाथ में चली गयी। फिर रानी की सूझ तथा शौर्य के कारण ग्वालियर विद्रोहियों के हाथ आया। यहाँ भी राव साहब की शिथिलता और मूर्खता के कारण मैदान अंगरेजों के हाथ रहा। रानी को भागना पड़ा। अन्त में रानी नाले के पास घोड़े के बिदकने के कारण समाप्त हो गई। उसका शव बाबा गंगादास की कुटी में लाया गया। वहीं चिता बनी और समाधि भी। समस्त घटनायें इतिहास-सम्मत हैं।

---

१. झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई [पारसनीस] देखिए क्रमशः, पृ० ४, ६, २२ तथा ६४

उनको सजीवता प्रदान करने के लिये औपन्यासिक स्पर्श अवश्य दिया गया है किन्तु तथ्य ज्यों के त्यों हैं।[1]

रानी के सरदारों, मोतीबाई-खुदाबख्श; मुन्दर-रघुनाथसिंह तथा जूही-तात्या के बीच लेखक ने झुकाव दिखाया है। पात्र एक काल के हैं। इतिहास में साथ ही कार्य करते दीख पड़ते हैं। लेखक ने इसी से लाभ उठा कर उपन्यास में रोमाँस प्रविष्ट कराया है। ये सम्बन्ध जाति-पाँति की रूढ़ियों पर भी चोट करते हैं। उक्त उपन्यास में नारायण शास्त्री और छोटी मेहतरानी का प्रेम भी प्रदर्शित किया गया है। उन दोनों के बीच प्रेम की आश्चर्यजनक घटना ऐतिहासिक है।

इस विषय में वर्मा जी के वक्तव्य का उल्लेख कर देना उपयुक्त होगा। 'लक्ष्मीबाई में जूही-तात्या की प्रेम कहानी वास्तविक घटना है, मुन्दर-रघुनाथसिंह और मोतीबाई-खुदाबख्श की प्रेमवाली बात मेरी कल्पना है। जूही तात्या की प्रेम कहानी, रही उतनी ही जितनी मैंने बतलाई है। शारीरिक सम्पर्क उन दोनों का कभी नहीं हुआ'[2] झाँसी के किले में मोतीबाई खुदाबख्श की कब्रें मिली हुई हैं। कदाचित उक्त कल्पना की आधार यह कब्र रही हो।

वर्मा जी ने अपने उपन्यास का आधार पारसनीस लिखित 'झांसी की रानी लक्ष्मीबाई' ऐतिहासिक ग्रन्थ को भी अंशतः बनाया है। उन्हें इतिहास के कथन के साथ पाठकों के समक्ष उस वीर नारी का आदर्श रखना था। वह उसे भारतीय स्वातन्त्र्य-संग्राम की अग्रणी के रूप में चित्रित करना चाहते थे। उनकी लक्ष्मीबाई का क्षेत्र झांसी राज्य की संकीर्ण परिधि के कहीं परे सम्पूर्ण भारत था। लक्ष्मीबाई देश के लिये लड़ी। वह स्वयं लड़ी, उसके लड़ने के पीछे स्वराज्य-प्राप्ति की महान् योजना थी।

वर्मा जी द्वारा उपर्युक्त दृष्टिकोण अपनाये जाने के कारण वे पारसनीस से तीन बातों में भिन्न हैं—

१—रानी के सामने देश के स्वराज्य का प्रश्न था। वे अँगरेजों के विरुद्ध योजना के लिये लड़ीं। झांसी-राज्य तो इस दिशा में केवल एक साधारण कारण था।

२—रानी स्वभाव से अबला नहीं थीं। उन्होंने झांसी का राज्य अत्यन्त योग्यता से किया। उनका शासन आदर्श शासन था।

३—रानी ने नारियों की सेना संगठित की थी।

---

१. पारसनीस के ग्रंथ में इन समस्त घटनाओं का ब्यौरा है।

२. वर्मा जी का पत्र, १२-७-५१

पारसनीस ने अपने ग्रन्थ में बराबर इसी बात पर बल दिया है कि रानी को विवश होकर अँगरेजों के विरुद्ध तलवार संभालनी पड़ी। वास्तव में वह झांसी के पूर्व शासकों की भाँति अँग्रेज़ी शासन के प्रति सहृदय थी किन्तु पारस्परिक भ्रम के कारण अँगरेजों ने उसे विद्रोही समझा। विद्रोही घोषित हो जाने पर रानी और करती भी क्या ? उन्होंने रानी द्वारा अँगरेजों को भेजे गये पत्रों को उद्धृत करते हुए लिखा है—'उक्त लेखों से महारानी लक्ष्मीबाई के शुद्ध हृदय का पूरा परिचय मिलता है। यह हम लोगों के दुर्भाग्य की बात है कि उस समय के अँग्रेज़ अफसरों ने बिना कुछ समझे बूझे और बिना कुछ पूछताछ किये ही एक हिन्दू राजघराने की अबला स्त्री को जो सदा ब्रिटिश सरकार से स्नेह रखने का यत्न करती थी, दुष्ट बागियों और हत्यारों की पंक्ति में बैठा दिया। इसी मिथ्या भ्रम के वश में होकर अँगरेजों ने निरपराधिनी लक्ष्मीबाई के साथ घोर संग्राम करने का निश्चय किया। जब इस बात पर हम ध्यान देते हैं कि महारानी लक्ष्मीबाई अँगरेजों के विरुद्ध नहीं थीं, किन्तु वे अँगरेजों की आज्ञा से और अँगरेजों ही के लिए झाँसी के राज्य का प्रबन्ध कर रही थीं, और इस बात की सूचना भी वे समय-समय पर पत्र लिखवा कर सरकार को दिया करती थीं तो भी उनकी सदिच्छा फलीभूत न हुई। उनसे शुद्ध हृदय और सरल व्यवहार का परिचय अँगरेज सरकार को न मिला। उन्हें अपने निष्कपट श्रम का उचित फल प्राप्त न हुआ, और अन्त में प्रबल अँगरेजों से युद्ध करना पड़ा। तब यही कहा जा सकता है कि दैव की गति विलक्षण है—भावी बलवान है।'[1]

पारसनीस ने अपनी पुस्तक अँगरेजों के शासनकाल में लिखा। उस समय के लेखकों में प्रायः प्रवृत्ति रही है कि वे शासक के खुल्लमखुल्ला विरोध से तनिक बच निकल कर अपनी बात कहते थे। ब्रिटिश सरकार से रानी के स्नेह रखने की कल्पना उक्त प्रवृत्ति की ही देन जान पड़ती है। जहाँ तक रानी द्वारा अँगरेजों को भेजे गये खरीतों का प्रश्न है, जिनमें रानी ने अपने सद्व्यवहार, मित्रभाव और शुद्ध हृदय का परिचय दिया था, वे सब कूटनीति मात्र भी हो सकते हैं। वर्मा जी ने उक्त तथ्य की इसी प्रकार व्याख्या की है। जिस समय झाँसी पर नत्थे खाँ नामक सरदार चढ़ आया रानी के वयोवृद्ध मन्त्री नाना भोपटकर ने यही कूटनीतिक सलाह दी कि उन सब को ऊपर ऊपर से अँगरेजों के प्रति स्नेही बने रहना चाहिये।

—'भोपटकर ने कहा, 'हमारे यहाँ अँगरेज झंडा, यूनियन जैक रक्खा हुआ है। अपने झंडे के साथ हम उसको भी खड़ा करेंगे। किले में जो अँगरेज़

पारसनीस...पृ० ६६

बन्द हो गये थे उनमें से मार्टिन नाम का व्यक्ति, फौज वालों के हाथ से भाग निकला था। वह आगरा में है। एक चिट्ठी में उसको इस प्रकार की लिखूंगा कि हम लोग नत्थे खाँ के विरुद्ध अँगरेजों की ओर से लड़ रहे हैं। मेरी राजनीति को इस चिट्ठी से सहायता मिलेगी।'

रानी बोलीं, 'परन्तु यह राजनीति चलेगी कितने दिनों ? हमको अन्त में, सारे देश में स्वराज्य स्थापित करना है। यूनियन जैक झण्डे के नीचे स्वराज्य की स्थापना असम्भव है। चिट्ठी चाहे जिसको मनमानी लिखो, परन्तु झण्डा तो चिट्ठी से बहुत बड़ा होता है।'

'सरकार', भोपटकर ने कहा, 'चिट्ठी और झण्डे का सामंजस्य है। हम कुछ समय तक अपने आदर्शों को ढका मुंदा रखना चाहते हैं। यदि स्वराज्य का प्रयत्न देश भर में ३१ मई को एक साथ ही हो गया होता, तो राजनीति की दिशा कुछ और होती, परन्तु अब उसमें परिवर्तन आवश्यक है।'

लालाभाऊ बख्शी बोला, 'सरकार देखने के दांत कुछ और खाने के कुछ और। भोपटकर साहब का यही तात्पर्य है।[1]

अंगरेजों के सैनिक विभाग की खोज के गोपनीय निष्कर्ष वर्मा जी की धारणा एवं व्याख्या की पुष्टि करते हैं। उन लोगों का विश्लेषण है कि रानी अँगरेजी शासन की निष्ठुरता से क्षुब्ध थी। उसे अपनी पेंशन से पति का ऋण चुकाना पड़ा था। दत्तक पुत्र की शासन द्वारा अस्वीकृति, झांसी में पशुवध (गोवध) की आज्ञा तथा लक्ष्मी के मन्दिर को दान में लगे दो गांवों पर पुनः लगान जारी करने, आदि घटनाओं ने उसे अंगरेजों के शत्रुत्व में परिणत कर दिया था।[2] रानी ने जबलपुर के कमिश्नर स्कीन को जो मैत्रीपूर्ण पत्र लिखे थे उन्हें अँगरेज इतिहासकार धोखाधड़ी मानते हैं। उनका मत है रानी में मरहठा प्रवृत्ति थी। वह अंग्रेजों का तख्ता पलटने के षड्यंत्र में संलग्न थी।[3] भारतीय इतिहासकार प्रोफे० लूनिया सन् १८५७ के विद्रोह को साधारण उथल-पुथल नहीं, महान् राष्ट्रीय जागरण मानते हैं। उनके मत में इस विद्रोह का लक्ष्य था अँगरेजों का देश से निष्कासन और राष्ट्रीय स्वतंत्रता की प्राप्ति।[4]

---

१. झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई'''पृ० ३०४, ३०५

२. दि रिवोल्ट आफ़ सैंट्रल इंडिया [१८५७-१८५९] [फ़ार आफ़ीशल यूस ओन्ली] कम्पाइल्ड इन दि इंटेलीजेंस ब्रांच, डिवीजन आफ़ दि चीफ़ आफ़ स्टाफ़, आर्मी हैड क्वार्टर्स [इंडिया] शिम्ला गवर्नमेंट।

३. केज हिस्ट्री आफ़ सीपोय वार इन इंडिया, वाल्यूम थर्ड'''पृ० ३६४

४. एवोल्यूशन आफ इंडियन कल्चर'''ले० प्रोफे० बी० एन० लूनिया [अध्यक्ष इतिहास विभाग, होल्कर कालिज, इन्दौर]'''पृ० ५५८

रानी लक्ष्मीबाई भी इस स्वातंत्र्य युद्ध के सेनानियों में एक थी।

वर्मा जी ने इन चिट्ठियों को राजनीति में सहायक मात्र माना है। साथ ही रानी की स्वराज्य-स्थापना की बात भी कह दी है। उन्होंने उपन्यास की भूमिका में अपनी स्वराज्यवाली व्याख्या का आधार स्पष्ट किया है।

—'सवाल था रानी स्वराज्य के लिए लड़ीं, या अँगरेजों की ओर से झाँसी का शासन करते-करते उनको जनरल रोज़ से विवश होकर लड़ना पड़ा।

'रानी ने बानपूर के राजा मर्दनसिंह को जो चिट्ठी युद्ध में सहायता करने के लिये लिखी थी उसमें 'स्वराज्य' का शब्द आया था। यह चिट्ठी इस प्रश्न का सदा के लिए स्पष्ट उत्तर देती है।···

···'कलक्टरी में कुछ सामग्री मिली। १८५८ में लोगों के बयान लिये गये थे। इनको पढ़कर मैं अपने विश्वास में और दृढ़ हुआ—रानी 'स्वराज्य' के लिये लड़ी थी।'—

झांसी में स्थित अंगरेजों के अधीन विद्रोही सैनिकों ने किले के अँगरेजों का जो नृशंसतापूर्ण वध किया उसमें रानी का असहयोग ही नहीं वरन् विरोध भी था। इस तथ्य को पारसनीस तथा वर्मा जी दोनों ने स्वीकार किया है।

पारसनीस ने रानी को अनेक स्थलों पर 'अबला' कहा है। उनका रानी को बारम्बार 'अबला' कहकर पुकारना उनके पारम्परिक संस्कारों का द्योतक जान पड़ता है। नारी को अबला कहा जाता है। रानी को अबला कहकर उसके प्रति विशेष सहानुभूति उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया है। स्वयं पारसनीस ने अपने ग्रन्थ में रानी के जिस बल, शौर्य तथा सैन्य-चातुर्य का उल्लेख किया है वह तात्या टोपे जैसे विकट योद्धाओं से टक्कर लेता हुआ है। किन्तु उसके बाल-हृदय में अंकुरित संस्कारों का दिग्दर्शन न कराने के कारण वह चित्र मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अधूरा सा लगता है। रानी विद्रोह से पूर्व अबला रही। केवल अश्रु टपकाने वाली, पर्दे में ढकी रहने वाली निरीह नारी। फिर विद्रोह में वह एकाएक विकट सैनिक सरदार के रूप में प्रकट हो गई। उसके युद्ध कौशल से विपक्षी थर्रा उठे। मरते समय भी वह अपने घातक को तलवार के घाट उतार गयी। ये दो विरोधी पक्ष रानी का चित्र स्पष्ट करने में सहायता प्रदान नहीं करते। वर्मा जी ने मनूबाई का चित्र रेखांकित करके लक्ष्मीबाई के महान् व्यक्तित्व की स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक पीठिका प्रस्तुत की है। उनकी लक्ष्मीबाई पुरुषों के वातावरण में पली है। वीर पुरुषों की गौरव गाथायें उसके चित्त में व्याप्त हैं। अपने पिता मोरोपंत से कहती है—'मैं डरपोक कभी नहीं हो सकती। आप कहा करते हैं—मनू तू ताराबाई बनना, जीजाबाई और सीता होना। यह सब

डरपोक थीं।[1] बाल्यावस्था में ऐसे दृढ़ संस्कार लेकर उगने वाली वीर नारी ही जीवन के कटुतम क्षणों में होती हुई प्राण छोड़ते समय टूटे-फूटे स्वर में कह सकेगी।—

'द···ह···ति···नै···यं···पावक:'

पारसनीस लिखते हैं—'इस समय लक्ष्मीबाई के पास राज्य सम्बन्धी विषयों पर विचार करने वाले राजनीति-निपुण और राज्य का प्रबन्ध करने वाले कुशल कार्यकर्त्ता लोगों का अभाव था। उनके सब प्राचीन सेवक झाँसी से चले गये थे। यद्यपि लक्ष्मीबाई स्वयं बड़ी चतुर और बुद्धिमती थीं तथापि वे राजमहलों में रहने वाली एक अबला ही थीं। लक्ष्मीबाई के मन में यही विश्वास था कि मेरी इच्छा और आज्ञा के अनुसार दरबार के लोग अंगरेज सरकार को पत्र आदि भेजते होंगे। परन्तु जब हम उस समय के दरबारियों की स्थिति का विचार करते हैं तब यही कहना पड़ता है कि लक्ष्मीबाई की इच्छा और आज्ञानुसार कोई कार्यवाही ठीक-ठीक न होती थी।'[2]

ग्वालियर के किले को हथियाने की सूझ रखने वाली तथा उसे विजय करने वालों में अग्रणी लक्ष्मीबाई का निरीह हिन्दू विधवा जैसा चित्रण कर पारसनीस ने कदाचित् अँगरेजों को रानी की सफाई देने का प्रयत्न किया है। वर्मा जी ने इस प्रश्न को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा है। दरबारियों के हाथ में कठपुतली बनी रहने वाली रानी इतने दिनों झांसी का शासन तथा युद्ध का संचालन नहीं कर सकती थी। उन्होंने उसे सफल शासक और सेनानी के रूप में चित्रित किया है।

रानी के विपक्षी, अँगरेज़ स्वयं उसके पौरुष का लोहा मानते हैं। उनका दृढ़ विश्वास है कि रानी विद्रोह के लिये तैयार थी और अपनी योजना को कार्यान्वित करने के पूर्णतया योग्य थी।[3]

वर्मा जी ने उपन्यास में दिखाया है कि रानी ने नारी-सेना संगठित की थी। स्त्रियाँ तलवार भांजने और जासूसी से लेकर तोप चलाने तक का कार्य करती थीं। इस विषय में पारसनीस मौन हैं। एक-आध स्थल पर अवश्य

१. झाँसी की रानी···पृ० १९

२. पारसनीस···पृ० ९६ तथा ९७

३. '···दि रानी वाज दस रेडी टु टेक एनी अपौरच्यूनिटी ऑफ ग्रेटी-फाइंग हर रेवेंज एण्ड बीइंग, लाइक मैनी मरहठा वीमैन ऑफ रैंक, पजेज्ड आफ ए मेसक्यूलिन स्पिरिट, शी वाज वैल फ़िटेड टु कैरी आउट हर डिजाइंस एण्ड वाज़ राइप फार रिबेलियन ह्वेन दि आउटब्रेक अकर्ड इन १८५७।

—दि रिवोल्ट इन सेंट्रल इंडिया···पृ० १६

इसके सूत्र दृष्टिगोचर होते हैं। वह ह्यू रोज़ का हवाला देते हुए लिखते हैं—'मोरचा बांधने और बारूद गोला ढोने का काम स्त्रियाँ करती थीं।[1] झाँसी छोड़ने के उपरान्त रानी के साथ उनकी दासियाँ सैनिक-वेश में थीं, उसका भी उल्लेख पारसनीस ने किया है।

अंगरेज़ों ने मुख्य गोलन्दाज़ (गुलाम गौस खाँ) को श्रेष्ठ तोपची माना है। उसकी अध्यक्षता में गोलन्दाज़ों की दो टुकड़ियाँ थीं। कुछ तोपों से मुकाबले की बौछार हो रही थी। दूरबीन से उन्होंने स्त्रियों को तोपों पर कार्य करते और हथियारों को ले जाते देखा है।[2]

कचनार

१—'कचनार' की मुख्य कथा है राजा दलीपसिंह की स्मृति के लोप, उसकी पुनर्प्राप्ति तथा कचनार के दलीपसिंह के प्रति प्रेम की। धामोनी के युवा राव दलीपसिंह स्वभाव से सहजकोपी है। दलीपसिंह के अस्वस्थ होने के कारण उसका सम्बन्ध में लघु भ्राता मानसिंह उसकी ओर से कलावती को विवाह कर लाता है। दहेज में वधू के साथ दो कुमारी दासियाँ भी आती हैं, कचनार और ललिता। कलावती प्रारम्भ से मानसिंह के प्रति आकृष्ट हो जाती है। दलीपसिंह और कलावती में पूर्ण स्नेह-सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता। दलीपसिंह गम्भीर स्वभाव वाली सुन्दरी कचनार पर मोहित हो जाता है। उसे अपनी वासना का लक्ष्य बनाना चाहता है किन्तु कचनार तभी समर्पण करेगी जब दलीपसिंह उसे पत्नी के रूप में ग्रहण कर लेगा। धामोनी पर सागर की सेना का आक्रमण होता है। दलीपसिंह उन्हें परास्त कर लौटते समय घोड़े से गिर मस्तिष्क में घातक चोट खाने के कारण स्मरणशक्ति खो बैठता है। उसकी चिकित्सा होती है। कचनार अत्यन्त मनोयोग से उसकी सेवा करती रहती है किन्तु मानसिंह द्वारा अत्यन्त उष्ण औषधि पाने के कारण दलीपसिंह को तीव्र ज्वर आता है और नाड़ी की गति लुप्त हो जाती है।

श्मशान में दलीपसिंह के दाह के आयोजन के समय घोर वर्षा होने के कारण मानसिंह आदि धामोनी के निवासीगण शव को अर्थी से बँधा छोड़ वृक्षों की छाया में जा आश्रय लेते हैं। उधर से ऊँट पर सवार महन्त अचलपुरी अपने सहायक मंटोलेपुरी के साथ निकलता है। शीतल वायु तथा जल से दलीपसिंह की उष्णता शान्त हो गयी थी, उसके शरीर में

१. पारसनीस…पृष्ठ १२७

२. दि रिवोल्ट इन सेंट्रल इंडिया…पृ० १०८

चेतना आती है । महन्त दलीपसिंह को अर्थी से खोल कर अपने डेरे पर ले जाता है । वहां स्वस्थ होने पर स्मरणशक्ति खो बैठने के कारण दलीपसिंह बालक जैसा व्यवहार करता है । महन्त उसकी उपस्थिति पूर्णतया गुप्त रखकर उसे स्मरणशक्ति की पुनर्प्राप्ति कराने का प्रयत्न करता है । उसका नाम रखता है सुमन्तपुरी । मानसिंह कलावती से पुनर्विवाह कर लेता है । कचनार मानसिंह के चंगुल से निकल महन्त अचलपुरी के डेरे पर आश्रय लेती है । उसका नामकरण होता है कंचनपुरी ।

कंचनपुरी शरीर तथा मन को नियन्त्रित कर कठोर योग-साधना करती है । मंटोलेपुरी तथा सुमन्तपुरी के साथ अचलपुरी के सत्संग में भाग लेती है । सुमन्तपुरी अपनी भोलीभाली बेसिर-पैर की बातों से कंचनपुरी का स्नेह दया, आश्चर्य तथा उलझन संचित करता है । महन्त, सुमन्तपुरी के इतिहास का परिचय कंचनपुरी को नहीं देता । महन्त दलबल सहित धामोनी पर आक्रमण कर उसे अधिकार में ले लेता है । इस युद्ध में दलीपसिंह फिर सिर के बल गिर कर पहले स्थल पर चोट खाने के कारण खोई स्मरण-शक्ति पुनः प्राप्त कर लेता है । वह मानसिंह तथा कलावती को क्षमा कर उन्हें जीवन-यापन के हेतु जागीर देकर अन्यत्र भेज देता है । अचलपुरी मंटोलेपुरी को महन्त की गद्दी सौंप कर स्वयं संन्यास ले लेता है । दलीपसिंह धामोनी का राज्यकार्य सम्भालता है और कचनार से विधिवत् विवाह कर लेता है ।

२—दूसरी कथा है कलावती तथा मानसिंह के प्रेम और विवाह की । मानसिंह दलीपसिंह की ओर से कलावती को विवाह कर लाता है । दोनों के हृदयों में परस्पर आकर्षण जड़ें जमा लेता है । 'सुहागरात' के अवसर पर भी कलावती तथा दलीपसिंह में पटती नहीं । दलीपसिंह के आहत होने पर मानसिंह उसे घातक औषधि से समाप्त कर स्वयं धामोनी का राज्य भार सम्भाल लेता है । वह कलावती से विवाह कर लेता है । ललिता भी उस के चंगुल में आ जाती है । कचनार पर उसकी गृद्ध-दृष्टि जाती है । कचनार गुसाइयों के अखाड़े में शरण ले अपनी रक्षा करती है । धामोनीपतन के पश्चात् कलावती प्राण देकर भी मानसिंह से सम्बन्धनिर्वाह का निश्चय प्रकट करती है । दलीपसिंह से क्षमादान प्राप्त कर दोनों धामोनी छोड़कर अन्यत्र निवास करने के लिये चले जाते हैं ।

३—तीसरी कथा है डरू द्वारा सोनेसाह के वध तथा उसकी उद्दंडता की । डरू और उसका अनुज बैजनाथ, दलीपसिंह की वरात में मानसिंह के साथ जाते हैं । दलीपसिंह के काका सोनेसाह से उनकी नहीं पटती । डरू मानसिंह का अभिन्न मित्र है । लगान देने के विषय में उग्र विवाद हो जाने पर डरू सोने-

साह का वध कर धामोनी छोड़ भाग जाता है। दलीपसिंह क्रुद्ध हो बैजनाथ का वध कर डरू की चल-अचल सम्पत्ति राज्याधिकार में ले लेता है फिर कचनार के निष्पक्ष विचारों से प्रभावित हो वह सम्पत्ति को राज्याधिकार से मुक्त कर देता है। डरू सागर की सेना में सूबेदार हो जाता है और कभी कभी गुप्त रूप से पत्नी मन्ना से मिलने धामोनी आता है। डरू की अनुपस्थिति में मानसिंह मन्ना पर डोरे डालने का प्रयास करता है किन्तु असफल रहता है। डरू अभिमानवश अचलपुरी के अखाड़े में सुमन्तपुरी से लक्ष्य-वेध में होड़ करता है और पराजित होता है। सागर की लूट में भाग लेकर वह धामोनी पर आक्रमण करता है और बन्दी बनाया जाता है। डरू के असभ्यतापूर्ण व्यवहार से क्रुद्ध हो महन्त अचलपुरी उसे प्राणदण्ड देता है किन्तु दलीपसिंह उसकी रक्षा कर बैजनाथ के वध का प्रायश्चित्त करता है।

४—चौथी कथा है महन्त अलचपुरी और उसके गुसाँई-समाज की। महन्त, दलीपसिंह की श्मशान में रक्षा करता है और उसे तथा कचनार को अपने अखाड़े में आश्रय देता है। वह कंचनपुरी, सुमन्तपुरी और मंटोलेपुरी से समय-समय पर दार्शनिक चर्चा करता रहता है। महन्त अचलपुरी धामोनी पर विजय प्राप्त कर स्वयं संन्यास ले दलीपसिंह को राज्य सौंप उसका कचनार से विवाह करा देता है।

५—पाँचवीं कथा है सागर राज्य और पिंडारियों की शत्रुता की। सागर की सेना गुसाँइयों सहित पिंडारियों पर आक्रमण करती है किन्तु वर्षा के कारण उनका कुछ बिगाड़ नहीं पाती। बाद में अमीर खाँ, पिंडारियों का सरदार, डरू से सागर पर आक्रमण करने की संधि करता है। पिंडारी सागर को लूट कर उसमें आग लगा देते हैं। डरू उन्हें सागर को लूटने में सहायता करता है। पिंडारी डरू के धामोनी पर आक्रमण करने में सहायक बनते हैं।

× × ×

(अ) दलीपसिंह का विवाह होता है कलावती से किन्तु वह आकृष्ट होता है कचनार के प्रति। कचनार को अपनी वासना का लक्ष्य बनाना चाहता है। क्रूर स्वभाव का है, बैजनाथ का निर्ममता से वध करता है। चोट खाने तथा औषधि में विषपान के फलस्वरूप मृतप्राय: दशा में गुसाँइयों के हाथ पड़ता है। स्मरण-शक्ति खो बैठने के कारण उसकी प्रवृत्ति का विकास नये सिरे से प्रारंभ होता है। अचलपुरी के उदार और कचनार के स्नेहसिक्त व्यवहार का उस पर विशेष प्रभाव पड़ता है। अन्ततोगत्वा स्मृति की पुन: प्राप्ति करने पर

दलीपसिंह में असाधारण परिवर्तन आता है। उसकी क्रूरता और विषय-लोलुपता उससे विदा ले जाती है। वह डरू को क्षमा कर और कचनार को अर्धांगिनी के रूप में ग्रहण कर अपनी उदार तथा स्नेहमयी प्रकृति का परिचय देता है। दलीपसिंह के घटनाचक्र में पड़ कर कचनार से प्रभावित हो सुधरने की, 'कचनार' की मुख्य कथा है।

कलावती तथा मानसिंह के प्रेम और विवाह की कथा प्रासंगिक है। दलीपसिंह कलावती से विवाहित होने पर भी कचनार से प्रेम करता है। जटिल प्रेम-त्रिकोण का निवारण करने के लिए कलावती और मानसिंह के मध्य प्रेम पनपाया गया है। दलीपसिंह और कलावती के स्वभाव परस्पर मेल नहीं खाते। मानसिंह दलीपसिंह की मृत्यु और उसके गुसाँइयों के हाथ पड़ जाने का कारण बनता है। कचनार के धामोनी छोड़ कर गुसाँइयों के अखाड़े में शरण लेने का कारण भी मानसिंह है। यहाँ तक यह प्रासंगिक कथा मुख्य कथा को पूर्णतया प्रभावित करती है। इसके अतिरिक्त, पहले परिच्छेद से लेकर लगभग ३५ वें परिच्छेद तक उपन्यास की कथा का मुख्य भाग, मानसिंह और कलावती की कथा ही घेरती है। या यों कहिये यह प्रासंगिक कथा इन परिच्छेदों तक मुख्य कथा जैसी जान पड़ती है। फिर ४६ वें परिच्छेद को छोड़कर ५३ वें परिच्छेद तक उपन्यास से अदृश्य रहती है दलीपसिंह से क्षमादान मिलने पर मानसिंह कलावती के साथ अन्यत्र चला जाता है। ५३, ५४ तथा ७२ वें परिच्छेद में आया हुआ मानसिंह-कलावती का प्रसंग उनके परिणाम की सूचना मात्र देता है।

महन्त अचलपुरी और उसके गुसाँई-समाज की कथा भी प्रासंगिक है। यह ३१ वें परिच्छेद के बाद ७२ वें परिच्छेद तक कचनार और दलीपसिंह के साथ बँध कर चलती है।

डरू और उसकी पत्नी मन्ना, दलीपसिंह और मानसिंह के स्वभाव की कसौटी बन कर उपन्यास में आते हैं। मानसिंह मन्ना पर कुदृष्टि रखता है और उसे अपने चंगुल में लाने का कई बार प्रयास करता है। डरू दलीपसिंह की क्रूरता के कारण धामोनी से भागता है। गुसाँइयों के अखाड़े में दलीपसिंह से उसकी लक्ष्य-बेध की क्रिया में होड़ होती है। दलीपसिंह कचनार की प्रेरणा और प्रोत्साहन के फलस्वरूप विजयी होता है। यहाँ दलीपसिंह पर कचनार के सद्प्रभाव को प्रकट करने में डरू सहायक है। महन्त धामोनी-विजय के पश्चात् डरू से क्रुद्ध हो उसको प्राण-दण्ड देने पर कटिबद्ध हो जाता है किन्तु स्वभाव में पूर्णतया परिवर्तित उदार दलीपसिंह क्रोधान्ध महन्त से उसकी रक्षा करता है। यहाँ डरू महन्त के क्रोधजन्य अविवेक और दलीपसिंह के औदार्य का परिचायक है।

पाँचवाँ है सागर-राज्य और पिंडारियों की शत्रुता का प्रसंग गुसाँइयों तथा डरू की कथा में प्रकरी का कार्य करता है। सागर की सेना पिंडारियों पर आक्रमण करती है किन्तु वर्षा के कारण विजय प्राप्त नहीं पर पाती। बाद में पिंडारियों का सरदार सागर का विध्वंस कर डरू की सहायता से वहाँ लूट-पाट करता है, डरू को धामोनी में गुसाँइयों पर आक्रमण करने में भी सहायता देता है। यह कथा ४२, ४६ तथा ६५, केवल इन तीन परिच्छेदों में आती है। इसका मुख्य कथा से विशेष सम्बन्ध नहीं है। जान पड़ता है तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति तथा कुख्यात पिंडारियों का परिचय देने के लिए इस प्रसंग को उपन्यास में ला रखा गया है।

(ब) 'कचनार' की घटनायें टीपू सुल्तान की समकालीन हैं। इनका काल सन् १७६० के लगभग है। धामोनी के आसपास परम्परा में प्रचलित है कि उस काल में एक गोंड सरदार का वंशज धामोनी का राव था। तत्कालीन अस्थिर राजनीति से अन्य गढ़पतियों की भाँति उसने भी लाभ उठाया था। वह नाम भर के लिये नागपुर के भोंसले के अधीन था। भोंसले द्वारा प्रदत्त रावसाहबी से उसे सन्तोष था किन्तु व्यवहार में वह स्वतन्त्र गढ़ीबन्दों जैसा ही था। अपने झंझटों में उलझा हुआ पड़ोसी सागर-राज्य भी उसका कुछ बना-बिगाड़ नहीं पाता था। वैसे, राव के सागर वालों से प्रायः युद्ध हुआ करते थे। राव के विषय में यह भी प्रसिद्ध है कि उसकी अपनी एक दासी पर विशेष अनुरक्ति थी।

उपन्यास में धामोनी की राजनीतिक परिस्थितियाँ इसी प्रकार की हैं। राव के दासी के प्रति प्रेम के सूत्र को ही मुख्य कथा का आधार कहा जा सकता है। उपन्यास में राव को नाम दिया गया है दलीपसिंह। दलीपसिंह विवाह के अवसर पर दहेज में मिली दासी कचनार के प्रति आकृष्ट हो उससे प्रेम करने लगता है। प्रारम्भ में निष्ठुर दलीप की कल्पना की गयी है। दलीप के कठोर स्वभाव के परिष्कार तथा उसके कचनार के प्रति प्रेम के क्रमिक विकास का चित्रण प्रस्तुत करने में दलीप की स्मृति के लोप और उसकी पुनर्प्राप्ति की कल्पना की गयी है। राव दासी पर अनुरक्त था, उसका अपनी विवाहिता पत्नी के प्रति उदासीन होना अनुमानित किया गया है। उपन्यास में, दलीपसिंह की विवाहिता पत्नी कलावती से नहीं बनती। कलावती के चरित्र को रोचक मोड़ देने के लिये मानसिंह तथा उससे सम्बन्धित घटनाओं की कल्पना की गयी है।

डरू की घटना जो उसके भाई के वध से सम्बन्ध रखती है धामोनी की नहीं कुंडार के समीप ओरछा-राज्य में स्थित उबोरा ग्राम की है। उससे

सम्बन्धित अन्य घटनाएँ विभिन्न व्यक्तियों के चरित्रों से ग्रहण की गयी हैं। इस प्रकार डरू का दलीपसिंह की घटनाओं से कोई ऐतिहासिक सम्बन्ध नहीं है।

उस युग की परिस्थितियों की परिचायक दो कथाएँ उपन्यास में आयी हैं—१—महन्त अचलपुरी और गुसाँई-समाज २—सागर-राज्य से पिंडारियों की शत्रुता। उस काल में गुसाँई सैनिकों के समूह पराक्रम-विकास और धनोपार्जन की लालसा से देश के मध्य भाग में घूमा करते थे। गुसाँई-समाज का महन्त अचलपुरी वर्मा जी की ननसाल, सिधौरा [टीकमगढ़] के एक महन्त का प्रतिविम्ब है। और, पिंडारियों की इतिहास प्रसिद्ध लूटमार और अत्याचार सर्वविदित है ही।

अचल मेरा कोई

कुन्ती नयी रोशनी की युवती है, नारी-स्वतंत्र्य की दावेदार। पति सुधाकर उसे अचल से घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करने से रोकता है। मानिनी कुन्ती आत्म-हत्या कर लेती है और लिखा छोड़ जाती है, 'अचल मेरा कोई—' आगे वह लिख नहीं पाती। यही 'अचल मेरा कोई—' की मुख्य कथा है। नवयुवक मित्र अचल और सुधाकर, जो राजनीतिक आन्दोलन के सम्बन्ध में वन्दी थे, जेल से मुक्त किये जाते हैं। उनसे परिचित युवतियाँ कुन्ती तथा निशा जेल से वाहर उनका स्वागत करती हैं। कुन्ती अचल से संगीत सीखने उसके घर आती है। कुन्ती और अचल में सामीप्य वढ़ता है किंतु दोनों में स्पष्ट रूप से कोई वात नहीं होती। कुन्ती का विवाह सुधाकर से पक्का हो जाता है। कुन्ती के सुधाकर से विवाह पक्का हो जाने के समाचार से अचल अत्यन्त व्याकुल हो उठता है। कुन्ती उसके प्रेम को लक्ष्य कर अचल से ही विवाह करने का निश्चय प्रकट करती है। किन्तु संतुलित बुद्धि और दृढ़ निश्चय वाला अचल सुधाकर और कुन्ती के मध्य में न आने का निश्चय कर स्थिर हो जाता है। कुन्ती अपने भावों को जैसे-तैसे समेट कर लौट जाती है।

कुन्ती और सुधाकर का विवाह हो जाने पर दोनों में प्रेम का तीव्र ज्वार उठता है। सुधाकर कुन्ती पर प्रेम की वर्षा करता है। उसे अपने मित्रों के क्लब में होने वाले नाटक में भाग लेने देने देता है। कुन्ती वन्दूक भी चलाना सीखती है। सुधाकर की एक मात्र बड़ी-बूढ़ी उसकी बूआ को कुन्ती के ये लक्षण और स्वतन्त्रतापूर्वक घूमना-फिरना फूटी आँख नहीं सुहाते। नित्यप्रति बूआ और कुन्ती में कहा-सुनी होने पर घर का वातावरण क्लेशमय हो उठता

है। उधर कुन्ती और सुधाकर के जीवन में संयम के अभाव के फलस्वरूप दोनों की वासना की आँधी थम जाने पर आपस का आकर्षण विदा लेने लगता है। एक दूसरे से ऊब उठते हैं। कुन्ती उस वर्ष बी० ए० की परीक्षा देने का निश्चय कर संगीत सीखने के लिये अचल के पास जाने लगती है। कुन्ती तथा सुधाकर के मध्य दिन-प्रतिदिन खाई बढ़ती जाती है। कुन्ती विधवा निशा से अचल का आग्रहपूर्वक विवाह करा देती है।

कुन्ती के निरन्तर घर से अनुपस्थित रह कर अचल के पास उठने बैठने तथा अपनी बूआ और नौकरानी के तत्सम्बन्धी उलाहनों से ऊब कर सुधाकर कुन्ती का नियन्त्रण करने का निश्चय करता है। वह अनशन कर कुन्ती से भविष्य में कहीं न जाने का प्रण कराता है। कुन्ती और सुधाकर दोनों नारी-स्वातन्त्र्य के प्रारम्भ से दावेदार थे। कुन्ती को यह प्रण स्वाभिमान, चरित्र और अपने नारीत्व पर प्रहार के समान लगता है। अनबन और असन्तोष चरम सीमा पर आ पहुँचते हैं। कुन्ती बन्दूक की गोली से आत्महत्या कर लेती है। पास में उसका लिखा एक कागज था, 'अचल मेरा कोई—' आगे हाथ काँप गया था, केवल एक बिगड़ी हुई लकीर थी।

२—दूसरी कथा है निशा के विवाह, वैधव्य और अचल से पुनर्विवाह की। निशा कुन्ती के साथ अचल और सुधाकर के जेल से मुक्त होने पर उसका स्वागत करने जाती है। सुधाकर तथा अचल, दोनों द्वारा स्वयं से विवाह की अस्वीकृति का समाचार सुन निशा एकान्त में एक आह खींचकर रह जाती है। सोचती है, 'मुझ में ऐसी कौन सी कमी है।' उसका विवाह लखनऊ में लवकुमार से हो जाता है। ससुराल से निशा स्वस्थ और सन्तुष्ट लौटती है। उसका दृष्टिकोण संतुलित है। कुन्ती उससे अपनी दशा की तुलना कर असंतुष्ट होती है।

साम्प्रदायिक दंगों में निशा के पति लवकुमार की हत्या हो जाती है। कुन्ती अचल से आग्रह कर उसका निशा से विवाह करा देती है। दोनों संतुलित वैवाहिक जीवन व्यतीत करते हैं और सन्तुष्ट रहते हैं।

३—तीसरी कथा है ग्रामीण पंचम और गिरधारी की देहाती राजनीति की। दोनों क्रमशः मारपीट तथा चोरी के अभियोग में जेल का दण्ड भोगकर सुधाकर, अचल के साथ मुक्ति पाते हैं। गाँव पहुँच कर अपने विरोधी थोबन माते के नाश का संकल्प कर काँग्रेस-सेवादल में भर्ती हो जाते हैं। दोनों काँग्रेस दल में भर्ती हो जाने पर भी हिंसात्मक साधनों को अपनाने का निश्चय करते हैं। थोबन माते से उनकी प्रायः लाग-डाट रहती है। थोबन की पृष्ठपोषिका सरकार थी। नया थानेदार पंचम-गिरधारी के दल के विरुद्ध सूत्र एकत्र करने

के लिए स्त्री पुरुषों पर अत्याचार करता है। अचल के साथ जाकर कुन्ती वीरतापूर्वक स्त्रियों को स्वयं मुक्त करती है। थानेदार की एक नहीं चलती; पंचम आदि ग्रामीणजन, अन्यायिओं का बलपूर्वक प्रतिरोध करने का निश्चय करते हैं।

× × ×

(अ) मुख्य कथा कुन्ती, सुधाकर और अचल के प्रेम-त्रिकोण से सम्बन्ध रखती है। कुन्ती के प्रति सुधाकर और अचल दोनों आकृष्ट हैं। दूसरी कथा है निशा की। निशा से विवाह की अस्वीकृति अचल और सुधाकर दोनों प्रकट कर देते हैं। उसका विवाह अन्यत्र हो जाता है किन्तु साम्प्रदायिक दंगों में पति की हत्या हो जाने के फलस्वरूप विधवा के रूप में रंगमञ्च पर पुनः प्रकट होती है। कुन्ती उसका अचल से विवाह कराती है। ये पति-पत्नी सन्तुलित वैवाहिक जीवन व्यतीत कर परस्पर सन्तुष्ट रहते हैं।

उपन्यासकार इन दोनों कथाओं द्वारा नई रोशनी के युवक, युवतियों की स्त्री-स्वातन्त्र्य सम्बन्धी अधकचरी धारणा तथा उनके असंयमी वैवाहिक जीवन की सन्तुलित और संयमित वैवाहिक जीवन से तुलना करना चाहता है। इन दोनों उदाहरणों को प्रस्तुत करने के लिए उसे घटनाओं और चरित्रों की तोड़ मोड़ करनी पड़ी है। ऐसी घटनायें निम्नलिखित हैं—

१—अचल का स्वयं प्रेम-त्रिकोण से अकस्मात् पलायन। कुन्ती सुधाकर से अपना विवाह निश्चित होने पर भी अचल के प्रति अपना प्रेम प्रकट करती है किन्तु अचल सुधाकर और कुन्ती के मार्ग से हट जाने की तुरन्त घोषणा करता है। अचल का कुन्ती के प्रति अपने प्रेम को निरन्तर गुप्त रखना तथा क्षण भर में कुन्ती को त्याग देने का निश्चय उसके चरित्र को असाधारण बना देता है। अचल की यह असाधारणता उपन्यासकार की देन है। वह अचल को उसके पैरों पर चलने न देकर उसकी गति को स्वयं नियन्त्रित करता है। अचल के एकाएक निश्चय के कारण कथा में 'अतिनाटकीयता' आ गई है। उपन्यासकार को सुधाकर और कुन्ती का विवाह करा के उनकी वैवाहिक असफलता को सामने लाना था।

२—निशा के पति लवकुमार की साम्प्रदायिक दंगों में हत्या तथा निशा और अचल के परस्पर विवाह की स्वीकृति की घटनायें बलपूर्वक संजोयी गयी हैं। अचल तथा निशा का विवाह करा उनके संयमित और संतुलित वैवाहिक जीवन का प्रदर्शन करने की धुन में घटनाओं के समुचित विकास के प्रति उपन्यासकार आँखें मूँद लेता है। निशा का आदर्श भारतीय नारी के रूप में चित्रण किया गया है किन्तु लवकुमार की हत्या के बाद उसकी अचल से विवाह

करने की तत्परता कथा को अतिनाटकीय और निशा के चरित्र को अस्वाभाविक बना देती है। अचल को भी मानो विधवा निशा से विवाह करा उस जीवन में सन्तुष्ट रहने को विवश किया गया है।

उपन्यास में प्रासंगिक कथा है पंचम और गिरधारी के गाँव में राजनीतिक आन्दोलन की। दोनों अचल तथा सुधाकर के साथ जेल से छूटते हैं। तदोपरान्त गाँव की राजनीतिक सरगर्मी के सम्बन्ध में अचल से निरन्तर सम्पर्क बनाये रखते हैं। अचल का राजनीतिक दृष्टिकोण तथा तत्सम्बन्धी गतिविधि इन दोनों के सम्पर्क में आने के कारण ही व्यक्त रहते हैं। उपन्यासकार इनके माध्यम द्वारा भारतीय ग्रामीण जन-मन की सूझ-बूझ तथा राष्ट्रीय आन्दोलन की दिशा में उसकी कार्य-प्रणाली का चित्रण करना चाहता है। पंचम और गिरधारी कुन्ती तथा अचल के मध्य ५ वें तथा १२ वें परिच्छेद में पहुँच कर उनकी दृढ़ता और गम्भीरता की कसौटी बन जाते हैं। नये थानेदार के अत्याचारों से त्रस्त उन ग्रामीणों की रक्षा में वीरतापूर्वक भाग लेकर कुन्ती को अपने वीरांगना-स्वरूप को प्रकट करने का अवसर मिलता है। इन सब बिन्दुओं पर मुख्य कथा को इस गौण कथा से सम्बद्ध करने का प्रयत्न किया गया है किन्तु यह कथा है बिल्कुल स्वतंत्र।

(ब) मुख्य कथा की घटनाएँ कानपुर में बीती थीं। बात सन् १९४५ तथा १९४८ के मध्य की है। कानपुर के एक रईस काँग्रेसी कार्यकर्त्ता थे। उनकी पत्नी ग्रेजुएट थी, स्त्री-स्वातन्त्र्य की दावेदार। उपन्यास में वह रईस, सुधाकर है और उसकी पत्नी, कुन्ती। कुन्ती कुमारावस्था में एक अध्यापक से शिक्षा पाती थी। उसके प्रति कुछ आकृष्ट भी थी। बाद में अध्यापक ने किसी विधवा से विवाह कर लिया था। सुधाकर को कुन्ती के बेरोक-टोक घूमने पर आपत्ति थी। उसने पत्नी को नियंत्रण में लाने के लिये अनशन का साधन अपनाया। बात बढ़ गयी, स्वाभिमानिनी पत्नी ने आत्महत्या कर ली। अध्यापक और उसकी विधवा पत्नी क्रमशः उपन्यास के अचल और निशा हैं। अचल का व्यक्तित्व कल्पित है। साथ ही निशा के विवाह, वैधव्य आदि की घटनाएँ भी कल्पना के आधार पर खड़ी की गयी हैं।

गिरधारी और पंचम की देहाती राजनीति से सम्बन्धित घटनाओं के मूल में झाँसी जिले में यत्र-तत्र दीख पड़ने वाली हलचलें हैं।

मृगनयनी

१—मृगनयनी की कथा है निन्नी—मृगनयनी—के असाधारण प्रतिभाशील व्यक्तित्व तथा उसके और राजा मानसिंह के सफल वैवाहिक जीवन की। राई

ग्राम में गूजर जाति की निन्नी और उसका भाई अटल हैं। निन्नी प्रकृति की गोद में पली है। प्रकृति उसे जीवन में उत्साह और प्रेरणा देती है। वह प्राकृतिक सौन्दर्य को लेकर अनेक रंगीन कल्पनाओं में खो जाती है। आखेट में वह पारङ्गत है। जंगली सूअर, अरने का आखेट उसके बाँये हाथ का खेल है। उसकी सहेली लाखी गूजर जाति की है। लाखी और अटल में प्रेम है। लाखी और निन्नी साथ आखेट करतीं, लड़तीं-भिड़तीं और स्नेह करती हैं। दोनों के सौन्दर्य और असाधारण पराक्रम की चर्चा दूर-दूर तक फैल जाती है। सुल्तान गयासुद्दीन चार घुड़सवार, इन युवतियों को उठा ले आने के लिये भेजता है। बन में सवारों में मुठभेड़ होने पर वे उनमें से दो घुड़सवारों का संहार कर देती हैं, शेष दो भाग खड़े होते हैं।

राजा मानसिंह सिकन्दर लोदी के ग्वालियर से घेरा उठाने के बाद राज्य के पुनर्गठन के कार्य में जुटा हुआ है। वह राई में आकर आखेट का आयोजन करता है। आखेट में निन्नी की वीरता तथा उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो उससे विवाह कर लेता है। निन्नी—मृगनयनी—को ग्वालियर पहुँच कर ज्ञात होता है कि मानसिंह की पहली आठ पत्नियाँ और हैं। वह अपना स्थान मानसिंह के हृदय में अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए नियम-संयम पर विशेष बल देती है। गायक बैजू बावरा से संगीत सीखती है। मानसिंह की सर्व-प्रथम पत्नी सुमनमोहनी मृगनयनी से ईर्ष्या करती है। दोनों में परस्पर नोंक-झोंक चलती है। अपने जाति-विरुद्ध प्रेम के कारण समाज के कोपभाजन बन अटल और लाखी अनेक विपत्तियाँ उठाते हुए ग्वालियर आ पहुँचते हैं। मृग-नयनी की प्रेरणा से उनका विवाह सम्पन्न हो जाता है।

गूजरी महल का निर्माण-कार्य सम्पन्न होता है। होली की रङ्ग पंचमी को गृह-प्रवेश के अवसर पर बाहर होली के हुल्लड़ में सिपाहियों के वीभत्स रूप को देख मृगनयनी मानसिंह से उन्हें सर्वप्रथम शस्त्र-विद्या में पारङ्गत बनाने का आग्रह करती है। उसका मत है, ऐसे असंस्कृत जनों को पहले कर्तव्य का पूर्ण ज्ञान कराने पर ही उनसे कलाप्रेमी होने की आशा की जा सकती है। सिकन्दर लोदी ग्वालियर पर आक्रमण करता है किन्तु विफल मनोरथ रहता है। मृगनयनी मानसिंह को देश-रक्षा की भरसक तैयारी की प्रेरणा देती है।

मृगनयनी के दो पुत्र थे राजे और बाले। सुमनमोहनी का पुत्र था विक्रमा-दित्य। मृगनयनी विक्रमादित्य को युवराज बनाकर, उस ज्येष्ठ पुत्र को राज्या-धिकार दे औचित्य बरतती है। वह एक चित्र बनाकर मानसिंह को दिखाती है।

प्रतिरोध के कारण उसे लौटना पड़ता है। राजधानी माँडू पहुँच कर वह अपने सलाहकार ख्वाजा मटरू के कोड़े लगवा कर उस पर खीज उतारता है। अपमानित मटरू नसीरुद्दीन के साथ षड्यन्त्र कर गयासुद्दीन को विष दे उसकी हत्या करने में सफल होता है।

४—चौथी कथा है गयासुद्दीन के घोर कामुक पुत्र नसीरुद्दीन की। नसीर को युवावस्था में मुल्लाओं के संरक्षण एवं घोर नियन्त्रण में रखा जाता है। स्त्री-सम्पर्क के लिए तरसते-तरसते उसकी काम-वासना अत्यन्त प्रचण्ड रूप धारण कर लेती है। वह सुरा और कामिनी के लिये अत्यन्त लालायित रहता है। अनेक प्रयत्नों के फलस्वरूप नासिर एक खबासिन द्वारा गयासुद्दीन को विष देकर उसकी हत्या करने में सफल होता है और वह मालवा की राजगद्दी पर आसीन हो जाता है। अब उसकी वासना सम्बन्धी मस्तिष्क की विकृति उग्र रूप में प्रकट होती है। वह अपने 'हरम' में पूरी पन्द्रह हजार स्त्रियों को एकत्र करने का संकल्प पूर्ण करता है।

एक बार नसीर के माँडू की झील में स्त्रियों के साथ जल-केलि करते समय कुछ स्त्रियाँ जल में डूबने लगती हैं। स्त्रियों की पुकार पर सेवक कनात चीरकर अन्दर आ उनकी रक्षा करते हैं। नसीर सेवकों को बिना आज्ञा कनात में प्रवेश करने के अपराध में मृत्यु-दण्ड देता है। कालियादह की झील में एक अन्य अवसर पर स्त्रियों के साथ जल-क्रीड़ा करता हुआ नसीर स्वयं जल में डूबकर मर जाता है। पुकारने पर भी बाहर खड़े सेवक प्राण-दण्ड के भय से सहायता के लिये नहीं पहुँचते।

५—पाँचवीं कथा है नटवर्ग के नायक पोटा, नायकिन और पिल्ली के षड्यंत्रों की। ख्वाजा मटरू द्वारा प्रलोभन मिलने पर नटवर्ग निन्नी तथा लाखी को येन-केन-प्रकारेण मालवा ले आने के लिये राई गाँव में जा डेरा डालता हैं। वे लोग दोनों युवतियों को मधुर बातों, नटकला के अनोखे प्रदर्शन तथा गहनों, वस्त्रों से आकृष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। उनके संकेत पर मालवा से चार घुड़सवार निन्नी और लाखी को बलपूर्वक ले जाने के लिए आते हैं। लाखी तथा अटल के गाँव-पंचायत द्वारा बहिष्कृत हो जाने पर नट उन्हें अपने साथ मगरोनी तथा नरवर ले जाते हैं। नटिनी पिल्ली लाखी के समक्ष उसे मालवा के सुल्तान से मिलाने और स्वयं अटल से विवाह करने की योजना स्पष्ट करती है। ठीक समय पर किले से बाहर निकलने के लिये लगी रस्सी काटकर लाखी नटों और गयासुद्दीन की आशाओं पर पानी फेर देती है। पिल्ली रस्सी से गिर कर मर जाती है।

६—छठी कथा है ग्वालियर के आक्रमक और चिर शत्रु सिकन्दर लोदी

की। सिकन्दर लोदी जी-तोड़ प्रयत्न करने पर भी ग्वालियर को पराजित करने में असफल हो कर लौट जाता है। वह ग्वालियर पर पुनः आक्रमण के लिये चलता है किन्तु दिल्ली की समस्याओं और वर्षाऋतु की असुविधा के कारण युद्ध में उसे पीछे हटना पड़ता है। सन्धिवार्त्ता के लिये दूत के रूप में आये हुए मानसिंह के सरदार निहालसिंह का वध कराता है। लखनऊ में वह मुल्लाओं की ओर से शास्त्रार्थ का आयोजन करा वहाँ इसी निमित्त आये हुए बोधन मिश्र को वध का दण्ड देता है।

सिकन्दर लोदी ग्वालियर पर दल-बल सहित फिर आक्रमण करता है। ग्वालियर के किले और राई की गढ़ी पर अनेक प्रयत्न करने पर भी विजयी न हो पाने पर नरवर के क़िले का घेरा डाल देता है। नरवर-निवासी एक वर्ष तक मोर्चा लेने के पश्चात् जौहर कर प्राण त्यागते हैं। क्रुद्ध सिकन्दर छः माह तक नरवर के मन्दिरों में स्थित मूर्तियों का भंजन करा मानसिंह पर की खीज वहाँ उतार कर लौट जाता है। वह अपने विद्रोही भाई जलाल का वध कराता है और ग्वालियर से वैर चुकाने की चिन्ता में ही प्राण त्यागता है।

७. सातवीं कथा है नरवर-राज्य के वंशगत दावेदार कछवाहा राजसिंह और उसकी प्रेमिका कला की। राजसिंह चन्देरी में रहता है। वह गायक बैजू को ग्वालियर में आयोजित संगीत-सम्मेलन में भाग लेने और अपनी प्रेयसी कला को वहाँ का भेद लेने उसके साथ भेजता है। कला की योजना के रहस्य का उद्घाटन होने पर मानसिंह उसे सम्मानपूर्वक राजसिंह के पास पहुँचवा देता है।

राजसिंह को उसका चारण निरन्तर नरवर-विजय के लिये उकसाता रहता है। राजसिंह गयासुद्दीन के साथ नरवर-आक्रमण में भाग लेता है। फिर सिकन्दर लोदी के साथ नरवर का घेरा डालने पर उसे सफलता मिलती है। सिकन्दर छः माह तक नरवर में मूर्ति-भंजन करा किला राजसिंह को सौंप देता है। राजसिंह के साथ कला क़िले में घूमते समय मूर्ति-भंजन के जघन्य कार्य पर हार्दिक शोक प्रकट करती है।

× × ×

(अ) उपन्यास की मुख्य कथा मृगनयनी के आकर्षक और असाधारण व्यक्तित्व को लेकर चलती है। अन्त में मृगनयनी मानसिंह को जीवन के आधारभूत दोनों अंगों, कला और कर्त्तव्य, के प्रति निष्ठावान बनाती है।

लाखी और अटल की कथा प्रासंगिक है। राई में लाखी, निन्नी और अटल साथ रहते हैं। निन्नी के पराक्रम और ग्रामीण जीवन का विकास दोनों के साथ रह कर होता है। निन्नी ग्वालियर की रानी बन कर अपने व्यक्तित्व को

विकसित करने तथा मानसिंह को प्रेरित करने में रत हो जाती है। मृगनयनी की कथा में घटनाओं की उतनी तीव्रता नहीं रह जाती। लाखी और अटल की कथा मुख्य कथा से अलग होकर गति पकड़ती है। दोनों को जाति-विरुद्ध प्रेम करने के कारण बोधन मिश्र तथा गाँव की पंचायत का कोप-भाजन बनना पड़ता है। वे पंचायत द्वारा बहिष्कृत हो जाने पर नटों के कुचक्र में पड़ कर मगरोनी तथा नरवर की यात्रा करते हैं। लाखी नरवर में असाधारण पराक्रम प्रदर्शित कर अपनी, अटल तथा नरवर की रक्षा करती है। पुनः दोनों ग्वालियर में निन्नी से आ मिलते हैं। वहाँ दोनों का विवाह हो जाता है और दिन चैन से व्यतीत होते हैं। सिकन्दर लोदी का आक्रमण होने पर दोनों को राई की गढ़ी की रक्षा का भार संभालना होता है। इसी संघर्ष में लाखी प्राण गँवाती है और अटल जौहर कर परलोक में अपनी प्राणेश्वरी से जा मिलता है। प्रासंगिक कथा मुख्य कथा से बँध कर चलती है। केवल मध्य में घटनाचक्र में पड़कर दूर जा पड़ती है। लाखी और अटल अपने अन्तर्जातीय विवाह की समस्या के कारण समाज की असहिष्णुता तथा कठोरता को सामने लाते हैं। पंचायत द्वारा बहिष्कार तथा नटों के कुचक्र में फँसने की घटनायें उनके ग्वालियर के राजा मानसिंह तथा रानी मृगनयनी की छाया से दूर रहने पर ही स्वाभाविक रूप से विकसित हो पातीं। मृगनयनी की छाया में रहकर भी लाखी को अपने अन्तर्जातीय विवाह के कारण सुमनमोहिनी के व्यंग्य-बाणों का लक्ष्य बनना पड़ता है। वह समाज द्वारा किए गए अपमान और कटु व्यवहार से इतनी त्रस्त हो जाती है कि मरते समय अपने पति अटल से कह जाती है, 'ब्याह कर लेना अपनी जात-पाँत में।' प्रासंगिक कथा तत्कालीन सामाजिक, तथा मुख्य कथा राजनीतिक परिस्थितियों को सामने लाती है। दोनों का ध्येय मिलता-जुलता है। इन्हें साथ रखने का पूरा प्रयत्न किया गया है। तोमर मानसिंह का गूजर निन्नी से विवाह भी अन्तर्जातीय है किन्तु मानसिंह के राजा होने के कारण उनकी वैवाहिक समस्या अटल तथा लाखी की भाँति उलझ नहीं पाती।

ग्वालियर के चिर शत्रु सिकन्दर लोदी की कथा मुख्य कथा को अग्रसर करने में विशेष सहायक होती है। उसके आक्रमण के उपरान्त गाँवों के फिर से बसने और संभलने के प्रसंग से उपन्यास ही प्रारम्भ होता है। सिकन्दर लोदी निहालसिंह तथा बोधन मिश्र का वध कराता है। ग्वालियर पर पुनः भयङ्कर आक्रमण कर राई में अटल तथा लाखी की मृत्यु का कारण बनता है। नरवर का पतन उसी के कारण होता है। मानसिंह तथा मृगनयनी के

निरन्तर कर्तव्य और देशरक्षा के साधनों के प्रति सचेत रहने का मुख्य कारण है, आक्रमक सिकन्दर लोदी ।

नट, गयासुद्दीन का मुख्य तथा प्रासंगिक कथा से सम्बन्ध स्थापित करते हैं। उनकी कथा मुख्यतया लाखी-अटल की प्रासंगिक कथा में प्रकरी का कार्य कर ३९ वें परिच्छेद में समाप्त हो जाती है ।

मालवा के कामुक सुल्तान गयासुद्दीन की कथा मुख्य तथा प्रासंगिक कथा में प्रकरी का कार्य करती है । गयास के संकेत पर, नट लाखी तथा निन्नी को किसी प्रकार मालवा ले आने के प्रयत्न में रत होते हैं । वह नरवर पर आक्रमण करता है और मानसिंह के प्रहार से विचलित हो लौट पड़ता है । मटरू तथा नसीरुद्दीन के षड्यन्त्र के फलस्वरूप गयास की हत्या होती है तथा उसके पुत्र नसीरुद्दीन की कथा नया रुख पकड़ती है । नसीर का उपन्यास की अन्य कथाओं से कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता । नसीर की घोर कामुकता तथा जलक्रीड़ा में डूब जाने का प्रसंग पूर्णतया स्वतन्त्र है । जान पड़ता है उपन्यास-कार ने नसीर के विचित्र चरित्र के चित्रण के लोभवश ही उसे उपन्यास में ला रखा है ।

ऐसा ही स्वतंत्र प्रसंग है गुजरात के सुल्तान महमूद बघर्रा का । उसके विचित्र व्यक्तित्व और असाधारण भोजन का प्रसंग पाठकों के मनोरंजन का विषय है किंतु बघर्रा का उपन्यास की किसी भी कथा से कोई सरोकार नहीं है । उसकी निन्नी, लाखी की प्राप्ति एवं ग्वालियर तथा मालवा पर आक्रमण करने की लालसा की चर्चा कर उपन्यासकार उसका संबंध मुख्य कथा से जोड़ना चाहता है किंतु इस दिशा में बघर्रा के तनिक भी सक्रिय न होने के कारण बघर्रा कथा से प्रायः असम्बद्ध रहता है ।

नरवर-राज्य के वंशगत दावेदार राजसिंह और उसकी प्रेयसी कला की कथा मुख्य कथा में प्रकरी का कार्य करती है । राजसिंह नरवर-प्राप्ति के के लिए मानसिंह के विरुद्ध गयासुद्दीन और सिकन्दर लोदी को सहायता देता है । अंत में लोदी के सहयोग से नरवर प्राप्त भी कर लेता है । वह सामंतयुगीन 'संकीर्ण राष्ट्रीयता' तथा मिथ्याभिमान का परिचायक है ।

(ब) 'मृगनयनी' का कथानक पंद्रहवीं शताब्दी के अंत और सोलहवीं के प्रारम्भ से सम्बद्ध है । इन दिनों भारत में किसी पुष्ट केन्द्रीय शक्ति का अभाव था । दिल्ली के तख्त पर सिकन्दर लोदी था । सर्वमान्य शासन के अस्तित्व के न होने के कारण सम्पूर्ण देश में विश्रृंखलता तथा उच्छृंखलता का बोलबाला था । थोड़ी बहुत जनशक्ति और भूमि वाला व्यक्ति अपने आपको बहुत कुछ

समझता था। आपस में लड़ने भिड़ने, जन-पीड़न तथा विलासप्रियता की चारों ओर धूम थी।

ऐसे अस्त-व्यस्त युग में मानसिंह तोमर सन् १४८६ ई० से १५१६ई० तक ग्वालियर का राजा रहा। उसकी कलाप्रियता के प्रमाण ग्वालियर किले के भीतर बने हिंदू वास्तु कला के प्रतीक आकर्षक भवन हैं। उस समय की ध्रुव-पद और धमार की गायन की पद्धति अब भी भारत में प्रसिद्ध है। मानसिंह वीर और योग्य शासक था। वह सिकन्दर लोदी के आक्रमणों से विचलित न हुआ। अपने राज्य की रक्षा तथा समृद्धि के विषय में पूर्णरूपेण सजग रहा।[1] संक्षेप में, उसे कला के साथ कर्तव्य का भी ध्यान रहता था।

मानसिंह में कलाप्रियता को जगाने तथा कला और कर्तव्य की भावना को उद्बुद्ध करने वाली कोई प्रेरक शक्ति अवश्य रही होगी। वर्माजी ने मानसिंह की प्रिय रानी मृगनयनी को यह श्रेय प्रदान किया है। मृगनयनी गूजर कुल की थी। राई गाँव की दरिद्र किसान कन्या। शारीरिक बल और परम सौंदर्य के लिए वह ब्याह से पहिले ही प्रसिद्ध हो गई थी। शिकार में पुरुषों के भी कान काटती थी। ग्वालियर के किले में मानमन्दिर और गूजरी महल हैं। बैजू बावरा मानसिंह के नायक थे।[2] उन्होंने गूजरी टोड़ी, मङ्गल गूजरी आदि राग बनाये। इनमें गूजरी रानी मृगनयनी का स्पर्श जान पड़ने के कारण उक्त तथ्य की इस प्रकार व्याख्या की गयी है। मानसिंह और मृगनयनी का विवाह वर्माजी ने १४९२ ई० के लगभग माना है, मानमन्दिर और गूजरी महल बनने के लगभग पन्द्रह वर्ष पूर्व। इन भवनों के निर्माण-कार्य के पीछे मृगनयनी की कलाप्रियता और प्रेरणा अवश्य रही होगी। बैजू बावरा की राग-रचना और संगीत कुशलता को मृगनयनी से प्रोत्साहन मिला होगा तभी मङ्गल गूजरी आदि राग उन्होंने बनाए।

उक्त व्याख्या को आधार मान कर उपन्यास के मुख्य चरित्र, मृगनयनी का चित्रण किया गया है। मृगनयनी के शौर्य से सम्बन्धित प्रचलित परम्पराओं में से जो व्याख्या के अनुकूल और तर्कसम्मत हैं, उन्हें उपन्यास में स्थान दिया गया है। अन्य सम्बन्धित किम्वदन्तियों को भी मृगनयनी तथा मानसिंह विषयक कल्पना के अनुसार ग्रहण किया गया है। उदाहरण के लिये, एक किम्वदन्ती

---

१. दिल्ली सल्तनत··· (डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव) ...पृ० २६६, २६७

२. इतिहासकार अभी बैजू बावरा के काल के संबंध में मत स्थिर नहीं कर पाये हैं।

है कि मानसिंह की दो सौ रानियाँ थीं। वर्मा जी को कदाचित् अपने नायक की इतनी पत्नियाँ दिखाना अभीष्ट नहीं था। उन्होंने ग्वालियर किले के गाइड की दूसरी किम्वदन्ती को मान्यता दी है कि मानसिंह की एट (आठ) रानियाँ थीं। मृगनयनी को नवीं रानी के रूप में ग्रहण किया गया है।

मृगनयनी के भाई का नाम अटल था। उसने किसी अहीरिन से विवाह किया था। राई गाँव के लोगों ने इस अन्तर्जातीय विवाह का भारी विरोध किया था अटल तथा उसकी पत्नी, नरवर होते हुए ग्वालियर जा पहुँचे थे। यह तथ्य राई के आसपास के गूजरों में अब भी प्रचलित है। इनके मार्ग में अड़चन डालने वाले नटों के षड्यंत्र की घटना वास्तविक अटल से सम्बन्ध नहीं रखती। इस घटना का विकास नरवर में प्रचलित अन्य काल की एक किम्वदन्ती से किया गया है। किसी ने एक नटिनी (बेड़नी) को नरवर किले के बाहर रस्से पर टंगे टंगे जाकर जो किले के बाहर एक पेड़ से बंधा हुआ था, चिट्ठी ले जाने के लिये कहा था और वचन दिया कि यदि चिट्ठी बाहर पहुँचा दी गयी तो नरवर का आधा राज्य पुरस्कार में मिलेगा। नटिनी रस्से के सहारे किले के बाहर हो गई। जब उसी के सहारे वापिस आ रही थी, तब वचन देने वाले ने राज्य-रक्षा के लोभवश रस्से को काट दिया। नटिनी नीचे खड्ड में गिर कर चकनाचूर हो गयी। इस सूत्र के अतिरिक्त पिल्ली, पोटा के व्यक्तित्व और षड्यंत्र की घटना कल्पित है।

मालवा के सुल्तान गयासुद्दीन के उत्तराधिकारी, कामुक पुत्र नसीरुद्दीन की पन्द्रह हज़ार स्त्रियों की बात अतिरंजित जैसी जान पड़ती है किन्तु यह ऐतिहासिक तथ्य है। इतिहास में उल्लेख है—'उसके (गयासुद्दीन के) सबसे बड़े पुत्र नासिरुद्दीन ने १५०० ई० में उसको विष देकर मार डाला और सिंहासन हस्तगत कर लिया। नया सुल्तान व्यभिचारी तथा प्रजापीड़क निकला। कहा जाता है कि उसके रनिवास में १५,००० स्त्रियाँ थीं। मदिरा पीने का दुर्व्यसन भी उसमें अधिक था। १५१० ई० में एक दिन मदिरा के नशे में वह एक झील में गिरकर डूब गया।' १

राजसिंह ऐतिहासिक है, कला कल्पित। उपन्यास में गुजरात के सुल्तान महमूद बघर्रा को मनों भोजन करते और पर्वताकार शरीर का चित्रित किया गया है। इतिहास में उसके पर्वताकार शरीर, लम्बी मूँछों, भव्य आकृति और असीम भूख की चर्चा है।[२]

---

१. दिल्ली सल्तनत···पृ० २८०

२. दिल्ली सल्तनत···पृ० २८२

सोना

१—'सोना' की मुख्य कथा है सोना और चम्पत के असफल प्रेम, सोना के राजा धुरन्धरसिंह से विवाह तथा दोनों के कृत्रिम जीवन की। सोना और चम्पत परस्पर आकृष्ट हैं। सोना की बहिन रूपा उससे ईर्ष्या करती है। दोनों बहिनें आपस में लड़ती हैं। रूपा का विवाह अनूपसिंह, निर्धन युवक से हो जाता है और सोना का विवाह लंगड़े विधुर राजा धुरन्धरसिंह से होता है। विवाह के अवसर पर आयोजित नृत्य गान के समारोह में सोना का निराश प्रेमी चम्पत मर्मस्पर्शी करुण गान प्रस्तुत करता है। वह राई मंडली में सम्मिलित हो जाता है।

सोना का चित्त प्रौढ़, निर्जीव पति से घूमकर हीरे जवाहरात तथा भूषणों की पिपासा पर केन्द्रित हो जाता है। राजा आलसी है, उत्साहरहित। उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। लालों का हार बनवाने के लिए धन की प्राप्ति के हेतु सोना चीलों को नित्य मंगोड़े खिलाने का अनुष्ठान करती है। हार बन जाता है किंतु सोना द्वारा पति से हीरों के आभूषणों की माँग बनी रहती है। आयवृद्धि के लिये राजा दूधई गाँव में मेले का आयोजन करता है। वहाँ भी सोना अपने अनुष्ठान का क्रम अखण्ड रखती है। मेले में सम्पत की मंडली नृत्य, गान प्रस्तुत करती है।

सोना का टँगा हुआ हार एक चील उड़ा कर ले जाती है। चील से प्राप्त कर हार सोना को भेंट करने के व्याज उससे दो बातें करने का इच्छुक चम्पत हार की खोज में चल पड़ता है। इस प्रयत्न में उसे सफलता नहीं प्रत्युत अपमान मिलता है। मेले में राजा को विशेष आय नहीं होती। सोना की सुन्दर अलंकारों और वस्त्रों की पिपासा बढ़ चलती है। धन-प्राप्ति के लिए राजा स्वयं उलूक-पूजा के अनुष्ठान का प्रारम्भ करता है। उधर निराश चम्पत की सनक बढ़ जाती है। वह गेरुए वस्त्र धारण कर भौहें मुड़ा लेता है।

राजा सोना का ध्यान अलंकार, वस्त्रों से हटाने के लिए एक मन्दिर का निर्माण-कार्य प्रारम्भ करता है। घर में धन की समाप्ति पर किसी मन्दिर में श्रम करने की प्रेरणा होने से रूपा गुप्त रूप से राजा धुरन्धर सिंह के मन्दिर में मजदूरिन के रूप में कार्य करती है। दशहरे के अवसर पर चम्पत का महल में अभिनय और गान होता है। सोना पर चम्पत अपने चिर प्रेम को अभिव्यक्त करता है किन्तु प्रत्युत्तर में उसे मिलती है अवहेलना। राजा बगीचे में घिरी रूपा को प्रलोभन दे वासनापूर्ति का प्रयत्न करता है किन्तु चम्पत की सूचना पर सोना के एकाएक वहाँ पहुँच जाने से रूपा की वास्तविकता स्पष्ट हो जाती है। राजा की वासना पूरी नहीं हो पाती। राजा चम्पत की

भर्त्सना कर उसे राज्य से भगा देता है। अनूप रूपा को लेने राजमहल आता है। वह सोना और राजा को धनप्राप्ति के लिए अनुष्ठानों के श्रम से मुक्त हो श्रम करने की सम्मति देता है।

२—दूसरी कथा है रूपा और अनूपसिंह के विवाहित जीवन तथा उनके द्वारा श्रम के महत्व को स्वीकार करने की। रूपा का विवाह हँसमुख निर्धन युवक अनूपसिंह से हो जाता है। अनूप परिहासप्रिय होने के कारण गाँव वालों को नित नयी शरारतों द्वारा हँसाता, चिढ़ाता रहता है। उसकी शरारतों के दण्ड-स्वरूप गाँव वाले उसके घर के सामने अपने घरों का कूड़ा-कचरा एकत्र कर देते हैं। सोना का हार चील कूड़े के ढेर पर छोड़ वहाँ पड़ा मृत सर्प उठा ले जाती है। रूपा हार को उठा उसे रात्रि को मानिक के रूप में सजाये राजा के पास ले जाती है। हार की टोह में लगा हुआ चम्पत उसे मार्ग में से उड़ा ले जाता है किंतु हार की खोज का श्रेय रूपा को मिलता है। पुरस्कारस्वरूप रूपा राजा से दीपावली की रात्रि को अपने गृह के अतिरिक्त सर्वत्र अंधकार रखने की आज्ञा प्राप्त करती है। दीपावली को एक मात्र रूपा, अनूप के घर में लक्ष्मी-पूजन होता है। उसी रात्रि गृह के आंगन की खुदाई में सोने, चाँदी तथा हीरे जवाहरात के घड़े निकलते हैं।

अनूप और रूपा का वैभव चोटी पर जा पहुँचता है। अनूप में अहंकार आने पर उसका हँसमुख स्वभाव उससे विदा ले जाता है। बुद्धिमती रूपा निरन्तर स्वच्छन्द तथा सादे जीवन के पालन पर बल देती रहती है किन्तु माया के चमत्कार से भ्रमित, मिथ्याभिमानी अनूप उसकी एक नहीं सुनता। सोने चाँदी के घड़े चुक जाते हैं और हीरे जवाहरात कृत्रिम सिद्ध होते हैं। दोनों की आर्थिक चिन्ता बढ़ती है। रूपा को दीपक स्वप्न में श्रम का महत्व बताता है। उसे परिवार में समृद्धि स्थापित रखने के लिये किसी मन्दिर के निर्माणकार्य में एक पखवारे के लिये गारा चूना ढोने का आदेश देता है। रूपा चुपचाप घर से पलायन कर देवगढ़ में बन रहे राजा धुरन्धरसिंह के मन्दिर में गारा-चूना ढोने का कार्य करती है। वहाँ चम्पत और राजा दोनों उसे अपने कुचक्र में लाना चाहते हैं। अन्त में सोना के ठीक समय पर आ पहुँचने के कारण रूपा राजा के चंगुल से छुटकारा प्राप्त करती है। अनूपसिंह उसे घर ले जाता है। वह अनूप को विश्वास दिलाती है, 'लक्ष्मी जी का वरदान तुम्हारे जैसों की हँसी और मेरी जैसियों की मिहनत से ही मिल सकता है।'

× × ×

(अ) उपन्यास में दो कथायें परस्पर कन्धा भिड़ाकर चलती हैं, सोना

और रूपा की। सोना का राजा धुरन्धरसिंह से विवाह होने के बाद उसकी गहनों तथा हीरे जवाहरात की पिपासा के फलस्वरूप दोनों के उत्साहरहित कृत्रिम जीवन की कथा प्रमुख है। दोनों की दृष्टि में शारीरिक श्रम या उद्योग का कोई महत्त्व नहीं है। राजा तथा सोना की पिपासित, उत्साहरहित, उद्योगविहीन जीवनचर्या के साथ रूपा तथा अनूपसिंह के क्रियात्मक जीवन का विकास होता चलता है। रूपा विवाह कर अनूप के घर पहुँचने पर उसे जीविकोपार्जन के हेतु श्रम करने के लिये निरन्तर प्रोत्साहित करती है। दोनों घर में कहीं गड़े गुप्तधन की खोज में ज़मीन की खुदाई और लक्ष्मीपूजन का कार्य प्रारम्भ करते हैं। यहाँ तक यह प्रासंगिक कथा मुख्यकथा से अलग चलती है।

चील द्वारा सोना का हार अनूप के घर पर डाले जाने के पश्चात् रूपा के हार को राजा के पास ले जाने तथा मार्ग में हार को चम्पत द्वारा उड़ा ले जाने के फलस्वरूप रूपा और सोना की कथायें इस स्थल पर आ मिलती हैं। दोनों, रूपा-अनूप, सोना तथा राजा से होड़ लेने के लिये शृङ्गार तथा वैभव के भाँति-भाँति के साधन जुटाते हैं। धन चुकने को होता है किन्तु अनूप के नेत्रों से भ्रम का पर्दा नहीं हटता। इस प्रश्न पर रूपा का अनूप से तीव्र मतभेद होता है। रूपा को स्वप्न में दीपक शारीरिक श्रम का महत्त्व बताकर किसी मन्दिर के निर्माण-कार्य में शरीर से योग देने का आदेश देता है। यहाँ तक प्रासंगिक कथा फिर स्वतन्त्र रूप से चलती है।

रूपा देवगढ़ में राजा के मन्दिर पर चूना गारा ढोने का कार्य करती है। राजा षड्यंत्र रचकर उसे अपनी वासनापूर्ति का साधन बनाना चाहता है। उस अवसर पर सोना एकाएक प्रकट होकर रूपा को राजा के कामुक पाश से मुक्त करती है। अन्त में यहाँ दोनों कथाओं का पुनः संगम हो जाता है। रूपा की कथा प्रासंगिक होते हुए भी कलेवर में सोना की कथा की अपेक्षा अधिक विशाल है। यह ३३ परिच्छेदों में फैली हुई है जबकि सोना की कथा केवल २५ परिच्छेदों में है। १६ वे परिच्छेद से लेकर प्रायः अन्त तक रूपा की कथा उपन्यास में प्रमुख स्थान ग्रहण किये रहती है।

(ब) 'सोना' में उत्तरी भारत में दीपावली की रात्रि को लक्ष्मी-साधना से सम्बन्धित कही जाने वाली कथा का उपयोग किया गया है। यह लोक-कथा थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ सर्वत्र कही-सुनी जाती है। कथा-सूत्र इस प्रकार है। एक साहूकार की पुत्री ऊँचे महल में रहने वाले निर्धन के पुत्र को विवाह दी जाती है। पुत्री विवाह में मिला दान-दहेज पिता को वापिस करा देती है और ससुराल में भोजन के हेतु जलने वाले आठ चूल्हों

में केवल एक रहने देती है। उसी चूल्हे पर सबका सम्मिलित भोजन बनता है। वह अपने श्वसुर को मार्ग में पड़े मृत सर्प आदि को लाकर छत पर डालने की बात सुझाती है। छत पर पड़े ऐसे ही एक साँप को उठा ले जाते समय चील रानी का बहुमूल्य हार छत पर छोड़ जाती है। हार रानी को पहुँचा दिया जाता है। पुरस्कार के रूप में साहूकार की पुत्री--निर्धन की पुत्रवधू---राजा से दिवाली का दिया माँग लेती है अर्थात् दीपावली की रात्रि को राज्य भर में निर्धन के महल को छोड़कर सर्वत्र अंधकार रहे। दीपावली की रात्रि को चारों ओर के अंधकार से विचलित हो निर्धन के आलोकित महल में प्रवेश पाने के लिये लक्ष्मी द्वार खटखटाती है। गृहवधू चंचला लक्ष्मी से महल में सदैव निवास का वचन लेकर ही उसे प्रविष्ट होने देती है। इस लोककथा में कर्मठता और बुद्धिमत्ता के चमत्कार का उद्घाटन है। ब्रजलोक कथाओं में दीपावली की कथा का उक्त सूत्र इस प्रकार मिलता है, 'भाट और भाटिनी ने राजा से यह वरदान मांग लिया कि दिवाली के दिन उन्हीं के घर में दीपक जलेगा और किसी के घर नहीं जलेगा। सर्वत्र अंधेरा था केवल भाट के घर में प्रकाश था। लक्ष्मी सर्वत्र अंधकार देखकर भाट के यहाँ आई। भाट ने उसे उस समय तक घर में नहीं प्रवेश करने दिया जब तक कि लक्ष्मी ने यह वचन न दिया कि वह उनके घर जीवन-पर्यन्त रहेगी।' [1]

वर्मा जी ने रूपा-अनूप की कथा में उक्त लोककथा का प्रयोग किया है। उनकी पुनः निर्धनता तथा रूपा की मज़दूरी का प्रसंग शारीरिक श्रम के महत्त्व को स्पष्ट करने के हेतु रखा है। चम्पत का असफल प्रणय कल्पित है और सोना तथा राजा धुरन्धर की कथा रूपा-अनूप की कथा को प्रभावशाली बनाने के लिये तुलना में रखी गयी है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि यहाँ लोक-कथासुलभ दैवीतत्त्व को हटाकर घटनाओं को मनोविज्ञानसम्मत, स्वाभाविक रूप प्रदान किया गया है।

अमरबेल

१—अनीति से धनोपार्जन करने वाले व्यक्ति समाज में घुन की भांति लगे हुए हैं जैसे हरे-भरे पेड़ पर अमरबेल। ज़मींदार देशराज, उसकी प्रेयसी अंजना, नाहरगढ़ के राजा बाघराज तथा डाकू कालीसिंह के अफ़ीम के अवैध व्यापार तथा उनके पराभव की कहानी 'अमरबेल' की मुख्य कथा है। सुहाना और बांगुर्दन गाँवों का ज़मींदार, देशराज ज़मींदारी-उन्मूलन के बाद अपनी प्रेयसी

---

१. ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन (डा० सत्येन्द्र) ...पृ० ४६०

अंजना सहित अफ़ीम के अवैध व्यापार में लग जाता है। वे अफ़ीम एकत्र कर नाहरगढ़ के बाघराज के हाथों बेचते हैं। अफीम विदेश भेजने के लिए बन्दरगाह तक उसे पहुँचाने में डाकू कालीसिंह बाघराज की सहायता करता है। देशराज के पुराने ज़मींदारी ढंगों के विरुद्ध गाँव के कार्यकर्तागण सक्रिय आन्दोलन छेड़ते हैं; वह अपनी प्रभाव-वृद्धि के लिए सुहाना की सहकारी समिति का प्रधान-पद ग्रहण करता है किन्तु उस योजना के लिये उसके हृदय में कोई स्थान नहीं है।

देशराज तथा अंजना अफीम एकत्र करने के लिये लखनऊ, बनारस आदि शहरों में अनेक रूप धारण कर प्रपंच रचते, पुलिस की आँखों में धूल झोंकते यात्रा करते हैं। पराभव प्रारम्भ होता है। बन्दरगाह पर बाघराज द्वारा भेजी गयी अफ़ीम की दो पेटियाँ पकड़ी जाती हैं। मार्ग में अंजना की अफ़ीम की पेटियाँ पुलिस द्वारा पकड़ी जाती हैं। वह जैसे तैसे बचकर निकल पाती है। बाघराज एक संगीत सम्मेलन का आयोजन कर उसमें अनेक गायिकाओं को एकत्र करता है। वहाँ अंजना और देशराज भी आमंत्रित होते थे। रात्रि में वापिसी के समय बाघराज के संकेत पर कालीसिंह उन सब को लूट लेता है। दुखी और क्रुद्ध देशराज गाँव आकर पुलिस को सारा हाल बता देता है। बाघराज को अवैध अफ़ीम के व्यापार और डाकुओं से सम्बन्ध रखने के अभियोग में लम्बी सजा होती है। संतप्त देशराज छलिनी, मायाविनी अंजना का साथ छोड़ देता है। डाकू कालीसिंह देशराज से वैर चुकाने के लिये रात्रिको आक्रमण कर उसे घर में जला देने का प्रयत्न करता है। गाँव के कार्यकर्ताओं तथा रक्षकदल के पराक्रम के फलस्वरूप कालीसिंह मारा जाता है और उसका दल छिन्न-भिन्न हो जाता है। देशराज में घोर परिवर्तन होता है वह गाँव के निर्माण-कार्य में हृदय से योग देने का निश्चय करता है।

२—दूसरी कथा है गाँव में सहकारिता-आन्दोलन के क्रमशः पनपने तथा उत्साही कार्यकर्त्ताओं, टहलराम तथा डा० सनेहीलाल, के अनवरत उद्योग की। टहल पढ़ा-लिखा उत्साही कार्यकर्त्ता है। डाक्टरी पास करके सेवा के ध्येय से गाँव में बस जाने वाला सनेहीलाल भी सहकारिता-आन्दोलन द्वारा गाँवों के रूप को बदलने वाले कर्मठ कार्यकर्त्ताओं में से है।

टहल देशराज की ग्रामीणों के प्रति कुटिल नीति के विरोध में जलूस निकलवाता है; समय-समय पर उसका तीव्र विरोध करता रहता है। सुहाना गाँव की सहकारी समिति की स्थापना तथा संचालन में अटल का मुख्य हाथ है। डाकू कालीसिंह टहल तथा उसके सहयोगी बटोले पर रात्रि में आक्रमण करता है। टहल की जाँघ में गोली लगती है। उसकी परिचर्या के हेतु डा०

सनेहीलाल अपनी पत्नी सहित जिले के अस्पताल में रहता है। अटल और सनेही में अत्यन्त निकट का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

गाँव में रक्षक दल की स्थापना होती है। श्रमदान से नहर खोदी जाती है, खादर वाली भूमि मिट्टी भरकर समतल की जाती है। सनेही स्वयं को इस सब प्रगति का कर्णधार समझ अहंकार से भर उठता है। उसका टहल से वैमनस्य बढ़ता है किन्तु यह भाव परस्पर के स्नेह के कारण अधिक टिक नहीं पाता। सनेही अहंकार त्याग देता है। गाँव समृद्धशाली होता है। पंचायत के चुनाव में समाज विरोधी तत्व मुँह की खाते हैं। कालीसिंह द्वारा टहल और देशराज के घर पर आक्रमण के समय गाँव का रक्षकदल और सनेहीलाल अत्यन्त वीरतापूर्वक टक्कर लेते हैं। सनेहीलाल टहलराम का विधवा हरको से विवाह कराता है।

३—तीसरी कथा है गाँव में फैले घातक समाज-विरोधी तत्वों की। धूर्त स्वार्थी बनमाली तथाकथित नेता है। वह महत्वाकांक्षा, आत्मश्लाघा तथा हीनता की भावना से ग्रस्त है। देशराज-विरोधी जलूस में वह तनिक भाग लेता है फिर देशराज से सन्धि कर उसकी पड़ती का एक भाग अपने नाम करा लेता है। पड़ती के वास्तविक अधिकारियों से मारपीट और मुकदमेबाजी होती है। छदामी चमार को वोट पाने के लोभ में वह पन्द्रह रुपये उधार देता है। एक अन्य अवसर पर छदामी को अपने भूसे की चोरी करते पकड़ उससे पच्चीस रुपये के ऋण तथा भूसे की चोरी का इकबाली बयान लिखाता है तथा आने वाले चुनाव में उससे अपने तथा अपने प्रभाव के सब लोगों को वोट देने के वचन का अँगूठा कागज पर लगवाता है। बनमाली समय-समय पर गाँव की सहकारी समिति में अपना प्रभाव बढ़ाने तथा उसकी प्रगति में रोड़े अटकाने के प्रयत्न करता रहता है। पंचायत-चुनाव में प्रयत्न करने पर भी उसे असफलता मिलती है।

धरनीधर महाजन है। दो पैसा, रुपया ब्याज पर ऋण देता है, समाज-सुधारक होने का दावा भरता है। देशराज का वह चिर विरोधी है। अंजना और देशराज कालीसिंह द्वारा उसके यहाँ डाका डलवाकर वैर चुकाते हैं। वह लाभार्जन के साथ गाँव का नेता बनना चाहता है किन्तु जनसेवा की भावना उसे छूकर नहीं गयी है। सहकारिता-आन्दोलन से उसे कोई सहानुभूति नहीं है। जनता से उसकी स्वार्थपरता छिपी नहीं रहती। वह गाँव पंचायत के चुनावों में पराजित होता है।

किसान विक्रम जमींदार की चापलूसी, छल कपट तथा डाकुओं से मेल-जोल में विश्वास रखता है। वह बनमाली के साथ दूसरों की पड़ती अपने

नाम लिखाकर देशराज के षड्यंत्र में भाग लेता है। मारपीट होती है मुकदमा चलता है। फसल के दिनों में वह अपने मवेशियों को दूसरों के खेत में 'पसर' चराता है। बटोले उसकी इस नीचता पर उसे बुरी तरह पीटता है। बटोले तथा उसके सहायक टहलरामसे वैर चुकाने के लिये वह डाकू कालीसिंह को दोनों के यहाँ डाका डालने के लिये आमंत्रित करता है। पुलिस की हवालात से भागे हुए विद्यार्थी जनकलाल को घर पर भोजन के लिए निमन्त्रित कर उसे छल से पुलिस के हवाले कर पुरस्कार पाने की योजना बनाता है। अन्त में भी सहकारी समिति के विरुद्ध दमरू को उभारता है।

४—चौथी कथा है उद्दण्ड उत्साही विद्यार्थी जनकलाल के सुधार की। जनकलाल टहल के प्रिय विद्यार्थियों में से है, स्वभाव से उद्दण्ड तथा जनकार्य में भाग लेने के कारण अहंकारी। गाँव के तालाब की मरम्मत कराने वाले ठेकेदार से मारपीट कर बैठता है। बीच में आये पुलिस के सिपाहियों को भी नहीं छोड़ता। पुलिस उसे गिरफ्तार कर सदर ले जाती है। वहाँ मार्ग में उन्हें धोखा देकर भाग जाता है। सरकार उसे पकड़ाने वाले को सौ रुपये पुरस्कार में देने की घोषणा करती है। भूख-प्यास और निरन्तर आशंका से ऊबकर जनक पुलिस के हाथों समर्पण करने का निश्चय करता है। वह जेल भुगते हुए दमरू को पुरस्कार में सौ रुपये दिलवाने के लिये उसे साथ लेकर गाँव की पुलिस चौकी पर जा पहुँचता है। मुकदमे के उपरान्त छूटने पर जनक में घोर परिवर्तन आता है। अंहकार और उद्दण्डता उससे विदा ले जाते हैं। वह टहल और सनेही के नेतृत्व में उत्साहपूर्वक गाँव के विकास-कार्य में भाग लेता है।

५—पाँचवीं कथा है हरको पर उसके पति जोधा के अत्याचार तथा हरको के टहल से पुनर्विवाह की। मंद्दू की बहन हरको—हरि कुँवरि—की ससुराल में नहीं पटती। वह प्रायः अपने भाई के पास सुहाना में रहती है। गाँव की स्त्रियाँ उस पर व्यंग्य-बाणों की वर्षा करने से नहीं चूकतीं किन्तु हरको चित्त नहीं गिराती। एक बार हरको का पति जोधा उसे बलपूर्वक अपने घर ले जाता है। ससुराल में जेठानी, सास और पति के अत्याचार से पीड़ित हो वह घर भाग आती है। देशराज के खेत पर काम करते हुए दमरू के हाथों हरको का पति जोधा मार खाकर प्राण त्याग देता है। जोधा की मृत्यु पर हरको द्वारा उसके क्रियाकर्म में पूर्णतया भाग न लेने के दण्डस्वरूप मंद्दू को जाति को पंगत देनी होती है। हरको टहल की रात्रि-पाठशाला में उत्साहपूर्वक अध्ययन के लिए आती है। दोनों में परस्पर आकर्षण का उदय होता है। सलूनों के उत्सव पर डा० सनेहीलाल दोनों का गठबन्धन स्वयं करता है।

× × ×

[अ] 'अमरबेल' की मुख्य कथा अफ़ीम के अवैध व्यापार से सम्बन्ध रखती है। दुर्जनों की पारस्परिक प्रीति केवल स्वार्थ के आधार पर होती है। सामने अन्य लक्ष्य न रहने पर वे एक दूसरे को ही अपनी दुष्टता का ग्रास बनाते हैं। व्यापार में असफलता मिलने पर बाघराज देशराज, अंजना को लुटवाता है। दुर्जनों के परस्पर प्रहार की इस घटना पर आकर कथा की चरम परिणति हो जाती है। देशराज पुलिस के समक्ष बाघराज का भेद खोल देता है। बाघराज को सजा होती है, देशराज सुधरता है, अंजना की योजना छिन्न-भिन्न हो जाती है और देशराज से प्रतिशोध की धुन में कालीसिंह डाकू मारा जाता है।

प्रासंगिक कथा है उत्साही कार्यकर्त्ताओं टहलराम तथा सनेहीलाल के उद्योग से गाँव में सहकारिता आन्दोलन के पनपने की। देशराज अपने गाँव बाँगुर्दन की सहकारी समिति का प्रधान चुना जाता है और उसके कार्य में प्रदर्शन मात्र के लिए साथ भी देता है। सनेहीलाल और सहकारिता का अधिकारी राघवन, समय-समय पर उसे इस दिशा में आकृष्ट करते हैं। कालीसिंह द्वारा देशराज के घर में आग लगा कर उसे वहीं जला डालने के प्रयास को असफल बनाने में सनेहीलाल आदि कार्यकर्त्ताओं का प्रमुख हाथ है। अन्त में देशराज अपनी कुटिलता और मृगतृष्णा को छोड़कर उन्हीं के मार्ग पर आ लगता है।

गाँव में सहकारिता आन्दोलन छिड़ता है किन्तु टहल और सनेही का कार्यक्षेत्र दूर-दूर रहता है उन्हें समीप लाने तथा उनके आन्दोलन में अपेक्षाकृत अधिक गति लाने का उत्तरदायी विक्रम है। विक्रम के इङ्गित पर कालीसिंह डाका डालता है। मुठभेड़ में टहल घायल हो जाता है। टहल की सेवा-शुश्रूषा के सिलसिले में सनेही उसके समीप आता है। दोनों ग्रामसुधार-कार्य में उत्साह-पूर्वक जुट जाते हैं। सनेही के अहंकार के कारण दोनों में तनाव उत्पन्न हो जाता है किन्तु जनकलाल की घटना के कारण वे पुनः समीप आ जाते हैं।

बनमाली, धरनीधर तथा विक्रम समाज विरोधी तत्वों की कथायें मुख्य तथा प्रासङ्गिक कथा में प्रकरी का कार्य करती हैं। जनकलाल उत्साही कर्मठ विद्यार्थियों की उद्दण्डता का परिचायक है। वह सहकारिता आन्दोलन का उत्साही कार्यकर्त्ता है। उसके स्वभाव के परिष्कार की घटना प्रासङ्गिक कथा में खपती है।

हरको और उसके अत्याचारी पति जोधा की कथा अन्य कथाओं से बच-कर चलती है। हरको अपनी ससुराल तथा पति के अत्याचारों से त्रस्त है। जोधा की मृत्यु के बाद उसका टहल से विवाह हो जाता है। इस कथा के द्वारा ग्रामीण स्त्रियों पर ससुराल में किये गये अत्याचारों का चित्रण किया गया है। साथ ही उपन्यास के अन्त में ग्रामसुधार-आन्दोलन की सफलता तथा मङ्गलपूर्ण अन्त के प्रतीकस्वरूप टहल तथा हरको का विवाह कराया गया है।

(ब) मुख्य कथा का सम्बन्ध अफीम के अवैध व्यापार से है। देशराज का वास्तविक स्वरूप अनपढ़ था। उससे सम्बन्धित कुछ घटनायें झाँसी जिले के दरौना, नैनवारा गाँवों में घटित हुई थीं। इन ही गाँवों में उपन्यास के सहकारिता आन्दोलन का बहुत कुछ रूप देखने में आया था। अंजना सम्बन्धी घटनायें कल्पित हैं। कालीसिंह झाँसी जिले के कुख्यात डाकू देवीसिंह का प्रतिविम्ब है। कालीसिंह की मृत्यु दिखाई गयी है किन्तु देवीसिंह अभी जीवित है। राजा बाघराज द्वारा कलाकारों को मार्ग में लुटवाने की घटना मध्यभारत की है।

टहल और सनेहीलाल की कथा कल्पित है। समाज-विरोधी तत्त्व बनमाली धरनीधर तथा विक्रम के चरित्र झाँसी जिले के विभिन्न ग्रामों से संचित हैं। उद्दण्ड विद्यार्थी जनकलाल की कथा भी अन्यत्र की है। हरको-जोधा की कथा झाँसी जिले के अन्य गाँव की है। हरको की पति से नहीं बनती थी। पति ने उसको छोड़ दिया था। हरको को घर पर शान्ति नहीं मिली। अन्त में वह पति के घर पहुँच गई। उपन्यास में हरको, जोधा के मनमुटाव के बाद जोधा की हत्या तथा हरको के टहल से पुनर्विवाह की कल्पना की गई है।

टूटे काँटे

१—सुन्दरी नर्तकी नूरबाई सैनिक मोहन की सहायता से शाही दरबार के अस्वस्थ घृणित वातावरण से मुक्ति पाती है। नूरबाई द्वारा हृदय में टूटे काँटे जैसे कसकती हुई जीवन की गतधारा को नया मोड़ देने की कहानी 'टूटे काँटे' की मुख्य कथा है। फतहपुर सीकरी का किसान मोहनलाल अपने दारिद्र्य, शासन के अत्याचार और पत्नी के कर्कश व्यवहार से ऊबकर मुगल बादशाह मुहम्मदशाह के मीर बख्शी सादतखाँ की सेना में भर्ती हो जाता है। कुछ दिन मराठा सेना में रहकर शाही दस्ते के सिपाही के रूप में दिल्ली रहता है। अपनी पत्नी रोनी और भाई नोता, के साथ भरतपुर चले जाने का

समाचार प्राप्त कर निराश-हृदय मोहन सब कुछ छोड़ जीवन के शेष दिन मथुरा, वृन्दावन में व्यतीत करने का निश्चय करता है।

नादिरशाह के भारत पर आक्रमण तथा धन की भारी माँग पर मुग़लशाह मुहम्मदशाह उसे नर्तकी नूरबाई भेंट करके विपत्ति टालने का विफल प्रयत्न करता है। नूरबाई नादिरशाह के साथ ईरान नहीं जाना चाहती। वह एक दासी के साथ क़िले से निकल भागती है। पहरे पर मोहन मिलता है। दोनों अनेक विपत्तियाँ झेलते हुए मथुरा, वृन्दावन में जा बसने के लिये चल पड़ते हैं। वे पति-पत्नी के रूप में एक गाँव में चिन्तामन नामक जाट के यहाँ जा ठहरते हैं। चिन्तामन लुटेरों का सरदार है। वह मराठा राजदूत के दल पर छापा मार शुबराती नामक घायल मराठा सिपाही को पकड़ लाता है। शुबराती मोहन का मित्र था। मोहन नूरबाई के धन से चिन्तामन को हर्जाना दे शुबराती को मुक्त कराता है। मोहन, नूरबाई घायल शुबराती को बैलगाड़ी में लेकर मथुरा के लिये प्रस्थान करते हैं। मार्ग में चिन्तामन दलसहित मोहन पर आक्रमण करता है। नूरबाई कमर में बंधी जवाहरात की थैली लुटेरों के सामने फेंक मोहन की रक्षा करती है। उसके हृदय में नर्तकी के घृणित व्यवसाय द्वारा अर्जित उस धनराशि के प्रति कोई मोह नहीं रह गया है। वृन्दावन में मोहन तथा नूर एक पंडे के यहाँ जा ठहरते हैं। दोनों मन्दिरों का दर्शन कर कन्हैया के प्रेम में डूब जाते हैं। वृन्दावन में भ्रमणार्थ आये हुए तोता और रोनी भी उन्हें वहाँ आ मिलते हैं। रोनी अपनी कर्कशता तथा दुर्व्यवहार के लिये मोहन से क्षमा माँगती है और उसके साथ रहती है।

मोहन वृन्दावन में घर बसा लेता है। वह अपने साथियों का संग्रह कर एक रात्रि में चिन्तामन जाट को जा घेरता है और नूरबाई के जवाहरात की थैली वापिस ले आता है। दूसरे दिन यमुना के किनारे एकान्त में मोहन एक हीरा नूरबाई के बालों में लगा देता है। नूरबाई अपने हृदय में टूटे कांटे से कसकते गत घृणित जीवन के प्रतीक उस हीरे को जल में फेंक उन भूलों का प्रायश्चित्त करती है। उसके तथा मोहन के हृदय में नये जीवन के लिये आशा और उत्साह है।

२—दूसरी कथा है मोहन की विवाहिता पत्नी कर्कशा रोनी की। रोनी अपने पति मोहन तथा नाते के देवर तोता से अत्यन्त कर्कश व्यवहार करती है। संतप्त मोहन घर छोड़ कर चला जाता है। मोहन की मृत्यु का कल्पित समाचार मिलने पर रोनी तोता सहित भरतपुर में एक जाट के यहाँ जा ठहरती है। वहाँ रोनी का तोता के प्रति स्नेह बढ़ता है। उसकी धनलोलुपता से विवश हो तोता डाके तथा बटमारी के कार्य में प्रवृत्त होता है।

जीवित मोहन के जहाँ-तहाँ से समाचार प्राप्त कर दोनों उसके प्रेत के अस्तित्व की कल्पना कर अत्यन्त चिन्तित होते हैं। मथुरा, वृन्दावन के दर्शन कर मोहन के प्रेत को शान्ति प्रदान कर ही वे आपस में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने का निश्चय करते हैं। वृन्दावन में मोहन से भेंट होने पर रोनी का पूर्व निश्चय बदल जाता है। वह मोहन के पास रहती है और अपने कर्कश स्वभाव को नम्र बनाने का भरसक प्रयत्न करती है।

३—तीसरी कथा है मराठा सैनिक शुबराती की। युद्ध की मारकाट में सम्पर्क होने पर मोहन तथा शुबराती की अभिन्न मैत्री स्थापित हो जाती है। सतारा पहुँचकर शुबराती मोहन को अपने घर ले जाता है। वहाँ वह मोहन को कर्कशा पत्नियों को सुधारने की एक अत्यन्त विनोदपूर्ण विधि बताता है। घर के आंगन में पति अपना काठ का एक पुतला रखदे और अपनी क्रोधी पत्नी को उसमें नित्य पाँच जूते लगाने दे। इसी विधि का प्रयोग शुबराती ने अपनी पत्नी पर करके सफलता पायी थी।

शुबराती मराठे राजदूत के साथ महाराष्ट्र जाते समय मार्ग में चिन्तामन के गिरोह के हाथ पड़ जाने के कारण आहतावस्था में चिन्तामन के घर पर मोहन से जा मिलता है। मोहन उसे चिन्तामन के बंधन से छुड़ा कर वृन्दावन ले आता है। वृन्दावन में रोनी, नूर और मोहन को एक साथ प्रेमपूर्वक रहने का उपदेश कर वह दक्षिण चला जाता है।

४—चौथी कथा है सादत खाँ के नूरबाई के प्रति असफल प्रेम और आत्म-हत्या । सादत नर्तकी नूरबाई पर मुग्ध हो उससे प्रेम करने लगता है। सादतखाँ के धन और प्रेम की वर्षा से नूर सन्तुष्ट नहीं हो पाती। उसकी बादशाह के समक्ष कला-प्रदर्शन की आकांक्षा है। सादतखाँ के न चाहते हुए भी नूर बादशाह के हरम में पहुंच जाती है। शाह से जलभुन कर सादत-खाँ तथा मुगल दरबार के कुछ बिगड़े हुए सरदार ईरान के नादिरशाह को भारत पर आक्रमण करने का निमन्त्रण देते हैं। नादिरशाह मुहम्मदशाह को घेर लेने के बाद सादतखाँ पर बादशाह से हर्जाना के रूप में बीस करोड़ रुपये दिलाने का कड़ा अनुरोध करता है। मुहम्मदशाह नादिर की कृपा प्राप्त करने के लिये नूरबाई के संगीत, नृत्य का विशेष प्रदर्शन कराता है। नादिर उस पर मुग्ध हो नूर को ईरान साथ ले जाने की घोषणा करता है। सभा में उपस्थित सादतखाँ इस घोषणा को सुन क्लेश के कारण अचेत हो जाता है। नादिरशाह के निर्मम हर्जाना सम्बन्धी अनुरोध और नूरबाई के सदैव के बिछोह के दुःख से सादत की पीड़ा चरम सीमा पर आ पहुँचती है। वह छुरी का प्रहार कर आत्म-हत्या कर लेता है।

५—पाँचवाँ कथा है शासन के अयोग्य, विलासी बादशाह मुहम्मदशाह तथा उस पर नादिरशाह के अत्याचार की। मुहम्मदशाह सदैव राग-रंग में मस्त रहता है। शासनप्रबन्ध और प्रजा की रक्षा से उसका कोई सरोकार नहीं है। वह दिल्ली की ओर अग्रसर होते हुए नादिरशाह का प्रतिरोध करने के लिये थानेश्वर की ओर बढ़ता है और अपनी विलासता तथा अकर्मण्यता के कारण उसकी सेना से घिर जाता है। मूर्ख मुहम्मदशाह नादिर को नूरबाई के नृत्य, संगीत में उलझा कर छुटकारा पाना चाहता है। दिल्ली के बाजार के झगड़े के फलस्वरूप क्रुद्ध नादिर सार्वजनिक वध कराता है और मुहम्मदशाह से एक अरब रुपया तथा तख्तताऊस लेकर ईरान लौट जाता है।

६—छठी कथा है बाजीराव और मस्तानी की। महाराष्ट्र का बाजीराव मुग़ल साम्राज्य में लूटमार मचाता दिल्ली पर विजय प्राप्त करने बढ़ता है। आक्रमण के फलस्वरूप दिल्ली के केन्द्रीय शासन के उठ जाने पर विदेशियों द्वारा भारतभूमि पद-दलित होने की आशंका से वह अपना निश्चय बदल देता है। बाजीराव की मुसलमान प्रेमिका मस्तानी योद्धावेश में उसके साथ रहती है। बाजीराव की टक्कर निजाम से भूपाल में होती है। निजाम किले में बन्द होकर लड़ता है किन्तु बुरी तरह घिर जाने के कारण उससे सन्धि करता है। पहली पत्नी के कनिष्ट पुत्र के यज्ञोपवीत संस्कार के समय बाजीराव अपनी तथा मस्तानी की उपस्थिति से वहाँ कोई अरुचिकर परिस्थिति खड़ी नहीं करना चाहता। वह निजाम से भिड़ने के लिये पूना से चल पड़ता है। मस्तानी पूना में ही रहती है। बाजीराव का भाई और ज्येष्ठ पुत्र, मिल कर मस्तानी को बन्दी बना लेते हैं। इस समाचार से बाजीराव अत्यन्त पीड़ित होता है, उसका मदिरा-पान बढ़ जाता है। कुछ ही दिनों में अल्पकालीन ज्वर के फलस्वरूप उसका देहान्त हो जाता है। बाजीराव के निधन का समाचार सुन उसके विरह में मस्तानी भी प्राण त्याग देती है।

७—सातवीं कथा है लुटेरे जाट चिन्तामन और उसकी चालाक पत्नी की। चिन्तामन दिल्ली से भागे हुए मोहन और नूरबाई को आश्रय देता है। वह मराठा राजदूत के दस्ते पर छापा मार कर आहत शुबराती को धन प्राप्ति के लोभ से उठा लाता है। चिन्तामन अपने साथियों को घर पर मोहन तथा नूर को लुटने नहीं देता किन्तु वृन्दावन के मार्ग में उन्हें लूट लेता है। मोहन के वृन्दावन में बसने पर चिन्तामन नूरबाई को उठा लाने के लिए 'कुटने' भेजता है। क्रुद्ध मोहन रात्रि में धावा बोलकर चिन्तामन को अपमानित कर उससे नूरबाई वाली जवाहरात की थैली छीन लाता है।

× × ×

(अ) सुन्दरी नर्तकी नूरबाई को शाही दरबार में विशेष सम्मान प्राप्त है। मुहम्मदशाह आक्रमणकारी नादिरशाह रूपी विपत्ति का बिना अधिक व्यय किए निवारण करने के लिए नूरबाई को उसे भेंट-स्वरूप देना चाहता है। नूरबाई ईरान जाने के संकट से मुक्ति पाने के लिए मोहन की सहायता से अनेक कठिनाइयों को दृढ़तापूर्वक सहन करती हुई वृन्दावन जा पहुँचती है। मार्ग में वह अपने प्रिय मोहन की रक्षार्थ लुटेरों को नर्तकी के व्यवसाय द्वारा अर्जित हीरे-जवाहरात सौंप कर हृदय में चुभे हुए गत जीवन के टूटे काँटे को निकाल फेंकती है। यह मुख्य कथा है।

प्रासङ्गिक कथा है मोहन की कर्कशा पत्नी रोनी की। रोनी के अत्याचारों से संतप्त हो मोहन मुगल सेना में जा भर्ती होता है। इसके उपरान्त रोनी की कथा मुख्य कथा से दूर जा पड़ती है मोहन के प्रेत की अनेक लीलाओं के सम्बन्ध में सुनकर रोनी तोता के साथ वृन्दावन में देव-मन्दिरों के दर्शनार्थ पहुँचती है। वहाँ मोहन तथा नूरबाई से उसकी भेंट होती है और वह शान्तिपूर्वक मोहन के पास रहने का प्रयत्न करती है। रोनी की कथा मुख्य कथा को केवल प्रारम्भ तथा अन्त में स्पर्श करती है।

मराठा सैनिक शुबराती की कथा मोहन के मैत्री-निर्वाह के गुण पर प्रकाश डालती है। वह मोहन को कर्कशा पत्नियों को सुधारने की एक मनोरंजक विधि बताता है। कर्कशा पत्नी की समस्या से ही उपन्यास प्रारम्भ होता है।

सादतखाँ तथा मुहम्मदशाह की गौण कथायें मुख्य कथा को विकसित करने में सहयोग देती हैं। नूरबाई को अपनी कला के चमत्कार-प्रदर्शन का अवसर सर्वप्रथम सादतखाँ के यहाँ मिलता है। वहाँ की ख्याति के आधार पर ही उसे मुहम्मदशाह के 'हरम' में प्रवेश प्राप्त होता है। सादतखाँ मुहम्मदशाह की कुटिलता से क्षुब्ध हो नादिरशाह को भारत पर आक्रमण का निमंत्रण देने वालों में एक बन जाता है। नादिरशाह नूरबाई के सौन्दर्य और कलाप्रदर्शन पर रीझ कर उसे अपने साथ ईरान ले जाने की घोषणा करता है। नूरबाई स्वदेश छोड़कर ईरान जाने के लिए किसी भी मूल्य पर तत्पर नहीं होती। उसका चित्त शाही हरम के वासना से ओतप्रोत घृणित जीवन से ऊब उठता है। उसके विचारों में क्रान्ति होती है। वह शाही हरम के जंजाल से मुक्त होने के लिए निकल पड़ती है और मोहन के साथ अनेक कठिनाइयाँ सहनकर हृदय में चुभे हुए विगत नारकीय जीवन के टूटे काँटे को निकाल फेंकती है।

बाजीराव और उसकी प्रेयसी मस्तानी की कथा मुख्य कथा से विशेष

सम्बन्ध नहीं रखती, बाजीराव की प्रेयसी तथा मराठी सेना का इतिहास प्रसिद्ध और मनोरंजक प्रसङ्ग होने के कारण उसे उपन्यास में स्थान मिल है। मुगल सेना तथा निज़ाम से बाजीराव की टक्कर तथा मोहन को उसकी सेना में भर्ती दिखाकर बाजीराव की कथा को कथानक में खपाने का प्रयत्न किया गया है।

लुटेरे चिन्तामन जाट की कथा तत्कालीन बटमार गिरोहों का परिचय देती है। चिन्तामन के यहाँ रहकर मोहन तथा नूरबाई को विवश हो परस्पर समीप आने का अवसर मिलता है। उसकी धन-लोलुपता के कारण मोहन की शुबराती के प्रति मैत्री तथा नूरबाई की घृणित व्यवसाय से अर्जित धन के प्रति निस्पृहता स्पष्ट होती है। मोहन उससे प्रतिशोध लेकर अपने सैनिक स्वभाव का परिचय देता है।

(ब) नूरबाई और मोहन की कथा में नूरबाई के सादतखाँ के यहाँ नृत्य, गान तथा मुहम्मदशाह के हरम में रहने की घटनायें ऐतिहासिक हैं। नूरबाई के ईरान जाने की अनिच्छा के फलस्वरूप हरम से भाग निकलने के बाद की कथा कल्पित है। मोहन का चरित्र तथा उससे सम्बन्धित घटनायें भी कल्पित हैं। नूरबाई की चर्चा ख्वाजा अब्दुल करीमखाँ काश्मीरी के ग्रन्थ 'बयाने बुकाय' में है। यह ग्रन्थ अङ्गरेजी में अनूदित है।[1] अंग्रेज इतिहासकार अर्विन ने नूरबाई का इस प्रकार उल्लेख किया है—'विजेता (नादिरशाह) ने कठोर अभियान के उपरान्त कुछ अवकाश मनोरंजन के लिए निकाला। उसके सामने नृत्य और गान हुए। नूरबाई नाम की एक भारतीय नर्तकी ने अपनी सङ्गीत-शक्ति और उसके यशगान से उसे इतना मुग्ध कर दिया कि उसने (नादिर) नूरबाई को चार हजार रुपये देने तथा उसको (नूर को) ईरान ले जाने का आदेश दिया। इस अन्तिम कृपा (ईरान-गमन) से नूरबाई ने अत्यन्त कठिनाई से अपने को बचा पाया।'[2] नूरबाई को अपना देश और ब्रजभूमि विशेष प्रिय रहे होंगे तभी उसने नादिर की 'अन्तिम कृपा' से अपने को बचाया। लाल किले से भागते समय उसने पहरेदारों की सहायता ली होगी। पहरेदारों में उस समय राजपूत जाट भी थे। उनमें से नूरबाई का सहायक 'कोई' जाट सैनिक उपन्यास का मोहन है। नूरबाई के किले से निकल भागने के मूल में जो प्रेरणा रही थी उसने नर्तकी-गायिका नूर के हृदय को

१. हिस्ट्री आफ़ इन्डिया एज़ टोल्ड बाई इट्स हिस्टोरियन्स (आठवाँ खण्ड)—इलियट एण्ड डाउसन…पृ० १२४ से १३९
२. लेटर मुग़ल्स (द्वितीय खण्ड)…पृ० ३७१

संसार के प्रति विरक्ति और व्रजभूमि के पारम्परिक आराध्य तथा कवि सूरदास, नन्ददास, रसखान के पदों के प्रिय नायक 'कन्हैया' में आसक्ति दी हो तो कोई आश्चर्य नहीं। वह दिल्ली से भाग कर कदाचित् वृन्दावन की कुंजों में गाती, नाचती अपने आप में खो गयी हो। ये सब व्याख्यात्मक सूत्र नूरबाई की कथा का निर्माण करते हैं।

मोहन की कर्कशा पत्नी रोनी, शुबराती तथा लुटेरे जाट चिन्तामन की कथायें कल्पित हैं।

निराश प्रेमी सादतखाँ नादिरशाह की लूट तथा बाजीराव और मस्तानी के प्रेम की कथायें इतिहास-प्रसिद्ध हैं। सादतखाँ दिल्ली सम्राट मुहम्मदशाह का मीर बख्शी था। नूरबाई पहले सादत की महफिल में थी। नूर की कीर्ति शहंशाह के कानों तक पहुँची और वह शाही हरम में दाखिल करली गयी। सादत को मुहम्मदशाह की यह मनमानी अखर गई। नादिरशाह को भारत पर आक्रमण के लिए आमन्त्रित करने वालों में वह भी था। बाद में नादिर के दुर्व्यवहार से तङ्ग आकर उसने आत्मघात किया था।

मुहम्मदशाह नादिरशाह द्वारा कर्नाल के निकट मानमर्दित हुआ था। नादिरशाह मुहम्मदशाह का 'मेहमान' बनकर दिल्ली के लाल किले में उसके साथ आया। उसने हर्जाने के रूप में बीस करोड़ रुपये चाहे। मुहम्मदशाह ने उसे नूरबाई भेंट की और चार हजार सुन्दर दासियाँ भी। नादिर ने भेंट स्वीकार कर ली किन्तु रुपयों की बात उसके ध्यान से नहीं उतरी। इन ही दिनों दिल्ली की प्रजा ने बलवा किया और नादिर के कुछ सिपाही मारे गये। नादिरशाह ने 'कत्लेआम' कराया और ५७ दिन दिल्ली में प्रलय का सा दृश्य उपस्थित कर ५ मई सन् १७३९ के दिन ईरान के लिए चल दिया। साथ में सत्तर करोड़ का सोना, जवाहर इत्यादि, तख्तताऊस, चार हजार दासियाँ, १३० मुन्शी, ३०० राज कारीगर, २०० लुहार, २०० बढ़ई और सङ्गतराश लेता गया। मार्ग में चिनाव नदी के किनारे पहुँचते-पहुँचते घोर वर्षा हुई। नदी में बाढ़ आई दो हजार ईरानी सिपाही बाढ़ में डूब मरे। आगे की यात्रा असम्भव हो गई। दास, दासियाँ इस गड़बड़ से लाभ उठाकर भाग निकले। ये तथ्य ऐतिहासिक ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक दिए गये हैं।[1] उपन्यास में ये तथ्य ज्यों के त्यों ग्रहण किये गए हैं।

---

१. दि इम्पीरियल ट्रेजरी आफ़ दि इंडियन मुग़ल्स—अब्दुल अजीज़—···पृ० ५५२ से ५५७, तथा हिस्ट्री आफ़ इंडिया···पृ० ७६ से ६८

१—इतिहास-प्रसिद्ध सूबेदार मल्हारराव होलकर की तिरसठ वर्षीया विधवा पुत्रवधू अहिल्याबाई इन्दौर का शासन भार सम्भाले है। वह न्यायप्रिय, धर्मप्रिय और कार्य-तत्पर है। उसकी एक दुर्बलता है—दूर के सम्बन्धी तुकोजी-राव के उच्छृंखल पुत्र मल्हारराव पर अत्यधिक स्नेह। वह मल्हार को अपना योग्य उत्तराधिकारी बनाने का निरर्थक स्वप्न देखती है।

अहिल्याबाई राज्यकार्य में कभी ढील नहीं डालती। उसका व्यक्तित्व बहुतों को सद्कर्म की प्रेरणा देता है। रामपुरा-भानपुरा के चन्द्रावत राज-पूतों के विद्रोह का दमन करने अहिल्या स्वयं जाती है किन्तु वे पहले ही पराजित हो जाते हैं। अहिल्या वहीं धमनार की पहाड़ी की गुफाओं में स्थित बौद्ध विहार, मन्दिर और नवाली के मन्दिरों के दर्शन करती है। महेश्वर लौटने पर अपनी गूँगी सेविका सिन्दूरी की परिचर्या करती है और अपना धोती-जोड़ा उसे दान कर देती है। अहिल्या पुनः मान्धाता और ओंकारनाथ तीर्थों की यात्रा करती है। उसे अपनी दामाद की मृत्यु और पुत्री के सती होने का भारी आघात लगता है। वह दुष्ट मल्हार को बन्दी बनाकर कुशलगढ़ में रखती है। अहिल्या इस प्रकार की अनेक विषम परिस्थितियों से वीरता पूर्वक जूझती हुई परलोक सिधारती है।

२—मल्हारराव महत्वाकांक्षी, दुराचारी और दुष्ट युवक है। वह आत्म-हत्या का प्रपञ्च रच अहिल्याबाई की विशेष कृपा का भागी बनने का प्रयत्न करता है। बट्टूसिंह तथा आनन्दी की सहायता से लूटपाट की योजना बनाता है किन्तु उसे असफलता मिलती है। महेश्वर पहुँचकर अपनी माता रुक्माबाई से झगड़ता है और अहिल्या का कोपभाजन बनता है। सिन्धिया से टक्कर लेने जाता है किन्तु पराजित होकर लौट आता है। अहिल्या की सेविका सिंदूरी को छेड़ता है, उसे अहिल्या के भय के कारण भागना पड़ता है। अहि-ल्या की आज्ञा से वह बन्दी बनाया जाता है, इस प्रसङ्ग में आनन्दी उसके हाथों मारी जाती है। मल्हार को अपने इस हत्या-कर्म पर पश्चाताप होता है।

३—बट्टूसिंह, डाकू गनपतराव के नाम से डाके डालता है। जामघाट पर वह 'हाथ झुलाई कर' के रूप में यात्रियों से धन लेता है। वह मल्हार का सहयोगी बनता है किन्तु लूट के उद्योग में दोनों को सफलता प्राप्त नहीं होती उनमें परस्पर मनमुटाव हो जाता है। गनपत अहिल्याबाई के महान् व्यक्तित्व से प्रभावित हो उसकी शरण में जा अपने गत पापों का प्रायश्चित्त

करता है। उसमें असाधारण परिवर्तन होता है। अन्त में वह ओंकारनाथ तीर्थ में ईश्वर का स्मरण करते हुए प्राण त्यागता है।

४—आनन्दी गनपतराव के साथ वन में रहती थी। मल्हार के सम्पर्क में आने पर वह उसके प्रति आकृष्ट होती है किन्तु उपेक्षिता होने पर उसकी शत्रु बन जाती है। गनपत उसके (आनन्दी के) विवाह का उपक्रम करता है। वैवाहिक प्रथा के मतभेद पर विवाह स्थगित हो जाता है। वह विवाह नहीं करती। एक बार चोरी का माल बेचती हुई आनन्दी पकड़ी जाती है और मल्हार की निष्ठुरता के कारण दण्डित होती है। वह मल्हार को बन्दी बनाने में सहायता देती है और उस पर आक्रमण करने का अभिनय करती है। वास्तव में उसके हृदय में मल्हार के लिए अब भी स्थान है। इस घटना में वह मल्हार के हाथों मारी जाती है।

× × ×

(अ) मुख्य कथा के विषय में पहले चर्चा की जा चुकी है, इस कथा में अहिल्या के चरित्र के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालने वाली परस्पर असम्बद्ध अनेक घटनायें संकलित हैं। इनसे अहिल्या की न्यायप्रियता, प्रबन्धपटुता, प्रभावशीलता, उदारता, अन्धविश्वास, दुष्टों को दण्ड देते समय उग्रता, अतिवात्सल्यजन्य दुर्बलता आदि विशेषताओं का परिचय मिलता है। उपन्यास का यदि कोई ध्येय है तो यही कि तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियों में एक स्त्री का व्यक्तिगत गुणों और संस्कारगत दुर्बलताओं के साथ भी अपूर्व शासनकार्य का प्रदर्शन। कथा में घटनाओं का संकलन मात्र है। उसमें 'अन्त' को दृष्टि में रखते हुए किसी सुनिश्चित योजना का अभाव है। कथा सुयोजित न होने के कारण उसकी चरम परिणति कहीं नहीं हो पाती और न उसके अन्त की घटना या दृश्य में पाठकों को प्रभावित करने की कोई शक्ति है। अन्तिम दृश्य अहिल्या के देहावसान का है, किसी घटना की सूचना मात्र जैसा।

मल्हारराव की कथा उच्छृंखल, दुराचारी युवक का चित्र प्रस्तुत करती है। मल्हार को आनन्दी की हत्या पर खेद करते दिखा कर उसकी कथा को 'अन्त' का स्पर्श देने का प्रयत्न किया गया है। यह कथा अहिल्या की वात्सल्य सम्बन्धी दुर्बलता को प्रकाश में लाती है और आनन्दी की कथा का आधार प्रस्तुत करती है।

बट्टूसिंह की कथा एक डाकू के हृदय-परिवर्तन की द्योतक है। उसके हृदय-परिवर्तन की घटना में स्वाभाविक विकास का अभाव है। इस चरित्र-

परिवर्तन की अतिनाटकीयता पर आगे चलकर प्रकाश डाला गया है। बदूदूसिंह अहिल्या की प्रभावशीलता और प्रेरकशक्ति को स्पष्ट करने में सहायक है।

आनन्दी की कथा मल्हार से सम्बन्धित है और उसकी कथा को अन्तिम मोड़ प्रदान करती है।

(ब) अहिल्याबाई की जीवन सम्बन्धी घटनायें इतिहास-विख्यात हैं। अहिल्या के मन्दिर-निर्माण और अन्य धर्मकार्यों के महत्व के विषय में इतिहासकारोंमें मतभेद है। एक लिखते हैं कि इन कार्यों में अहिल्या ने अन्धाधुन्ध व्यय किया, और सेना नये ढङ्ग पर संगठित नहीं की। तुकोजी होल्कर की सेना को उत्तरीय अभियानों में अर्थ संकट सहना पड़ा, कहीं कहीं यह आरोप भी है।[१] किन्तु एक अन्य इतिहासकार ने प्रमाण देते हुए लिखा है कि तुकोजीराव होल्कर के पास बारह लाख रुपये थे जब वह अहिल्या से रुपये की माँग कर रहा था और संसार को दिखलाता था कि वह रुपये पैसे से तङ्ग है।[२] उपन्यास में दूसरे मत को मान्यता दी गई है।

तत्कालीन अन्धविश्वासों और रूढ़ियों का वर्णन उपन्यास में आया है। इनमें एक विश्वास था मान्धाता के निकट नर्मदा नदी के समीप स्थित पहाड़ी से कूदकर मोक्ष के इच्छुकों का प्राण त्याग करना।[3] दूसरा विश्वास था उज्जैन स्थित सिद्धवट पर मनोरथ की सिद्धि के लिये बलि चढ़ाना। अहिल्या को प्रेषित उसकी पुत्री के पत्र में उल्लेख है कि उसके आदेशानुसार अवन्तिका जाकर सिद्धवट पर बलि चढ़ा दी गई।[४]

मल्हार से सम्बन्धित घटनाओं का उल्लेख 'इतिहासाचीं साधनें', के अठ्ठारह पत्रों में मिलता है (पत्र-क्रम-संख्या २६०, २६२, २६८, २७३, २७७, २७९, २९५, ३०१, ३०३, ३१५, ३१७, ३३२, ३३९, ३४७, ३९१, ३९९, ४०२, ४०३) इसी ग्रन्थ के पत्रों में अहिल्याबाई की शासन-व्यवस्था, दानशीलता और विनय का परिचय मिलता है।

गनपतराव ऐतिहासिक चरित्र है। अपने दुष्कर्मों के प्रायश्चित्त स्वरूप

---

१. न्यू हिस्ट्री आफ़ दि मराठाज़ (खण्ड ३) श्री जी० एस० देसाई—पृ० २११

२. लाइफ़ एण्ड लाइफ़ वर्क आफ़ देवी अहिल्याबाई होलकर—बी० वी० ठाकुर—पृ० १५५

३. तपोभूमि—पृ० ३०६

४. इतिहासाचीं साधनें, भाग १...मुक्ताबाई का पत्र अहिल्याबाई को—क्रम सं० २३०, ता० १६।४।१७८९

उसने जामघाट पर जो धर्मशाला बनवाई थी उसका स्थानीय इतिहास में उल्लेख है ।[१] सिन्दूरी, आनन्दी की घटनायें वास्तविक हैं किन्तु उपन्यास में उनके नाम बदल दिए गये हैं ।

कुछ निष्कर्ष

समस्त कथाओं पर विस्तारपूर्वक विचार के उपरान्त कुछ निष्कर्ष सामने आते हैं । किसी एक समस्या को लेकर उपन्यासों में मुख्य कथा चलती है । कथा में पदार्पण करते ही समस्या का स्वरूप निखरने लगता है, शनैः शनैः समस्या सम्बन्धी धाराओं का संघर्ष घनीभूत हो उठता है और कथा किसी निश्चित विन्दु पर तन कर परिणाम की ओर शीघ्रता से दौड़ती है । कथा की चरम परिणति उस निश्चित बिन्दु या परिणाम पर पहुँच कर होती है । समस्या से बन्धे रहने के कारण कथा का स्वरूप सुगठित रहता है । कथा के प्रारम्भ में पाठक की जिज्ञासा-तृप्ति, मध्य में घटनाओं तथा संघर्ष के वेग से उत्पन्न उत्सुकता, संशय तथा अन्त में हृदयस्पर्शी प्रभाव रहता है । दुःखान्त कथानकों के अन्त में एक चमत्कार है, घटनाओं के पट से क्षण भर कौंध कर कल्पना-नेत्रों में छा जाने वाली बिजली जैसा । गढ़ कुण्डार, प्रेम की भेंट, बिराटा की पद्मिनी, झाँसी की रानी, अचल मेरा कोई, के 'अन्त' से पाठक का सहज ही साधारणीकरण हो जाने के कारण वह उन कथाओं की अनुभूति की तीव्रता में जकड़ कर रह जाता है । बुन्देलों द्वारा खंगार-नाश, नदी किनारे मुस्कराती चाँदनी में तारा, दिवाकर का अमर मिलन, अन्तिम श्वासें गिनता धीरज, गीत की अन्तिम पंक्ति, 'उड़ गये फुलवा रह गयी बास' गाकर चट्टान से कूद कर बेतवा में समाती कुमुद के पजनों की छम्म, अनेक संघर्षों में जूझकर इहिलोक की यात्रा समाप्त करती लक्ष्मीबाई के ओठों से प्रस्फुटित 'दहति···नैयं···पावकः···' शब्द, और कुंठिता कुन्ती की आत्मघात में चलाई बन्दूक की धाँय—ये सब के सब अपना तीक्ष्ण प्रभाव उसके हृदय पर पत्थर पर की लकीर जैसा छोड़ जाते हैं। वे दृश्य,वे ध्वनि, वे मुद्रा और वह अनुभूति कथा भुला देने भी पर एक कौंध,एक झलक बनकर पाठक के हृदय-कोष में सुरक्षित रह जाती हैं ।

वर्मा जी के पास कहने के लिए अनेक नवीन कथायें हैं । किन्तु समान बीजों के आधार पर विभिन्न चरित्रों तथा विभिन्न परिस्थतियों में विकसित कथाओं को भी उपन्यासों में स्थान मिला है । उन समान कथाओं में प्रत्येक

१—इंदौर गजेटियर···पृ० २८५

स्थल पर कुछ न कुछ नयापन है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है मौलिकता बहुत कुछ कथा प्रस्तुत करने की विधि पर निर्भर करती है क्योंकि कथा-सूत्र मूल रूप से नवीन कम ही होते हैं।

लगन, प्रेम की भेंट, प्रत्यागत, मुसाहिबजू, कभी न कभी के अतिरिक्त शेष सभी उपन्यासों के कथानक पेचीदा हैं। मुख्य कथा के साथ एक या एक से अधिक प्रासङ्गिक-पताका चलती है। इन दोनों कथाओं में रङ्ग भरने के लिए प्रकरी कथायें भी रहती हैं। इन सब कथाओं का परस्पर सम्बन्ध प्रायः सुयोजित रहता है। घटनायें सम्भवता के क्षेत्र का उल्लंघन नहीं कर पातीं फिर भी उनमें कुतूहल और 'अप्रत्याशित' का समावेश रहता है। उनकी रोचकता बनी रहती है। कथाओं की रोचकता का सर्वाधिक श्रेय है उनके वेग तथा तल में पैठी अनुभूति की तीव्रता को। कथा का क्षेत्र एक निश्चित परिधि में रहने के कारण ये गुण उसमें स्वतः निखर उठते हैं।

यहाँ उपन्यासों में समान कथाओं का विश्लेषण कर लेना श्रेयस्कर होगा।

समान कथा सूत्र

[अ] प्रणय-कथायें

वर्मा जी के उपन्यासों में प्रणय-कथाओं को मुख्य स्थान मिला है। प्रेमी प्रेमिका में परस्पर प्रणय की कथायें प्रायः उनके सभी उपन्यासों की स्पन्दन हैं, उन्हें गति प्रदान करती हैं। मानव-हृदय अपने आप में एक सृष्टि संजोये हुए है जो बाह्य प्रभावों और प्रहारों से पूर्णतया स्वतन्त्र है। भले ही किसी के शरीर पर अधिकार प्राप्त कर लिया जाय किन्तु उसके हृदय को बलात् वश में करना असम्भव है। हृदय पर छा जाने, उसे वश में कर लेने का सौभाग्य बिरलों को ही प्राप्त होता है। कोई नैसर्गिक शक्ति ही अपने वरद् हस्त की छाया में किसी सौभाग्यशाली को हृदय-मन्दिर में प्रवेश करा 'प्रिय' के दुर्लभ आसन पर प्रतिष्ठित कराती है। प्रेमी और प्रेमिका परस्पर आकृष्ट हों भले ही वे किसी धर्म, जाति या वर्ग के हों एक दूसरे के हृदय-राज्य पर छा जायें, अधिकार प्राप्त कर लें यही उनकी सफलता है। हृदय का असीम राज्य प्राप्त कर लेने के बाद शरीर के सीमित मिलन का क्या मूल्य। साधारण भौतिक जीवन के धरातल से तनिक उठकर भावनाओं को छूते हुए स्तर पर प्रेमी, प्रेमिका के चिर हृदय-मिलन तथा आत्मिक सम्बन्ध की कथायें इन उपन्यासों की प्राण हैं।

ऐसी समान कथाओं का ९ उपन्यासों में १४ स्थलों पर प्रयोग किया गया है। 'गढ़ कुण्डार' में तारा और दिवाकर के प्रणय की कथा २६ वें परिच्छेद

से लेकर उपन्यास की मुख्य कथा को काटती-पीटती उससे बचती-सिमटती अन्त के ७७ वें परिच्छेद तक चलती है। दिवाकर कायस्थ है और तारा ब्राह्मण पुत्री है। मन्दिर और पूजन के पवित्र वातावरण में दोनों के हृदय में पुनीत प्रेम का उदय होता है। दोनों में एक दूसरे के लिए प्राणोत्सर्ग करने की होड़ घर कर जाती है। घटनाचक्र के कारण दूर पड़ जाने पर भी उनके हृदय का छलकता हुआ प्रेम और पावन स्मृति की टीस उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। और दोनों इस समाज के कठोर बन्धनों से बच योग-साधना के लिए अन्यत्र चले जाते हैं। उनके लिए शारीरिक मिलन गौण है। यह कथा केवल १५ परिच्छेदों में है अर्थात् सम्पूर्ण उपन्यास के पाँचवें भाग से भी कम कलेवर में इसका विस्तार है। कथा के संक्षिप्त कलेवर तथा उसके उपन्यास के उत्तरार्द्ध में विकसित होने का मुख्य कारण उपन्यास का उद्देश्य है। 'गढ़ कुण्डार' का 'उद्देश्य' है खंगारों के अधिकृत कुंडार का पतन। खंगारों के पतन का कारण है खंगार राजकुमार नागदेव के विवाह के प्रश्न पर खंगारों तथा बुन्देलों में घोर मतभेद। नागदेव के बुंदेला पुत्री हेमवती के प्रति असफल प्रेम की कथा को स्वभावतः उपन्यास में प्रमुख स्थान मिलता है। उसका प्रारम्भ चौथे परिच्छेद से है। नागदेव के साथ उसके मित्र अग्निदत्त के असफल प्रेम की कथा है। अग्निदत्त में तत्कालीन समाज के कठोर बन्धनों की प्रतिक्रिया है और वह नागदेव के नाश का कारण बनता है। अग्निदत्त की कथा उपन्यास में प्रासंगिक है। अतः उसके प्रेम का संकेत तीसरे परिच्छेद में मिल जाता है और कथा का विकास २२ वें परिच्छेद से प्रारम्भ होता है। तारा और दिवाकर की कथा के द्वारा प्रेम के आदर्श स्वरूप की स्थापना का प्रयत्न किया गया है। मुख्य कथा, प्रासंगिक कथा से इस प्रसंग का कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः उपन्यास में इसका प्रसार २६ वें परिच्छेद से किया गया है। साथ ही यह कथा उपन्यासकार की प्रिय तथा उसके आदर्श से सम्बन्धित होने के कारण अन्त तक चलती है और अन्तिम परिच्छेद में समाप्त होकर पाठकों के हृदय पर गहरे चिह्न छोड़ जाती है।

दूसरी प्रणय कथा है 'लगन' उपन्यास में रामा और देवीसिंह की। रामा और देवीसिंह का विवाह हो जाने पर भी दोनों के पिताओं के लोभ और मत-भेद के कारण उनका भविष्य अन्धकारमय हो जाता है। दहेज के प्रश्न पर सम्बन्धियों के मनमुटाव तथा वर और वधू की एक दूसरे को प्राप्त करने की लगन पर उपन्यास की कथा आधारित होने के कारण रामा और देवीसिंह के प्रणय को उपन्यास में प्रधानता मिली है। यह कथा दूसरे परिच्छेद से लेकर उपन्यास के अन्तिम परिच्छेद २३ तक चलती है।

'कुण्डली चक्र' मे पूना तथा अजित की प्रेमकथा ८ से लेकर ७१ वे परिच्छेद तक चलती है। अजित रत्नकुमारी से प्रेम मे सफलता न मिलने के कारण निराश मन रहता है। पूना से भेंट होने पर उसके हृदय मे अनुराग तुरन्त उत्पन्न नही होता। पूना मन ही मन अजित को अपना आराध्य बना चुकी है। भुजबल बलात् पूना से विवाह करना चाहता है वह रक्षा के लिए अजित के पास सन्देश भेजती है। पूना तथा अजित के एकान्त मे मिलने पर दोनो के हृदय मे प्रेम की धारा प्लावित हो उठती है। अन्त मे उनका विवाह हो जाता है। ७ वे परिच्छेद मे उनकी भेंट होने पर भी प्रणय का विकास उपन्यास के उत्तरार्द्ध में हो पाता है।

सरस्वती और धीरज का प्रणय 'प्रेम की भेंट' की कथा का मुख्य आधार है। धीरज सरस्वती के प्रति शनै शनै आकृष्ट होता है, सरस्वती भी अपने हृदय मे धीरज को आसीन कर लेती है चुपचाप। उजियारी की विषमयी खीर खाकर मृतप्राय धीरज अचेतावस्था मे प्रेम-प्रलाप करता है। सरस्वती की अवस्था भी गम्भीर हो उठती है। उसे सन्निपात हो जाता है। उस अवस्था में वह निस्सकोच धीरज के प्रति अपने प्रेम को प्रकट कर देती है। यह कथा उपन्यास मे पहले परिच्छेद से लेकर अन्तिम परिच्छेद, ३२ तक चलती है।

'विराटा की पद्मिनी' म कुमुद और कुजरसिह के प्रणय की कथा पमुख है। कुमुद को लोग देवी के अवतार के रूप मे स्वीकार करते है। वह स्वभाव से अत्यन्त गम्भीर है। ससार से निराश और जीवन मे असफल कुजरसिह के हृदय मे कुमुद के प्रति प्रेम का उदय होता है। उसके अन्तर मे केवल एक कामना है कुमुद के लिए प्राणो को न्योछावर कर देने की। चारो ओर से आक्रमण की विपत्ति के बादल घिर आने पर उनके जीवन के कुछ क्षण शेष रह जाते है। इस अवसर पर कुमुद कुजर के गले मे माला डाल कर अपना प्रेम प्रकट करती है। कुजरसिह को मानो विश्व का साम्राज्य मिल गया। कुजरसिह देवीसिह के हाथो मारा जाता है और कुमुद जल-समाधि लेती है। उपन्यास मे प्रेम की यह सूक्ष्म कथा कौशल से पिरोयी गयी है। इसका प्रारम्भ दूसरे परिच्छेद से होकर अन्त अन्तिम परिच्छेद १०६ मे होता है। किन्तु कथासूत्र केवल १० परिच्छेदो (२, ३, ५, ४६, ५४, ६७, ८४, ९३, १०५ तथा १०६ परिच्छेद) मे फैला हुआ है। कुमुद मे दैवी तत्वो का भी आरोप है। ऐसी अवस्था में कुञ्जर-कुमुद के प्रेम का विकास यदि पहले कर दिया जाता तो कमुद के गम्भीर, गूढ व्यक्तित्व की रक्षा कठिन हो जाती।

'झाँसी की रानी' मे तीन प्रणय-कथाये है, मोतीबाई-खुदाबख्श, नारायण शास्त्री-छोटी तथा रघुनाथसिह-मुन्दर की। नारायण शास्त्री ब्राह्मण है और छोटी महतरानी। इस चौका देने वाले वर्णाश्रम-विरुद्ध सम्बन्ध की सूचना से अचकचा कर राजा गगाधरराव दोनो को देश-निष्कासन की आज्ञा देता है। समाज द्वारा निष्कासित होने पर भी दोनो साथ रहकर सन्तुष्ट है। जीवन की कोई भी बाधा उन्हे उनके पथ से विचलित नही कर पाती। मोतीबाई-खुदाबख्श तथा रघुनाथसिह मुन्दर मे, एक दूसरे के हृदय मे स्थान पा जाने का सन्तोष है। झाँसी के स्वतन्त्र्य-सग्राम मे जूझ मरने के लिये प्रणय उन्हे प्रेरित करता रहता है। उनका अन्त भी युद्ध मे होता है। ये तीनो कथाये मुख्य कथा मे प्रकरी के रूप मे प्रयोग की गयी है। इन का सकेत मात्र उपन्यास मे यत्र-तत्र मिलता है।

'कचनार' मे कचनार-दलीपसिह तथा कलावती-मानसिह के प्रणय की कथाये है। कचनार दलीपसिह को विवाह के दहेज मे दानस्वरूप मिली है। पहले दलीपसिह उसे वासना की सामग्री समझता था किन्तु घटनाचक्र मे पडकर वह अनेक विपत्तियाँ उठाने पर कचनार के अपने प्रति प्रेम का मूल्याकन कर पाता है। यह प्रणय कथा उपन्यास की मुख्य कथा है किन्तु मानसिह-कलावती की प्रासगिक कथा के उपन्यास के पूर्वार्द्ध मे प्रमुख रहने के कारण इसका प्रारम्भ चौथे परिच्छेद मे होने पर भी, विधिवत् विकास कचनार तथा दलीपसिह के गुसाँइयो के अखाडे मे पुन मिलने पर ३२ वे परिच्छेद से होता है और कथा अन्तिम परिच्छेद ७३ तक चलती है। कलावती दलीपसिह की विवाहिता है। उसे विवाह कर लाने के लिये दलीपसिह की कटार के साथ मानसिह जाता है। कलावती तथा मानसिह के हृदय मे अनुराग जन्म लेता है और गहरी जडे पकड लेता है। दलीपसिह के देहान्त के पश्चात् कलावती मानसिह से पुनर्विवाह कर लेती है। यह कथा पहले परिच्छेद से प्रारम्भ होकर २६ वे परिच्छेद तक पूर्णतया विकसित हो जाती है। दलीपसिह की प्रेम कथा के हेतु परिस्थितियाँ प्रस्तुत करने के लिये उपन्यासकार कलावती—मानसिह की कथा को उससे पूर्व भूमिका के रूप मे स्थान प्रदान करने के लिये बाध्य हो जाता है।

'मृगनयनी' मे अटल और लाखी के प्रेम की कथा है। अटल गूजर है और लाखी अहीरिन। दोनो के अन्तर्जातीय सम्बन्ध के मार्ग मे अनेक प्रकार की बाधाये आती है। अन्ततोगत्वा दोनो का विवाह हो जाने पर भी मरते समय लाखी के हृदय मे समाज द्वारा मिला त्रास तथा अपमान शूल की भाँति चुभता रहता है। इस कथा के द्वारा उपन्यासकार तत्कालीन सामाजिक रूढि-

वादिता तथा निष्ठुरता का चित्रण करना चाहता है। उपन्यास के उद्देश्य की एक महत्वपूर्ण अग होने के कारण अटल और लाखी की प्रासगिक प्रणय कथा को 'मृगनयनी' मे प्रमुख स्थान मिला हे। यह दूसरे परिच्छेद से प्रारम्भ हो उपन्यास के पूर्वार्द्ध मे यथेष्ट प्रसार पाती है। और समाप्त भी उपन्यास के अन्त से कुछ पूर्व ६८ वे परिच्छेद मे होती हे।

'टूटे काटे' मे परिस्थितियो से विवश हो सुप्रसिद्ध नतकी नूरबाई को साधारण सिपाही मोहन का साथ करना पडता है। शनै शनै दोनो परस्पर आकृष्ट होते ह और उनका प्रणय आत्मिक मिलन के स्तर को छू-छू लेता है। नूरबाई पत्नी के रूप मे मोहन के साथ वृन्दावन मे रहती हैं। मोहन तथा नूरबाई के मिलन की भूमिका उपन्यासकार को प्रस्तुत करनी पडती है। मोहन अपनी कर्कशा पत्नी रोनी से सतप्त हो धनोपार्जन की चिन्ता मे घर-बार छोड सेना मे भर्ती होता हे। फिर वह जीवन से ऊबा हुआ वृन्दावन, पावन तीथ के अचल मे शेष दिनो को व्यतीत करने के स्वप्न देखता हे। उधर नूरबाई ईरान मे नादिरशाह के कठोर चगुल मे बन्दिनी चिडिया की भाँति फडफडाने की आशका से हरम को छोड निकल भागती हे। उसकी केवल एक ही साध हे, जीवन के शेष दिनो मे इस धमाचोकडी वाले ससार से दूर किसी कोने मे बैठ विगत जीवन के कलुषित पृष्ठो को सदा के लिये पलट कर किसी शान्तिमय नवीन परिच्छेद को खोले। अपने बीते दिनो से असतुष्ट, किसी आशामय भविष्य की कल्पनाओ मे खोये हुए मोहन और नूरबाई की भेट होती है। दोनो को अपनी कल्पना का सुनहरा ससार ढूँढ निकालने मे बिलम्ब नही लगता। मोहन तथा नूरबाई के प्रणय की आधारभूमि तैयार करने के कारण उनकी कथा उपन्यास मे ३७ वे परिच्छेद से प्रारम्भ होकर उपन्यास के उत्तरार्द्ध मे छायी रहती है।

'टूटे काँटे' मे मस्तानी तथा बाजीराव के प्रेम की भी कथा है। इसे कथा की अपेक्षा प्रसग या चर्चा कहना अधिक उपयुक्त होगा। उपन्यास के कथानक से इसका सम्बन्ध न होने के कारण इसका सकेत मात्र १३ तथा ६४ वे परिच्छेद मे मिलता है। मस्तानी का बाजीराव से प्रेम है। वह बाजीराव की प्रेरणा शक्ति हे। अन्त मे मस्तानी के बन्दी हो जाने पर बाजीराव निराश हो असमय काल कवलित हो जाता है और चिर वियोग मे मस्तानी प्राण त्याग कर अपने प्राणप्रिय से परलोक मे जा मिलती है।

[ब] असफल, एकागी प्रेम की कथाये

असफल प्रेमी तथा प्रेमिकाओ के एकागी प्रेम की १० कथाये ९

उपन्यासो मे आयी है। इनमे एक पक्ष दूसरे के लिये हृदय और आँख बिछाये उसे अपना सब कुछ समर्पण करने के लिये तत्पर बैठा है। केवल अपने प्रिय को प्राप्त करने या प्रिय की एक मृदुल मुस्कान पर उसके सुख का ससार निर्भर है। उसका अन्तर बार-बार कहता है कि प्रिय कभी न कभी इस सूने हृदय मन्दिर मे आयेगा। वह उसके स्वागत में आशाओ और कल्पनाओ के कोमल, मनोहर फूल बिछाये धडकते हृदय से प्रतीक्षा की घडियाँ गिनता रहता है किंतु अपने मन कुछ और कर्ता के कुछ और ! अभागे प्रेमी की प्रतीक्षा, प्रतीक्षा ही रह जाती है। प्रिय उसकी ओर आँख उठाकर नही देखता, एक प्यारी चितवन भी उस पर डालकर उसे अनुगृहीत नही करता। वह अपनी धुन मे मस्त, अपनी परिस्थितियो मे उलझा हुआ स्वागत मे प्रेमी द्वारा बिछाये हुए फूलो को कुचलता, मसलता आगे बढ जाता है। प्रेमी की आशाओ के भग्न खडहरा मे उसे क्या लेना ! असफल निराश कुंठित प्रेमी कभी भयकर हो प्रतिक्रिया करता है। कभी रो-रो कर जीवन काटता है और कभी आत्म-हत्या कर अपने विषादमय जीवन की पूर्णाहुति दे देता है।

'गढ कुंडार' में नागदेव हेमवती के सौदर्य को निरख, और उसके द्वारा प्रेम की स्वीकृति मिल जाने के भ्रमवश आशा और उमग के ज्वार मे डूब जाता है। उसे आसपास की प्रत्येक वस्तु गाती-गुनगुनाती, खिलखिलाती जान पडती है। किंतु अभागे नागदेव की आशा अधकारमयी रात्रि जैसी है जो हेमवती की अवहेलना रूपी सूर्य के उदय पर छिन्न-भिन्न हो जाती है। कहाँ नीच जाति का खगार नागदेव और कहाँ बुन्देला पुत्री हेमवती ! नागदेव को अपने पैरो के नीचे की धरती खिसकती-सी जान पडती है। नागदेव की उमग, उत्साह और सौजन्य क्षण भर मे तिरोहित हो जाते है। विवेक और समर्पण की भावना उससे विदा ले जाती है। उसमे प्रतिक्रिया उद्बुद्ध हो प्रचण्ड रूप धारण कर लेती है। अन्त मे उसे अपने आप को सुरा मे डुबोकर खो जाना पडता है। नागदेव का असफल एकागी प्रणय 'गढ कुण्डार' की मुख्य कथा है।

'कुण्डली चक्र' मे अजित रत्नाकुमारी से प्रेम का प्रत्युत्तर स्पष्टतया प्राप्त न कर पाने तथा ललित द्वारा अपमानित होने पर निराशा के सागर मे गोते लगाने लगता है। उसमे विवेक और समर्पण की भावना बनी रहती है। वह रत्नाकुमारी को सर्वदा सुखी रखने के हेतु उसके दुष्ट, धूर्त पति भुजबल को भी कभी कष्ट न पहुचाने का निश्चय करता है। आगे चल कर पूना के प्रति आकृष्ट होने तथा उससे विवाह कर लेने पर अजित विगत भावुकता पर

हस कर रतन को उसका फोटो वापिस कर देता है। यही असफल प्रेम की एक ऐसी कथा है जो अन्त मे सुलझ कर सुखद मोड ले पाती है।

'प्रेम की भेंट' मे उजियारी धीरज से प्रेम करती है। उसके प्रेम मे गहनता कम, प्रचण्डता अधिक है। वह माग से सरस्वती का रोडा हटाने के हेतु उसके लिए विषमयी खीर बनाती है। दैवात् धीरज खीर खाकर उजियारी के घातक वार का लक्ष्य बनता है। यह कथा उपन्यास की मुख्य कथा, धीरज तथा सरस्वती के प्रेम से उलझी होने के कारण दूसरे परिच्छेद से प्रारम्भ हो अपना प्रभाव अन्तिम परिच्छेद तक रखती है।

'विराटा की पद्मिनी' मे गोमती होने वाले पति देवीसिह पर अपना सब कुछ मन ही मन न्योछावर कर चुकी है। भले ही फेरे पडकर विवाह की रस्म घटनाचक्र के कारण पूरी होने से रह गई हो। अकिंचन देवीसिह दलीपनगर की राजगद्दी प्राप्त कर विगत जीवन को सदा-सदा के लिए भूल जाता है। देवीसिह द्वारा की गई उपेक्षा सुनहले स्वप्नो के ससार मे खोयी मानिनी गोमती के कुसुम जैसे कोमल हृदय पर तुषारापात करती है। आशा-जलयान के डूब जाने पर निगल जाने वाली भीषण दुराशा की तरगो की गोद मे असमर्था, असहाया, अकिचना जीवन-यात्रिणी गोमती केवल मृत्यु की घडियाँ गिनने भर के लिए जीवित है। रामदयाल का समर्पण उसके स्तब्ध हृदय मे पुन स्पन्दन नही ला पाता। गोमती के अन्तर मे केवल एक साध है, देवीसिह के समक्ष आत्महत्या कर लेने भर की। उसकी जीवन-दीप-शिखा दम तोडती भी है देवीसिह के सामने। कथा का कलेवर सूक्ष्म है। यह केवल १४ परिच्छेदो मे प्रसरित है।

'कभी न कभी' मे मजदूरो के मेट के लीला के प्रति आकृष्ट होने की घटना भी ऐसी ही है। वह अपने मरुस्थल जैसे नीरस जीवन मे लीला रूपी निर्झर की कुछ छीटो की वर्षा की लालसा लिए है। लीला की उपेक्षा और देवजू के बीच मे आकर भर्त्सना करने पर मेट कुठित होकर रह जाता है। इस कथा का सूक्ष्म सूत्र केवल ५ परिच्छेदो मे है, कथा समुचित रूप से विकसित नही हो पाती है।

'झाँसी की रानी' मे ऐसी दो लघु कथाये है। जूही तात्या के प्रति आकृष्ट है। तात्या के दो मीठे शब्दो को सुनने के लिए उसका हृदय लालायित है। अन्त मे जूही को तात्या से प्रेम नही मिलता। तात्या तो कर्तव्य का पुतला मात्र है। उसे अपने स्वामी रावसाहब के आज्ञापालन और युद्ध के अतिरिक्त अन्य किसी से कोई लगाव नही। जूही मरते समय तक अपने आहत हृदय को सँभाले रहती है। दूसरी कथा है तोपची दूल्हाजू द्वारा अपनी सहकारिणी

सुन्दर पर प्रेम प्रकट करने तथा प्रत्युत्तर मे भर्त्सना प्राप्त करने की। सुन्दर की स्पष्ट अवहेलना तथा भर्त्सना से दूल्हाजू दुखी और क्षुब्ध हो जाता है। रानी लक्ष्मीबाई द्वारा अपमानित होने पर उसमे भयङ्कर प्रतिकार की भावना जाग्रत होती है। वह अग्रेजो से मिलकर झासी के पतन का कारण बनता है।

'अहिल्याबाई' मे आनन्दी मल्हारराव से प्रेम करती है। मल्हारराव की उपेक्षा तथा कुटिल व्यवहार पर भी उसके हृदय के किसी कोने मे मल्हार के प्रति प्रेम शेष है। वह मल्हार को बन्दी बनाने के लिए उस पर झूठा वार करती है। किन्तु मल्हार तुरन्त पिस्तौल द्वारा उसकी हत्या कर देता है। इस दुर्घटना के पश्चात् मल्हार को पश्चाताप होना है।

[स] प्रेम-त्रिकोण

चार उपन्यासो मे प्रेम-त्रिकोणो का प्रयोग है, एक स्त्री के दो प्रेमी या एक पुरुष की दो प्रेमिकाये हो जाने के कारण कथानक उलझ जाता है। कथानक की उलझन के निराकरण मे उपन्यासकार कौशल-प्रदर्शन का अवसर पाता है। इन प्रेम-त्रिकोणो मे असफल पात्र युद्ध मे पराजित सैनिक की भाँति भयङ्कर प्रतिशोध लेने या चुपचाप हथियार डाल जाने मे शुभ समझते है।

'प्रेम की भेट' मे धीरज, सरस्वती तथा उजियारी का प्रेम-त्रिकोण मूल कथा का प्रमुख अङ्ग है। उजियारी सरस्वती को विषमयी खीर खिलाकार अपनी राह का काँटा निकालना चाहती है किन्तु खीर धीरज द्वारा खा लेने पर उजियारी की दशा अपने हाथ अपने पैरो मे कुल्हाडी मार लेने वाले मूर्ख अभागे जैसी हो जाती है। विष के प्रभावस्वरूप धीरज की दशा शोचनीय होने पर व्याकुल रुग्णा सरस्वती स्पष्ट रूप से उसके प्रति प्रेम प्रकट करती है। और अचेत धीरज भी अपनी प्रेयसी सरस्वती से चिर मिलन के लिए इहि-लोक की यात्रा समाप्त कर देता है। उजियारी पूर्णतया पराजित हो हत्या के कलक की भागिनी भी बनती है।

'कभी न कभी' मे लीला, लछमन, देवजू का प्रेम-त्रिकोण है। लछमन देवजू को बडे भाई के समान मानकर उसे भाई ो अधिक स्नेह प्रदान करता है। उससे लीला का विवाह कराने का भरसक प्रयत्न करता है। शनै शनै लछमन लीला के प्रति आकृष्ट हो उसे चिर सहचरी बनाने के स्वप्न देखने लगता है। देवजू और लीला के सम्बन्ध की बात उसके ध्यान से उतरने लगती

है। देवजू को सन्ताप होता है। वह लीला को प्रभावित करने के लिए उससे छेड़छाड करने वाले मजदूरो से मारपीट और लीला पर प्रेम प्रकट करने वाले मेट की भर्त्सना करता है। प्रत्युत्तर मे देवजू को लीला की उदासीनता और अवहेलना मिलती है। इसी प्रश्न पर देवजू तथा लछमन के हृदय मे सुलगती हुई ज्वाला प्रचण्ड हो परस्पर झगडे का रूप धारण कर लेती है। निराशा और क्लेश मे डूबा हुआ देवजू अपनी हार स्वीकार कर स्वय क्षेत्र से हट जाने मे स्वाभिमान तथा मैत्री की रक्षा सम्भव समझता है। यहाँ हिंसा अथवा प्रतिशोध की भावना का स्थान स्व-नियन्त्रण तथा बलिदान ने ले लिया है।

'कचनार' मे कलावती दलीपसिंह की विवाहिता है किन्तु हृदय से चाहती है मानसिह को। दलीपसिंह तथा कलावती के मध्य अनुराग पनप नही पाता। सुहागरात के अवसर पर ही दोनो मे कहासुनी हो जाती है। दलीपसिह की आकर्षण-केन्द्र दहेज मे मिली दासी कचनार हो जाती है। किन्तु सघष बचाने के लिए इतना ही पर्याप्त न था। दलीपसिह, चोट खा मानसिह की घातक औषधि के फलस्वरूप गुसाँइयो के हाथ जा पडता है। धामोनी मे उसे मृत स्वीकार कर मानसिंह राज्य भार सम्भालता है और कलावती से पुनर्विवाह कर लेता है। अन्त मे जीवित दलीपसिंह के धामोनी लौट आने के समाचार को सुन कलावती निश्चय प्रकट करती है—'मै अपने राजा मानसिंह और अपने बच्चे के लिए प्राण देने को तैयार हू। अब मै नही डरती।' दलीपसिंह को उसकी कचनार मिल गयी है, ससार मे अन्य किसी की अपेक्षा उसे नही है। वह मानसिह को सम्मानपूर्वक धामोनी से विदा करते समय कलावती के सामने भी नही पडना चाहता। इन शब्दो मे अपनी उदासीनता प्रकट करता है—'मैं इन लोगो को अपना मुँह नही दिखलाऊँगा और न सामना करने दूँगा। जो कुछ किया गया वह बिल्कुल उचित था। ऐसा न करना ही अचम्भे की बात होती"।' इस कथा मे प्रेम-त्रिकोण के पूर्ण लक्षण तथा सामग्री होने पर भी उपन्यासकार सघर्ष बचाकर समस्या का शान्तिपूर्वक समाधान कर देता है।

चौथा तथा अन्तिम प्रेम-त्रिकोण है कुन्ती, अचल और सुधाकर का। इस कथा मे लालसा से पूर्ण, अतृप्त, नयी रोशनी की युवती कुन्ती का मनोविज्ञान विशेष महत्व रखता है। कुन्ती अचल के पास सङ्गीत सीखने जाती है। अचल का गम्भीर और प्रभावशाली व्यक्तित्व उसे मोहित कर लेता है। कुन्ती का सुधाकर से विवाह हो जाता है। वह सुधाकर जैसा रसिक और प्रेम की गगरी उड़ेल देने वाला पति पाकर सन्तोष का अनुभव करती है किन्तु

उसकी यह सन्तुष्टि क्षणिक है। पति-पत्नी का नित नयी नवीनता का प्रेमी चित्त असयम तथा कुन्ती के तीव्र स्वभाव के कारण समय पाकर परस्पर विरक्ति से भरने लगता है। सुधाकर कुन्ती से बचने लगता है और कुन्ती अचल के प्रति खोये हुए आकर्षण के पुनर्जागरण के करण शान्ति, सुख की खोज के अचल के पास स गीत सीखने जाने लगती हे। कुन्ती अचल का विधवा निशा से विवाह कर उसे सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करती है। अचल को जीवन मे सुख और सतोष मिलता है। किन्तु कुन्ती के अशान्त हृदय को चैन कहाँ। वह अचल के यहाँ पूर्ववत आवश्यकता से अधिक आती-जाती हे। सुधाकर कुन्ती के अचल के यहाँ आवागमन पर रोक लगाता है। कुन्ती के कुठित हृदय और स्वाभिमान को भारी ठेस लगती है। वह आत्म-हत्या कर लेती है। इस प्रेम-त्रिकोण मे विशेषता है कि दोनो प्रेमियो मे सीधा द्वन्द्व नही होता। यह द्वन्द्व प्रेमिका कुन्ती के अन्तर मे प्रविष्ट होकर उसका अन्तर्द्वन्द्व बन जाता है। मानिनी कुन्ती अपमान से सतप्त हो ब दूक की गोली से आत्म-हत्या कर लेती है। उससे पूर्व एक कागज पर लिख कर अचल तथा अपने सम्बध के विषय मे कुछ स्पष्टीकरण कर जाना चाहती है। कागज पर केवल लिख पाती हे—'अचल मेरा कोई ' आगे केवल बिगडी लकीर थी। आगे कुछ न लिखाकर उपन्यासकार कुती के अतिम समय मे भी अतर्द्वन्द्व की सूचना देता है। कदाचित् कुन्ती को, 'अचल मेरा कोई नही है' लिखने मे हिचक होती। मृत्यु के ममय असत्य वक्तव्य वह कैसे दे पाती।

[द] सफल दाम्पत्य जीवन

सफल दाम्पत्य जीवन की कथायें 'मृगनयनी' तथा 'सोना' मे मिलती है। 'मृगनयनी' मे मानसिंह मृगनयनी को विवाह कर लाता हे और अपनी प्रिय पत्नी पर प्रेम की वर्षा करने को आतुर है। मृगनयनी अपने सम्मान तथा परस्पर प्रेम की नीव सुरक्षित रखने के लिए सचेष्ट है। वैवाहिक जीवन मे सयम के महत्व को जानती है। स्वय को मानसिंह के साथ वासना के वेग मे डुबोती नही। ललित कलाओ के प्रेम पर बल देती है साथ ही कर्तव्य के प्रति भी मानसिंह को सचेष्ट करती है। दोनो का वैवाहिक जीवन सुखद है। मृगनयनी अपने पति की प्रेरणा बन उसके साथ वास्तविक आनन्द के मार्ग पर आ खडी होती है। ऐसी ही कथा 'सोना' मे अनूपसिंह तथा रूपा के वैवाहिक जीवन की है। घर मे दारिद्रय्-देवता का स्थायी वास है। मनमौजी स्वभाव वाले अनूप को जीविका की चिन्ता भी नही रहती। रूपा आग्रह कर उसे इस दिशा मे गम्भीर बनाने मे सफल होती है। पूजा-अर्चना के फलस्वरूप

दैवी चमत्कार से उन्हे धन राशि प्राप्त हो जाती है। रूपा अनूप के साथ विलास और वैभव की बाढ मे वह उठती है किन्तु शीघ्र ही स्थिर हो जाती है, इस दिशा मे वह अनूप को निरन्तर सचेत करती रहती है। धन चुक जाने पर किसी दैवी चमत्कार से वैभव वर्षा के स्वप्न देखने वाले अनूप को झकझोर कर जाग्रत् करना चाहती है। अन्त मे विवश हो रूपा किसी देव मन्दिर मे मजदूरिन का कार्य करने के लिए घर मे बिना कुछ कहे-सुने चल पडती है। अनूप उसे वापिस ले आता है। अनूप के नेत्र खुल जाते है, वह श्रम के मूलभूत महत्त्व को स्वीकार करता है। रूपा अपने पति को जीवन के वास्तविक आनन्द, श्रमप्रियता, से परिचित कराती है।

[इ] पति-सुधार

पति के अपरिपक्व स्वभाव के कारण वैवाहिक जीवन मे व्यतिक्रम उत्पन्न होने के पश्चात् घटनाचक्र मे उसके तप कर सुधरने की कथाये 'सगम' तथा 'प्रत्यागत' मे है। 'सगम' मे जानकी और उसके पति सम्पतलाल मे प्रेम है। सम्पत नशेबाज तथा अपने पारिवारिक उत्तरदायित्व के प्रति उदासीन है, दोनो मे कलह होता है। जानकी प्राय दुखी रहती है। सम्पत रुपया-प्राप्ति के हेतु स्त्रीवेश धारण कर पजाबी के हाथ निकता है। रहस्योद्घाटन होने पर घोर अपमान और क्लेश सहने के कारण उसमे परिवर्तन आता है। वह सुधरता है और अपनी गत भूलो पर पश्चाताप अनुभव करता है। 'प्रत्यागत' मे मगल का अपनी पत्नी सोमवती मे स्नेह है। मगल ठाली बैठने वाला चचल, उत्तरदायित्वविहीन युवक है। घर से रूठ कर बम्बई और मलाबार भाग जाता है। मलाबार मे बलपूर्वक मुसलमान बनाये जाने, घोर क्लेश, अपमान तथा विपत्तियो को झेलने पर उसमे गम्भीरता आती है। वह पत्नी के समक्ष अश्रुधारा बहाकर अतीत की भूलो का प्रायश्चित्त करता है।

[फ] असफल वैवाहिक जीवन

असफल वैवाहिक जीवन की कथाये पाच उपन्यासो मे मिलती है। पति, पत्नी मे किसी एक के चारैत्रिक दोष या कर्कशता के कारण इन कथाओ का विकास हुआ है। 'कुडली चक्र' मे रत्नकुमारी का भुजबल से विवाह हो जाने पर वह वैवाहिक जीवन के सुख, सन्तोष का अनुभव नही कर पाती। भुजबल रुपये का लोभी और वासना-लोलुप है। वह रुपया तथा जमीन-जायदाद हडपने के लिये ललित तथा शिवलाल को अपने जाल मे फाँसता है। वासना-पूर्ति के लिये पूना से बलात् विवाह करना चाहता है। रतन अपने पति की नीचता के प्रति उदासीन रहती है। अन्त मे भुजबल की योजनाओ के रहस्यो-

द्घाटन तथा उसके असफल होने पर ललित भुजबल को सुधरने का उपदेश देता है ।

'अचल मेरा कोई' मे कुन्ती तथा सुधाकर के असयमित रहने के कारण उनका वैवाहिक जीवन नीरस हो उठता है । सुधाकर नित्य नवीनता का इच्छुक है और कुन्ती का अशान्त चित्त अचल की ओर दौडता है । पति-पत्नी की परस्पर विरक्ति के दुष्परिणामस्वरूप कुन्ती आत्म-हत्या करती है । 'सोना' मे सोना लगडे वृद्ध-प्राय राजा धुरन्धरसिंह से विवाह कर अपनी अतृप्त इच्छाओ को गहनो तथा वस्त्रो की तीव्र पिपासा मे परिवर्तित कर देती है । राजा कामुक और प्रभाहीन है । सोना की तृष्णा के कारण दोनो का वैवाहिक जीवन भारस्वरूप हो जाता है । 'अमरबेल' मे तीव्र स्वभाव वाली हृष्ट-पुष्ट हरको की अपने चिडचिडे दुर्बल पति जोधा तथा क्रूर ससुरालवालो से नही पटती । वह मायके भाग आती है । जोधा के झगडे मे मारे जाने के कारण हरको को उससे मुक्ति मिलती है । 'टूटे काटे' मे कर्कशा रोनी अपने निर्धन पति मोहन का घर पर रहना दूभर कर देती है । क्षुब्ध मोहन घर छोड कर सेना मे भर्ती हो जाता है । अन्त मे वृन्दावन मे मोहन से भेट होने पर रोनी सुधरने का प्रयत्न करती है । वह यथासाध्य अपनी कर्कशता का दमन कर मोहन और नूरबाई के साथ रहती हे ।

[ज] मगलमय अन्त के प्रतीक स्वरूप-विवाह

उपन्यास के मगलमय अन्त के प्रतीक-स्वरूप विवाह करा देने की दो समान घटनायें 'सगम' तथा 'अमरबेल' मे मिलती है । 'सगम' मे रामचरण सुखलाल का अहीरिन से उत्पन्न पुत्र है । विधवा गगा सुखलाल की आश्रिता है । उपन्यास के अन्त मे सुखलाल की हत्या तथा भिखारीलाल की मुकदमे-बाजी आदि के चिन्ताजनक बादल छँट जाने पर कथा अनिश्चय, विषाद और अन्धकार के क्षेत्र से निकल शान्तिमय वातावरण मे आ टिकती है । उस समय कर्तव्यपरायण रामचरण और गगा का विवाह उपन्यास के मगलमय अन्त की शुभ सूचना है । 'अमरबेल' मे समाजविरोधी तत्वो के विलीन होने के साथ गाँव मे ग्रामसुधार तथा सहकारिता योजना के फलस्वरूप आयी हुई समृद्धि के प्रतीकस्वरूप अन्तिम परिच्छेद मे उत्साही कार्यकर्ता टहलराम और हरको का गठबधन दिखाया है । इन वैवाहिक सम्बन्धो की भूमिका के रूप मे कथा के मध्य मे यत्र-तत्र भावी पति-पत्नी के परस्पर आकर्षण का सूक्ष्म सकेत भी रहता है ।

३ अवशिष्ट वातावरण—(परम्परायें, किम्वदन्तियाँ तथा पुराने भवनो के खण्डहर तथा स्मारक चिह्न आदि) वर्मा जी के अधिकाश उपन्यासो का सबध प्राय बुन्देलखड से है। (इस विषय पर आगे चल कर विस्तार-पूर्वक विचार किया गया है) बुन्देलखण्ड के आज के वातावरण मे भी एक विशेषता है—उसमे पुरातन की गध। इस भूखड मे अनेक वीर राजा, सरदार और सामन्त हुये है। पहले यहाँ राज्य थे और अँगरेजी शासनकाल मे अनेक रियासते। रियासतो के निवासीगण आधुनिक सभ्यता से अब तक प्राय अछूते रहे है। वे अपने पुरखो के स्थान मे बसे हुए पुरातन परम्पराओ को पैतृक सम्पत्ति की भाँति हृदय-कोश मे सँजोये चले आ रहे है। वे निर्धन है, अपढ है और आज के युग की दृष्टि मे पिछडे हुए भी किन्तु उनकी गाँठ मे है राजा, सामन्तो और बुन्देलखण्डी साधारणजन की शौर्य, स्वामिभक्ति, देशप्रेम और स्वाभिमान की 'सनक' की अटूट कथायें। इस सम्पत्ति के प्रति उनके अन्तरतम मे आस्था और विश्वास है। उनकी उक्त आस्था ने बुन्देलखण्ड की जीर्ण हो रही परम्पराओ को थपकी दी है, बल दिया है।

बुन्देलखण्ड मे यत्र-तत्र बिखरे हुये ऐतिहासिक भवनो, चिह्नो और मूर्तियो के भग्नावशेष भी महत्व की सामग्री प्रस्तुत करते है। भग्नावशेषो के समीप-वर्ती स्थलो के निवासियो के पास उनसे सबधित जनश्रुतियो और किम्वदन्तियो का भरापूरा खजाना है। यही नही, निर्जन खण्डहरो की जीर्ण ऊँची-नीची दीवारे, आकाश से आँख मिचौनी करती टूटी-फूटी छते, ध्वस्त बुर्जे, उनमे घूमते-फिरते जगली पशु, पास बहते नदी-नाले, टौरियाँ-पहाडियाँ और जगल भावुक कथाकार के कान मे अपनी मूक भाषा मे बहुत कुछ कह देते है। इस वातावरण मे पहुँच कर कथाकार की उवर कल्पना यदि बीते युग के सजीव, साकार स्वरूप का पुनर्निर्माण कर पाये तो क्या आश्चर्य। कुडार का गढ, विराटा की पद्मिनी के शिला पर अकित पग-चिह्न, झासी, धामोनी, ग्वालियर के किले और राई की गढी आदि से उपन्यास की कथाओ मे बहुत कुछ सकलित किया गया है।

वर्मा जी की दृष्टि मे परम्परा का विशेष महत्व है। वे कहते है—

'परदेशियो के तोड-मरोड कर लिखे हुये इतिहास पटके खाये हुये उस चमकते हुये टीन के कनिस्टर के समान है जिसमे सुन्दर से सुन्दर चेहरा अपने को कुरूप और विकृत पाता है। परन्तु परम्परा अतिशयता की गोद मे खेलती हुई भी सत्य की ओर सकेत करती है। इसलिये मुझको परम्परा इतिहास से भी अधिक आकर्षक जान पडती है।'[1] वे अपने अभ्यास के अनुसार ऐति-

१. कचनार (परिचय)—पृ० ६

हासिक कथा के निर्माण मे इतिहास और परम्परा दोनो का उपयोग करते है।

४ **बीती घटनायें**—हमारे आस पास के ससार मे आये दिन अनेक घटनाये घटित होती रहती हैं। उनमे से बहुत सी मानव जीवन को कुछ सन्देश देती हे। उसे कुछ सिखाती है, उसका मनोरजन भी करती है। जन जीवन के महत्व की ये घटनाय इतिहास मे लिखी नही गयी और न कभी लिखी ही जायेगी, ये कथाकार की कल्पना को उद्दीप्त करने के साथ उसे कथा रूपी मूर्ति के निर्माण के हेतु ठोस मिट्टी भी प्रदान करती हे। कथाकार उस मिट्टी को जहाँ-तहाँ से एकत्र कर, काट कर, तराश कर एक नवीन सुगठित रूप प्रदान करता है। ऐसी घटनायें अनुभूत सत्य होने के साथ कोरी कल्पना से अधिक मनोरजक है। किसी ने ठीक कहा है, 'तथ्य कल्पना की अपेक्षा अद्भुत होता है।'

वर्मा जी ने विभिन्न स्थलो और विभिन्न कालो की असम्बद्ध घटनाओ को आवश्यकतानुसार एक लडी मे गूँथ कर सुयोजित माला का रूप दिया है। उनके हाथो एकत्रित घटनाओ के घोलमेल (प्रोसेस आफ एक्यूम्यूलेशन एण्ड एसीमिलेशन) द्वारा अनेक कथाओ का निर्माण हुआ हे, क्या ऐतिहासिक और क्या सामाजिक उपन्यासो में। वर्मा जी कोरी कल्पना के आधार पर निर्मित कथा साहित्य को महत्व प्रदान नही करते।[1]

५ **लोक कथायें**—जन समुदाय के हृदयो मे समायी हुई ये कथाये जीवन के सत्य का प्रतीकात्मक विधि से उद्घाटन करती हे। कथाओ को मनोविज्ञान, एव तर्कसगत रूप प्रदान करने पर वे आधुनिक पाठक को भी ग्राह्य हो जाती है। यह प्रयोग 'सोना' उपन्यास मे किया गया है।

---

१ शुरू से ही मेरा स्वभाव तथ्यो की खोज और उनसे आधार पर लिखने का रहा है। मेरा एक सूत्र है, अंग्रेजी मे—क्रिएटिव ट्रीटमेन्ट आफ एक्चुअलिटी—तथ्य या वास्तविकता की सृजनात्मक रचना। इसलिए हर उपन्यास या कहानी मे कोई न कोई छोटी बडी समस्या लुके-छिपे या कुछ खुले हुए रख देता हूँ नही तो कोरे फिक्शन के बारे मे मेरा भी वही मत समझिये जो हैररड निकरसन का है। मात्र मनोवैज्ञानिक चरित्रो के समावेश या यौनवासनाओ के उद्घाटन वाले फिक्सन का भविष्य तो क्या वर्तमान भी मुझे कुछ अच्छा नहीं जान पडता, क्योकि, मेरे मत मे, समाज के लिए उनकी उपयोगिता बहुत नहीं है। मैने अपने लिए जो ध्येय ४० वर्ष पहले स्थापित कर लिया था वह परिधि मे बढ़ा ही है। घटा नहीं है।

—वर्मा जी का पत्र, २८-१-१९५६

६ कल्पना—जैसा कि कहा गया है, वर्मा जी कोरी गल्प को विशेष महत्व प्रदान नही करते। फिर भी वे इतिहास, स्थानीय इतिहास, अवशिष्ट वातावरण, बीती घटनाओ तथा लोक कथाओ से एकत्रित सामग्री को सजाने, सवारने और उन्हे शृङ्खलाबद्ध एव सोद्देश्य रूप प्रदान करने मे कथाकार-सुलभ कल्पना का प्रयोग करते है। कल्पना उनके हाथो कुम्हार की मिट्टी का नही वरन् प्राय उसकी काट-छाँट करने वाली डोरी का काय करती है।

कुछ कल्पनाये उन्हे विशेष रूप मे प्रिय है, उन्हे वे किसी न किसी रूप मे उपन्यासो मे ला सजाते है। पूर्व किये गय समान कथाओ के विश्लेषण से उनकी कल्पना-शक्ति की यह देन स्पष्ट हो जाती है।

ऐतिहासिक उपन्यासो मे इतिहास

वर्मा जी के ऐतिहासिक उपन्यासो मे इतिहास के प्रयोग पर सक्षेप मे विचार कर लेना उचित होगा। 'गढ कुण्डार' मे मुख्य कथा का सूत्र ऐतिहासिक है, शेष कलेवर अन्य स्रोतो से सगृहीत। यहाँ इतिहास कथाओ मे हृदयग्राही रग भरने वाला साधन मात्र है। वर्मा जी ने स्वीकार किया है, 'इस उपन्यास की घटनाओ के परिचय के लिए और कुछ लिखने की आवश्यकता न होती, परन्तु उसमे यत्र-तत्र तत्कालीन इतिहास की चर्चा है, इसलिए यहाँ थोडा सा विशेष परिचय देने की आवश्यकता पडी।'[१] 'विराटा की पद्मिनी' की मुख्य कला देव और मनुष्य-चरित्र के बल और दुर्बलता के मिश्रण मे है। वर्मा जी को कुमुद परम्परा मे देवी के रूप मे मिली है। अन्धविश्वास की उस धारणा मे मानवसुलभ स्वाभाविकता ला रखने के लिए कुमुद के जीवन मे प्रणय की कल्पना की गयी है। प्रणय का पात्र कुजरसिह और उससे सबधित घटनाये अन्य काल और अन्य स्थल से लाकर यहाँ रख दी गई है। कुमुद के प्रसग मे कल्पना का यह योग मुख्य कथा को 'मिश्रित इतिहास' का रूप प्रदान करता है। बहुत सी सत्यमूलक घटनायें अनेक कालो से उठाकर एक ही समय की लडी मे गूँथ दी गयी है। 'मुसाहिबजू' मे मिटती हुई सामन्तशाही का चित्र है। इसका स्रोत स्थानीय इतिहास है। 'झासी की रानी' मे वर्मा जी का लक्ष्मीबाई से परम्परागत सम्बन्ध है। उनके पास उस वीरागना से सबधित अनेक कहानियो की धरोहर थी। उन्हे इतिहास के ककाल मे मास और रक्त का सचार करने के लिए उपन्यास ही अच्छा साधन प्रतीत हुआ। यहा इतिहास प्रधान है और उपन्यास उसकी

१—गढ़ कुण्डार—(परिचय) पृ० २१

अभिव्यक्ति का माध्यम बन गया है। 'कचनार' मे 'झासी की रानी' की ऐतिहासिकता की प्रतिक्रिया है, वर्मा जी औपन्यासिकता की ओर फिर मुडते है। इस उपन्यास की मुख्य कथा भी 'निराटा की पद्मिनी' की भाँति मिश्रित इतिहास के आधार पर है। 'मृगनयनी' मे मानसिह तथा मृगनयनी का क्रमबद्ध तथा इतिहाससम्मत विवरण लक्ष्य होते हुए भी कथानक को सजाने-सँवारने के हेतु कल्पना, व्याख्या तथा परम्पराओ को पर्याप्त स्थान मिला है। 'टूटे काँटे' की मुख्य कथा 'मिश्र' है, उसके नेपथ्य में रहने वाली कई कथाये शुद्ध ऐतिहासिक है। 'अहिल्याबाई' मे ठेठ ऐतिहासिकता है, औपन्यासिकता को इस अतिशयता से धक्का पहुचा है। ऐतिहासिकता मे तथ्य और उपन्यासो मे रोचकता का तत्व रहता है। इन दोनो तत्वो के मिश्रण की दृष्टि से उपर्युक्त उपन्यासो में एक क्रम दृष्टिगोचर होता है। पहले उपन्यास में इतिहास सुरक्षित है फिर भी औपन्यासिकता का अनुपात अधिक है। दूसरे, पाँचव, सातवे उपन्यास मे औपन्यासिकता प्रधान है। चौथे मे इतिहास की ओर अधिक झुकाव है और आठवे मे उसका बाहुल्य है। छठे उपन्यास, 'मृगनयनी' मे इतिहास और उपन्यास के तत्वो का समन्वय है।

सामाजिक उपन्यासो के कथाओ के स्रोतो के विषय मे अधिक कथन अपेक्षित नही है। उनके कथानको के मूल मे कल्पना और उससे अधिक 'बीती हुई घटनाये' है।

अध्याय ४

वर्माजी के उपन्यासों में पात्र और चरित्र-चित्रण

पात्र और सजीवता

उपन्यास अपने आप मे एक सृष्टि है। इस सृष्टि मे न जाने कितनी घटनाएँ घटती है। इन घटनाओ तथा कार्यकलापो के जन्मदाता है औपन्यासिक सृष्टि के जीव, नर-नारी या पात्र। उपन्यासकार को पात्र-निर्माण तथा उनकी सचालन-क्रिया मे जगत् के स्रष्टा के कौशल से होड लेनी पडती है। इस जगत् के स्त्री-पुरुषो जैसे स्वाभाविक सजीव पात्रो के सृजन मे हा उसकी सफलता निहित है। पात्रो की सजीवता की कसौटी है पाठको की उनके प्रति स्वाभाविक प्रतिक्रिया। यदि पाठक उन्हे साधारण स्त्री-पुरुषो के रूप मे ग्रहण करते है, उनसे वैसी ही सहानुभूति, स्नेह और घृणा करते हैं जैसी ससार के अन्य जाने-बूझे लोगा के साथ, तो पात्र निस्सन्देह सजीव है, स्वाभाविक है।

पात्र इसी ससार की मिट्टी से बने हो। अलौकिक न हो। उपन्यासकार उनका सृजन कर उन्हे उनके पैरो पर चलने दे। वे अपनी स्वतन्त्र सकल्प-शक्ति से सचालित हो। सजीव पात्रो की निर्माण सम्बन्धी समस्या पर निम्नलिखित पक्तियाँ प्रकाश डालती है—'अलौकिकता [1] तथा निर्जीवता पात्रो के व्यक्तित्व का साधारणीकरण नही होने देती। वे हमारे राग-विराग के पात्र नही बन पाते। पात्र-निर्माण मे लेखक की कल्पना-शक्ति की परीक्षा होती है। इसी शक्ति के द्वारा पात्रो का व्यक्तित्व ऐसा बन जाता है कि वे हमे आकर्षित करते है। थैकरे ने कहा था कि मै अपने पात्रो का अनुशासन करने मे असमर्थ हो जाता हूँ। वे मुझे जहाँ चाहते है ले जाते है। इसमे तथ्य इतना ही है कि पात्रो को लेखक ने स्वतन्त्र सकल्प-शक्ति से सम्पन्न कर दिया है। स्वतन्त्र मनोवेगो से प्रेरित होकर कभी-कभी वे ऐसे कार्य कर जाते है कि जिनका लेखक को अनुमान भी नही होता, यह कल्पना शक्ति की चरम सीमा है। ऐसे ही पात्र हमारे जीवन मे प्रेरक बन जाते है। परन्तु जो पात्र लेखक

---

१ अलौकिकता के अर्थ है, अपौरुषेय, दानवीय, असभव विचित्र कल्पनाओ का सयोजन। तिलस्म तथा जादू के चमत्कार, दैवी कारनामे। ऐसी घटनाओ अथवा वर्णनो के समावेश से एक अवास्तविक और मिथ्या वातावरण पैदा हो जाता है। इससे मानवीय भावनाओ की प्रेषणीयता कम हो जाती है, यही साधारणीकरण मे बाधा डालती है।

के हाथ की कठपुतली बन जाते हे उनके व्यक्तित्व की गरिमा नही रह जाती। मानवता की सामान्य भूमि पर लेखक कल्पना की कूँची से जो रङ्ग भरता ह वह अव्याप्ति व अतिरजना से बचकर सजीव पात्रो को जन्म देता हे। सजीव पात्र हमारे वास्तविक जगत् की प्रतिकृति हाते ह जिनके चरित्र के विकास को उपन्यासकार कल्पना के द्वारा साक्षात्कार कर लेता है और उसे औपन्यासिक योजना के द्वारा प्रस्तुत कर देता हे।'[1]

चरित्र

चरित्र से तात्पर्य हे पात्र या मनुष्य के व्यक्तित्व का बाह्य और आन्तरिक स्वरूप। मनुष्य का बाह्य (उसका आकार-प्रकार, वेश-भूषा, आचार-विचार, रहन-सहन, चाल-ढाल, बातचीत का निजी ढग तथा कार्यकलाप) उसके अन्त करण का बहुत कुछ प्रतीक होता है।[2] उसका यह 'अन्त' क्या हे ? मनोवैज्ञानिक मानव के चरित्र के अन्तर्गत उसके आन्तरिक गुणो पर ही विचार करते ह। सुप्रसिद्ध शिक्षा मनोवैज्ञानिक रॉस का मत है कि चरित्र हमारी मूल-प्रवृत्तियो तथा स्थायी-भावो से सुसगठित शासक-स्थायी-भाव है। इस सगठन की पूर्णता या शैथिल्य पर ही चरित्र की प्रबलता और दुर्बलता निर्भर है।[3] मूलप्रवृत्ति प्राणियो मे पायी जाने वाली एक जन्मजात मानसिक गठन या वृत्ति है। यह वृत्ति दी हुई परिस्थितियो मे प्राणी की गतिविधि विशेष को निश्चित करती हे। मैग्डूगल ने चौदह मूल प्रवृत्तियाँ—सन्तान-कामना, युयुत्सा, कुतूहल, योजनान्वेषण, विरक्ति, पलायन, सामूहिकता, आत्म गौरव, दैन्य, काम-प्रवृत्ति, विधायक-वृत्ति, शरणागति तथा हासवृत्ति—स्वीकार की हे।[4] इन्ही के आधार पर सम्बद्ध वात्सल्य स्नेह, क्रोध, आश्चर्य, भूख-प्यास तथा घृणा आदि १४ सवेग उसने माने ह।

सुख, दु ख, पीडा आदि आन्तरिक अनुभूतियाँ राग कहलाती है। किसी कारण से जब ये राग प्रबल रूप धारण कर व्यक्त हो उठते ह, सवेग कहलाते हे।जब अनेक सवेग किसी एक वस्तु, व्यक्ति अथवा विचार से सम्बद्ध हो हमारे मन मे एक सस्कार उत्पन्न कर देते ह उस समय मानसिक गठन मे सस्कारो का यह स्थायी सगठन 'स्थायी-भाव' की सज्ञा पाता हे।'[5]

---

१ समीक्षा के सिद्धान्त—पृ० १३६-१३७

२. काव्य के रूप—पृ० १७८

३. ऐज्यूकेशनल साइकॉलॉजी—पृ० १२६

४ ऐज्यूकेशनल साइकॉलॉजी—पृ० ५६ से ६२

५ शिक्षा-मनोविज्ञान की रूप-रेखा—पृ० १२१, १२६

अत मनुष्य के व्यक्तित्व का आन्तरिक पक्ष उसके हाड-मास के बाह्य व्यक्तित्व के किसी कोने मे, अन्त करण मे, सुप्त सा छिपा रहता हे। चरित्र-चित्रण करते समय उपन्यासकार पात्र के आन्तरिक गुणो का गुह्य अन्धकार से जगत् के प्रकाश मे लाने के उद्योग मे लगा रहता है। वह पात्र की मूल प्रवृत्तियो, सवेगो तथा स्थायी-भावो को गिनाता नही वरन् ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करता हे कि जिनसे पात्र का सघर्षण होने पर उसके दबे-ढके गुण स्वत स्वाभाविक रूप से बाहर उभर आय। इस प्रकार पात्रों के चरित्र को स्पष्ट और विकसित करने का कार्य परिस्थितियाँ, घटनाये या उपन्यास की कथावस्तु करती हे। चरित्र का विकास शनै शनै होने पर ही उसकी स्वाभाविकता और आकर्षण की रक्षा सम्भव हे।

पात्रों के प्रकार

पात्रो को उनके चरित्र की विशेषताओ तथा परिवर्तनशीलता के आधार पर दो प्रकार के भेदो मे विभाजित किया जा सकता हे। यदि पात्र किसी एक वर्ग की विशेषताओ का प्रतीक हे और उसके वर्ग के अन्य जनो से भिन्नता स्थापित करने वाले निज के गुणो का अभाव है तो वह 'सामान्य', 'वर्गगत' या 'प्रतिनिधि-पात्र' कहा जाएगा। निज की विशेषताओ को लेकर उपन्यास में पदार्पण करने वाले 'व्यक्तित्व-प्रधान-पात्र' हे। उनके स्थान पर कोई दूसरा व्यक्तित्व नही आ सकता हे। अपनी विशेषताओ के कारण वे विलक्षण है, असामान्य है। यह बात मोटे तौर पर पात्रों का विभाजन करने के लिये कही जा सकती हे। सामान्यता या विलक्षणता का अतिरेक होने पर पात्र में निर्जीवता अथवा अस्वाभाविकता आ जाना निश्चित है।

पात्रो का दूसरा विभाजन उनकी परिवर्तनशीलता की दृष्टि से हे। यदि पात्र परिस्थितियो तथा अनेक घटनाओ के घात-प्रतिघात से प्रभावित नही होता, उसमे विशेष परिवर्तन के लक्षण नही दीख पडते तो वह 'स्थिर-चरित्र' हे। इसके विपरीत यदि उसमे बाह्य परिस्थितियो के प्रति अधिक सवेदनशीलता हे तो निश्चय ही उसके जीवन मे उत्थान-पतन के पग-पग पर अवसर आयेगे। वह गतिशील अथवा परिवर्तनशील पात्र कहा जा सकता हे।[1]

चित्रण-विधि

पात्रो के चरित्र-चित्रण की दो विधियाँ प्रचलित है, प्रत्यक्ष या विश्लेषणात्मक तथा परोक्ष या अभिनयात्मक। प्रत्यक्ष पद्धति मे उपन्यासकार आलोचक या वैज्ञानिक का रूप धारण कर लेता है। वह पात्र की चारित्रिक गुत्थियां

१. काव्य के रूप—पृ० १७९

को अलग-अलग रखकर, उन पर प्रकाश डालता हुआ उनका विश्लेषण करता है। पाठक को पग-पग पर अनुभव होता है कि उसके तथा पात्र के मध्य एक 'दुभाषिया' भी है जो पात्र के चरित्र को स्पष्ट करने मे सहायता करता है। विश्लेपात्मक पद्धति से पाठक को पात्र का चरित्र समझने मे सरलता होती है किन्तु दुभाषिये की निरन्तर उपस्थिति के कारण पाठक तथा पात्र के मध्य एकाग्रता, सामीप्य और निजत्व (प्राइवेसी) के भङ्ग हो जाने की पूरी आशका है । इस पद्धति के प्रयोग के आधिक्य के अर्थ है उपन्यासकार की चरित्र-चित्रण-कला मे पटुता का अभाव । जब वह पात्रो के क्रियाकलाप तथा पात्रो के पारस्परिक विश्लेपण द्वारा उनके चरित्र को ध्वनित करने मे अपने आपको पूर्णतया योग्य नही पाता तभी उनकी चारित्रिक व्याख्या और स्पष्टी-करण के लिये पात्रो को एक ओर धकेल स्वय पाठक के सामने आ उपस्थित होता है। उक्त पद्धति का प्रयोग सयमपूर्वक हो किन्तु इसका सर्वथा बहिष्कार करने पर हम नाटक की अपेक्षा औपन्यासिक क्षेत्र मे मिले अभिव्यक्ति के एक नवीन साधन से अनायास हाथ धो बैठेगे । नाटक-रचना मे विश्लेपात्मक पद्धति का कोई स्थान नही है किन्तु उपन्यासकार इसका प्रयोग करने के लिये स्वतत्र है । अत उपन्यासकार को इस स्वाभाविक देन से वचित करने का अर्थ होगा उसकी स्वतत्रता का हनन तथा उस पर नाटककार को बलपूर्वक थोपना ।[1]

चरित्र-चित्रण की दूसरी विधि परोक्ष या अभिनयात्मक है। इसमे उपन्यासकार पात्र को कुछ गुणो से विभूपित कर, उसमे प्राण फूँक, अलग जा खडा होता है। पात्र अपने पैरो पर चलने लगता है। उसके कायकलाप, और परिस्थितियो के प्रति उसकी प्रतिक्रियाएँ ही स्वमेव चरित्र को स्पष्ट करती चलती है। वह कभी-कभी स्वय अपना विश्लेषण करता है और कभी अन्य पात्र चर्चा मे उसकी विशेषताओ का उल्लेख करते है। उसका स्रष्टा उपन्यासकार उसके तथा पाठक के बीच नही आता । पात्र घटना-प्रवाह मे उभरते-डूबते, बहते चलते है और उपन्यासकार किनारे खडे उत्सुक दर्शक पाठको की भीड मे जा मिलता है। वही तटस्थ की भाँति अपने पात्रो के रग-मच पर होते अभिनय को मनोयोग से देखता रहता है। चित्रण की दोनो प्रणालियो का अपना महत्व है। परोक्ष तथा प्रत्यक्ष विधियो का उपन्यास मे उपयुक्त मात्रा मे सतुलित प्रयोग करने पर पात्र का चरित्र हृदयग्राही और सजीव हो सकता है।

---

१ दि स्टडी आफ लिट्रेचर—पृ० १६४

पात्र तथा कथानक

उपन्यास मे कथा तथा पात्रो का सम्बन्ध अविभाज्य है। पात्रो का क्रिया-कलाप कथा को जन्म देता है और कथा की नूतन परिस्थितियाँ पात्रो को उन का व्यक्तित्व विकसित करने का अवसर प्रदान करती है। यदि दोनो मे से किसी एक के अपेक्षाकृत अधिक महत्व का प्रश्न उठाया जाय तो उपन्यास मे पात्र निश्चय ही अधिक महत्वपूर्ण स्वीकार करने होगे। उपन्यास का ध्येय है मानव-चरित्र का चित्रण। इस चरित्र के चित्रण के हेतु घटनाओ का सयोजन आवश्यक है। अत उपन्यास मे साध्य है मानव-चरित्र का चित्रण और साधन है घटनाएँ। यही घटनाएँ कथानक है। यदि इन घटनाओ को शृ खलाबद्ध कर एक लक्ष्य की दिशा मे सयोजित कर दिया जाय तो कथा का रोचकता की दृष्टि से आकर्षण तथा लक्ष्य विशेष की दृष्टि से महत्व कही अधिक हो जाए। वैसे पात्र तथा वस्तु मे परस्पर कुछ न कुछ विरोध अवश्य रहता है। जहाँ वस्तु का अधिक ध्यान रखा जाता है वहाँ पात्रो से वस्तु के अनुकूल कार्य लेना अनिवार्य हो जाता है। और जहाँ पात्रों के चरित्र-चित्रण पर अधिक बल दिया जाता है वहाँ चरित्र के क्रमश विकसित होने और तदनुसार घटनाचक्र के अग्रसर होने से वस्तु की शृङ्खला और उसका सामजस्य, दोनो प्राय अव्यवस्थित हो जाते हैं। अत उपन्यासकार की सफ-लता इस मे है कि वह पात्रो का यथोचित वर्णन करते हुए भी कथा-योजना को भग न होने दे।

वर्मा जी के पात्र

वर्मा जी के उपन्यासो मे प्रमुख-गौण सभी पात्र मिलाकर सख्या मे ३२५ के लगभग है। उनकी चरित्र-चित्रण-शक्ति पर विशेष प्रकाश डालने वाले प्रमुख पात्रो का विवेचन यहाँ किया जाता है।

सर्वप्रथम 'गढ कुण्डार' के नायक नागदेव को लेते है। उपन्यास का मुख्य कथा का मुख्य पुरुष-पात्र उपन्यास का नायक है। उपन्यास वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाली कथा है। उसका नायक भी प्राय समाज के साधारण मनुष्य का प्रतिनिधि रहता है। समय बदल चला है, मानव की अभिरुचि भी। अनोखे, असाधारण, महत और आदर्श चरित्रो का निरन्तर दर्शन करते-करते पाठको मे उनके प्रति रुचि कम हो गई है। अब भी वैभव, ख्याति तथा रूप-सौदर्य आदि गुणो को मुख्य पात्रो का अनिवार्य अग मानकर चलना सगत न होगा। वास्तविकता तथा सजीवता आज की

चरित्र-चित्रण-कला की आदर्श है। उपन्यासकार चरित्र को स्पष्ट करने के लिए बाह्य परिस्थितियो की अपेक्षा पात्रो के आतरिक द्वन्द्वो का अवलम्ब अधिक ग्रहण करता है। आधुनिक नायक के चरित्र मे उत्थान-पतन की आडी-तिरछी रेखायें खिची रहती है। वह पूर्ण रूप से अच्छाई या बुराई, किसी एक के निश्चित साँचे मे नही ढाला जा सकता। उसमे अच्छे-बुरे का द्वन्द्व रहता है। यही अच्छाई-बुराई का अनुपात उस की निज की विशेषता है और यह द्वन्द्व है उसके विकासमय व्यक्तित्व का मूलमत्र। आधुनिक नायक किसी विशेष प्रकार के चरित्र का प्रतिनिधि नही होता और न किसी विशेषता का मूर्त्त रूप ही। वह साधारण मनुष्य होता है, अपने बल तथा दुर्बलताओ, दोनो से युक्त।[1]

नागदेव की शारीरिक विशेषताएँ इस प्रकार है—रग सावला, सीना बहुत चौडा, हाथ छोटे परन्तु बहुत पुष्ट, सारी देह जैसे साँचे मे ढाली गई हो। लम्बे काले बाल। मस्तक छोटा। आँखे बडी, बहुत काली, सजग और जल्दी जल्दी चलने वाली। नाक सीधी परन्तु छोटी। भौहे मोटी और गुच्छेदार। ठोडी चौडी और आगे को झुकी हुई। चेहरा गोल। होठ कुछ मोटे।

बाह्याकृति और अन्त करण

क्या पात्र की बाह्य आकृति से उसके अन्त करण और स्वभाव की पहचान की जा सकती है? यह प्रश्न मनोविज्ञान का है। आकृति-सामुद्रिक (फिजियॉग्नमी) के प्रवर्तक लवैटर ने कुछ परीक्षणो के आधार पर चेहरे की आकृति से बुद्धि का अनुमान लगाने का दावा किया था। उसने व्यक्तियो की नाक, दाँत, कपोल तथा भौंहो आदि की आकृति के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर एक विशिष्ट आकृति के लिए एक विशिष्ट मानसिक गुण का

---

१ प्राचीन आदर्शों और वर्तमान आदर्शो मे इस बात का अन्तर हो गया है कि पहले नायक प्रख्यात और उच्चकुलोद्भव होता था अब होरी किसान भी उपन्यास का नायक बन जाता है। पहले प्रख्यात नायक इसीलिए रहता था कि जिससे सहृदय पाठको का सहज मे तादात्म्य हो जाय, अब लोगो की मनोवृत्तियाँ कुछ बदल गई है। आभिजात्य का अब उतना मान नही रहा है, इसीलिए होरी के सम्बन्ध मे पाठको का सहज ही तादात्मय हो जाता है। पात्र के कल्पित होने से भी उसके साधारणीकरण मे बाधा नही पडती, क्योंकि वह प्राय अपनी जाति का प्रतिनिधि होता है।

सिद्धान्त और अध्ययन—पृ० २८०। तथा देखिए हिन्दी उपन्यास—पृ० १६ १७ तथा समीक्षा के सिद्धान्त...पृ० १३९, १४०

समर्थन किया। किन्तु बाद के प्रयोगो और निष्कर्षों के फलस्वरूप आधुनिक मनोविज्ञान ने आकृति सामुद्रिक को निराधार सिद्ध कर दिया है यद्यपि जन-साधारण का उस पर कुछ न कुछ विश्वास अब भी दिखलाई पडता है। फ्रास के गॉल ने मस्तिष्क-विज्ञान (फ्रेनॉलॉजी) के सिद्धान्त पर सिर के आकार के आधार पर बुद्धि के अनुमान की युक्ति निकाली थी। ऐसे ही अनेक सिद्धात प्रचलित हुए किन्तु सन् १६०६ ई० मे प्रो० कार्ल पियर्सन ने ५००० बालको पर प्रयोग कर सिद्ध कर दिया कि सिर की बनावट, मुखाकृति तथा शारीरिक अवयवो और व्यक्ति की मानसिक योग्यता से कोई सम्बन्ध नही है।[1]

वर्मा जी स्वय भी मनुष्य के वाह्याकार का उसके स्वभाव से सम्बन्ध जोडने के अधिक पक्षपाती नही है। उनके पात्रो के बाह्य स्वरूप की सृष्टि आकृति-सामुद्रिक सबधी किसी ग्र थ के आधार पर नही हुई है वरन् वह उपन्यासकार के निजी अनुभव की देन है।[2] वे पात्र के शारीरिक अवयवो का सूक्ष्मतम ब्योरा प्रस्तुत करते है पाठक की कल्पना मे एक चित्र खडा करने के लिए।

यदि नागदेव की आकृति को आकृति-सामुद्रिक की कसौटी पर कसा ही जाए तो वह अपनी पुष्ट देह, छोटे मस्तक, छोटी नाक आदि के कारण आदिम गुणो से विशेषतया युक्त सिद्ध होता है।[3] आकृति-सामुद्रिक मनोविज्ञान-सम्मत न ठहराये जाने के कारण हम अन्य पात्रो पर इस दृष्टि से विचार नही करेगे।

उग्र प्रणयी नागदेव और अग्निदत्त

नागदेव (गढ कु डार) स्वभाव से रसिक है, उन्मादक प्रेम का उपासक और इच्छापूर्ति मे बाधा पडने पर हिंसक भी। प्रणय मे किसी को अपना आराध्य बनाकर उसके चरणो मे जीवन तक न्यौछावर कर डालने की आकाक्षा से वह उमगित है। भरतपुरा की गढी मे आकर ठहरने के साथ ही उसकी सोहनपाल की रूपसी कन्या हेमवती के प्रति तीव्र लालसा का हमे

---

१. ऐज्यूकेशनल साइकॉलॉजी—पृ० २२१ से २२५ तथा माडर्न ऐज्यूकेशनल साइकॉलॉजी—पृ० ४०२ से ४०५

२ मेरे उपन्यासो के जितने पात्र है यह सब मेरे जीवन के अनुभवो के परिणाम है। उनमे से बहुत से तो मेरे सम्पर्क मे आये हैं। फिलियॉग्नमी पर एक पुस्तक कुछ वर्ष हुए पढी थी। उसके कुछ निष्कर्षों से मैं सहमत नहीं हूँ।—वर्मा जी का पत्र, २१-१२-५६

३. साइकॉलॉजिकल टेस्ट्स आफ एडयूकेबिल केपेसिटी—पृ० ३

बोध होता है । वह प्रेयसी को अपना सब कुछ समर्पित कर देने को लालायित है किंतु इच्छापूर्ति मे बाधा पडने पर भयकर सिद्ध हो सकता हे, इस तथ्य का सकेत उसी समय मिल जाता हे । यही नही, बिना घमासान के उसे प्रेम फीका सा जान पडता हे । अपने मित्र अग्निदत्त से कहता है—'समझ मे मेरी भी नही आता कि मै हेमवती को सहज ही पा जाऊँगा । युद्ध और प्रेम मे शायद ही किसी को सहज ही विजय मिली हो । बिना घमासान के दोनो फीके है ।'[1] प्रेम का उन्मत्त पुजारी होने के कारण वह सहज विवेक खो बैठता है । हेमवती द्वारा स्पष्ट रूप से तिरस्कृत होने के पूर्व सदैव उसे अपने प्रति आकृष्ट समझने के भ्रम मे रहता है । हेमवती के समक्ष प्रणय-निवेदन करते समय उसकी उत्तेजना पराकाष्ठा पर पहुच जाती है । हेमवती की तीव्र भर्त्सना पर भी उसके बुद्धि नेत्र नही खुलते । उत्तेजना बढती जाती है और उसका प्रेम-प्रलाप भी । अन्त मे पूर्णतया मान-मर्दित हो जाने पर ही उसे चेत आता है । स्वभाव से सरल, निष्कपट, उद्धत तथा प्रबल नागदेव का उत्तेजित प्रेमी प्रतिक्रिया करता करता है । नागदेव येन-केन-प्रकारेण हेमवती को प्राप्त करने के लिये अनुचित साधनो पर उतर आता है । उसमे घोर प्रतिहिंसा करवट लेकर जाग उठती है । वह अपनी असफलता पर पश्चाताप करता है और अपमान का बदला लेने के लिये क्रुद्ध सर्प की भाँति फुफकार उठता है । अपने साथियोसहित हेमवती के अपहरण मे असफल होने पर उसकी कुण्ठा स्वय को सुरा मे डुबोकर भूल जाने का प्रयत्न करती है । पीता तो पहले भी था किंतु थोडी । सुरापान की मात्रा बढ गई । वह मदिरा के नशे मे आत्म-विस्मृत था और नशे के बाहर आत्म-पीडित ।

उसमे उदारता निरभिमानता तथा सद्भावना है ।[2] असहिष्णु भी परले सिरे का है । अभिन्न बाल-मित्र अग्निदत्त को अपनी बहिन से प्रेम करते देख आगबबूला हो उठता है और उसे घोर अपमानित कर कुडार से निकाल देता है । नागदेव के असहिष्णु मस्तिष्क मे जाति-पाति सम्बन्धी उदारता, मित्रता तथा स्वय प्रेमी होने के नाते अन्य प्रेमी के प्रति सहानुभूति के भाव पल भर के लिये नही टिकते । इस प्रकार हम दखते हैं कि नागदेव की प्रवृत्तियाँ, सवेग और भाव प्रचडतम या नग्नतम रूप मे है, उनमे सतुलन और सस्कार का अभाव है ।

---

१ गढ कुडार—पृ० १०१

२ वही—देखिए क्रमश पृ० १४५, १७२, २७६ तथा २८०

नागदेव के चरित्र मे तत्कालीन सामन्तो जैसी सनक, उत्तेजना, असहिष्णुता तथा प्रतिक्रिया के सर्वत्र दर्शन होते है। उसके चरित्र मे अनेक गुणो का अपूर्व घोलमेल है। वह अपने कार्यकलाप मे निज का बाँकापन लिए हुए है। अत उसे विलक्षण चरित्र का पात्र कहना उपयुक्त होगा। साथ ही वह गतिशील है। विभिन्न परिस्थितियो मे उसके चरित्र के नये-नये पहलू दृष्टिगोचर होते है। आशा के सुनहरे क्षणो मे वह उदार, समर्पणाकाक्षी प्रेमी है, निराशा की घडी में क्रुद्ध नाग की भाँति हिंसक तो स्वार्थ-हनन के अवसर पर कराल क्रोधी। उसके चरित्र मे अस्वाभाविकता किसी प्रकार की नही है। वह जो कुछ करता है अपने मौलिक स्वभाव के अनुसार।

नागदेव का चरित्र विभिन्न परिस्थितियो में पडने के बाद शनै शनै स्पष्ट होता है किन्तु उपन्यासकार ने प्रारभ मे उसके गुणो को गिनाने का लोभ सवरण नही कर पाया है।[1] पूरे दो पृष्ठो मे उसकी आकृति तथा स्वभाव का परिचय दिया गया है। इन दो पृष्ठो के अतिरिक्त सम्पूर्ण उपन्यास मे नागदेव के चरित्र का चित्रण नाटकीय विधि से हुआ है। नागदेव आत्म-विवेचन तथा अपने कार्य-कलापो द्वारा स्वय को स्पष्ट करता है।

नागदेव का उपन्यास की कथा से घनिष्ट सम्बन्ध है। उसके क्रियाकलाप घटनाओ को जन्म देते हैं, वह हेमवती पर मुग्ध हो बुन्देलो को सहायता का वचन देकर उन्हे कुडार के सपर्क मे लाता है। हेमवती की ओर से नाग के निराश होने पर बुन्देलो और खगारो मे मनोमालिन्य होता है और फलस्वरूप बुन्देलो द्वारा कुडार का पतन। कथा पूर्वनियोजित है किन्तु नाग के चरित्र को स्वाभाविक विकास का अवसर देती है। नागदेव का सजीव और आकर्षक चरित्र पाठको के हृदय पर अपना चिह्न छोड जाता है।

अग्निदत्त (गढ कुडार) प्रासगिक कथा का मुख्य पुरुष पात्र है। उसकी आयु सत्तरह या अठारह वर्ष की है। वह स्वभाव से दृढ, वीर, स्वाभिमानी, जाति पाँति सम्बन्धी बन्धनो का विरोधी, महत्वाकाक्षी, मनमौजी, युद्ध-कुशल, प्रतिहिंसी तीव्रबुद्धि और उग्र है। मानवती के प्रति उसका प्रणय उसके चारित्रिक गुणो को उभारने तथा प्रकाश मे लाने का माध्यम बनता है। अग्निदत्त ब्राह्मण है। वह खगार राजपुत्री मानवती से प्रेम करता है। प्रचड प्रेम, जिसमे किसी प्रकार की सामाजिक बाधा को कोई स्थान नही। वह भरे किले से मानवती को ले भागने के लिए कटिबद्ध है नागदेव द्वारा योजना मे विघ्न पडने तथा उससे घोर अपमानित होने पर निराश और कुठित

१. गढ़ कुण्डार—पृ० २६

अग्निदत्त की उग्रता माग पकडती है प्रतिहिंसा और आत्मघाती वृत्ति का। मानवती की सगाई अन्यत्र निश्चित होने की बात सुनकर उसकी आत्मघात की इच्छा पहले भी मचली थी। असफलता और अपमान के बाद तो वह उसी क्षण मृत्यु चाहता हे। इसी प्रवृत्ति के वशीभूत होकर अन्त में सहयोगी बुन्देलो से लड-भिड कर मारा जाता है।

नागदेव का दुर्व्यवहार उसमे नाग तथा खगार मान के प्रति घोर घृणा और दुराशा को जन्म देता है। यही प्रतिक्रिया अग्निदत्त की प्रचड प्रतिहिंसा को उद्‌बुद्ध कर देती है। इस घटना से पूर्व भी वह मानवती के मनोनीति पति राजधर आदि के प्रति अपनी प्रतिहिंसा का परिचय देता है। अपमान सम्बन्धी दुर्घटना के बाद उसकी केवल एक आकाक्षा शेप है खगारो का नाश-कर मर जाने की। उसके हृदय मे उनके प्रति इतनी भारी घृणा थी कि कदाचित् सोने के समय ही भूलता होगा। उसका विश्वास है, 'रणचण्डी के ख-पर मे यदि खगारो का रक्त न भरा गया, तो मेरा जन्म अकारथ गया। उसी खप्पर मे अग्निदत्त का ब्राह्मण रक्त भी मिलेगा। वह होगा सच्चा ब्राह्मण-खगार-सम्मेलन।'[1] नागदेव-हेमवती-विवाह के षड्‌यन्त्र के अवसर पर वह नागदेव के लात मारकर अपने अपमान का प्रायश्चित्त करता है और उसका प्रतिशोध लेने के लिए पागल कुत्ते की भाँति लडता-भिडता, काटता-चीरता खगारो के सर्वनाश मे रत हो जाता है।

लडते-लडते जब वह खेत मे पडी असहाया प्रसूता मानवती के समीप पहुँचता हे अग्निदत्त की कुण्ठा और दुराशा चरम सीमा पर जा पहुँचती है। वह पश्चाताप मे डूब जाता है। फिर वह बुन्देलो से पागल की भाँति लडता हुआ कहता है—'मैं मृत्यु का आवाहन कर रहा हूँ। आओ। जब मरना है, तब किसी के हाथो सही।'[2] और पुण्यपाल के हाथो मारा जाता है।

अग्निदत्त के अन्तमन मे तत्कालीन प्रतिक्रियावादी समाज की जाति-पाँति सम्बन्धी सकीर्णता छिपी बैठी है और निराश मन होने पर प्रचण्ड रूप मे प्रकट हो जाती है। वह जातिगत भेदभाव-जन्य सकीर्णता से अपने आपको ऊपर उठा हुआ समझता हे। ब्राह्मण होते हुए खगार-पुत्री से प्रेम भी करता है किन्तु नागदेव द्वारा अपमानित होने पर उसका सस्कार जाग उठता है। उसे खगार-विनाश तक यही बात खटकती रहती है कि खगार ने ब्राह्मण के लात मारी। नागदेव पर-पद प्रहार करते समय भी वह कहता हे—'ब्राह्मण ने एक

---

१ गढ़ कुण्डार—पृ० ४११

२ वही—पृ० ४५२

बार नही, कई बार वैरी का सहार किया है।'[1] इस जातिगत भेदभाव सबन्धी सकीर्णता से उपन्यास के प्राय सभी पात्र ग्रस्त हैं, जाति-पाँति के बन्धनो के विरोधी अग्निदत्त के अन्तर मे यह भेदभाव गहरी जड जमाये बैठा है।

अग्निदत्त का चरित्र विलक्षण, गतिशील और पूर्णतया स्वाभाविक है। उसका उग्र चरित्र खुलता है शनै शनै और कथा से भिडकर बनता है। परिस्थितियाँ उसे उन्मादक प्रेमी, दुस्साहसी, निराश-प्रतिहिंसी तथा पश्चातापोन्मत्त बनाती है। परिस्थितिया भी उसके कार्यकलाप से प्रभावित होती है। उसी की प्रतिहिंसात्मक योजना के फलस्वरूप खगारो का पतन होता है। अग्निदत्त का चित्रण प्राय अभिनयात्मक विधि से हुआ है केवल उसके रूप-वर्णन तथा स्वभाव का परिचय कुछ स्थलो पर विश्लेषणात्मक रीति से दिया गया है।[2] अग्निदत्त की अनुभूतियो की तीव्रता, सस्कारो की गहनता, उद्देश्य मे तन्मयता और स्वाभिमान की सनक पाठको के हृदय पर छा जाती है। वे उसके साथ रसिक, उसकी चिन्ता के साथ चिन्तित और उसके क्षोभ तथा क्लेश के साथ क्षुब्ध और पीडित होते है। उपन्यास समाप्त करने के बाद अग्निदत्त हमारी अनुभूतियो का एक अङ्ग बन कर रह जाता है।

प्रणय मे पूजक— दिवाकर और कुजरसिह

दिवाकर (गढ कुण्डार) दूसरी प्रासङ्गिक कथा का पुरुष पात्र है। वह अपनी गतिविधि द्वारा पुनीत प्रेम की साधना का परिचय देता है। उसके चरित्र मे प्रणय के उदय, विकास, चरम और पूर्णता की विविध श्रेणियाँ देखने को मिलती है। तारा के पूजन-व्रत के लिए पुष्प लाते-लाते उसके हृदय मे तारा के प्रति आकर्षण का उदय होता है। प्रारम्भ मे वह अपने इस हृदय-परिवर्तन से चौकता और शकित होता है। उसके हृदय मे रह-रह कर द्वन्द्व उठता है कि कायस्थ दिवाकर और ब्राह्मण तारा का सयोग ? असम्भव! वह इस मार्ग मे अपने आपको रोकने का असफल प्रयत्न करता है फिर शारीरिक सम्बन्ध की कल्पना को तिलाजलि दे तारा को पूज्य के रूप मे ग्रहण कर लेता है। सोचता है—'तारा अपनी पूजा करने से तो मुझको रोक ही नही सकती। हृदय-सिहासन पर स्थापित तारा को पृथ्वी-गामिनी तारा नही देख सकती, उसका वह कुछ नही कर सकती, उसका कोई कुछ नही कर

---

१. गढ़कुण्डार—पृ० ४४१

२. वही—पृ० २१, २५, १५३-३०

सकता। इस देवता को अपने हृदय मे रखकर चाहे जहाँ जा सकता हूँ।'[1] उसकी यह भावना निरन्तर दृढ होती जाती है। तारा के साँप द्वारा काट लेने पर तारा के सर्प-दश को प्राणो पर खेलकर मुँह से चूस लेता है। उसमे प्राणोत्सर्ग की भावना है। वह निस्पृह है। परमात्मा से निरन्तर यही प्रार्थना करता है, तारा को कोई सुपात्र ब्राह्मण वर मिल जाए और वह सुखी रहे। वह तारा की रक्षा के लिए आतुर रहता है, अपने आप को बहुत कुछ शान्त रखता है और परिस्थितियो के अनुसार मुडने का भरपूर प्रयत्न करता है। फिर भी प्रेमगत निराशा के फलस्वरूप उसमे दुर्बलता आना स्वाभाविक है। वह ससार से विरक्त हो उठता है। सन्यास ग्रहण करने की सोचता है। गम्भीर तटस्थ दार्शनिक की भाँति बुन्देलो के खगारो के विरुद्ध षड्यन्त्र की आलोचना करता है और उस कार्य मे बुन्देलो से पूर्णतया असहयोग करता है। वह सोचता है—'खजराहो था। न रहा। कलिजर हुआ। चला गया। महोबा ने जन्म लिया। वह भी मर गया। कुण्डार ने सिर उठाया। उसका परसो दलन होगा। कैसा घटना चक्र है। कैसा अनित्य ससार है।' आगे वह सोचता है—'कुण्डार की महिमा खगारो मे नही है। उसकी महिमा का मन्दिर तारा है, यदि तारा चिरसुखी रही, तो कुण्डार अमर है।'[2] दिवाकर के जीवनवृत्त की एकमात्र केन्द्र, उसकी प्राणप्यारी तारा है।

दिवाकर की दार्शनिकता को बुन्देले उन्मत्तता तथा अपने लिए घोर घातक समझ कर उसे तलघरे मे बन्द कर जाते है। दिवाकर की प्रणय-साधना पूर्ण होती है। तारा आकर उसे तलघरे से निकालती है। दिवाकर उससे कहता है—'वर्णाश्रम हमारी देहो के सयोग का निषेध कर सकता है। परन्तु आत्माओ के सयोग का निषेध नही कर सकता। यही हमारा सयोग है। हम लोग योग-साधन करेगे।'[3] वर्मा जी के मत मे उन दोनो का इतना सम्बन्ध ही उस युग मे सम्भव था।[4] दिवाकर स्वामिभक्त, वीर तथा छुआछूत अथवा जाति पाँतिगत भेदभाव से ग्रस्त है। उसकी भावनाये तथा कल्पनायें कोमल है, स्त्रियो जैसी।

---

१ गढ़ कुण्डार—पृ० २८३

२. वही—पृ० ४०६

३. वही—पृ० ४६४

४ वर्मा जी अपने एक पत्र मे लिखते है—'जात-पाँत वाले सवाल पर आपने ठीक ही लिखा है। परन्तु यदि मै दिवाकर और तारा का ब्याह करा देता तो फिर बात अवास्तविक (अनरियलिस्टिक) हो जाती। लाखो और

दिवाकर विलक्षण चरित्र का है। वह गतिशील है और जीवन मे कल्पित आदर्श की ओर झुका हुआ। परिस्थितियो से प्रभावित होना उसका स्वभाव है किन्तु अन्त मे बुन्देलो का विरोध और तारा के साथ पलायन कर स्वय परिस्थितियो का निर्माण भी करता है।

कुजरसिंह (बिराटा की पद्मिनी) बीस-इक्कीस वर्ष का सुन्दर बलशाली युवा है। वह राजा नायकसिह का दासीपुत्र होने के कारण राजकुमार के पद का अधिकारी नही है। उसे राजसिहासन की प्राप्ति की बहुत आशा न थी। उसका ससार मे कोई न था। राजा का स्नेह भी उनके पागलपन मे लीन हो गया था। कुजर के हृदय मे जीवन की आकाक्षाओ के प्रति उदासीनता, शिथिलता और भाग्यवादिता घर कर जाती है। उसने सुन रखा था कि ससार मे भाग्य का पाँसा पलटते विलम्ब नही लगता। सुअवसर-प्राप्ति की यही आशा उसकी एकमात्र जीवन-अवलम्ब कही जा सकती है। कुमुद कुजर के सूने जीवन मे एक अनोखा आकर्षण बन कर आती है। कुजर उसमे अपना सब कुछ केन्द्रित कर देता है। अपनी प्रेयसी के आस पास मडराते रहने मे ही उसके जीवन के लक्ष्य की इतिश्री है। वह कुमुद से अपना निश्चय प्रकट

अटल का तो करा ही दिया। लेकिन बोधन और उसके साथियो को नही रुचा। मैने प्रवृत्ति की ओर इङ्गित कर दिया है और पाठको की सहानुभूति इस प्रकार के ब्याह के साथ कर दी है। एक दिन जब वकालत करता था, झाँसी के सिविल जज के यहाँ एक अपील की बहस करने गया। नये ही आये थे। बोले, 'आपका गढ़ कुडार बहुत पसन्द आया।' मैने कहा, 'धन्यवाद।'

'परन्तु दिवाकर और तारा की कहानी से साफ जाहिर होता है कि आप अन्तर्जातीय विवाह के पक्षपाती है।'

'हूँ तो।'

'क्या उस युग मे ऐसा सम्भव था ?'

'असम्भव भी नहीं था।'

'ब्याह करा देते तो बहुत अखरता।'

'किसी को अच्छा भी लगता।'

'खैर, अपील की बहस करिये। आपने जिस परिस्थिति तक उन दोनो को पहुँचा दिया, वही क्या कम है।' यह वार्तालाप मुझे लगभग ज्यो का त्यो आज तक याद है। सिविल जज पहाडी ब्राह्मण थे, हिन्दी प्रेमी और वैसे सुधारवादी। —पत्र, तिथि ६।१२।५०

करता है—'आपकी आज्ञा का पालन करना ही धर्म, कर्तव्य, और सर्वस्व है। यदि इन चरणों की कृपा बनी रहे, तो मैं संसार भर की एकत्र सामर्थ्य को तुच्छ तृण के समान समझूँ,—'[1] कुमुद देवी के अवतार के रूप में प्रचलित होने के कारण कुंजर के प्रेम के साथ उसकी श्रद्धा की पात्र बन जाती है। कुंजर प्रेयसी, कुमुद का भक्त है। अपनी देवी के चरणों में मस्तक अर्पित कर देने की एक मात्र साध कुंजर के हृदय में रह गई है। प्रणय-साधना में कुंजरसिंह, दिवाकर (गढ़ कुण्डार) का विकसित रूप है। दोनों वीर, साहसी, हृदय में पीड़ा संजोये हुए सहृदय प्रेमी हैं। प्रेयसी को पूज्य और अपने आपको पुजारी के रूप में देखना उन्हें भला लगता है। ये भावुक, रसिक और उद्योगी होते हुए भी पलायनवाद की झोंक में हैं। अपने प्रिय के पास सिमट आना चाहते हैं, जीवन संघर्ष में जूझना उन्हें रुचता नहीं। प्रिय के लिए उनके प्राण तक प्रस्तुत हैं अन्यथा किसी से क्या लेना? देवी कुमुद कुंजर के जीवन पथ की प्रदर्शिका, ध्रुव तारा है। वह उससे कहता है—'परन्तु—परन्तु आपका शुभ दर्शन-मात्र मेरी उस सम्पूर्ण कहानी में एक बड़ी भारी मार्ग प्रदर्शक ज्योति है। वह समय मेरी अँधेरी रात के अवसान की उषा है। केवल उसी प्रकाश के सहारे मैं संसार में चलता फिरता हूँ।'[2]

कुंजरसिंह में शौर्य है किन्तु उसकी अतिभावुकता मार्ग की बाधा है। वह जीवन से निराश है, प्रेयसी के मोहक स्वप्नों में डूबकर संसार की कटुता की ओर से आँख मूँद लेता है। साथ ही अनिश्चितता उसकी कार्यप्रणाली की मौलिक दुर्बलता है। सिद्धहस्त राजनीतिज्ञ जनार्दन शर्मा कुंजर के विषय में कहता है 'उनकी ओर से मुझे बहुत कम खटका है। किसी भी बात पर बहुत दिन जमे रहना उनके स्वभाव में नहीं है।'[3] कुंजर दलीपनगर के राज्य की पुनर्प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होता है किन्तु राजा नायकसिंह की मृत्यु के समय अपनी शिथिलता और अनिश्चितता के कारण देवीसिंह के हाथ में राजसत्ता चली जाने देता है। भावुकता के कारण अलीमर्दान तथा रानी की सहायता से हाथ धो बैठता है। देवीसिंह के विरुद्ध युद्ध में अपनी सहायता के लिए गढ़पतियों को एकत्र करने का प्रयत्न करता है किन्तु शीघ्र ही, प्रयोजन पर आरूढ़ करने वाली निरन्तर लगन उसका साथ छोड़ देती है। जिस समय देवीसिंह कुछ सैनिकों सहित रात्रि में बिराटा आता है कुंजर तुरन्त कुछ भी निश्चित न कर पाने के कारण उसका बाल बाँका नहीं कर

१. बिराटा की पद्मिनी—पृ० २१३
२. वही—पृ० २७६
३. वही—पृ० १७७

पाता। देवीसिंह अछूता भाग निकलता है। कुंजर के अन्त का कारण भी उसकी अनिश्चयवृत्ति बनती है। जिस समय उसका देवीसिंह से खड्ग-द्वन्द्व होता है वह एकाग्र चित्त होकर नही लड पाता। उसकी दृष्टि बेतवा की लहरो मे जल समाधि लेने जाती कुमुद पर एकाएक पडती है। हाथ शिथिल हो गया। हाँफते-हाँफते कहता है—'प्रलय हुआ चाहती है।' और दूसरे ही क्षण देवीसिंह की तलवार के भरपूर हाथ से उसका सिर धड से कटकर अलग जा पडता है।

कुंजरसिंह गम्भीर विचारक है। वह परम्पराओ के अन्धानुकरण मे विश्वास नही रखता। विराटा के दाँगी अपनी रक्षा की आशा सर्वथा त्याग कर जोहर करते है और अपनी स्त्रियो, बालको को इससे पूर्व स्वय मृत्यु की भेट करने का प्रस्ताव रखते है। कुंजरसिंह स्वर्ग मे सबके एक साथ मिलन की इस काव्यात्मक कल्पना का विरोध करता है। वह कहता है—'यदि हमारा यही सिद्धात है, तो हमे कभी न मरने का ही उपाय सोचना चाहिए और जब हमारे सामने हमारे प्रियजन समाप्त हो जाय, तब हमे मरना चाहिए। जब रण क्षेत्र मे सैनिक जाता है, तब क्या वह यह सब सोच-विचार लेकर जाता है ? चलो, हम सब मरने के लिये बढें। एक-एक प्राण का मूल्य सौ-सौ प्राण लें और अपने बाल-बच्चो को परमात्मा के भरोसे छोडें। उनके लिये हमे इसलिए भी डरना नही चाहिए कि हमारे विरोधियो मे अनेक हिंदू भी है।' [1]

कुंजरसिंह उपन्यास का नायक है। उसका चरित्र विलक्षण है। राजनीतिक दाँवपेचो के प्रति उदासीनता, प्रेयसी के प्रति समर्पण की भावना, पलायनवादिता तथा विचारकता आदि गुण उसके व्यक्तित्व को अनोखा बना देते है। कुंजर के चरित्र मे गतिशीलता अधिक नही है। वह प्रारम्भ से लेकर अन्त तक दुर्बल सकल्पी और भाग्यवादी बना रहता है। हाँ, कुमुद का प्रणय उसके जीवन मे एक घटना है। इस घटना से कुंजर के स्थिर जीवन मे आशा, निराशा और प्राणोत्सर्ग की भावना की लहरें उठती है। उपन्यास मे उसका चरित्र-निर्वाह स्वाभाविक है। वह जिन चारित्रिक विशेषताओ सहित उपन्यास मे पदार्पण करता है वे अन्त तक उसके व्यक्तित्व के मूल मे रहती है। कुंजर के व्यक्तित्व का उन्मीलन शनै शनै होता है। उसका चित्रण नाटकीय विधि से हुआ है। वह अपनी दुर्बलताओ के कारण कथा मे नवीन परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है।

---

१ विराटा की पद्मिनी पृ० ३२१

दृढ अचल और रसिक सुधाकर

अचल (अचल मेरा कोई) स्वस्थ, सुरूप होनहार युवक है। विद्वान्, कलाकार, विचारक तथा स्वभाव से गम्भीर है। उसके मस्तिष्क तथा हृदय तत्त्वो मे मस्तिष्क प्रधान हो गया है। अचल की तर्कबुद्धि उसकी भावुकता तथा शारीरिक माँगो को दावे रखती है। निशा पति-वरण की दृष्टि से अचल तथा दिवाकर की तुलना करते समय अचल के विषय मे सोचती है—'अचल मे ठडक ज्यादा है, चपलता कम। मानसिक बल है और शारीरिक बल भी है, परन्तु क्या इन दोना बलो का समन्वय भी है ? नही है। दिमाग अधिक है, शरीर कम है।'—[1]

अचल प्रणय व्यापार मे भावुक प्रेमी नही वरन् विचारक, आलोचक अथवा मनोवैज्ञानिक की भाँति बरतता है। कुन्ती उसके पास सगीत की शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्राय आती है। कुन्ती के प्रति उसके हृदय मे आकर्षण जाग उठता है। वह उसे अपना बना लेना चाहता है और दोनो के वैवाहिक बन्धन मे बँध जाने की कल्पना भी करता है किन्तु साधारण प्रणयी की भाँति प्रेम को अभिव्यक्ति दे देने का पक्षपाती नही है। उसके मस्तिष्क मे अपनी महत्वाकाक्षाये तथा लोकलाज आदि के विचार आ टकराते है। वह दो वर्ष तक कुन्ती के प्रति अपने प्रेम को मस्तिष्क के किसी कोने मे दबा कर रख छोडने का निश्चय करता है। अपने नाम के अनुरूप अडिग, दृढ, धीर और स्थिर बना रहना चाहता है। उसके हृदय-सागर मे प्रेम का ज्वार नही आता, उसकी बुद्धि अपना एक सुयोजित मार्ग निश्चित करती है, 'साध-साधकर, सभाल-सभाल कर, प्रेम करता रहूगा, हृदय की गिनी-गिनाई गतियो को राई रत्ती तोले हुये वासना प्रसूना को, रेशम की पोटली मे गाँठ लगा कर बाँधे हुये कामना-परिमल को, और मुट्ठी मे कैद की हुई लालसा-सुगन्धि को, थोडा-थोडा करके कुन्ती पर न्योछावर करता रहूँगा।'[2] एक दिन गाते समय कुन्ती एकाएक रो पडती है और अचल का प्रेम-प्रवाह बाँध तोड कर फूट पडता है। वह हृदय के उद्गारो को प्रकट कर बैठता है किंतु भाषा पर बुद्धिवादी की छाप रहती है। कुन्ती के टोकने पर कहता है—'इसमे असयम कहाँ है ? अथवा शायद थोडा सा है। मुझको यह बात आज से बरस डेढ बरस पीछे कहनी चाहिये थी। परतु आज मन की किसी स्वय-सक्रिय क्रिया द्वारा जीभ से फिसल पडी। इस क्रिया

१. अचल मेरा कोई—पृ० ६०

२. वही—पृ० ९२, ९३

को मनोविज्ञान मे कहते है—क्या कहते है ?—औटो इरोटिक । नही यह तो शरीर के अगो की क्रिया का नाम है अच्छा खैर । मैं वचन देता हूँ कुन्ती कि इस बरस डेढ बरस के भीतर आगे कभी नही कहूँगा । केवल आज के क्षण अपवाद रूप है । कुन्ती, मैं तुमसे प्रेम करता हूँ । तुम मेरे जीवन की प्राण हो—'[1] कुन्ती द्वारा उसकी सुधाकर से सगाई हो जाने का समाचार पा अचल क्षण भर के लिए दुबल पड जाता हे । अचेत होकर लडखडाता हुआ गिर पडता है । कुन्ती अपने प्रिय अचल की ऐसी अवस्था देख हिल उठती हे और सुधाकर से सगाई का सम्बन्ध तोड देने का निश्चय सुनाती है । इसी बीच अचल अपनी अचलता पुन प्राप्त कर लेता हे । वह लोकलाज टूटने तथा मित्र-द्रोह के आरोप से सुरक्षित रहने के लिए सुधाकर तथा कुन्ती के माग से हट जाने का निश्चय करता है । कुन्ती से वचन ले लेता है कि सुधाकर से विवाह कर सुखी रहेगी । उसका विश्वास है मन को जैसा बनाओ, बन सकता हे । कुन्ती को अतर्मन के नियत्रण और अनुशासन करने पर बल देता है । अपना सकल्प सुनाता है—'मै तुम दोनो को सुखी देखकर सुखी रहूँगा ।' अचल अपनी कोमल भावनाओ को कठोरतापूर्वक मसल देता हे । कुती का सुधाकर से विवाह हो जाता हे ।

कुन्ती का दाम्पत्य जीवन सफल नही रहता । वह स्वय असतुष्ट हे और दूसरी ओर एकाकी अचल की मनोवेदना को देखकर उससे रहा नही जाता । वह अचल से आग्रह करके उसका विवाह निशा से करा देती हे । अचल विधवा-विवाह का पक्षपाती है, और कुन्ती की बात भी नही टालना चाहता । विवाह सहज ही हो जाता है । अचल-निशा का वैवाहिक जीवन सफल, सतोष-मय रहता है । अचल गृह-कलह के उन्मूलन का भेद जानता है । वैवाहिक जीवन मे सयम, सतुलन तथा परस्पर सद्भावना की आवश्यकता की व्याख्या वह निशा से इन शब्दो मे करता है—'देखो, ऐसे—देह की मॉग को पूरा करने के लिये आरम्भ मे प्यार दुलार की झडी लगा दी, फिर हुआ कुपच । या देह की माँग का आरभ से ही निरोध कर उठे । विद्रोह प्रेम की उपासना मे—जो भाग्य से कुछ कम सभव है । बस गृह-कलह छिडी । देह की माँगो का और उन मॉगो के निग्रह का समन्वय ही उस अनबन को असभव बना सकता हे । साथ ही एक दूसरे का विश्वास और रक्तगत कमजोरियो की परस्पर माफी के लिये सबल हृदय की शक्ति ।'[2]

अचल उपन्यास का नायक है । अपनी निराली स्थिरता, गभीरता के

---

१ अचल मेरा कोई—पृ० १४३

२ वही—पृ० २३६

कारण विलक्षण चरित्र का बन जाता है। दुर्बलता के कुछ क्षणो को छोडकर वह प्रारम्भ से अन्त तक 'अचल' रहता है। कुन्ती के प्रति आकृष्ट होता है किन्तु कामनाओ को हृदय मे सुलाये रखता है। कुन्ती के समक्ष प्रेम प्रकट करता है किन्तु सुधाकर से उसकी सगाई की सूचना पा तत्क्षण गन्तव्य दिशा को बदल देता है। यही नही, बाद मे कुन्ती के आग्रह पर निशा से विवाह कर सतुष्ट गृहस्थ जीवन व्यतीत करता है। कुन्ती के प्रति सभी लालसाओ को क्षण भर मे त्याग देने तथा कुन्ती के तनिक आग्रह पर निशा से विवाह कर लेने की घटनाएँ अचल के चरित्र को अस्वाभाविक बना देती है। वह यहा उपन्यासकार के हाथ की कठपुतली सी बन जाता है। अचल का व्यक्तित्व उपन्यास के कुछ ही पृष्ठो मे स्पष्ट हो जाता है। उसका चित्रण प्राय परोक्ष रीति मे हुआ है। अचल की अचलता—भावनाओ से न डिगने तथा कर्तव्य पर आरूढ रहने की प्रवृत्ति—कथा को दो मुख्य मोड देती है, कुन्ती-सुधाकर तथा अचल-निशा का विवाह। पहला विवाह असतुलित, असफल वैवाहिक जीवन तथा दूसरा सतुष्ट, सयमित गृहस्थी की झाकी प्रस्तुत करता है। इस प्रकार अचल उपन्यास की कथा का विधायक पात्र है। परिस्थितियो से प्रभावित हो वह अपना जीवन-मार्ग निश्चित करता है और अपनी प्रबल अचलता से परिस्थितियो को नवीन मोड देता है।

सुधाकर (अचल मेरा कोई ') मे अचल से मौलिक भिन्नता है। वह तर्क की अपेक्षा इच्छाओ से अधिक निर्देशित होता है। उसे गभीरता, स्थिरता नही शोखी, नित-नयापन, चचलता और रस चाहिए। शारीरिक तुष्टि ही उसका लक्ष्य है। निशा अचल से तुलना करते समय उसके विषय मे सोचती है—'सुधाकर चचल है। शरीर और दिमाग ,दिमाग भी है, परन्तु शरीर अधिक।'[1]

सुधाकर किसी अपूर्व, नवीन रहस्यात्मक सौन्दर्य या 'रोमास' की खोज मे है। वह अपनी जीवनसगिनी के रूप मे पूव परिचिता कुन्ती तथा निशा दोनो मे से किसी को भी ग्रहण करने की नही सोचता। बिल्कुल साफ स्लेट पर लिखना उसके मन को अच्छा लगता है। अपने जीवन के लिए उसे कुछ अधिक तीव्र सामग्री अपेक्षित है। इन दोनो मे निशा के भोलेपन की अपेक्षा कुन्ती का सौदर्य उसे अधिक आकर्षक लगता है, कुन्ती मे उत्तेजना है और प्रेरणा। कुन्ती के शोख नृत्य मे व्याप्त चपलता उसे कुछ अखरती है किन्तु यदि अचल को इस प्रकार की स्वतत्रता सह्य है तो सुधाकर उससे दो कदम आगे रहने का दावा करता है। सुधाकर कुन्ती से विवाह करने का निश्चय

१. अचल मेरा कोई—पृ० ६१

कर लेने पर अचल से अपनी 'रोमास-खोज' की चर्चा करता है—'मै पहले सोचा करता था कि व्याह अनजानी जगह मे करना चाहिये। उसमे कुछ रोमास मिलेगा, परन्तु ख्याल बदल गया। कुन्ती तो पूरी समूची रोमास है। अनजाने स्थान मे रोमास तलाश करने की जरूरत नही रही। सोचा यही मिल गया।'[1] वह कुन्ती को अर्द्धांगिनी, जीवनसगिनी, धर्मपत्नी के रूप मे नही देखता वरन् पिपासा-पूर्ति या मनबहलाव का साधन समझता है। उसे केवल रोमास चाहिए। रोमास मिलता है शोखी, चपलता तथा रग बिरगेपन मे। नारी मे इस वैविध्य तथा स्वच्छन्दता को पाने के लिए सुधाकर नारी-स्वातत्र्य का भारी पक्षपाती है। नृत्य-लीला मे रगमच पर हावभाव प्रदर्शित करती और अपने उभरे हुए अगो को और भी उभार देती हुई सुन्दरी युवतियो को निरखना, परखना उसे बहुत भाता है किन्तु पुरुष-सुलभ ईर्ष्या से ग्रस्त होने के कारण अपनी पत्नी के सावजनिक मच पर ऐसे प्रदर्शन का विरोधी है। सुधाकर मे लोलुपता है, ईर्ष्या है और है स्त्री-स्वतत्रता वाले नारे के प्रति अनुभवहीन युवको जैसा उत्साह। वह अचल के समक्ष तत्सम्बन्धी विचार प्रकट करता है—'मै स्त्रियो की स्वाधीनता का कट्टर पक्षपाती हू, परन्तु रगमच पर अपनी पत्नी या होने वाली पत्नी के नृत्य हाव-भाव, घुँघरू की छमाछम इत्यादि का पक्षपाती तो नही हूँ।'[2] कुन्ती से विवाह पक्का होने पर वह अचल से कहता है—'व्यवहार मे मै उसको इतनी आजादी दूँगा कि सिद्धान्त मात खा जाय।'[3]

'समूचे रोमास'—कुन्ती को पत्नी रूप मे प्राप्त कर लेने पर रसिक सुधाकर के जीवन मे उमगो तथा दैहिक प्यार की बाढ आ जाती है। वह वैवाहिक जीवन मे स्वनियत्रण, सयम तथा सतुलन के महत्व को नही जानता, सौन्दर्य का मूल सयम तथा स्वास्थ्य मे नही वरन् सजावट मे समझता है। शनै शनै कुन्ती के नृत्यदर्शन मे सुधाकर को उतना उल्लास न रहा। उसे नित्य सध्या के उपरान्त चाहिए थी वही सजावट, शृङ्गार का कोई नया दृश्य, रीझ का कोई नया पहलू, मन को कोई नया आकर्षण। परतु इन नये-नये पहलुओ, रीझो और करवटो मे वासना को तृप्त करने के लिए ताजगी न रही। लू की तीखी लपटो मे फूलो का सुहावनापन लुप्त हो गया, वे मुर्झाने लगे। कुन्ती जीवन के इस अभाव को लक्ष्य कर लेती है और सादगी पर बल देती है। किंतु सुधाकर को विश्वास है—'सजावट मे सौदर्य खिल उठता

१. अचल मेरा कोई—पृ० १५४
२ वही—पृ० ३७
३. वही—पृ० १५५

है। सादगी मे भी रहता है, पर मुझको सजावट तो नशा सा ही दे देती है।' उसे अश्लीलता भी भाती है क्योकि, 'लोग भिन्नता चाहते है। एकरसता मे फीकापन आ जाता है। कला तो वह है जो सदा ताजा मजा देती रहे।'[1] कला की ताजगी का रहस्य उसके स्थायित्व तथा द्रष्टा की एकाग्रचित्तता मे है इस रहस्य को सुधाकर नही समझता। वह सस्ती मादकता को सौंदर्य समझे बैठा है। मादकता, अश्लीलता के नयेपन की भी एक सीमा है। फिर वह सब पुराना-सा लगता है, नितान्त नीरस। घिसा-पिटा। सुधाकर तथा कुन्ती का प्रेम ज्वार शान्त हो जाता है और जीवन-तल मे रह जाती है बेचैनी, खीज, अभाव, ईर्ष्या तथा परस्पर अनबन की दलदल जैसी अधसूखी कीचड। कुन्ती पुन अचल से सम्पर्क बढाती है। सुधाकर घर के अनमने वातावरण से बचता है। वह मादकता के अभाव, कुन्ती के स्वतत्र घूमने-फिरने, लोगो की टिप्पणियो तथा गृहकलह से ऊब उठता है। उसका स्त्री-स्वतत्रता का तथाकथित दृष्टिकोण वास्तविकता से टकराकर अपने रूप मे आ जाता है। ऊपर की मुलम्मेसाजी झड जाने पर अन्दर का खुरदरा, बेतुका ढाँचा बाहर झाँकने लगता है। 'उदार' सुधाकर कुन्ती को नियत्रण मे लाने की चिंता मे पड जाता है। किन्तु स्थिति काफी गभीर हो चुकी है, कुन्ती पर नियत्रण स्थापित नही हो पाता वरन् प्रतिक्रियास्वरूप उसकी उद्धतता प्रचडतर रूप पकडती है। वह प्राय अचल के पास बैठकर समय व्यतीत करती है। व्यथित सुधाकर के चित्त मे क्षोभ का ज्वार उठता है, 'मैंने किस विपत्ति के साथ अपना ब्याह किया।' उसमे प्रतिक्रिया होती है, अपनी पत्नी का ही शासन न कर पाया तो धिक्कार है। अनशन करके वह कुन्ती को नियन्त्रित करना चाहता है, 'मै स्त्रियो की स्वतत्रता का अब भी वैसा पक्षपाती हूँ। परतु उसकी एक सीमा है।' कुन्ती द्वारा स्वतत्रता की परिभाषा या सीमा पूछे जाने पर सुधाकर की पुरुष-सुलभ शासक-प्रवृत्ति उदारता का चोगा फेक कह उठती है—'मुझको नही मालूम, पर मै यह चाहता हूँ कि मेरे साथ रहकर या मेरी अनुमति से चाहे जो कुछ करो, मेरी मर्जी के खिलाफ कुछ मत करो।'[2] सुधाकर की लोलुपता, अस्थिरता तथा स्त्री-स्वतत्रता सबधी अधकचरी नीति ही उसके तथा कुन्ती, दोनो के वैवाहिक जीवन के नाश का कारण बनाती है।

सुधाकर नई रोशनी से प्रभावित अनुभवहीन, अधकचरे दुस्साहसी युवक वर्ग का प्रतिनिधि है। उसका चरित्र स्वाभाविक और गतिशील है। वह अपनी

---

१ अचल मेरा कोई—पृ १७७ तथा १७९

२ वही—पृ० २६०

दुबलता के फलस्वरूप कटु अनुभवो से कुछ सीखता और स्थिति को सुधारने के लिये यथासाध्य प्रयत्न भी करता है। उसका चित्रण प्राय परोक्ष विधि से हुआ है।

निराश प्रेमी चम्पत

चम्पत (सोना) बीस-बाईस वर्ष का छरहरे शरीर का युवा है। गाँव के खुले वातावरण मे खेत-खलिहान मे बेधडक मिलने-जुलने वाले चम्पत और सोना एक दूसरे के प्रति आकृष्ट हो जाते है। सोना इस आकर्षण को आये दिन होने वाली घटनाओ मे से एक समझती है किंतु यह अपनापन, यह प्रेम चम्पत के जीवन का एक मात्र लक्ष्य बन चला है। वह एकान्त मे सोना पर प्रेम प्रकट करते हुए वैवाहिक जीवन के काल्पनिक महलो की चर्चा छेडता है। उसका विश्वास है कि तब सारा जीवन गाते-गाते बीतेगा। सोना का विवाह राजा धुरन्धर से हो जाने पर चम्पत के स्वप्निल महल चूर-चूर हो जाते है। सोना की विदा के उपरात उसके हृदय मे आग लग जाती है। रोने के लिए एकात ढूँढता है किंतु एकात पाकर रो नही पाता। गाना चाहता है, गा नही पाता। आकुलता उसे दग्ध किए जा रही है। गाँव के बाहर दूर तालाब के बध पर अकेले मे, अधेरे मे सोना के साथ गाये फाग को बहुधा गाया करता है। खेती-पाती से विमुख खोया सा, गाँव वालो की दृष्टि मे पागल जैसा।

सोना के खोए हुए हार को ढूँढ कर सौपने के बहाने उससे भेट करने की आकाक्षा चम्पत के हृदय मे है किंतु उद्योग मे असफलता और अपमान पाकर वह घोर निराशा मे उन्मत्त जैसा हो जाता है। केश मुडवा लेता है। धोती की जगह लगोटी। गेरुए वस्त्र धारण कर लेता है। मेले से उखडी हुई सोना की रावटी की धूल और ककडो के चक्कर काटता है। उनमे कुछ देखता है, ढूँढता है। चपत के अन्तरतम मे भ्रम है कि सोना उसे अब भी चाहती है। सोना से किसी न किसी प्रकार भेटकर प्रेमसूत्र पुन स्थापित कर लेने की एकमात्र कामना चम्पत के हृदय मे है। लालसा और निराशा चम्पत के मस्तिष्क मे अनोखी विकृति उत्पन्न कर देती हैं। वह सोना की बहिन रूपा पर डोरे डालता है। अत मे सोना द्वारा ठुकराये जाने पर भी रट लगाता रहता है—'प्यारी, मेरी प्यारी। एक बार तो कुछ कह दो।'

चम्पत अत्यधिक भावुक है। प्रेम ही उसका धर्म है। सोना की ओर से प्रेम का भ्रम उसे बना रहता है। उपन्यासकार ने उसे स्थान-स्थान पर पात्रो द्वारा लफगा, उच्क्का कहलाया है। रूपा पर डोरे डालते दिखाकर उसे पतित भी चित्रित किया है। अपमान तथा निराशा के फलस्वरूप उसके नीचता पर

उतर आने को मस्तिष्क की विकृति की संज्ञा देना ही उचित होगा। चम्पत का चरित्र प्रेम की अपूर्व लगन की दृष्टि से विलक्षण है। उसमे गति-शीलता है।

स्मृतिलोप का एक प्रयोग—दलीपसिंह

'कचनार' के नायक दलीपसिंह पर स्मृति-लोप सम्बन्धी एक प्रयोग है। स्मरण-शक्ति का लोप और उसकी पुनर्प्राप्ति की घटना वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक तथा कथाकार के लिए रोचक समस्या है। वर्मा जी एक सुप्रसिद्ध डाक्टर से इस विषय पर विचार विमर्श कर इन निष्कर्षों पर आते है—विष के प्रभाव से मनुष्य की स्मृति का लोप सम्भव नही है, यदि स्मृति लुप्त हो भी जाए तो ऐसी दशा मे उसकी पुनर्प्राप्ति नितान्त असम्भव है। स्मृति-लोप तथा उसकी प्राप्ति की यह क्रिया मस्तिष्क की ग्रन्थि विशेष मे चोट लग जाने पर सम्भव है। मस्तिष्क मे घातक चोट लगने पर मनुष्य चेतना-प्राप्ति के पश्चात् पहले की घटनायें भूल जाएगा। दुर्बल मस्तिष्क भविष्य मे भी घटनाओ को थोडे समय तक ही स्मरण रख पाएगा। वह व्यक्ति बालक की भाँति क्षण-क्षण पर विस्मृति का शिकार होगा। क्रमश स्मरण-शक्ति बढेगी। वह पिछली बातो को भूल कर हाल की घटनाओ को स्मरण करने मे सफल होगा। तदोपरान्त उसका स्मृति-क्षेत्र बृहत्तर होता जाएगा। सयोगवश यदि मस्तिष्क के उसी भाग पर पुन चोट लगे तो हटी हुई गन्थि का सही स्थान पर आ बैठना सम्भव है। ऐसी दशा मे उस व्यक्ति की स्मरण-शक्ति जाग्रत् हो उठेगी। उसे पहली चोट लगने से पूर्व का स्मृति-सूत्र पुन प्राप्त हो जायगा। भविष्य मे भी उसकी स्मरण-शक्ति साधारण, स्वाभाविक गति से कार्य करेगी।[1] अब प्रश्न उठता है कि उसे पहली तथा दूसरी चोट के मध्यकाल की घटनाओ का स्मरण रहेगा अथवा नही। इस दिशा मे वर्मा जी ने स्वयं निर्णय दिया है कि दूसरी चोट के बाद उस व्यक्ति की स्मरण-शक्ति पूर्णतया सुचारु रूप से कार्य करने लगेगी। उसके मस्तिष्क कोश मे पहली चोट से पूर्व, उसके बाद तथा दूसरी चोट के बाद की सभी घटनाये सचित होगी। दूसरी चोट के फलस्वरूप मस्तिष्क-ग्रन्थि के सही स्थान को पुन प्राप्त कर लेने पर व्यक्ति मे किसी प्रकार की अस्वाभाविकता नही रह जाएगी।

धामोनी का राजा दलीपसिंह सागर की सेना से टक्कर ले विजय प्राप्त कर लौटते समय मार्ग मे घोडे से सिर के बल गिर पडता है। मस्तिष्क की किसी कोमल ग्रन्थि मे आघात लगने तथा उसके मूल स्थान से हट जाने के

१ कचनार—पृ० ३ से ५ (परिचय)

फलस्वरूप वह स्मरण-शक्ति खो बैठता है। उष्ण ओषधियो के प्रभाव से मृतप्राय हो जाता है। उसे मरा हुआ समझ कर लोग दाहकर्म के लिए वन ले जाते है। सयोगवश वह महन्त अचलपुरी के हाथ लगता हे और उसकी रक्षा होती है। गुसाँइयो के साथ रहकर सुमन्तपुरी (दलीपसिंह) क्षण-क्षण मे घटनाओ को विस्मृत करता है। शनै शनै उसका स्मृति-क्षेत्र बढता है किंतु चोट से पूर्व की कोई भी घटना उसे स्मरण नही आती। तत्पश्चात् गुसाँइयो के साथ धामोनी पर आक्रमण करते समय सिर के बल जा गिरने पर कुछ काल तक बेसुध रहने के उपरान्त दलीपसिंह सम्पूर्ण स्मृतिसूत्र पुन प्राप्त कर लेता है। मस्तिष्क-ग्रन्थि के मूल स्थान से हटने और उसके पुन वही आ बैठने की घटना दलीपसिंह के जीवन मे एक अनोखे स्वप्न की भाँति कौंध कर लुप्त हो जाती है।

दलीपसिंह बीस इक्कीस वर्ष का हृष्ट-पुष्ट युवक है। उसके चरित्र मे विकास है। प्रारम्भ मे वह सहजकोपी क्रूर और कामुक है किन्तु परिस्थितियो मे पडकर अनेक कष्ट सहन करने के उपरान्त सुधरता है। उसमे दया, सहनशीलता और पुनीत प्रेम के लक्षण उदित होते है। बर्बरप्राय निष्ठुर, कामुक ईर्ष्यालु दलीपसिंह सुसस्कृत, सहृदय दलीपसिंह बन जाता है।

दलीपसिंह स्वभाव से वीर है, सहजकोपी और कामुक। पत्नी, कलावती तक उसकी उग्र प्रकृति से भय खाती है। दोनो का स्वभाव 'सुहागरात' को भी मेल नही खा पाता। डरू द्वारा सोनेशाह के वध की सूचना पाकर दलीपसिंह स्वनियन्त्रण खो बैठता है। डरू के हाथ न लगने पर उसके निरपराध छोटे भाई बैजनाथ के ही टुकडे कर डालता है। वह कचनार को अपनी वासनापूर्ति का लक्ष्य बनाना चाहता है। उसे मुट्ठी मे करना चाहता है किन्तु कचनार के दृढ, प्रबल व्यक्तित्व के समक्ष ठिठक कर रह जाता है। दलीपसिंह के व्यक्तित्व मे कुछ सद्गुण बीजरूप मे छिपे रहते हे, कचनार को कामपिपासा का साधन बनाना चाहते समय हृदय के किसी कोने मे उसके प्रति प्रेम का तत्व भी सजोये रहता है। वह वैराग्य के प्रति पूर्व से ही आकृष्ट था। महन्त अचलपुरी से प्रथम भेट मे सन्यास के प्रति रुचि प्रकट करता है। धामोनी निवासियो द्वारा परित्यक्त होने के पश्चात् गुसाँइयो के आश्रय मे महन्त अचलपुरी और कचनार की सत्सगित प्राप्त कर दलीपसिंह के सद्गुण पल्लवित हो उठते हे। मस्तिष्क मे दोनो अवस्थाओ की स्मृति बनी रहने के कारण अन्त मे उसे अपने जीवन का तुलनात्मक निरीक्षण कर सन्तुलित होने का अवसर मिलता हे। वह बैजनाथ के वधकर्म पर पश्चाताप प्रकट करता है—'शकर ने मेरे प्राण पर पीड़न के लिए नही बचाए है।' महन्त अचलपुरी

क्षुब्ध हो डरू को प्राण दण्ड देना चाहता है किन्तु दलीपसिंह प्राणो की बाजी लगा कर उसकी रक्षा कर अपने पूर्व कर्मों का प्रायश्चित्त करता है। यही नही, मानसिंह तथा कलावती आदि को भी क्षमा कर देता है। कचनार के प्रति उसकी कामुकता पुनीत प्रणय मे परिवर्तित हो जाती है। वह उसके लिए सोलह आनो पूज्य है।

आदर्श शासक—मानसिंह

'मृगनयनी' का नायक राजा मानसिंह युवावस्था के आगे जा चुका है। अधिक अवस्था होने के कारण उसका विवेकी, नियन्त्रित तथा गम्भीर होना स्वाभाविक है। शरीर की पुष्टता उसके श्रमप्रिय स्वभाव की परिचायक है और सहज मुस्कराने वाले होठ सहृदयता के प्रतीक।

वह उत्साही शासक है। उसे आक्रमणकारियो से राज्य की रक्षा करने तथा निर्माणकार्य मे भारी रुचि है। शारीरिक श्रम को महत्व देता है। श्रम ही उसका मनोरजन, श्रम ही अवकाश है। कहता है—'जीवन मे कायक काम ही सब कुछ है। एक काम से मन उचटे तो दूसरा करने लगे। मै तो अवकाश इसी को कहता हूँ।'[1] उसके व्यक्तित्व मे परिश्रम तथा कलाप्रेम का अपूर्व मिश्रण है। वीणा-वादन प्राय विजय जगम से सुनता है। गायक बैजू तथा उसकी शिष्या कला का वेतन अपने चिट्ठे मे से बाँधने की आज्ञा देते हुए मन्त्री से कहता है—'राज्य है काहे के लिए। प्रजापालन, कला की रक्षा और बढोतरी के ही लिए न ? प्रजा और कला, दोनो के लिए हमे अपने प्राण दे देने के लिए तैयार रहना चाहिए। इन दोनो की रक्षा का ही तो दूसरा नाम धर्म का पालन है।'[2] वीणा, सगीत के अतिरिक्त शिल्पकला मे तो उसके प्राण बसते है। उसका यह कला प्रेम कभी-कभी एकागी हो जाता है। वह राज्य पर चढ आये तुर्क शत्रुओ को कुछ धन देकर शान्ति स्थापित रखने की सोचता है ताकि भवन-निर्माण आदि का कार्य निर्बाध गति से चल सके, सगीत मे नये प्राण फूँके जाएँ तथा चित्रकारी, साहित्य इत्यादि पूरी ऊँचाई प्राप्त कर सके किन्तु मृगनयनी अपने पति मे कलाप्रेम के अतिरेक के फलस्वरुप आगन्तुक प्रमाद तथा पलायनवाद को लक्ष्य कर लेती है। वह उसकी दुर्बलता की आलोचना कर उसे राजा के सर्वप्रथम कर्तव्य, देशरक्षा के लिए प्रेरित करती है। कला तथा कर्तव्य के समन्वय का मृगनयनी द्वारा ओजस्वी सन्देश प्राप्त कर मानसिंह गद्‌गद् हो बोल उठता है—'सचमुच, अब

---

१ मृगनयनी—पृ० १०६

२. वही—पृ० १७१

मुझको अपने भीतर बहुत बल प्रनीत हो रहा है। विलक्षरा और प्रचण्ड। शत्रु को सोना चाँदी दे-दिवाकर टाल देने की बात मैंने अपने मन से बिलकुल निकाल दी। सचमुच वह कला क्या जो कर्तव्य को लगडा करदे, और, और वह कर्तव्य भी क्या जो कला का अङ्ग-भग हो जाने दे ?'[1] कला तथा कर्तव्य का समन्वय उसके महान् व्यक्तित्व का मूलमन्त्र है। उतरती अवस्था मे भी वह अपने आप मे कार्य करने की अपूर्व क्षमता और अदम्य उत्साह का अनुभव करता है। उसका मत है, 'काम करने वाला मरने से कुछ घटे पहले ही बुड्ढा होता है।'

मानसिंह स्वभाव से रसिक है। तत्कालीन राजाओ मे प्रचलित बहु विवाह प्रथा का स्वय भी भागी है। मृगनयनी के सौदय तथा शौय से आकृष्ट हो उसे अपनी आठवी पत्नी के रूप मे ग्रहरा कर लेता हे। पहली पत्नी सुमनमोहिनी के व्यग्यो तथा षड्यन्त्रो को उसे धैर्यपूवक सहन करना पडता है। वह मन ही मन स्वीकार करता है कि एक स्त्री का शासन पुरुष के लिए कठिन है, आठ तो आठ ग्वालियर राज्यो की समस्या के समान हे। अत वह विनय, शील और मृदुलता से काम ले व्यग्य, गाली, कटूक्ति हस कर सहने मे अपना कल्याण समझता है। मानसिंह विचारक हे, उसके दृष्टिकोरा मे सन्तुलन है। जातिगत भेदभाव-जन्य सकीर्णता का विरोधी हे। सम्प्रदाय सम्बन्धी मतभेद और शास्त्रार्थ उसे नही भाते। उसका धम केवल कर्तव्य—कर्म—है। वैष्णव तथा शैव मत के दो प्रतिद्वन्द्वियो का समाधान करते हुए अपना मत प्रकट करता है—'ये बैठे ठाले के वाक्‌युद्ध व्यर्थ है। कम मुख्य हे। जो इससे बचना चाहते हैं, वे ही दाये-बाये की पगडडियाँ ढूँढते हे।'[2]

मानसिंह का चरित्र विलक्षरा है। कला और कर्तव्य के मध्य सन्तुलित ऐसे शासक कम होते है। वह कला मात्र मे मस्त रहने वालो अथवा सासारिक झझटो मे ही बिधे कलाविहीन जनो के लिए अच्छा माग-दर्शक है। उसमे गतिशीलता हे। पहले कला की ओर अधिक झुका हुआ है फिर मृगनयनी की प्रेरणा पाकर शनै शनै कला कर्तव्य के मध्य स्थिर हो जाता हे। उसके चरित्र-चित्ररा मे प्रत्यक्ष रीति का प्राय प्रयोग हुआ है। उपन्यासकार ने अपने विवेचन मे उसे महान् व्यक्ति के रूप मे प्रारम्भ से चित्रित करने का प्रयत्न किया है। फलस्वरूप पाठक को मानसिंह का चरित्र कुछ अस्वाभाविक, अपने ऊपर थोपा हुआ सा, जान पडता है, पाठक मानसिंह

१ मृगनयनी—पृ० ३४८

२ वही—पृ० ४६

के व्यक्तित्व से पूर्णतया तादात्म्य स्थापित नही कर पाता। मानसिह के विभिन्न गुणो को प्रकाश मे लाने के लिए विभिन्न परिस्थितियो की सृष्टि की गई है। वह एक आदर्श पात्र के रूप मे दीख पडता है—जीवन के स्वाभाविक साधारण धरातल से उठा हुआ। पाठक से उसकी दूरी का यही मुख्य कारण है।

तीन खल पात्र [अ] स्वार्थी, धूर्त भुजबल

भुजबल (कुंडली चक्र) तेईस चौबीस वर्ष का चढती अवस्था का युवक है, स्वार्थी और धूर्त-प्रकृति। पहली घटना ही उसकी स्वार्थपरायणता का परिचय देती है। वह किसी राहगीर की कमर से गिरे हुए रुपये को बिना किसी सकोच के उठा कर जेब मे डाल लेता है। उसका मत है, 'सरकारी सडक पर पडी हुई सम्पत्ति पर किसी का इजारा नही होता। जिसको मिल जाय, उसकी होती है।' [1]

ललित की बहिन रतन से विवाह हो जाने पर उसकी धूर्तता प्रबल हो उठती है। वह अपनी पहली, मृत, पत्नी की छोटी बहिन सुन्दरी पूना को भी अपनी कामपिपासा का लक्ष्य बनाना चाहता है। पूना के योग्य वर न मिलने का मिथ्या प्रचार तथा बूढे जमीदार शिवलाल द्वारा उससे बलपूर्वक विवाह कर लेने की आशका फैलाकर पूना से स्वय के विवाह का षड्यन्त्र रचता है। साथ ही शिवलाल को पूना से विवाह करा देने का झाँसा दे कर उससे रुपया ऐंठता है। ललित को शिवलाल की जमीदारी खरीदने के लिये तैयार कर निज के लाभ की योजना बनाता है। भुजबल की पूना से बलात् विवाह करने की योजना, अजित तथा ललित के मध्य मे आ जाने के कारण असफल रहती है। अजित पूना को दूर ले जाता है। पूना की खोज मे तत्पर भुजबल जिस समय ललित को एकाएक देखता और उसके व्यग्य-बाणो का लक्ष्य बनता है, सुधबुध खोकर गिर पडता है।

भुजबल स्थिर चरित्र का पात्र है। वह प्रारम्भ से लेकर अन्त तक एक दिशा मे अग्रसर होता रहता है। उसका पूना से विवाह करते समय ललित की ओर से रक्षा का प्रबन्ध न करना तथा ललित का सामना होने पर अचेत हो जाना अस्वाभाविक है। ऐसे धूर्त व्यक्ति का भेद खुलते समय किसी प्रकार की प्रतिक्रिया न कर अचेत होकर पड रहना, आश्चर्यजनक है। मानो भुजबल रङ्गमच से एकाएक घसीट लिया गया हो। भुजबल खलवर्ग का पात्र है। उसका चित्रण प्राय प्रत्यक्ष विधि से हुआ है।

---

१. कुंडली चक्र—पृ० २०

[घ] अहम्मन्य नवलबिहारी

नवलबिहारी (प्रत्यागत) चढती अवस्था का हट्टा-कट्टा व्यक्ति है। आँखो मे प्रभुता और चेहरे पर मुस्कराहट खेला करती है। जो कुछ उसने देखा-सुना है उसे उसमे कट्टर विश्वास है। उसने लगभग सभी बातो को मापने के मापदण्ड बना लिए है। इस मापदण्ड पर खरे न उतरने वाले व्यक्ति उसकी दृष्टि में 'नास्तिक' है। समाज मे आदर मिलने के कारण नवलबिहारी की कट्टरता पर अहम्मन्यता की भारी छाप है। वह मलाबार मे बलपूर्वक विधर्मी किये गये हिन्दुओ के विषय मे निश्चित मत प्रकट करता है—'और क्या होगा? वे हिन्दुओ के किस काम के रहे? उनके भाग्य मे यही बदा होगा।'[1] उसके कोश मे पतितो के लिए सहानुभूति और क्षमा के शब्द नही है। त्रस्त जनो को उनके भाग्य पर छोड देना उसका सिद्धान्त है। वह परिस्थितियो से समझौता करना नही जानता—पुरातन प्रेमी है। आवर्तवादी है, जागृति के इस युग मे भी मनुष्य से कृतित्व का दायित्व और सारी महत्ता छीन कर कालचक्र के हाथ सौप देता है—'कलियुग के अन्त मे प्रलय होने पर जब फिर सृष्टि की रचना होगी तब सब ससार मे फिर वर्णाश्रम का आविर्भाव होगा। पुन वही सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग का चक्र चलेगा। इसलिए, मेरी तो ध्रुव धारणा यह है कि चाहे अन्त मे एक ही हिन्दू क्यो न बचे परन्तु हो वह नितान्त पवित्र और शुद्ध।'[2]

नवलबिहारी की कट्टरता मे सिद्धान्त पर जमे रहने की बात नही है जैसे बोधन मिश्र (मृगनयनी) अपने सही या गलत सिद्धान्तो पर अडा रहता है और उन्ही के लिये प्राणो का त्याग कर देता है। नवलबिहारी की कट्टरता केवल अपनी धाक जमाना जानती है, धाक को न मानने वाले व्यक्ति को नीचा दिखाना उसका परम लक्ष्य है। उसके विलक्षण स्वर पर मगल रामायण सभा मे हँस पडा था, वह नवलबिहारी की दृष्टि मे चिर शत्रु हो जाता है। मगल के मलाबार से मुसलमान बन कर लौटने के समाचार पर नवलबिहारी को खेद या सहानुभूति के स्थान पर अनोखा हर्ष होता है। वह शत्रु को चगुल मे आया जान कर घाते करने के लिए तत्पर हो जाता है। मगल के प्रायश्चित्त के फलस्वरूप उसके हिंदूधर्म मे प्रत्यागमन मे यथासाध्य रोडे अटकाता है। इधर मगल के प्रायश्चित्त की क्रिया पूरी होती है और उधर नवलबिहारी सभी जातियो की सभा बुला कर मगल के परिवार का बहिष्कार का प्रस्ताव स्वीकृत कराता है। सभी जातिवालो के बालक मगल के प्रायश्चित्त-भोज मे भोजन

---

१. प्रत्यागत—पृ० ५३

२. वही—पृ० १८५

कर लेते है। अपने बालको के भोज मे सम्मिलित हो जाने के कारण सभी जाति वाले समस्या के समाधान के लिए आकुल हो उठते है किन्तु हठी नवलबिहारी के पास एक ही उत्तर था, 'असम्भव'। उसकी दुष्टता समाज को उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया के लिए बाध्य कर देती है। अन्त मे एक अन्य सभा कर के लोग मगल का बहिष्कार समाप्त कर देते है। मगल नवलबिहारी के मन्दिर मे प्रवेश कर चरणामृत लेना चाहता है । नवलबिहारी विरोध मे असफल रहने पर चिढ कर मगल और उसके साथियो पर दगा करने का दावा दायर कर देता है। मगल के मदिर मे बलात् प्रवेश को सबकी दृष्टि मे नीच कर्म ठहराने के लिए भाँति-भाँति के चमत्कारपूर्ण समाचार फैलाने की धुन मे देवमूर्ति का सिर के बल खडा हुआ भी दिखाता है। इस दुर्घटना को लोग दैवी कार्य न मान कर नवलविहारी की करतूत स्वीकार करते है। नवलविहारी समाज के रोष का भाजन है, उसे पचायत के न्याय की व्यवस्था मे दोषी ठहराया जाता है। अभिमान, कट्टरता तथा दुष्टता की अन्त मे पराजय होती है।

नवलबिहारी समाज के 'ठेकेदारो' का प्रतीक है। उसके चरित्र मे स्थिरता है। प्रारम्भ से लेकर अत तक एक दिशा मे चलता है। अपनी अहम्मन्यता की तुष्टि के लिए एक के बाद दूसरा अपराध करता है। उसका चित्रण प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनो विधियो से हुआ है। वह कथा को बढाता है और पाठको के मस्तिष्क पर अपने हठी चरित्र की छाप छोड जाता है।

[स] कुटिलमति रामदयाल

रामदयाल (बिराटा की पद्मिनी) शेक्सपियर के सुप्रसिद्ध नाटक 'ऑथेलो' के शठ पात्र इआगो की भाँति कुटिल है। जिस प्रकार इआगो को किसी न किसी प्रकार का षड्यत्र रचने तथा लोगो मे परस्पर सदेह और वैमनस्य उत्पन्न करने मे आनद आता है ठीक वैसी ही धूर्तता, काँइयाँपन रामदयाल के जीवन के अग बन गये है। किसी भी कार्य को बिना धूतता के करना उसके लिए कठिन है। वह अपने व्यवहार, वाक्पटुता तथा अन्य जनो की मनोवैज्ञानिक पकड करने मे इआगो की भाँति सिद्धहस्त है।

रामदयाल राजा नायकसिंह का मुँह-लगा विश्वासपात्र अनुचर है। अनुचित साधनो द्वारा राजा की वासनापूर्ति की सामग्री जुटाने मे उसकी धूर्तता का पूरा उपयोग होता है। युद्धकाल मे बिराटा मे स्थित देवीसिंह की वाग्दत्ता पत्नी गोमती की देवीसिह के प्रति उत्सुकता को भाँप कर उसका विश्वास प्राप्त कर लेता है। गोमती अपने भावी पति के राजा हो जाने के समाचार को प्राप्त

कर अनेक रगीन कल्पनाओ मे डूबी हुई है । रामदयाल चतुरतापूर्वक झूठी-सच्ची बाते गढ कर गोमती के स्वप्नो की रगीनी को और भी गहरा कर देता है । गोमती की कामनाओ, आकाक्षाओ, अभिलाषाओ की ज्वाला प्रचडतर हो उठती है । रामदयाल उसकी हृदयाग्नि को उकसा कर उसके समीप पहुँचने का भरसक प्रयत्न करता है । और ससार मे उसका, सबसे अधिक कृपापात्र होने का गौरव प्राप्त करके ही चैन लेता है । बिराटा मे रामदयाल की नृतता नग्न रूप धारण कर लेती है । वह कुमुद और कु जरसिह के पारस्परिक सम्बन्ध पर सन्देह कर उनके विरुद्ध प्रचार मे रत हो जाता है । इस विषय मे गोमती से भविष्यवाणी करता है—'केवल इतना बतलाए देता हू कि जहाँ कु जरसिह जायेगे वही कुमुद जायेगी ।' वह कुमुद के सर्वनाश के लिए स्वत कटिबद्ध रहता है । उसका कुटिल स्वभाव बिना किसी कारण के अलीमर्दान द्वारा कुमुद का अपहरण कराने की योजना मे रत रहता है । सब लोग कुमुद की अलीमर्दान के पजे से रक्षा करने के लिए सर्वस्व होम करने के लिए तत्पर रहते है । दूसरी ओर रामदयाल की दुष्ट प्रकृति अलीमर्दान को इस दिशा मे उत्तेजित और प्रेरित करने तथा सहायता देने मे लगी रहती है ।

रामदयाल व्यवहारपटुता तथा वाक्चातुर्य मे बेजोड है । उसकी तुरन्त-बुद्धि केअनेक ज्वलन्त उदाहरण उपन्यास मे मिलते है । उसके राजा देवीसिंह के विरुद्ध अलीमर्दान को छोटी रानी का राखीबन्द भाई बनाने, गोमती को भुलावा देकर उसका अभिन्न विश्वासपात्र बनने, विरोधी होते हुए भी बिराटा मे अत्यन्त निश्चिन्ततापूर्वक रहने तथा गोमती को कौशलपूर्वक अलीमर्दान की छावनी मे ला रखने की घटनाये रामदयाल के बेजोड व्यवहारकौशल की साक्षी हैं । वार्तालाप मे सयम और चातुर्य की दृष्टि से वह अपना सानी नही रखता । कु जरसिंह उससे क्षुब्ध हो उठता है किन्तु कु जरसिह की डाट-फटकार से तनिक भी विचलित न होकर अदम्य भाव से अपने षड्यन्त्रो मे रत रहता है । वह भर्त्सना, धमकी को अविचलित रहकर सहज ही ओढ लेता है । देवीसिंह द्वारा रात्रि मे बिराटा के मन्दिर मे पहचान लिए जाने पर तनिक नही सकपकाता । गोमती के प्रश्न को मध्य मे ला परिस्थिति को उलझा कर साफ बच जाता है । रामदयाल का अन्त भी इसी ढङ्ग से होता है । वह लोचनसिह की पकड मे आने पर अपने आप को युद्ध से असम्बद्ध तथा किसी की खोज मे तत्पर बताता है । लोचनसिह उसे लात मार कर कहता है, 'जो जन्म भर किया है, वही किया कर नीच ।' और रामदयाल बेतवा की धार मे सदा के लिए लुप्त हो जाता है ।

गोमती के प्रति प्रणय की भावना रामदयाल के एकरस जीवन मे मोड़

देने वाली महान् घटना के रूप मे आती है। गोमती को देखते ही उसके हृदय के किसी कोने मे आकर्षण उत्पन्न हो चुपचाप पलने लगता है। उसे प्रणयी हृदयो के मूक मार्मिक व्यापार का असाधारण ज्ञान है। गोमती से कुमुद तथा कुंजर की गतिविधि के सम्बन्ध मे पूछताछ करते समय इस रसानुभूति का अपूर्व परिचय देता है। वह प्रणयी हृदयो के परस्पर आदान-प्रदान की इन शब्दो में व्याख्या करता है 'एक पक्ष तो यह समझता है कि मै प्यार करते करते खपा जा रहा हूँ और दूसरा मेरी बात भी नही पूछता। उधर दूसरा पक्ष कदाचित् यह सोचता है कि मैं करूँ तो क्या करूँ? हृदय का दान देने को जो यह उतारू है, सो वास्तव मे ऐसा ही है या नही? यदि ऐसा ही है तो मै अपने हृदय का दान किस भाँति करूँ। अन्त मे कदाचित् यह निश्चय होता है कि हृदय का गुप्त दान करूँ—कोई न जाने, यहाँ तक कि लेने वाले से भी यह दान छिपा रहे।' गोमती को सुरक्षित स्थान मे पहुँचाने के बहाने वह उसे बिराटा से अलीमर्दान की छावनी मे ले जाता है। मार्ग मे स्पष्ट शब्दो मे उसके समक्ष अपना हृदय खोल कर रख देता है। उसने गोमती का विश्वास और स्नेह प्राप्त करने के लिए स्वाभावानुसार कपट का आश्रय लिया था। प्रणय-व्यापार को भी षड्यन्त्र का रूप दे दिया था किंतु उस हृदयस्पर्शी वेला मे उसके हृदयाकाश से कपट के बादल छँट गये और रामदयाल के सद्भाव किरणो की भाँति फूट पडे। वह उस क्षण अपने आप को बदला हुआ पाता है। प्रणय उसे कुछ कर डालने के लिए प्रेरित करता है। गोमती से कंपित कंठ से कह उठता है—'मै अपने को जैसा इस समय पा रहा हूँ वैसा कभी न पाया था। मै बडी स्वच्छता के साथ अपने जीवन को बिताऊँगा। जो कुछ मैने किया है, उसे भूल जाऊँगा और तुम्हारे योग्य बनूगा। तुम मुझे अवसर दोगी?'

रामदयाल का चरित्र विलक्षण है। उसके व्यक्तित्व मे अनेक विरोधी गुणो का सामंजस्य है। प्रबल होते हुए भी वह गतिशील है। प्रणय के कारण उसमे भारी परिवर्तन आता है। उसका चित्रण स्वाभाविक और रोचक बन पडा है। रामदयाल को परोक्ष विधि से प्रस्तुत किया गया है। वह अपने कार्य तथा दूसरो की आलोचना के द्वारा स्पष्ट होता है। उपन्यासकार ने अलग से उसके विषय मे कुछ कहने का अवसर नही आने दिया है। रामदयाल उपन्यास मे विशेष महत्व रखता है। वह छोटी रानी के विद्रोह का आधारस्तम्भ है। अलीमर्दान तथा छोटी रानी के मध्य सम्पर्क स्थापित कराता है। गोमती के जीवन को उसके द्वारा दिशा प्राप्त होती है। और रामदयाल का सबसे महत्व-

पूर्ण कार्य है अलीमर्दान को कुमुद के प्रति आकृष्ट कर कुमुद पर विपत्तियो का पहाड ढाना।

अधकचरा दार्शनिक-ललितसेन

ललितसेन (कुडली चक्र) अधकचरा दार्शनिक है। योरोपीय तथा भारतीय दर्शन-शास्त्रो के विशृङ्खल अस्त-व्यस्त अध्ययन के कारण उसकी विचारधारा उलझ गयी है। विचारधारा की इस उलझन और अपरिपक्वता के कारण ललित सनकी जैसा जान पडता है। वह निर्बल-दुर्बल व्यक्ति का अस्तित्व समाज के लिए हानिकारक समझता है। दुर्बल-निर्बल सडे-गले व्यक्तियो के पूर्णतया नाश के लिए एक कानून की आवश्यकता अनुभव करता है। दुबलो को आश्रय देने वाली संस्थाओ अस्पतालो, अनाथालयो, वनिताश्रमो की विशेष आवश्यकता उसके मत के अनुसार नही है। इन संस्थाओ से कष्ट की वृद्धि हुई है, समाज की निर्बलता कम नही हुई। निबल को उसकी निर्बलता का बोध करा कर उसका नाश करना वह न्यायसगत मानता है। कवि और भिक्षुक उसके लिए समान है, संसार दोनों को एक दिन ग्रस लेगा। उसके सिद्धान्त सासारिक यथाथ की टक्कर से अछूते है। उपन्यास के अन्त मे जब वह मैजिस्ट्रेट की अदालत से अजित के विरुद्ध दायर किया हुआ मुकदमा उठाने जाता है मैजिस्ट्रेट द्वारा अपमानित होने पर उसके मुख से स्वत निकल पडता है—'प्रबल का आतक निर्बल पर स्वाभाविक है।' एक क्षण बाद उस का अभिमान कह उठता है—'निर्बल प्रबल हो सकते है, और होगे। और एक दिन यह सारी ऐंठ खाक मे मिल जाएगी।'[1] इस प्रकार ललित की उलझी हुई दार्शनिकता अधूरी और व्यवहारिक ज्ञान से हीन है।

ललित स्वभाव से सहसा-प्रवर्ती है। एकाएक सनक मे आकर अप्रत्याशित काय कर बैठता है। अपनी बहिन रतन के लिए अनजाने विधुर भुजबल को वर रूप मे तुरन्त स्वीकार कर लेता है। अपना विवाह न करने का दृढ निश्चय वह प्राय प्रकट करता रहता है किन्तु एक बार सुन्दरी पूना के दर्शन करने पर उससे विवाह करने पर उतारू हो जाता है। अजित पर रतन के प्रति आकर्षण का सन्देह कर उसे अपमानित कर घर से निकाल देता है। उसके विरुद्ध मुकदमा भी दायर कर देता है। भुजबल की नीचता देखकर अपने किए पर पश्चाताप तथा अजित के प्रति सद्भाव तुरन्त प्रकट करता है।

ललित विलक्षण चरित्र का पात्र है। उसकी यह विलक्षणता उसे सनकी बना देती है। उसके चरित्र का विकास भी स्वाभाविक नही है। वह अपने 'निर्बल के नाश' वाले सिद्धात को अन्त मे एक धक्का-सा खा कर बदलता है।

---

१ कुंडली चक—पृ० २५८

धनप्राप्ति के लोभ मे नाई धनीराम के यहाँ पोषित ब्राह्मण कन्या जानकी से सम्पत का सम्बन्ध करता है। सुखलाल की मृत्यु की सूचना पा उसका पूर्व-विरोधी होते हुए भी उसकी सम्पत्ति दावे द्वारा हडपने का दुष्प्रयत्न करता है, सुखलाल की असहाया विधवा पुत्री पर तनिक दया नही करता। स्त्री-विक्रय सम्बन्धी षड्यन्त्र खुल जाने पर सम्पत सुधरता है किन्तु भिखारीलाल पर इस दुर्घटना का प्रभाव नही पडता।

उसमे निष्ठुरता परले सिरे की है। जानकी-सम्पत के विवाह के अवसर पर ही वह धनीराम से भविष्य मे सम्बन्ध-विच्छेद की घोषणा करने मे नही चूकता। विवाह मे नन्दराम नाई की कन्यापक्ष वालो से मारपीट हो जाने पर भिखारी नन्दराम को धनीराम के विरुद्ध उभारता और तत्सबन्धी मुकदमे मे धनीराम का विरोध करता है। विवाह मे आशातीत धनप्राप्ति न होने पर पुत्रवधू जानकी को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष ताने देता रहता है।

भिखारी स्थिर चरित्र का पात्र है। उसमे प्रारम्भ से लेकर अन्त तक कोई परिवर्तन नही आता, सुखलाल के पुनर्जीवित होने के समाचार को प्राप्त कर और उसकी सम्पत्ति हडपने के प्रयास मे मुह की खाने पर भिखारी मे सुधार का लक्षण नही दीख पडता। उसे पश्चाताप नही होता वरन् स्वार्थहानि के कारण ठेस लगती है। उसका चरित्र वर्गगत है। ऐसे कट्टर स्वार्थी और निष्ठुर लोग समाज मे प्राय मिलते है।

उद्दण्ड नन्दराम

नन्दराम (सगम) उद्दड, प्रतिहिंसी तथा हठी प्रकृति का है। अन्त मे अपनी हिंसा पर पश्चाताप कर दण्ड का भागी बन पूर्वकर्मो का प्रायश्चित्त करता है। वह सम्पत के विवाह मे अपने उद्दड कटु परिहास के फलस्वरूप लडकी वाले से तनाव उत्पन्न करता है। प्रत्युत्तर मे परिहास सहने की शक्ति उसमे नही है। रायता परोसने वाले के सक्रिय परिहास के प्रत्युत्तर मे उसे पीट कर स्थिति को घराती तथा बरातियो के मध्य मारपीट तथा आपसी झगडे का रूप दे देता है। स्वय पिट जाने पर सहनशक्ति का परिचय नही देता, प्रतिशोध चुकाने के लिए पुलिस मे रिपोट करता है। वहाँ भी सफलता न मिलने पर मुकदमा दायर कर सबको अदालत मे ला घसीटता है। वह केवल पीटना जानता है पिटना नही। कहता है—'बाप-दादो की डूब जाएगी। मेरे घराने मे मुखिया और जमीदार रहे है। कभी किसी ने मार नही खाई। सदा दूसरो को पीटते ही रहे है। मै मार नही पाया, यह कसर जी मे रह गई। इसलिए अदालत से जेलखाने की सजा कराऊँगा। वह मार

लगाने से अच्छा है ।' १ इसी क्रम मे सुखलाल से वेर बँध जाने पर उसकी हत्या कर बैठता है ।

सुखलाल की हत्या करने के पश्चात् वह पुलिस के भय तथा आत्म-ग्लानि से प्रताडित हो जगलो मे भटकता फिरता है । सुखलाल के जीवित बच जाने के समाचार से उसकी आत्म-ग्लानि और पश्चाताप चरम पर जा पहुचते है । वह मैजिस्ट्रेट के घर पर अपराध स्वीकार कर जेल की कैद या प्रायश्चित का भागी बनता है ।

नन्दराम का चरित्र प्रबल है किन्तु वह अन्त मे बदलता है । उस मे गति-शीलता है । नन्दराम अपने क्रियाकलाप से अनेक परिस्थितियों को उत्पन्न कर घटनाओं को जन्म देता है । वह असस्कृत, हठी, अभिमानी पुरुषो के वर्ग का प्रतीक कहा जा सकता है ।

वर्मा जी के नारी पात्र

वर्मा जी के उपन्यासों मे नारी पात्र प्रबल और प्रधान है । वर्माजी की अपने आदर्श नारी पात्रों के विषय मे एक धारणा है, स्त्री के भौतिक सौदर्य और बाह्य आकर्षण तक वह सीमित नही रह जाते, उसमे दैवी गुणो को देखना उन्हे भला लगता है । नारी के बाह्य सौदर्य और लावण्य के परे उसमे निहित आन्तरिक तेज की खोज तथा उसके बाह्य और आन्तरिक गुणो मे सामजस्य स्थापित करना उनका लक्ष्य रहता है । उनकी यह नारी पुरुष से कही ऊँची है । उनकी दृष्टि मे पुरुष शक्ति है तो नारी उसकी सचालक प्रेरणा । प्रारभ के उपन्यासों मे नारी विषयक उनकी धारणा अधिक कल्पनामय तथा रोमाटिक रही है । वह प्रेयसी के रूप मे आती है, प्रेमी के जीवन-लक्ष्य की केन्द्र और उसकी पूजा-अर्चना की पावन प्रतिमा बनकर । तारा (गढ कुडार) तथा कुमुद (बिराटा की पद्मिनी) उपन्यासकार की इसी प्रारभिक प्रवृत्ति की देन है । अगले उपन्यासों मे लेखक की प्रौढ धारणा कल्पनाकाश की उडानो से जी भर कर सघर्षमयी इस कठोर धरती पर उतर आती है । ये नारी पात्र पुरुष पात्रो को प्रेरणा ही नही देते, ससार के सघर्षो मे स्वय जूझते हुए अपनी शक्ति का भी परिचय देते है । कचनार (कचनार), मृगनयनी तथा लाखी (मृगनयनी) , रूपा (सोना) और नूरबाई (टूटे काँटे) ऐसे ही पात्र है । लक्ष्मीबाई (लक्ष्मीबाई) तथा अहिल्याबाई (अहिल्याबाई) मे ये गुण अपने चरम पर दीख पडते है ।

---

१ सगम—पृ० ७२

वर्मा जी द्वारा चित्रित नारी के कुछ अन्य रूप भी यहाँ उल्लेखनीय है। ईर्ष्यालु प्रेमिका उजियारी (प्रेम की भेंट), आकाक्षामयी गोमती (विराटा की पद्मिनी), लालसा की लहरो मे अठखेलियाँ करती कुन्ती (अचल मेरा कोई), धन तथा शारीरिक सुख की लोलुपा अजना (अमर वेल) तथा कर्कशा रानी (टूटे काँटे) नारी चरित्र के विभिन्न पक्षो पर प्रकाश डालती है। इन उल्लिखित चरित्रों का सूक्ष्म विश्लेषण वर्मा जी की नारी-चित्रण-कला पर यथेष्ट प्रकाश डाल सकेगा।

नारी मे दैवी तत्व

तारा (गढ कुडार) मे बाह्य सौंदर्य के साथ दैवी गुणो का आरोप किया गया है। दैवी तत्व के स्पर्श से साधारण नारी तारा का स्वरूप गरिमा-मय एव स्पृहणीय बन पडा है। उसके विषय मे लिखा है—'तारा की आँखे शान्त, स्थिर, बडे-बडे पलकोवाली बडी निर्मल थी। उन आँखों के किसी कोने मे छल, कपट या अविश्वास की किंचित् छाया भी नही मिल सकती थी। शरीर बहुत छोटा और कोमल था। आकृति से ऐसी लगती थी, जैसे देवी हो दुर्गा नही, किन्तु ब्रह्ममुहूर्त की अधिष्ठात्री ऊषा, ऋषियो के होम का आशीर्वाद, विष्णु के पुजारियो की पूजा।'[1] इस विवरण मे नारी के शारीरिक लावण्य से पावन प्रभाव उत्पन्न करने मे लेखक की कोमल कल्पना तत्पर है। चित्रण के साथ काव्यात्मक उडान-सी है।

तारा अपने पिता की आज्ञानुसार पति-प्राप्ति के लिये शक्तिभैरव-पूजन का अनुष्ठान करती है। दिवाकर उसे पूजन के हेतु पुष्प देने आता है। देवपूजा के इस पावन वातावरण मे तारा तथा दिवाकर के मध्य पुनीत प्रणय का उदय होता है। एक दिन पूजन के उपरान्त तारा ने काँपते हाथो बेले की कलियों की एक माला अचल से निकाली और हाथ दिवाकर की ओर बढा दिया। और सामने से हट गई। दिवाकर ने अपने दोनो हाथो की अजलि मे देवता का प्रसाद लेकर आँखो से लगा लिया। बाद मे निरीक्षण करने पर उसे ज्ञान हुआ कि माला मे चार अक्षर गुँथे हुए थे—'मेरे देव।' दिवाकर को भान हुआ जैसे उसका शरीर फूल की भाँति हलका हो गया। चारो ओर माना पुष्प और कलियाँ उद्भूत हो गयी। उसका हृदय-ससार बस गया। माला को वह सदैव वस्त्रो के नीचे गले मे धारण किए रहता है। दिवाकर के लिए तारा पूज्य है।

हेमवती की रक्षा करते हुए रात्रि मे घायल हो छत से अधकारावृत्त मार्ग मे दिवाकर के गिर जाने पर शोरगुल सुन तारा वहाँ आ पहुँचती है। आहत

---

१ गढ कुडार—पृ० १५३

दिवाकर मे भावावेश मे लिपट जाती है। उसे प्रेम के आवेग मे लोकापवाद का भय नही रह जाता है। दिवाकर द्वारा जातिभेद तथा परस्पर मिलाप की असभवता की चर्चा करने पर सक्षिप्त सा उत्तर देती है—'आप मेरे धर्म, मर्म और देव है क्या पूजा भी न करने देगे ?'[1] उसमे कोमलता के अतिरिक्त दृढता और पौरुष के तत्व है। दिवाकर के बु देलो द्वारा तलघरे मे बन्द किए जाने का समाचार पा मुर्झाकर निष्क्रिय नही हो जाती। उसमे सात्विक प्रेम से उद्भूत प्रिय-रक्षा की चिन्ता साहस तथा उत्साह की लहरे उठा रही है। वासनामय आकाक्षाओ से उत्पन्न सकोच वहाँ कहाँ ? घोडे पर दवरा पहुच दिवाकर को चेत मे ला तलघरे से बाहर निकालती है। न जाने उसमे पुरुषो जैसा बल और साहस कहाँ से आ जाता है। उसमे दिवाकर पर स्वय को वार देने की भावना है। दिवाकर के तलघरे से बाहर आ जाने पर उसने दृढता का परिचय दिया। तारा की निर्भीकता, दृढता और स्पष्टता उच्छृङ्ख-लता नही, आत्मिक प्रेम की सतत साधना की देन है।

सबेरे सहजेन्द्र अपने सैनिक लेकर देवरा गढी पर आया। तलघरे मे दिवाकर न था। भीतर कनैर के मुर्झाए फूल पडे थे। नि श्वास त्याग कर बोला—'पुष्प वृष्टि करके मनुष्य को कोई देवता अपने साथ ले गया।'[2] उप-न्यासकार ने अन्त मे भी तारा को देवता के नाम से स्मरण कराया है।

नारी या देवी

कुमुद (बिराटा की पद्मिनी) मे दुर्गा के अवतार का आरोप है। उसमे तारा की अपेक्षा दैवी गुणो का समावेश अधिक है। तारा की दिव्यता अधि-काश मे दिवाकर के हार्दिक ससार तक सीमित थी। कुमुद देवी के रूप मे प्रचलित है, भक्तजन दूर-दूर से उसके दर्शन के निमित्त आते है। एक ओर कुमुद साधारण दाँगी ब्राह्मण की कन्या और इसी ससार की, हाड-माँस की बनी कोमल युवती है। साधारण नारी की भाँति अबला है, यहाँ तक कि अन्त मे उसे अपनी मर्यादा की रक्षा के लिए बेतवा नदी की लहरों की शरण लेनी पडती है। दूसरी ओर वह दुर्गा की प्रतिमूर्ति है। उसमे देवी की-सी भव्यता है। लोग उसे पूजते है। कुमुद के निराले चरित्र मे साधारण नारीत्व और दिव्यता मिलकर ऐसे डूबते, उतराते है कि उन्हे अलग करना कठिन है। कुजरसिह लोचनसिंह के साथ कुमुद के दर्शनार्थ पालर के मन्दिर मे गया। उसने रूप, लावण्य और दिव्यता के उस अनुपम, पावन साक्षात् अवतार को देखा। एक बार देखकर फिर उस तेजोमय स्वरूप पर आँखे उठाई नही गई।

१. गढ़ कुंडार—पृ० ३५५
२ वही—पृ० ४६५

सहेली गोमती भी कुमुद से बराबरी का व्यवहार करने में हिचकती है। 'देवी' कुमुद का एक वर्णन उल्लेखनीय है।—'कुमुद चट्टान की टेक पर खडी हो गई। ऐसा जान पडा—मानो कमलो का समूह उपस्थित हो गया हो—जैसे प्रकाश पुज खडा कर दिया हो। पैरो के पैंजनो पर सूर्य की स्वर्ण रेखाएँ फिसल रही थी। पीली धोती मन्द पवन के धीमे झकोरे से दुर्गा की पताका की तरह धीरे-धीरे लहरा रही थी। उन्नत भाल मोतियो की तरह भासमान था। बडे बडे काले नेत्रो की बरौनियाँ भौहो के पास पहुँच गई थी। आँखो से झरती हुई प्रभा ललाट पर से चढती हुई उस निर्जन स्थान को आलोकित-सा करने लगी। आधे खुले हुए सिर पर से स्वर्ण को लजाने वाली बालो की एक लट गर्दन के पास जरा चचल हो रही थी। उस विस्तृत विशाल जगल और नदी की उस ऊँची चट्टान के सिरे पर खडी हुई कुमुद को देखकर कुजर का रोम-रोम कुछ कहने के लिये उत्सुक हुआ।

'वे चट्टान और पठारियाँ, वह दुर्गम और नीली धार वाली बेतवा, वह शात भयावना सुनसान, वह हृदय को चचल कर देने वाली एकातता और चट्टान की टेक पर खडी हुई अतुल सौदर्य की यह सरल मूर्ति।

'कुजर ने मन मे कहा—'अवश्य देवी है। विश्व को सुन्दर और प्रेममय बनाने वाली दुर्गा है।'[1]

ये पक्तियाँ तारा के दैवी रूप-वर्णन का विकसित स्वरूप प्रस्तुत करती हैं। कुमुद स्वय अपने को साधारण नारी समझती है। गोमती से कहती है—'हममे, तुममे वह अश वर्तमान है। जब मनुष्य की देह धारण की है, तब उसके गुण-दोष से हम लोग नही बच सकते।'[2] 'कुजरसिंह जब श्रद्धा तथा प्रेमवश उसके पैर छू लेता है, कुमुद काँपती आवाज में कहती है—'आप ऐसा कभी न करना। मै कोई अवतार नही हूँ। साधारण स्त्री हूँ। हाँ, दुर्गा माता की सच्चे दिल से पूजा किया करता हूँ। आप मुझे अवतार न समझें।'[3] उसे दुर्गा मे पूरा पूरा विश्वास है, भय छू भी नही गया है। अलीमर्दान के आक्रमण से कुमुद की रक्षा के लिए आशकित कुजर से वह प्रभु-विश्वास प्रकट करती है—'दुर्गा के सेवको को कभी कष्ट नही हो सकता। जब कभी मनुष्य को दुख होता है, अपने ही भ्रम के कारण होता है। यदि मन मे भ्रम न रहे तो उसे किसी का भय न रहे।'[4]

---

१ बिराटा की पद्मिनी—पृ० २१५, २१६
२ वही पृ० २ ८
३ वही—पृ० २१४
४ वही—पृ० २१२

प्रथम दर्शन के अवसर से कुमुद तथा कुजर मे परस्पर आकर्षण का सूत्र बन्ध जाता है। बिराटा के मन्दिर मे दोनो की भेट तथा सम्पर्क के फलस्वरूप वह सूत्र प्रणय-डोर का रूप धारण कर लेता है। कुमुद का प्रोत्साहन का एक वाक्य कुजर के जीवन को स्फूर्ति से भर देता है। वह अपने आप मे आकाश के नक्षत्र तक तोड लाने की सामर्थ्य अनुभव करता है। युद्ध और सकट की छाया मे दोनो का प्रेम पनपता है मूक, सयत और निर्मल। शत्रुओ द्वारा बिराटा चारो ओर से घिर जाने पर वह कुजर के साथ वहाँ से निकल भागने की नही सोचती। वह जीवन के 'उस पार' (परलोक मे) मिलने की बात कहती है, 'मैं उस ओर से जाऊँगी, जहाँ मार्ग मे कोई न मिलेगा। आप उस ओर से आयें, जहाँ जौहर हुआ है। हम लोग अन्त मे मिलेगे।'[1] कुमुद के प्यार मे मासलता का प्राय अभाव है। वह आत्मा का सम्बन्ध सर्वोपरि मानती है, शारीरिक सम्पर्क का महत्व उन परिस्थितियो मे उसके लिए नही के बराबर है। वह ठीक तारा की भाँति अपने आँचल के छोर से जगली फूलो की गुँथी माला निकाल कर कुजर के गले मे डालकर केवल इतना कहती है— 'यह मेरा अक्षय भाडार लेकर जाओ। अब मेरे पास और कुछ नही।'[2] कुमुद का प्रणय साधारण दैहिक धरातल से कही ऊँचा, उठा हुआ निर्मल नीलाभ के पावन स्तर मे समा गया है। तदनन्तर वह गीत गाती है, 'उड गए फुलवा रह गई बास' और अथाह बेतवा की जल राशि मे अपनी गीत लहरी के साथ सदा-सदा के लिए समा जाती है।

नारी व्यवहारिकता की ओर

कचनार (कचनार) के चरित्र मे कल्पना और रोमास की इतनी प्रधानता नही है। उसमे मूलत भौतिक ठोस तत्व है, चरित्र के दोनो पक्ष, दिव्यता और सासारिकता, पुष्ट है। कचनार की कोमलता मे स्वरक्षा का भाव लिपटा हुआ है। उसमे रूप है, यौवन है, मादकता है, ऊपर सयम और शीतलता का मोटा आवरण पडा है कुमुद जैसा। मानसिंह कचनार की तुलना कलावती से करता है—'दुलैयाजू (कलावती) को देखते ही मन के भीतर उजाले की चकाचौध सी लगती है। कचनार के देखने को जी तो चाहता है, परन्तु देखते ही सहम जाता है। दुलैयाजू का स्वर सारङ्गी सा मीठा है, कचनार का कठ मीठा होते हुए भी चिनौती सी देता है। दुलैयाजू कमल है, कचनार कटीला गुलाब। जिस समय दुलैयाजू को हल्दी लगाई गई मुखडा

१. बिराटा की पद्मिनी—पृ० ३३३
२. वही—पृ० ३३३

सूरजमुखी सा लगता था। उनकी आँखो मे मद है। कचनार की आखे ओले सी सफेद और ठडी। उनकी मुस्कान मे ओठो पर चाँदनी सी खिल जाती है। कचनार की मुस्कान मे ओठ व्यग सा करते है। दुलैयाजू की एक गति, एक मरोड न जाने कितनी गुदगुदी सी पैदा कर देती है, कचनार जब चलती है ऐसा जान पडता है कि किसी मठ की योगिन है। बाल दोनो के बिल्कुल काले और रेशम जैसे चिकने है। दोनो से कनक की किरणे सी फूटती है। दोनो बहुत सलोनी है। दुलैयाजू को देखते और बात करते कभी जी नही अघाता। अत्यन्त सलोनी है। घूँघट उघडते ही ऐसा लगता है जैसे केसर बिखेर दी हो। कचनार को देखने पर ऐसा जान पडता है जैसे चौक पूर दिया हो। दुलैयालू वशीकरण मन्त्र है। और कचनार टोना उतारने वाला मन्त्र—'[1]

मानसिह की रसिक वृत्ति को कचनार का सौदय भाता है। उसे वह मठ की योगिन सी लगती है। साथ ही उसके दिव्यता मे मिश्रित स्वरक्षा, और रूप-लोलुपो के प्रति उपेक्षा के तीखेपन से वह घबराता है। वह उसे कटीले गुलाब सी जान पडती है। तारा और कुमुद का किसी कामुक से व्यवहारिक सम्पर्क नही पडा था। कचनार के सामने यह नवीन समस्या है। उसके सौदर्य पर गृद्ध-दृष्टि रखने वाले मानसिह और दलीपसिह दो व्यक्ति है। फलस्वरूप उसके चरित्र मे साहस उभर आया है।

कचनार दासी के रूप मे दलीपसिह को दहेज मे मिली है। दलीपसिह परम्परानुसार उसे अन्य दासियो की भाँति अपनी वासना का लक्ष्य बनाना चाहता है। कचनार को पतिता का जीवन स्वीकार नही है, भले ही जीवन न रहे। उसकी दृष्टि मे 'नारीत्व' का सर्वोपरि महत्व है। इस सम्बन्ध मे कचनार और दलीपसिह का वार्तालाप उल्लेखनीय है—

'कचनार ने कहा—'मेरे साथ भाँवर डालिए। मुझको अपनी पत्नी की प्रतिष्ठा दीजिए। अपनी जीवन सहचरी बनाइये। वचन दीजिए। मैं आपके चरणो मे अपना मस्तक रख दूँगी। परन्तु मै ऐसा अँगरखा नही बन सकती जो जब चाहा उतार कर फेक दिया।'

दलीपसिह—'यदि मै जबरदस्ती करू।'

'असम्भव है। आप मुझ को तुरन्त मरा हुआ पायेंगे।'

थोडे क्षण उपरान्त दलीपसिह के कहा, 'बिना भाँवर के भी बहुत सी सुन्दर स्त्रियाँ बडे बडे राजा महाराजाओ के रनवास मे जन्म भर बनी रहती हैं।'

---

१ कचनार—पृ० १४, १५

कचनार बिना किसी भय या सकोच के बोली, 'ऐसी स्त्रियो का नारीत्व नष्ट हो गया होगा और वैसे राजा महाराजाओ को मै तो बडा नही कह सकती। मै आपको प्राणपरा से प्रेम कर सकती हूँ, परन्तु अपना नारीत्व नष्ट करके नही।'

'यह मेरी समझ नही आ रहा कि तुम्हारा नारीत्व कैसे नष्ट हो जाएगा।'

'इसको तो नारी ही समझ सकती है।'[1]

कचनार 'नारीत्व-रक्षा' की महत्वपूर्ण समस्या और उसका हल प्रस्तुत करती है। दलीपसिह के लिए उसके हृदय मे मूक प्रेम है। दलीप की मृत्यु के बाद भी अपनी साधना से वह विचलित नही होती। मानसिह उसे वश मे लाने के प्रयत्न करता है, विवाह भी करने का प्रस्ताव सामने रखता है। कचनार की दृष्टि मे विवाह के इस प्रस्ताव का महत्व एक कामुक के आवाहन से अधिक कुछ नही है। प्रस्ताव ठुकरा देती है। उसमें स्वतन्त्र विचार धारा है, पौरुष है। मानसिह को चकमा देकर गुसाइयो की छावनी में शरण प्राप्त करती है। छावनी म योगाभ्यास करती है। अपनी समस्त इन्द्रियो को वश मे कर साधना मे एकाग्र है। डिगने के कई अवसर आते है, परन्तु वह अचल है, स्थिर है। महन्त अचलपुरी, मटोलेपुरी, सुमन्तपुरी (दलीपसिह) उससे प्रेरणा ग्रहण करते है।

गुसाँइयो के उद्योग से दलीपसिह को धामोनी का राज्य वापिस मिलता है। वह एकाएक चोट खा कर गिर पडता है। उसके अधिक अस्वस्थ हो जाने पर कचनार के सयम का प्याला छलछला उठता है। यहाँ पहली बार कोमल पक्ष स्पष्ट होता है। वह दलीपसिंह के स्वास्थ्य के लिये अधीर है। अन्त मे उसकी प्रणय-साधना सफल होती है। दलीपसिह उसके वास्तविक रूप के समक्ष मस्तक झुकाता है और कचनार को सादर ग्रहण करता है।

कचनार मे सौदर्य, कोमलता, तीखापन है। नारीत्व के शोषको के प्रति वह उग्र है। सयम और साधना के प्रति उसमे घोर निष्ठा है, पुरुषो का सा साहस और दृढता है। वह आदर्श की निष्प्राण मूर्त्ति नही दृढता और कोमलता से मिश्रित सौदर्यमयी नारी है। लेखक की नारी सबधी धारणा कचनार मे आ कर विकसित और पुष्ट हुई है। कचनार के चरित्र की महत्ता कलावती और ललिता (कचनार) के साथ तुलना करने पर और भी स्पष्ट होजाती है।

नारी—रणचडी

वर्मा जी की नारी विषयक धारणा के क्रमिक विकास का अध्ययन करते समय लक्ष्मीबाई (झाँसी की रानी—लक्ष्मीबाई) का चरित्र पूर्व रचित होने

---

१. कचनार—पृ० २६ तथा २८

पर भी क्रम मे कचनार के उपरान्त रखना श्रेयस्कर होगा। कचनार मे स्त्री की कोमलता है और पुरुष का पौरुष किन्तु लक्ष्मीबाई स्वतत्रता सग्राम की महान् सेनानी होने के नाते पौरुष की ओर अधिक झुकी हुई है। वर्मा जी के पात्रो मे गुण-सृजक-शक्ति की दृष्टि से लक्ष्मीबाई उनकी सबसे बडी रचना है। उसमे सर्वाधिक प्रधान तथा गौण सत्ताइस गुणो का समावेश कराया गया है।[१]

लक्ष्मीबाई का चरित्र अन्य स्त्री पात्रो से भिन्न है। अब तक वर्मा जी की नारी अबला थी, उसका रूप युद्धो का कारण बना। लक्ष्मीबाई नारी की सर्वांगीण शक्ति की प्रतीक है। वह प्रेरणा दे सकती है और स्वय जीवन सग्राम मे कूद कर पुरुषो को सचालित भी करती है। नारी का यह सस्करण अत्यन्त प्रबल है। उसमे कर्त्तव्य-प्रेम और लगन है और प्रणय-व्यापार का सर्वथा अभाव। उसका स्नेहमयी, कर्त्तव्यपरायणा पत्नी और माता के रूप मे भी निर्वाह हुआ है।

लक्ष्मीबाई तेरह वर्ष की अल्प आयु मे उपन्यास मे पदार्पण करती हैं, अन्य पूर्ववर्ती नारी पात्रो की भाँति युवावस्था की रोमाटिक कल्पनायें लेकर नही आती। बालिका मनूबाई मे भविष्य की 'लक्ष्मीबाई' के गुण अभी से विकासोन्मुख अवस्था मे है। प्रारम्भ के कुछ परिच्छेदो मे उसकी बालप्रवृत्तियो पर

---

१ प्रधान गुण—वीरता (पृष्ठ—२८०, २६०), देशभक्ति तथा कर्मयोग की भावना (१६३), लगन (१०१, २४६), दृढता (७६, २१४, ३२०, ३६५, ४१६, ४८१) बुद्धिमत्ता (११६, ११७, १४०, १५५, १८४, १८७, १६२, २१६, २३२, २३४, ३०६, ३२२, ३३३, ३७२, ४४२, ४६६) प्रेरक शक्ति (६५, ४०१), युद्ध-कौशल (४२६, ४४५, ४५२, ४५४, ४८०, ४८७)।

गौण गुण—महत्वाकाक्षा (१५, १८, २३), निर्भीकता (१६, १६, २०, १४१),वाचालता (२५, ३६), चपलता (३२, ७०), व्यगात्मकता (७८, ७६, ८१), सरलता तथा उदारता (६३, ७५, १३८, १६१, २५८), स्वाभिमान (६४) करुणा (१३३) सयम (१५६, १८०, १८१, २७५), क्षणिक दुर्बलता (४१४, ४१५, ४१७), सैद्धान्तिकता (२६२, ३२५, ३६४, ४५७, ४८३, ४६१), सूक्ष्मनिरीक्षण-शक्ति (२८१, ३१४, ४७१, ४८४), तेज (२६१, २६२), प्रबध कौशल (३१५), कलाप्रेम (३३५), साहित्य-प्रेम (४१४), प्रजातत्रीय दृष्टिकोण (३३६) , निराशावादिता (१६०, १६१)।

प्रकाश डाल कर लक्ष्मीबाई के प्रबल चरित्र की मनोवैज्ञानिक भूमिका तैयार की गई है। लक्ष्मीबाई के होश सँभालने से लेकर मृत्युपर्यन्त उसी रूप का विकास हुआ है। चित्रण की शृङ्खलाबद्धता और विस्तार की दृष्टि से यह चरित्र पूर्ण है।

सर्वप्रथम मनूबाई के इस प्रकार दर्शन होते है।—'बडा बालक कुछ आगे निकला था कि बालिका (मनू) ने अपने घोडे को ड ऐँ लगाई। बोली, 'देखूँ कैसे आगे निकलते हो।' और वह आगे हो गई।'[1] लक्ष्मीबाई के विशाल व्यक्तित्व की पहली रेखा मे उसके अदम्य उत्साह का भान हो जाता है। उसको तुलसीदास की रामायण बडी प्रिय है परन्तु तलवार चलाना, मलखभ, घोडे की सवारी, ये उससे भी बढ कर भाते हैं। छत्रपति शिवाजी इत्यादि के आधुनिक और अर्जुन, भीम इत्यादि के पुरातन आख्यानो ने मनू की कल्पना को एक अस्पष्ट और अदम्य गुदगुदी दे रखी थी। स्वभाव मे कुछ-कुछ उद्दण्डतामिश्रित पराक्रमप्रियता है। अपने पुराने नाम 'छबीली' मे वीरता, उगता का तनिक भी अश न पा कर, उससे घृणा करती है। उसे छबीली सम्बोधन असह्य है।

चौदह वर्ष की आयु मे मनू का विवाह झाँसी के राजा गगाधरराव से हो गया। नई रानी को दासियो ने घेर लिया। राग-रग की वेला थी। किन्तु वहाँ घुडसवारी, हथियार चलाने, मलखभ, कुश्ती तथा प्राचीन गाथाओ की चर्चा छिड गई। मनु ने तुरन्त अपने दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण कर दिया, 'पुरुषो को पुरुषार्थ सिखलाने के लिये स्त्रियो को मलखभ, कुश्ती इत्यादि सीखना ही चाहिए। खूब तेज दौडना भी। नाचने गाने से भी स्त्रियो का स्वास्थ्य सुधरता है, परन्तु अपने को मोहक बना लेना ही तो स्त्री का समग्र कर्त्तव्य नही है। फूलो से नाता बनाये रक्खो, परन्तु मिट्टी से सम्बन्ध ताड कर नही।'[2]

सन् १८५७ के देशव्यापी आन्दोलन की सचालिका के रूप मे लक्ष्मीबाई के दर्शन होते है। उसकी कत्तव्यनिष्ठा चरम सीमा पर है। देश गर्त मे जा रहा हो, उस समय कला और विलास का क्या स्थान! गगाधरराव के कला और विलासप्रिय स्वभाव से उसकी नही पटती। राजा से इस विषय पर नोक-झोक हो जाती है। उसके कुछ व्यग्य देखिये, 'आपके यहाँ के भाट क्या केवल प्रशसा और यश गान ही करते है या कभी-कभी कडखा भी सुनाते है?' नायिका-भेद के विषय मे मत है—'अर्थात् स्त्रियो के पूरे शरीर की सूक्ष्म जाँच पडताल और, इस काम के लिये इन लोगो को इनाम पुरस्कार भी दिये जाते

१. झाँसी की रानी—पृ० १५

२. वही—पृ० ६५, ६८

होंगे ? भूषण को छत्रपति शिवाजी क्या इसी तरह की कविता के लिये बढावा दिया करते थे भूषण तो दरबार की शोभा रहे न होंगे।' तत्कालीन शासन पर व्यग्य है, 'इन दिनो अब इससे (नाटकशाला के मनोरजन) से अधिक और हो ही क्या सकता है ? राज्य का काम चलाने के लिये दीवान है। डाकुओ का दमन करने और प्रजा को ठीक पथ पर चालू रखने के लिये अंगरेजी सेना है ही। इस पर भी यदि कोई गलती हो गई तो कम्पनी के एजेण्ट की खुशामद कर ली। बस सब काम ज्यो का त्यो चलता रहा।'[१] अभी इस स्थिति मे उसे अपने उद्‌गार व्यग्य-रूप मे ही प्रकट करने का अवसर मिलता है।

गगाधरराव की मृत्यु के बाद झाँसी अँगरेजो ने हडप ली। रानी को धक्का लगा। मुँह से एकाएक निकल ही गया, 'मै अपनी झाँसी नही दूँगी।' परन्तु दूसरे क्षण उसने बुद्धि से काम लिया। सोचा, अभी समय नही आया है। अँगरेजो के पाप का घडा अभी नही भरा। अभी सतत साधना की आवश्यकता है। रानी ने विद्रोह के समय सबकी अनुमति प्राप्त करके झाँसी का शासन सँभाला। अपने शासनकाल मे उसने निज के आदर्शों की स्थापना की, शासन के विविध अगो का योग्यतापूर्ण सचालन किया। सब जातियाँ एक हो, किसी को भेदभाव की दृष्टि से न देखा जाय। झाँसी के लिये समस्त जाति के नर नारी सयुक्त मोर्चा बना कर जीवन तक की बाजी लगा दे। रानी ने यह भाव सब मे फूँक दिया। इसी के आधार पर झाँसी का स्वातन्त्र्य-सग्राम लडा गया। गुणवान् व्यक्तियो को अपने 'करतब' दिखाने का अवसर मिला। डाकू लुटेरो आदि प्रजापीडको का दमन किया गया। रानी का पक्का विश्वास था कि ' जनता मुख्य साधन है। राजा और नवाब को पीढी, दो पीढी ही योग्य होती है। परन्तु जनता की पीढियो की योग्यता कभी नही छीजती।'[२]

रानी ने विद्रोही सिपाहियो द्वारा अगरेजो की हत्या पर उनकी नृशसता की भर्त्सना की—'इन्ही कर्मो से स्वराज्य और बादशाही स्थापित करोगे ? तुम लोगो ने घोर दुष्कर्म किया है। क्या समझते हो कि ससार से सब नियम, सयम उठ गये ?'[३] वह जानती थी कि किसी भी शासन की स्थापना मे स्वस्थ परम्पराओ की रक्षा आवश्यक है, क्षणिक आवेश तथा अनुशासनहीन क्रान्ति से कुछ न होगा।

अगरेजो से मुकाबला हुआ। रानी ने अपनी मुट्ठी भर सेना ले कर उन

१. झाँसी की रानी'''पृ० ७६, ८१
२. वही'''पृ० १४१
३. वही'''पृ० २६२

विकट आततताइयो से टक्कर ली । दूल्हाजू के विश्वासघात के फलस्वरूप झाँसी के किले मे अगरेज घुस आये । झाँसी मे स्वराज्य-स्थापना के स्वप्निल महल ढह गये । रानी मे क्षणिक दुर्बलता आई । सोचा, केवल एक साधन शेष है । बारूद की कोठरी है । वहाँ पहुच कर पिस्तौल के धडाके के साथ अपने पुरखो मे मिल जाए । नाना भोपटकर ने इस समय कर्त्तव्य का मार्मिक शब्दो मे उसे ध्यान दिलाया । रानी की आँखो के सामने एक दृश्य घूम गया, कुरुक्षेत्र का मैदान है । कौरव पाडवो की सेनायें एक दूसरे के सामने डटी हुई है । अर्जुन ने कृष्ण से कहा, भगवान् मेरा साहस डिग गया है । मेरा सामर्थ्य हिल गया है । मै असमर्थ हूँ । लडना नही चाहता । भगवान् कृष्ण ने उद्-बोधन किया । अर्जुन ने फिर गाडीव धनुष हाथ मे ले लिया । दुर्बलता तिरोहित हो गई । रानी ने नवीन स्फूर्ति का अनुभव किया । अग्रेजी सेना को चीरती हुई प्राणो की बाजी लगाकर कालपी जा पहुची ।

कालपी मे राव साहब की अनुशासनहीन सेना मे लक्ष्मीबाई ने चेतना भर दी । ग्वालियर का किला हस्तगत कर लिया । सामन्तशाही मे पोषित राव साहब की विकृत मनोवृत्तियो से रानी का मेल न खाया । मूर्ख साथियो के कारण अन्त मे बाजी अगरेजो के हाथ रही । रानी को मैदान छोड कर हटना पडा । उसने पीछा करते हुए सैनिको से मुकाबला किया । बुरी तरह घायल हो जाने के फलस्वरूप स्वतनता की वह घोर साधिका नश्वर शरीर त्याग कर अमर हो गई ।

हम लक्ष्मीबाई के सम्पूर्ण जीवन पर एक सरसरी दृष्टि डाल कर इसी निष्कर्ष पर पहुचते है कि लेखक ने उसे भगवान् कृष्ण के उपदेश, 'कर्मयोग' के आधार पर ढाला है । उपन्यास मे पदार्पण करते ही वह कुछ कर मिटने की धुन मे है । आदर्श पुरुषो व नारियो की कथायें उसके हृदय मे रमी हुई है । झाँसी मे पहुँचकर वह अपने स्वप्निल ससार को यथार्थ रूप प्रदान करना चाहती है, और सफल भी होती है । झाँसी मे स्थापित किया गया, उस समय का शासन आज के वैज्ञानिक युग मे भी आदर्श और प्रेरणा की वस्तु है । अगरेजो से मुकाबला होने पर रानी ने साहस न छोडा । अल्प साधनो को लेकर वह स्वराज्य की रक्षा के हेतु जुट गई । इस घोर युद्ध मे सैनिक गये, झाँसी गई, रानी गई, सब कुछ गया । परन्तु वह अपनी साधना से अन्त तक तनिक न डिगी ।

लक्ष्मीबाई का चरित्र आदर्श है । चरित्र मानवीय स्तर से ऊपर न उठ जाए इसलिए अत्यन्त हृदय-विदारक परिस्थितियो मे उसे क्षण भर के लिए दुखी और विचलित प्रदर्शित किया गया है । उदाहरण के लिए गगाधर-

राव की मृत्यु, झाँसी को अगरेजो द्वारा हडपने तथा युद्ध मे हार जाने आदि के क्षणो मे रानी विचलित होती है, सिसकती है। उसकी आँखो के सामने साधन-पथ कुछ धुधला हो उठता है। परन्तु दूसरे क्षण ही वह सभलती है, नयी स्फूर्ति और नयी चेतना के साथ।

लिखा है—

'यदि अकेले ही स्वराज्य की लडाई लडनी पडे तो लडी जायगी। यह रानी का अटल निश्चय था। और उन का अचल विश्वास था कि एक युद्ध और एक जन्म से ही कार्य पूरी तौर पर सम्पन्न नही होता।

'सभवामि युगे युगे।'

'उन्होने पढा था, उनको याद था और उनके कण-कण मे व्याप्त था। वे अपने युग के उपकरण और साधन काम मे लाती थी। जिस समाज मे उनका जन्म हुआ था, उसीमे होकर उनको काम करना था, परन्तु उस समाज की हथकडियो और बेडियो की उन्होने पूजा नही की। वे अपने युग से आगे निकल गई थी, किन्तु उन्होने अपने युग और समाज को साथ ले चलने का भरसक प्रयत्न किया। झाँसी मे विशेषत और विन्ध्यखड मे साधारणतया स्त्री की अपेक्षाकृत स्वतन्त्रता और नारीत्व की स्वस्थता लक्ष्मीबाई के नाम के साथ बहुत सम्बद्ध है।' लक्ष्मीबाई का यह विश्लेषण वतमान युग को प्रेरित करने की दृष्टि से किया गया है। 'एक पेड के नीचे पत्थर पर बैठकर सोचने लगी, 'झाँसी का सवनाश होने को है। स्वराज्य की स्थापना अभी दूर है। परन्तु कर्म करने मात्र का अधिकार है फल से हमको क्या ?''[1] यहाँ गीता का 'कर्मयोग' सबधी उपदेश ज्यो का त्यो अकित है। अन्त मे विपक्षी अगरेजो के सेनापति रोज ने भी स्वीकार किया, 'यह थी उनमे सर्वश्रेष्ठ और सर्वोत्कृष्ट वीर' लक्ष्मीबाई का इतिहास-प्रसिद्ध अमर चरित्र बहुतो को प्रेरणा देता है। वर्मा जी ने उसके अस्पष्ट इतिहास-प्रसिद्ध चित्र मे मानवोचित रगो को भर कर उसे दिव्य रूप प्रदान किया है।

नारी—एक समन्वय

मृगनयनी (मृगनयनी) लक्ष्मीबाई की सशोधित सस्करण है। वह कर्तव्य तथा कला को जीवन के दो आवश्यक पहलू समझती है, लक्ष्मीबाई की भाँति कला को उपेक्षा की दृष्टि से नही देखती। लक्ष्मीबाई के कर्तव्यमात्र पर केन्द्रित हो जाने मे तत्कालीन विकट परिस्थितियो का हाथ था, गगाधरराव की अकाल मृत्यु तथा झाँसी के स्वराज्य की समस्या ने उसका प्रचडतम रूप उप-

---

१ झाँसी की रानी—देखिए पृ० ३२०, ४०६, ४६६

स्थित किया। बाल्यावस्था मे भी उसे जीवन के कलापक्ष से कोई मोह न था। केवल मालखभ, कुश्ती, घुडसवारी आदि का चाव था, सगीत अथवा प्रकृति-प्रेम उपेक्षित रहे। रोमास की चर्चा का तो वहाँ स्थान ही नही है। उसका जन्म एक महान् कार्यसिद्धि के लिए हुआ था, कला के प्रति उदासीनता स्वाभाविक थी।

मृगनयनी गूजर जाति की होनहार युवती है। कचनार की भाँति अब्राह्मण जाति की है। उसके जीवन मे जातिभेद की समस्या आती है, परन्तु थोडी सी, कचनार जैसी। गाँव के स्वच्छन्द वातावरण मे पली हुई निन्नी की काया अत्यन्त पुष्ट और बलिष्ट है। एक तीर मे जगली सूअर, अरने अथवा नाहर को मार गिराती है। कामुक पुरुषो के प्रति उसमे कचनार की अपेक्षा अधिक सक्रिय उग्रता है। सोचती है, 'सुनती तो यही आयी हूँ परन्तु क्या उनके (जौहर करने वाली स्त्रियो के) हाथ पैर इतने निकम्मे होते होगे कि अपने ऊपर आँख और हाथ डालने वाले पुरुष को घूँसे से धरती न सुघा सके? कैसी स्त्रियाँ होगी ये! खाने को इतना और ऐसा अच्छा मिलते हुए भी मन उनके ऐसे मरियल!! चिता मे जलकर मर स्त्रियो पर हाथ डालने वाले!!! मै तो कभी इस तरह नही मरने की।'[1] वह ऐसा सोचती ही नही है कर दिखाती है। गयासुद्दीन के भेजे हुए घुडसवार निन्नी और लाखी को बलपूर्वक उठा ले जाना चाहते है, परतु दोनो अत्यत वीरतापूर्वक दो को मार गिराती है और अन्य दो भाग खडे होते है। तीर कमान और बर्छी चलाने मे निन्नी की सानी का दूर तक कोई नही है। लक्ष्मीबाई के व्यायाम आदि की भाँति उसे शिकार की धुन है। वन के भयकर पशुओ का आखेट करना उसका नित्यप्रति का कायक्रम है। रात्रि मे जगकर खेत की रखवाली करती है। श्रम उसके जीवन का महत्वपूर्ण अङ्ग है।

बलिष्ट, प्रचड, उग्र निन्नी म कोमलता, रसिकता और मधुरता का समावेश है। उसे राई का प्राकृतिक वातावरण अत्यन्त प्रिय है। वहाँ की नदी की दमकती हुई कल्लोलिनी धार, ऊँघती लहराती बाले, पर्वतो की ऊचाइयाँ, पेड और डालियाँ पत्ते आदि उसके जीवन-साथी है। खेत के मचान से उन्हे जीभर देखती है, सब को एक जगह एकत्र कर लेने की आकाक्षा है। ग्वालियर के किले मे भी राई को नही भूलती। मानसिह को उसने कई बार अपने इस प्रकृति-प्रेम से अवगत कराया है। कहती है, 'एक रात मेरे मन मे चाह उठी थी कि चादनी मे चमकती नदी की दमक को समेट कर आचल मे बाध लू, खेत की ऊघती हुई बाल और पहाड की उस ऊँचाई

१ मृगनयनी पृ०—१७, १८

को एक ही ठौर पर इकट्ठा कर लू , वडे-वडे पडो के बन्दनवार बनाऊँ और डालियो पत्तो के झरोखे सजाऊ , उन झरोखो मे होकर मोतियो के हार सी पहने हुये नदी की लहरो को गीत सुनाऊँ और फिर एक ऐसा घर बनाऊँ जिसमे यह सब आ जाय ।'[1] गाना उसे भला लगता है । 'जाग परी मै पिय के जगाये,' उसका प्रिय गीत है । स्वर अच्छा है, गाँव की स्त्रियो के साथ गाते हुए अलग जान पडती है । ग्वालियर पहुँच कर बैजू बावरा से सगीत-विद्या प्राप्त करती है । आचार्य विजय जगम से नृत्य सीखती है । वास्तु-कला और चित्रकारी मे भी उसका मन रमता है । उसके चरित्र मे कला और कर्त्तव्य जीवन के दोनो महत्वपूर्ण पक्ष, उभार पर है ।

निन्नी होनहार है, परन्तु है साधारण कृषक बालिका । लाखी उसकी सहेली है, उसे अत्यन्त प्रिय है । निन्नी साधारण बालिकाओ की भाँति उससे लोहे के तीर जैसी तुच्छ वस्तु पर झगडने लगती है । लाखी को नगे पैरो देखकर उसे अपने जूतो पर अभिमान होता है । नटो के विचित्र 'करतब' उसे मोह लेते है । लाखी और अटल से भाँति-भाँति की स्नेहभरी बातें करना और लाखी से झगड पडना, महल मे पहुच कर सकोच, कभी-कभी स्वय मे हीनता का अनुभव करना, उसकी सरल, स्वच्छन्द प्रकृति का परिचय देते हैं । कृषको की भाँति उसका हृदय मिथ्या गर्व तथा छल-कपट से रहित है । राई, लाखी, अटल आदि के प्रति उसका प्रेम अक्षुण्ण है । शिकार तथा जगलो मे घूमने-फिरने का चाव उसे बाद मे भी बना रहता है ।

निन्नी म स्वाभिमान, सादगी, समानता और सहृदयता का भाव है । राई मे आए हुए नट उसे सीताफल देना चाहते है किन्तु उसे वह दान के रूप मे स्वीकार नही है । मानसिंह की पहली पत्नी सुमन मोहनी का अपमानजनक व्यवहार उसे सह्य नही, किसी के द्वारा स्वय को अथवा लाखी को हेय दृष्टि से देखा जाना उसे कसकता है । नटनियो के रग बिरगे कपडे उसे नही मोहते । लाखी के प्रति व्यवहार समानता का करती है । रानी बन जाने के उपरान्त उसम अधिक सहृदयता आ जाती है । लाखी के पैर मे चाँदी के गहने और अपने पैरो मे सोने के, उसे यह असमान व्यवहार अखरता है । बोधन मिश्र ने लाखी और अटल के विवाह मे रोडे अटकाये थे परन्तु बोधन की हत्या का समाचार सुनकर उसे हार्दिक दुःख होता है ।

मृगनयनी मे नारीत्व की मर्यादा का भाव अत्यन्त प्रबल है । मानसिंह द्वारा विवाह के प्रस्ताव से कहीं सम्मान पर आघात न हो, उसे शका है । मानसिंह से उसने धीरे से कहा, 'गरीबो और बडो का जन्म-सग कैसा—बड़े

१ मृगनयनी—पृ० ३४१

लोग कहते कुछ और हे, करते कुछ और है, ऐसा सुना हे कथा-कहानियो मे,' यदि उसे ज्ञात होता कि मानसिह की पहले से आठ रानियाँ है तो कदाचित् वह विवाह की स्वीकृति न देती। उसके मन मे प्रश्न उठा जब इन्होंने पहली स्त्री से विवाह किया होगा तब उससे भी इसी तरह का प्रेमालाप करते होगे, फिर दूसरा, तीसरा और आठवाँ ब्याह किया, हर एक रानी के साथ आरम्भ में इसी प्रकार की चिकनी और मीठी बाते करते रहते होगे, क्या मेरे साथ सदा ऐसा ही बर्ताव करेंगे या किसी दसवी के साथ विवाह करेगे और मुझसे वैसे ही बर्तेंगे जैसे इन आठ के साथ आजकल बर्त रहे है—वह सयम और स्वास्थ्य का महत्व जानती है। असयम के फलस्वरूप अस्वस्थता और अरुचि का उदय होता है। सयम और स्थिरता द्वारा ही नारी का स्थान पुरुष के हृदय मे अक्षय रह जाता है। उसे मानसिह का प्रेमालाप भाता है किन्तु नारीत्व की मर्यादा सदा बनाए रखने के लिये वह सयम, इन्द्रिय-नियत्रण, की इच्छुक है। मानसिह से कहती है, 'और निकट आये तो मैं बहुत छोटी रह जाऊँगी।'

नारी पुरुष की प्रेरणा है, पुरुप को सही मार्ग दिखाना उसका कार्य है, मृगनयनी यह भूलती नही। मानसिह मृगनयनी के ग्वालियर आने पर मनो-रजन और कला-प्रेम की ओर अधिक झुक जाता है। राज्य पर छाई हुई विषम परिस्थितियो के प्रति उसकी उदासीनता बढती हे। मृगनयनी उसे सजग करती है, उसमे नवीन चेतना भर देती है, मानसिह वीरतापूर्वक शत्रुओ से टक्कर लेता है और ग्वालियर मे आदर्श राज्य की स्थापना होती है। वह व्यक्तिगत सकुचित स्वार्थ मे सीमित न रह कर सम्पूर्ण राष्ट्र के भले की सोचती है। उसकी दृष्टि मे कर्त्तव्य प्रमुख है, स्वार्थ गौण। अपने पुत्रो की राज्य-प्राप्ति का अवसर होने पर राज्य के वास्तविक अधिकारी सुमन मोहनी के पुत्र विक्रमादित्य को राजगद्दी दिलाती है।

लक्ष्मीबाई की भाँति उसका राष्ट्र-निर्माण सबधी निश्चित दृष्टिकोण है। राई गाँव के पुनर्निर्मित मन्दिर को देखकर वह सोचती है, 'इस नये सुन्दर मन्दिर को भी यदि किसी दिन किसी ने आकर फोड दिया तो क्या फिर एक और नया मन्दिर बनाया जावेगा? कब तक यह क्रम जारी रहेगा? इसके भक्तो की बाहो मे जब तक बल नही आया, तब तक यही क्रम जारी रहेगा। किसान जब तक प्रबल नही हुये तब तक यही होता रहना हे। किसान कैसे प्रबल बनें? कलाओ की शिक्षा से? उँह! इससे उनकी बाहो को कितना बल मिलेगा? पेट भर खाने को मिले, दूध, मट्ठा, घी, कपडे और कुछ इनके पास बचता भी रहे। तब कलाये इनके बाहुबल को स्थिरता दे

सकेगी। यह सब कैसे हो ? राजा सेना को पुष्ट करले तो इस काम के करने के लिये कहूँगी।'[१] अशिक्षित तथा अनुशासनहीन जनता को ऊपर उठाने के लिये उसके मौलिक आधार, कर्त्तव्य-प्रेम की पुष्टि पर बल देने की आवश्यकता है। होली के अवसर पर सैनिको के अभद्र प्रदर्शन देखकर, मानसिंह से कहती है—'दण्ड देने से कुछ नही होगा महाराज। उनको सदा चोकस बनाये रखने का प्रयत्न किया जाना चाहिये। इधर कलाओ की वृद्धि हुई है, उधर बाण विद्या और युद्ध विद्या का अभ्यास कम हो गया हे। अपने सैनिक, किसान घरो से आये हैं। हमारी कला उनके विवेक मे नही बैठी इसलिये अपनी जानी-पहचानी को ले उठे और हमारी कला की दिल्लगी उडाने लगे। हम कलाओ को अधिक समय देगे तो वे अवसर पाते ही अपनी वासनाओ पर उतर-उतर आयेंगे।' उसका आधारभूत विचार इन पक्तियो मे आ जाता है—'कला कर्त्तव्य को सजग किये रहे, भावना विवेक को सबल दिये रहे, मनोबल और धारणा एक दूसरे का हाथ पकडे रहे।'[२]

नारी के कुछ अन्य रूप—(अ) ईर्ष्यालु उजियारी

उजियारी (प्रेम की भेट) ईर्ष्यालु प्रेमिका है। उसके प्रेम मे प्रचडता और प्रतिहिसा है। बात बात पर हसने का स्वभाव है। धीरज उसके विषय मे सोचता है—'यह स्त्री हँसती बहुत ज्यादा है, इसलिए इसके सौदय की गम्भीरता छिछल गई है। लावण्य मे उथलापन है, और इस टुचपन के कारण आकर्षण कुछ नही है। आँखे निर्दोष होने पर भी मजुल नही। होठ किसी भी अनगल वार्तालाप को आदर देने के लिए हँसने को तैयार है।'[३] उजियारी सरस्वती से उसके तथा नन्दन के काल्पनिक सम्बन्ध को लेकर प्राय निम्न प्रकार के तीखे कटाक्ष किया करती है। उसे सरस्वती तथा धीरज के मध्य आकर्षण का भास हो गया है किन्तु वह धीरज के समक्ष अत्यन्त स्पष्ट एव प्रचड रूप मे अपना प्रणय-प्रस्ताव रखती है—'मुझे अकेली को चाहो। और किसी को मत चाहो। मैं इस ससार मे केवल तुम्ही को चाहती हूँ। तुम भी केवल मुझे प्यार करो। तुम यदि किसी को अपने भीतर बसाये हो, तो बहुत दिनो ऐसा न कर सकोगे।'[४] धीरज से मनोवाछित प्रत्युत्तर न पाकर उसकी हिसा जग उठती हे। सरस्वती के पिता कम्मोद का सदेह जाग्रत् कर

---

१ मृगनयनी—पृ० ४३१

२ वही—पृ० ४२२

३ प्रेम की भेंट—पृ० १६, २०

४ वही—पृ० ६०

धीरज को घर से निकलवाने का षड्यन्त्र रचती है और सरस्वती के लिए खीर मे विप डाल कर प्रतिद्वन्द्विनी को सदा के लिए मार्ग से हटाना चाहती है। सयोगवश उस विषमयी खीर का खाकर बेचारा धीरज प्राण त्याग देता है। मृतप्राय धीरज के पास जाने का साहस उसमे शेष नही रह जाता। वास्तव मे उसका धीरज के प्रति आकर्षण वासनाजन्य है। उजियारी मे आदिम गुण प्रबल है, उसके स्वभाव का सस्कार नही हो पाया है।

(ब) आकाक्षामयी गोमती

गोमती (विराटा की पद्मिनी) आकाक्षाओं, आशाओ से जीवन-स्वप्नो को रगे हुए है, आशाये चूर-चूर हो जाने पर उसमे आत्महत्या की तीव्र इच्छा उत्पन्न होती है। पालर मे देवीसिंह से उसका विवाह होने जा रहा था। उसी समय देवीसिंह के युद्ध मे भाग लेने तथा घायल हो जाने के कारण विवाह रुक जाता है। घटनाचक्र मे पडकर देवीसिंह दलीपनगर का राज्यसिंहासन प्राप्त कर लेता है। गोमती देवीसिंह को अपना पति माने बैठी है। उसकी मगल-कामना करना तथा उसके समाचारो को प्राप्त करना मात्र गोमती का जीवन-लक्ष्य रह गया है। विराटा के मन्दिर म भेट होने पर देवीसिंह द्वारा अपमानित होने पर चेतना खो-सी बैठती है। रामदयाल उससे प्रेम करता है किन्तु शोकाहत निस्तब्ध निष्प्राण गोमती उत्तर मे 'हॉ-ना' कुछ नही कहती। उसकी केवल एक साध शेष है, मरने की।

(स) लालसामयी कुन्ती

कुन्ती (अचल मेरा कोई) आधुनिक, मादक, हठी, लालसामयी नारी का चित्र प्रस्तुत करती है। ऊचा माथा, चमकते हुए बाल, नशीली आँखो पर लम्बी भौंहे, हठीली सीधी नाक और दृढ गोल ठोडी स्वस्थ छरेरी देह, पतली कोमल उँगलियाँ। उसकी मादकता मे विचित्र आकर्षण है। सुधाकर तो उसे पूरी, समूची 'रोमास' समझता है। गम्भीर अचल का भी मत है—'नृत्य, हाव-भाव, गले की मिठास और आँखो के नशीलेपन को जयमाल अर्पित करनी पडे तो मै कुन्ती के गले मे डाल दूँगा। परन्तु माला को गले तक पहुचने के पहले एक जरा सी झझक होगी—गोल ठोडी और लम्बी-पतली सीधी नाक स्वभाव मे छिपे हठो के बाहरी चिह्न है।'[१] कुन्ती हठी और अदम्य है। बात-बात पर हठ करना और न दबना उसके स्वभाव मे है। विवाह के बाद सुधाकर की रोक-थाम की अवहेलना करना उसे भाता है। अचल के यहाँ प्राय जाया करती है। निशा से कहती है—'रोक टोक (सुधा-

१ अचल मेरा कोई—पृ० ३७

कर) कैसे करेंगे ? मैं कोई चोरी तो करती नही। मानलो मैं अचल को या किसी को चाहने लगू तो उनका मार्ग अलग मेरा अलग, परन्तु जब तक वे अपने शरीर को और म अपने शरीर को पवित्र बनाये रह तब तक किसी के मन से किसी को क्या वास्ता ?'[1] लोकापवाद की उसे चिन्ता नही—'समाज यदि गन्दा हे कि उसको फूलो मे भी दुर्गन्धि आती है तो हमको उसकी जरा भी परवाह नही।'[2]

अचल से कुन्ती सगीत सीखने जाती थी। उसके प्रति आकृष्ट थी। सुधाकर से विवाह हो जाने पर वासना के वेग मे अचल का चित्र धुंधला पड जाता है। वासना का वेग धीमा पडने पर अतृप्ता कुन्ती जीवन मे से कुछ खोया-सा अनुभव करती ह। अचल के यहाँ उसका आना-जाना, उठना-बैठना पुन बढ जाता हे। कुन्ती के हृदय को रह-रह कर कुछ कुरेद रहा हे। वह दुखी, विरही अचल का विवाह विधवा निशा से करा देती हे। फिर कुन्ती का अचल मे मिलना जुलना उसी गति मे जारी रहता है। सुधाकर के हठपूवक रोकने पर मानिनी कुन्ती मे प्रतिक्रिया होती है। वह बन्दूक की गोली से आत्मघात कर लेती है और कागज पर लिखा छोड जाती है—'अचल मेरा कोई' कुन्ती आगे क्या लिखना चाहती थी, यह समस्या बन कर रह जाता है। किन्तु इतना निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि कुन्ती के आत्मघात के मूल मे उसका हठ, कुण्ठा और मान है।

(र) लोलुपा अजना

अजना (अमरबेल) मे कॉइयॉपन, धूर्तता, नीचता और मिथ्या प्रेमाभिनय के दुर्गुण एक साथ आ जमे ह। वह देशराज से प्रेम या प्रेमाभिनय करता है। उसके सहयोग से अफीम का अवैध व्यापार करने मे सिद्धहस्त है। अपने गुणो का बखान वह स्वय इस प्रकार करती ह—'ऐसे ऐसे अभिनय करने पडते है कि क्या बतलाऊँ। कभी तितली, कभी मोर और कभी कोयल बनना पडता है। इन्द्रानी, कभी मेनका, कभी इस अप्सरा, कभी उस अप्सरा की भूमिका मे उतरना पडता है। मै खुद अपने अभिनय पर जब कभी चकरा जाती हूँ।

'कभी कभी ऐसी निपट गवार देहातिन बन जाती हूँ कि ऐसे ऐसे लोक नृत्य दिखलाती हू कि अपनी ही हसी मुश्किल से रोक पाती हू। एक बार घसियारी बनी थी। उसी घास मे दस सेर माल छिपा लाई थी। उस दिन सोचा था, यदि मै फिल्मो मे काम करती तो बहुत सी तारिकाओ को ठिकाने

---

१ अचल मेरा कोई—पृ० १६७, १६८

२. वही—पृ० २५३

लगा देती, पर मुझे सिनेमा की कैद का जीवन पसन्द नही। मै तो भ्रमण और पराक्रम का जीवन पसन्द करती हू।'[1] यही नही, राजा बाघराज से प्रेमाभिनय कर उसे आकृष्ट कर आय का साधन बनाने का प्रयत्न करती है। योजनाओ मे असफल रहने तथा अपमानित होने पर देशराज का चित्त इस दुष्कर्म से फिर जाता है किन्तु अजना की लालसा और दुस्साहस ज्यों के त्यों बने रहते है।

(इ) कर्कशा रोनी

रोनी (टूटे काँट) शरीर से सुन्दरी और स्वभाव से कर्कशा है। वह अपने सीधे-सादे पति मोहन को व्यग्य बाणो से प्राय छेदती रहती है। बात-बात पर बिगडना उसकी विशेषता है। फसल के अन्न का तीन चौथाई शाही कमचारी ले जाते है। दिन भर का थका, दुखी, भूखा मोहन रात्रि को दबी जबान रोटी की चर्चा करता है। उत्तर मे रोनी बरस पडती है—'हाँ रोटी क्यो नही खानी पडेगी ? बडा करतब कियाहै न आज तुमने ! कब से कह रही थी कि फसल काटकर गाह लो, पर कान पर जू तक न रेगा !! निकम्मे, निगोडे !!! चाहती हूँ कुये मे गिरकर तुमको हत्यारा कर जाऊँ, पर तुमको मेरे पीछे और भी मौज मजा मिलेगा इसीलिये रह रह जाती हूँ। रोटी खाने को मन दौड रहा है। लाज तक न आती ! वे रह गई है थोडी सी बाले, डकार लो इनको। फिर भीख माँगना।'[2] निदान रोनी की कर्कशता से पीडित मोहन गृह त्याग कर चला जाता है। रोनी की कर्कशता, स्वार्थपरता तथा लोभ मे कोई अन्तर नही आता। अन्त मे वृन्दावन मे दोनों की भेट होती है। मोहन के साथ सुशीला नूरबाई थी। नूरबाई के सम्पर्क मे रहकर कर्कशा रोनी मे कुछ अन्तर आता है।

सामन्तवादी पात्र

हमारे राष्ट्रीय जीवन मे आरामतलबी, हृदयगत सकीर्णता, सनक और अनुशासनहीनता जैसे दुर्गुणो को दूर करने की विकट समस्या है। हम उद्योग करते है किन्तु मूर्खतापूर्ण लक्ष्य निर्धारित कर लेने के कारण अपनी शक्ति को अपव्यय और राष्ट्र को अवनति की ओर ले जाते है। बिल्कुल प्रेमचन्द के 'शतरज के खिलाडियों' की भाँति, जिन्हे अपने नवाब के बन्दी हो जाने की अधिक चिता नही परन्तु अपने एक मोहरे को पिटते देख जान तक दे देना आवश्यक है। गतयुगीन सामन्तो मे हमारी इन दुर्बलताओ का प्रचडतम रूप देखने मे आता है। वर्मा जी के उपन्यासो मे जहाँ-तहाँ विचरने सामन्तशाही से प्रभावित पात्र दृष्टिगोचर होते है। उन्हे दो श्रेणियो मे विभाजित किया

१. अमरबेल—पृ० ७०
२. टूटे काँटे—पृ १७

जा सकता है। पहले वे है, जिनके जीवन का लक्ष्य केवल लडना-भिडना, मर-मिटना है। ये ईमानदार, वीर, साहसी और अपनी धुन के पक्के है। क्रोध आने पर किसी को क्षमा नही कर सकते, कुअवसर पर नव नही सकते। उस समय बुद्धि और विवेक से उन्हे कोई सरोकार नही। केवल तलवारे खटकाना उनके जीवन की साध है। दूसरी श्रेणी मे विभाजित किये जाने वाले पात्र वीर, साहसी और सनकी है किन्तु साथ ही लोलुप, विलासी, शिथिल, आलसी और स्वेच्छाचारी है। ये अपेक्षाकृत भयकर है।

पहली कोटि को लीजिये। पुण्यपाल (गढ कुडार) वीर और साहसी है। आवश्यकता से अधिक उछृङ्खल और सनकी भी। जरा सी बात पर लड मरने को कमर कस लेता है। भले ही मुख्य योजना तितर-बितर हो जाए परन्तु उसे तनिक दबना दूभर है। उपन्यास मे जहाँ कही दीखता है, तना हुआ, विक्षुब्ध और अपनी ही सनक म। लक्ष्य के लिये अपने प्राण होम कर सकता है। अनुशासन मे रहना अथवा किसी की तनिक सी उद्दण्डता को टाल जाना उसके वश का नही। पुण्यपाल को देखकर पाठक को कुछ क्रोध और खीज का अनुभव होता है।

लोचनसिंह (विराटा की पद्मिनी) पुण्यपाल का विकसित रूप है। अपनी वीरता और नेकदिली से पाठको को मोहित कर लेता है। अधेड अवस्था का, सनकी स्वभाव के लिये विख्यात। राजा नायकसिह से एक स्थल पर कहता है, 'मूड ही कटवा लेगे आप ? सो उसका मुझे कोई डर नही है।'

जिस समय राजा के सामने बातचीत करने के लिये मुँह खोलता था, अन्य दरबारियो का सिर घूमने लगता था। भय जैसी वस्तु से उसका कोई सरोकार नही है। राजा की आज्ञा पालन करने मे सब से आगे चलने वाला। युद्ध मे पीछे हटना कभी सीखा न था। किन्तु मन के विरुद्ध कार्य राजा भी नही करा सकता। बिल्कुल जलती हुई आग की भाँति प्रबल और सरल। नायकसिह उसकी हर समय सिर कटाने की आदत से कुढ कर कहता है, 'हकीम जी इस भयङ्कर रीछ को मेरे पास मत आने दिया कीजिये। यह न मालूम इतने दिनो कैसे जीता रहा।'[1] उसका अन्त भी विकट होता है। राजा देवीसिह की तनिक भर्त्सना पर अपनी वशगत उपाधि 'चामुँडराई' के प्रतीक फेंटे को चट्टान पर अत्यन्त अवहेलना से फेंकता हुआ बेतवा की तीव्र धार में बह जाता है।

---

१ बिराटा की पद्मिनी—पृ० ४६

सोनेसाह (कचनार) लोचनसिंह की भाँति सनकी है। स्वभाव मे क्रूर अधिक है। सरलता का उसमे अभाव है। डरू के भाई बैजनाथ से लगान के सम्बन्ध मे झगडते हुए प्रचण्ड रूप मे उपस्थित होता है। उस समय लोचन-सिंह के मुस्लिम सिपाहियो से पालर म हुए झगडे का स्मरण हो आता है। उतनी ही उग्रता और उद्दण्डता। सोनेसाह वही डरू के हाथो मारा जाता है। उपन्यास के प्रारम्भिक कुछ पृष्ठों मे ही उसका उग्र स्वरूप स्पष्ट है।

दूसरी कोटि के पात्रों मे गगाधर राव (झाँसी की रानी) हुरमत सिंह (गढ कुण्डार) नायकसिंह (बिराटा की पद्मिनी), राव साहब (झाँसी की रानी), मानसिंह (कचनार), धुरन्धरसिंह (सोना), मुहम्मदशाह (टूटे काटे) आदि है। गगाधरराव का चरित्र मनोवज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करने योग्य है। उसका विधुर जीवन नीरस हो उठा है। सस्कारो मे बिधा हुआ उसका कला प्रेम करवटे लेता है। स्वभाव मे सनक और कठोरता है। लिखा है—

'गगाधरराव साहित्य और ललित कलाओं के पूरे रसिक थे। सुखलाल उनका चित्रकार था। पढा लिखा कम, परन्तु कलम और कूँची की सही विधि कोमलता और हथौटी का आचार्य। गायक, वादक, खास कर ध्रुवपद वीणा और पखावज के उस्ताद और रीतिकाल और भक्तिरस की ओट वाले कवि गगाधरराव की महफिल को आबाद करने लगे। उन्होंने दूर-दूर से नाना प्रकार के हस्तलिखित ग्रन्थ इकट्ठे करवाये और विशाल पुस्तक भाडार से अपने पुस्तकालय को भर दिया। वेद, उपनिषद्, दर्शन, पुराण, तन्त्र, आयुर्वेद, ज्यो-तिष, व्याकरण, काव्य इत्यादि के इतने ग्रन्थ उनके पुस्तकालय मे थे कि लोग दूर-दूर से उनकी प्रतिलिपि के लिए आने लगे।

'नाटको का उन्हे विशेष शौक था। वे सस्कृत नाटको का अनुवाद हिन्दी और मराठी म करवाया करते थे और उनका अभिनय भी करवाते थे। शहर के महल के पीछे पश्चिमी दिशा मे नाटकशाला थी।

'गगाधरराज स्वय अभिनय करते थे पुरुष के अभिनय से सन्तोष नही होता था, इसलिए स्त्री की भूमिका मे भी आ जाते थे।'[1]

यहाँ गगाधरराव मे मृगनयनी के मानसिंह से मिलते जुलते कलात्मक तत्व हैं किन्तु इनके मूल मे कुठा व्याप्त होने के कारण दृष्टिकोण पूर्णतया स्वस्थ नही है। इसे वर्मा जी ने बडे कौशल से इङ्गित किया है—'और रीति-काल और भक्तिरस की ओट वाले कवि गगाधर की महफिल आबाद करने

१. झाँसी की रानी—पृ० ८, ९

लगे।' गगाधरराव के उपर्युक्त गुणों से ही उसके व्यक्तित्व की रूप-रेखा खिच जाती है।

मनूबाई से विवाह हो गया। स्वभाव मे कुछ कोमलता आई। रानी का अदम्य स्वभाव अखरा किन्तु पी लिया। गगाधर ने अपना दमन तो किया किंतु वह क्रोध और कठोरता कही और बह चले। अन्तर्द्वन्द्व के कारण मन मे क्रोध की मात्रा और भी बढ गई और अपराधियो को दण्ड देने के लिए बिल्कुल नए नए साधन काम मे लाये जाने लगे। जैसे, प्रहरी की असावधानी के फलस्वरूप उसे बिच्छुओ से कटवाना।

गगाधरराव नाम भर का राजा था। सत्ता वास्तव मे अँगरेजो के हाथ मे थी। राजा के कर्तव्य की इतिश्री राज्य मे उठने वाले दगा, फसादों को दबाने भर मे थी किन्तु राजा का पानी बिल्कुल मर गया हो, ऐसी बात नही। खीज कर गार्डन से कह ही तो दिया—'साहब, मै तो एक छोटा सा सस्थापक हूँ। तो भी चाहूँ तो बहुत-कुछ कर सकता हूँ। लेकिन सभी राजाओ ने चूडियाँ पहिन रक्खी है। क्या यह आश्चय की बात नही कि अपने ही देश मे हम सब कैद है सवा सौ वर्ष पहले की बात याद कीजिए। आप लोगो की क्या शान थी, जब दिल्ली के बादशाह और पूना के पन्तप्रधान के दरबार मे साष्टाग प्रणाम कर करके अर्जियाँ पेश करते थे।'[1] अन्त मे रोगग्रस्त गगाधरराव, नायकसिंह (विराटा की पद्मिनी) का स्मरण करा देता है। वैसी ही खीज और सनक। ससार से विदा होने का समय निकट आते-आते स्वभाव मे पश्चाताप, उदारता और दीनता आ जाती है।

हुरमतसिंह (गढ कुडार) ढलती आयु का शिथिल शासक है। स्वार्थी, अभिमानी, सौजन्यविहीन और आरामतलब। कुण्डार का समस्त शासन शृङ्खलाविहीन है। नित्यप्रति के मुस्लिम आक्रमणो के प्रति वह उदासीन है। तत्कालीन राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था के प्रति किसी सीमा तक वह स्वय उत्तरदायी है। नायकसिंह (विराटा की पद्मिनी) वीर, झक्की और कामुक है। सनक और बीमारी के कारण बच्चो जैसा स्वभाव है। शासन प्रबन्ध से कोई सरोकार नही, सब कुछ अस्त-व्यस्त। राव साहब (झाँसी की रानी) अनुशासनहीनता तथा आरामतलबी का जीता-जागता उदाहरण है। देशभक्ति आदि मे उसे कोई आकर्षण नही। अपने भोग-विलास के लिए राज्य अवश्य चाहता है परन्तु उसकी प्राप्ति एव रक्षा के लिए उद्योग करना असम्भव है। मानसिंह (कचनार) लोलुप है। उसकी कामुकता की अग्नि दिन प्रतिदिन बढती है। इन पात्रो के अतिरिक्त सामतशाही के

१ झाँसी की रानी : पृ० ६३

प्रतीक दर्जनो पात्र उपन्यासो मे दृष्टिगोचर होते है। उन सब के आधार मे प्राय यही प्रवृत्तियाँ डेरा डाले है।

अन्य पात्र

ठेठ बुंदेलखडी जनता का चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक, सजीव और हृदय-ग्राही हुआ है। अर्जुन कुम्हार (गढ कुंडार) और झलकारी कोरिन (झाँसी की रानी) बुंदेलखडी बोली मे बोलते है। स्वाभाविक अक्खडपन, उद्दंडता, कही कही काँइयाँपन, सरलता, वीरता, साहस, स्वामिभक्ति, ईमानदारी, सहृदयता ये सब मिलकर इनमे प्राण डाल देते है। अन्य पात्रो मे भी यही स्वाभाविकता आ विराजी है। झलकारी कोरिन रानी लक्ष्मीबाई द्वारा आयोजित 'हरदी कूं कूं' के उत्सव मे उपस्थित थी। वर्मा जी लिखते है, 'अन्त मे कोने मे खडी हुई एक नववधू माला लिये बढी। उसके कपडे बहुत रङ्ग-बिरंगे थे। चाँदी के जेवर पहिने थी। सोने का एकाध ही था। सब ठाठ सोलह आना बुन्देलखडी। पैर के पैंजनो से लेकर सिर की दाउनी (दामिनी) तक सब आभूषण स्थानिक। रङ्ग जरा सावला।' वह रानी की स्त्री-सेना मे भरती हो जाती है। उसकी लगन और शक्ति देखते ही बनती है। अन्त मे झाँसी का पतन हो गया। रानी किला छोडकर घोडे पर भागी। पीछे पीछे अँगरेज सैनिक। झलकारी का कर्तव्यप्रिय, वीर हृदय यह कैसे सहन करता। उसने रानी का अभिनय किया और अगरेजी सेना मे जा पहुँची। पहिचान ली गई। अँगरेजो ने गोली मारने की धमकी दी। उसे डर होता तो वह वहाँ जाती ही क्यो ?

झलकारी ने निर्भय होकर उत्तर दिया, 'मार दे, मैं का मरबे खो डरात हो जैसे इत्ते सिपाई मरे तैसे एक मैं सई।'[1]

इब्न करीम (गढ कुंडार) गौसमुहम्मद, खुदाबख्श तथा गुलमुहम्मद (झाँसी की रानी) ईमानदार मुसलमानो का प्रतिनिधित्व करते है। उनमे स्वामिभक्ति, ईमानदारी, वीरता, और रूखे आवरण मे छिपी सहृदयता है। अपने स्वामी के लिए जीवन न्योछावर कर देते है। डरू (कचनार) और बोधन मिश्र (मृगनयनी) आदि अपनी विशेषताओ के कारण उल्लेखनीय हैं। डरू सामन्तशाही से सताया हुआ साधारण बुंदेलखडी युवक है। उसके चरित्र मे घोर दमन के विरुद्ध प्रतिक्रिया परिलक्षित होती हैं। वह मानवता के साधारण नियमो को भी त्याग देता है। उद्दंड, हृदयहीन सैनिक बनकर उच्छृंखलता का प्रदर्शन करता है। बोधन मिश्र (मृगनयनी) तत्कालीन

---

१. झाँसी की रानी...पृ० ४२६

ब्राह्मण समाज की कट्टरता का जीता-जागता प्रतीक है। राजा दूसरी जाति की कन्या से विवाह कर सकता है परन्तु साधारण जन, अटल, के लिये यह कैसे सभव है! वह हृदयहीनतापूर्वक अटल का अन्त तक विरोध करता है परन्तु है ईमानदार। जो ठीक जचता है, उसे अपनाता है। विश्वास के विपरीत जाना असम्भव है भले ही राजा क्रुद्ध हो या विधर्मी वध कर डाले। अन्त मे लखनऊ के मुल्लाओ से शास्त्राथ करता है और मारा जाता है। अली बहादुर (झाँसी की रानी) अँगरेजो की खुशामद करने वाला देशद्रोही है। तनिक से स्वार्थ के लिये देश को गढे मे ढकेल देना उसे उचित जान पडता है। उसका स्वाभाविक चित्रण हुआ है। अलीबहादुर का स्वाभिभक्त नौकर पीरअली रामदयाल (विराटा की पद्मिनी) की भाँति षड्यन्त्रकारी है।

तत्कालीन मुस्लिम शासकों की कामुकता, क्रूरता तथा उच्छृङ्खलता अलीमर्दान (बिराटा की पद्मिनी) महमूद बघर्रा तथा गयासुद्दीन (मृगनयनी) जैसे पात्रो मे खूब उतरी है। अलीमर्दान की कामुकता के कारण कुमुद को जल समाधि लेनी पडी। महमूद बघर्रा अत्यन्त क्रूर और विकट शासक है। गयासुद्दीन मे साक्षात् वासना मूर्तिमान है।

अगरेज पात्र

अगरेज पात्र मुख्यतया 'झाँसी की रानी' मे आए है। ये भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य की नीव डालने वाले काँइयाँ व्यापारी, कूटनीतिज्ञ प्रबन्धक तथा योद्धा के रूप मे चित्रित हुए है। इनमे भारतीय सस्कृति के प्रति उपेक्षा तथा सामन्तशाही के प्रभाव से जर्जर भारतीय शासन एव समाज के प्रति तीव्र घृणा है। अगरेजो के स्वाभाविक गुणों पर भी प्रकाश डाला गया है जिनके बल पर वे भारत मे सैकडो वर्ष राज्य कर सके। अगरेज अपने देश के परम प्रेमी, कर्तव्यप्रिय, अनुशासनप्रिय तथा गुणग्राहक भी दीख पडते है।

कुछ मौलिक निष्कर्ष (अ) कथानक और पात्र

प्रमुख पात्रो के चरित्र और उनके चित्रण का विश्लेषण करने के उपरान्त वर्मा जी की पात्र-निर्माण एव चित्रण की कला के विषय मे कुछ मौलिक निष्कर्ष प्राप्त किए जा सकते हैं। सर्वप्रथम प्रश्न उपन्यास मे कथानक और पात्रो के परस्पर सम्बन्ध का है। वर्माजी कथानक की रूपरेखा पहले खीच लेते है। फिर उस कथा मे आये पात्रो को स्वतत्र व्यक्तित्व प्रदान कर सजीव बनाते है। उन्हे कथा की परिधि मे बाँध कर उनके चरित्र को युक्तिसगत, स्वाभाविक बनाये

रखने का प्रयत्न रहता है। कथा के पूर्वनिश्चित होने पर भी पात्रो की स्वाभाविकता की रक्षा करने मे उन्हे प्राय सफलता मिली है। उदाहरण-स्वरूप 'गढ कुण्डार' की कथा और उसके प्रमुख पात्रो को ले सकते है। कुण्डार का खगार राजकुमार नागदेव बुन्देला-पुत्री हेमवती के प्रति आकृष्ट है। यही आकर्षण खगार-बुन्देला सघर्ष तथा कुण्डार-पतन का कारण बनता है। कथा कुछ ऐसे क्रम से करवटे लेती है कि नागदेव के असहिष्णु मादक प्रेमी स्वभाव को घटनाओ से घात-प्रतिघात करने का पूरा अवसर मिलता है। वह समर्पण की भावना से ओत-प्रोत, उदार प्रेमी से परिवर्तित हो हिंसा और प्रतिशोध की भावना से भर उठता है। नागदेव का चरित्र-विकास पूर्वनिश्चित घटना-क्रम मे खप कर चलता है। नाग मे जो कुछ परिवर्तन आगे चलकर दृष्टि-गोचर होते है उनके बीज उसके चरित्र मे प्रारम्भ से छिपे रहते है। ऐसे ही बाल-मित्र अग्निदत्त और नागदेव घटनाओ मे पडकर घोर शत्रु बन एक दूसरे के रक्त के प्यासे हो जाते है। उनकी हिंसक प्रवृत्ति मित्रता की तह में पहले से छिपी थी।

कही-कही कथा के अनुसार पात्रो को मोडने पर उनकी स्वाभाविकता नष्ट हो गयी है। 'कुण्डली चक्र' के ललितसेन, रत्नकुमारी और अजित इसी श्रेणी के पात्र है। जहा जिस अवसर पर जैसा कार्य होना चाहिए ये कर बैठते है किन्तु उस कार्य की पृष्ठभूमि में इन पात्रो के स्वाभाविक गुणो का विकास नही हो पाता। इस दोष का 'अहिल्याबाई' का डाकू गनपतराव (बहादुरसिंह) ज्वलत उदाहरण है। वह डाकू है। जामघाट पर डेरा जमाये रहता है। प्रत्येक राहगीर से उस मार्ग से निकलने भर का 'हाथ झुलाई कर' लेता है। एक बार अहिल्याबाई की भेजी हुई शकर की मूर्ति, थोडे से चावल और रगीन धोती को देखकर उसके हृदय पर भारी प्रभाव पडता है। वह एकाएक अहिल्याबाई की सेवा मे पहुँचकर अपने दुष्कर्मों का कठोर दण्ड प्राप्त करने की प्रार्थना करता है। अर्जित धन भी रानी के चरणों मे रख देता है। बाद मे पूजा-अर्चन मे समय व्यतीत करता है। एक कुटिल, कठोर डाकू साधारण घटना से प्रभावित हो पूर्णतया बदल जाए, स्वभाव से महात्मा बुद्ध जैसा हो जाए अस्वाभाविक लगता है। ऐसी घटनाये ससार मे देखने को मिलती है किन्तु उनका कारण कोई भीषण घटना या मानसिक आघात होता है। इन परिवर्तनो का चित्रण करने के लिए पर्याप्त मनोविश्लेषण एव अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण अपेक्षित है। इस विकास के अभाव में गनपतराव का चरित्र अतिनाटकीय हो गया है। वर्मा जी ऐतिहासिक प्रमाण तथा उपन्यास मे

उपर्युक्त उल्लिखित कारणों को परिवर्तन के लिए यथेष्ट मानते है।[1] इतिहास ऐसा कहता है, इतना कह देने भर से उपन्यासकार को छुट्टी नही मिल जाती। इस घटना तक पहुँचाने के लिए पात्र मे मानवोचित अन्तर्द्वन्द्व और विकास का चित्रण आवश्यक है अन्यथा उपन्यास नीरस इतिहास बन कर रह जाएगा। गनपतराव कठपुतली की भाँति उपन्यासकार के इच्छा-सकल्पो के इशारे पर नाचता है।

[ब] पात्रो के आकर्षण का रहस्य

वर्मा जी के प्राय सभी प्रमुख पात्र आकर्षक है। वे पाठक के मस्तिष्क पर अपना भारी प्रभाव छोड जाते है। पात्रो का अपना बाकापन और उनके जीवनकाल मे बीती घटनाओ का सुघडपन ही उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व के मूलमत्र है। पात्रो का यह बाकापन है उनकी अपने लक्ष्य के प्रति अटूट तन्मयता मे उनके लिए लक्ष्य साध्य है तो जीवन साधन। जीवन-गति में तन्मयता और जीवन के प्रति निस्पृहता ये विरोधी जान पड़ने वाले दृष्टिकोण जीवनधारी इन पात्रो को सजीव और बाका बना देते है। पात्रों मे व्याप्त तन्मयता, निर्द्वन्द्वता, तथा निस्पृहता बहुत-कुछ, बीते सामन्तयुगीन प्रभाव की देन है। वह युग कुछ था ही ऐसा जब व्यक्ति जो कुछ करता था डटकर, भले ही वह भूमि, आखेट का वन, नाटकशाला अथवा सुरा-सुन्दरी की रङ्गभूमि क्यो न हो। पास रहती थी खड्ग, तनिक सी खटपट पर विवादी की गदन चुटकियो मे काट फेकने वाली। यदि पासा पलट गया और अपना ही शीश धड से नाता तोड दूर जा पडा तो भी मलाल नही। खिलाडियो जैसी निर्द्वन्द्वता। सब कुछ चरम पर। इस चरम को हम सनक कहेगे किन्तु यह

---

१ '"गनपतराव के चरित्र मे नाटकीय परिवर्तन बहुत खटकता है —आपके शब्द। हुआ ही था उसमे नाटकीय परिवर्तन। मल्हारराव का बुरा बर्ताव, आनन्दी का मनमुटाव इत्यादि कुछ कारण बने। फिर अहिल्याबाई की धर्मानुशीलन सम्बन्धी कीर्ति, उनके दामाद का वह पत्र, चदेरी का धोती जोडा, शिव की मूर्ति और बही खाते मे दर्ज किये गये थोडे से चावल—ये गनपतराव मे वैसा परिवर्तन उत्पन्न करने के लिये क्या कम थे ? वह परिवर्तन ऐतिहासिक घटना है। गनपतराव के रुपये से जामघाट पर—जहाँ वह डाके डालता था और जहाँ उसे ऊपर लिखा सब देखने को मिला था—क्यो न नाटकीय परिवर्तन उपस्थित करते ?'

—वर्मा जी का पत्र, ता० २८—१—५६

सनक व्यक्ति की सजीवता और उत्साह की द्योतक तो है ही। रूखे आवरण मे छिपे ये गुण हमें आकृष्ट किए बिना नही रहते।

पात्रो का लक्ष्य भले ही गलत हो किन्तु कार्य मे कोई कसर न उठा रखना उनका स्वभाव है। उन्हे जो ठीक जचता हे उसके लिए प्राणो पर खेल जाना साधारण बात है। 'गढ कुडार' के अग्निदत्त को लीजिए। जब तक जीना है जीयेगा किन्तु बेमन रहकर जीना उसने सीखा नही। प्राणप्यारी मानवती नही मिल पाई, ऊपर से मिला नागदेव से घोर अपमान। प्रतिशोध! केवल प्रतिशोध उसकी धुन हो जाती है। उसने जी खोल कर अपमान का बदला लिया। फिर प्राण रक्षा के लिए छिपता नही फिरता। वह कुठित है अपने भयकर लक्ष्य की पूर्ति के भीषण फल से। अन्त मे पागलो जैसा लडता हुआ मारा जाता है। जिस जीवन की आकाक्षाओ की पूर्ति के लिए एडी-चोटी का पसीना एक किया उसकी रक्षा की रत्ती भर चिंता कभी नही करता। जीवन जाता है जाने दो, बस उसकी सजीवता न जाने पाये। उसे अपनी आकाक्षाये, भावनाये और आदर्श प्यारे है, जीवन नही। जीवन प्रिय है तो केवल इनके साधन के रूप मे। तन्मयता ही उसका जीवन है।

लोचनसिह (बिराटा की पद्मिनी) की शक्ति, शौर्य के आकर्षण का रहस्य जीवन सबधी इसी निस्पृहता मे निहित है। एक दम निद्व न्द्व। युद्धभूमि मे जी-जान से जुटना और शत्रु को निर्मूल कर के ही चैन लेना उसकी बान है। अपना कार्य उसके लिए सब कुछ है। दूसरी ओर वह जीवन से बिलकुल निस्सग है, जहाँ भी लडता है प्राणो की बाजी लगाकर। अपमान तनिक सा सहन नही कर सकता। अन्त मे राजा देवीसिंह की उपेक्षा से क्षुब्ध हो बेतवा की धार मे सदा के लिए बह जाता है। इसी प्रकार तारा (गढ कुडार) प्रिय पर सकट की सूचना पाते ही स्त्री-सुलभ लजा का आवरण फेक उसकी रक्षा करती है। तारा अपने जीवन के प्रति निस्सग हे किन्तु दिवाकर की प्राणरक्षा के लिए कोई कसर नही उठा रखती। प्राय सभी प्रणयी पात्र इसी भावना से ओत-प्रोत है। पात्रो की लक्ष्य के प्रति यह तन्मयता पाठको के हृदय पर अपनी प्रभावशाली छाप छोड जाती है।

वर्मा जी के पात्रो मे प्रभाव है। पात्रो के चरित्र को प्रकाश मे लाने वाली घटनाओ के महत्व पर भी विचार कर लेना युक्तिसगत होगा। जिस उपन्यास मे घटनाये हमारे इच्छा-सकल्पो (विशफुल थिंकिग) से मिलती-जुलती होती है हम सहज ही उन घटनाओ मे भ्रमण करने वाले पात्रो से तादात्म्य स्थापित कर लेते है। जीवन मे जो कुछ सम्भव है उसकी सीमा मे हम लोग बधे रहते है। क्रियात्मक जीवन मे वास्तविकता का अतिक्रमण करना किसी के लिए

सम्भव नही फिर भी हमारी अनेक दबी हुई भावनायें, कल्पनाये और आकाक्षाये किसी लोक मे पहुँचकर तुष्ट होना चाहती है । वह लोक है हमारी कल्पनाओ का लोक, हमारे सकल्पो की दुनियाँ । हम मन ही मन अपने सूने क्षणो मे प्राय प्रिय घटनाओ या सयोगो की कल्पना किया करते है और इन घटनाओ के नायक हम स्वय बन बैठते है । यह काल्पनिक सयोग सुखान्त ही नही दु खान्त भी होते है । हम किसी सुन्दरी की गु डो से रक्षा करने की सुखद कल्पना करत है तो कभी हमारी कल्पना किसी के लिए ससार मे अनेक असफलताये भोगने पर प्राण त्यागने से भी सन्तुष्ट हो जाती है । देश के प्रिय नेता बन जाने की कल्पना बहुतो को आकृष्ट करती है तो देश के लिए मर मिटने, शहीद हो जाने की आकाक्षा भी बहुत मे हृदयो मे धडकती रहती है । इन इच्छा-सकल्पो को किसी पात्र से सम्बद्ध कथा मे साकार होता देख हम आह्लाद से भर उठते है । और इस कल्पना-जगत् की 'आप बीती' की उपन्यास के पात्रो और उनकी कथा मे सजीव पुनरावृत्ति हमे मोहित कर लेती है । हम घटनाओ के आकर्षण मे खो जाते है । शनै शनै घटना हमारी अपनी रामकहानी बन जाती है और उस कहानी के नायक का हम स्वय स्थान ग्रहण कर लेते है । पात्र और हम, हम और पात्र—एक हो जाते है ।

वर्मा जी के उपन्यासो मे हमारे अनेक इच्छा-सकल्पा से मिलती जुलती कथाये है । देश दासता के बधन मे बधा है । चारो ओर अराजकता फैली है किसी दृढ नेतृत्व का अभाव निरन्तर अनुभव किया जा रहा है । ऐसी परिस्थिति मे कल्पना-लोक मे हमारा देश के नेतृत्व की बागडोर सभाल लेना स्वाभाविक है । हम दुष्ट, आततताइयो का हनन कर जन-जन मे स्फूर्ति फू क देने की बात सोचते है । यह परिस्थिति हमे जब लक्ष्मीबाई (झाँसी की रानी—लक्ष्मीबाई) की कथा मे घटित होती दीख पडती है उस समय मानो हमारी चिर पोषित कल्पना, हमारे इच्छा-सकल्प उपन्यास के पृष्ठो मे सजीव, साकार हो उठते है । तब कथा की सूत्रधार लक्ष्मीबाई नही रह जाती वरन् सन् १८५७ के विद्रोह तथा उसके नेतृत्व का भार हमारा काल्पनिक व्यक्तित्व ग्रहण कर लेता है । हम मे तथा लक्ष्मीबाई म कोई भेद नही रह जाता । इसी प्रकार दिवाकर (गढ कु डार), धीरज (प्रेम की भेंट) तथा कु जरसिह (विराटा की पद्मिनी) आदि की मोहक कथा मे डूबकर हम उनसे पूण तादात्म्य स्थापित कर लेते है । उनकी कथा हमारी कहानी बन जाती है । वर्माजी के पात्र हम से यही तादात्म्य स्थापित कर हमारे हृदय पर अपनी गहरी लकीर छोड जाते है ।

(स) पात्रो का स्रोत

वर्मा जी के अधिकाश पात्र उनके अपने अनुभव की देन है। केवल कल्पना के आधार पर खडे किये गये व्यक्तित्व एव चरित्र उनके उपन्यासो मे प्राय कम मिलेगे। पात्र बीते युग के हो अथवा आज के, उन सब की विस्तृत रूप रेखा उनके व्यक्तित्व उपन्यासकार के सम्पर्क मे आये स्त्री-पुरुषो के सस्मरणो, के विकसित, सुयोजित प्रतिफल है। वर्मा जी ने इस तथ्य को अन्यत्र उल्लिखित एक पत्र मे स्वीकार किया है। वास्तविक जीवन मे देखे-सुने गये और व्यवहार मे आये व्यक्ति उनकी पात्र-निर्माणकला की मूल प्रेरणा रहे है। कई उपन्यासो की भूमिका मे उन्होने पात्रो के मूल स्रोतो की सक्षिप्त चर्चा करते हुए अपनी इस प्रेरणा का सकेत दिया है, वर्णित चरित्रो के वर्तमान सादृश्यो के सार्वजनिक उद्घाटन से बचा गया है केवल कुछ की चर्चा मात्र हुई है। जैसे 'गढ कुडार' का अर्जुन उनके मित्र दुर्जन कुम्हार की छाया है।[1] देवसिंह (लगन) नन्दलाल[2] और लालमन (सगम) दतिया के मन्नूलाल डाकू का प्रतिबिम्ब है।[3] देवीसिंह, लोचनसिह, जनार्दन शर्मा, अलीमर्दान (बिराटा की पद्मिनी) इत्यादि के नाम काल्पनिक है किन्तु उनका इतिहास सत्यमूलक है। लोचनसिह के वास्तविक स्वरूप को इस ससार से विलीन हुए अधिक समय नही बीता।[4] 'अमरबेल' मे सहकारी अधिकारी राघवन का नाम भर बदला गया है ताकि अन्य पात्रो और स्थानो के सब बनावटी नाम सारी घटनाओ के साथ कही उघड न जाएँ।[5]

वर्मा जी ने ऐतिहासिक उपन्यासो मे पात्र आज के बुदेलखड से सजोये है। उन्होने इस क्षेत्र का विस्तृत पर्यटन किया है और दूर गाँवो, जगलो, पहाडियो मे बसे आधुनिक सभ्यता से अछूते निवासियो को समीप से देखा है। इन लोगो मे गतयुगीन बुदेलखड निवासियो की मुख्य चारित्रिक प्रवृत्तियाँ समय के साथ थोडी बहुत परिवर्तित होने पर भी ज्यो की त्यो बनी हुई है। बुदेलखड के मध्ययुगीन इतिहास मे सामन्तशाही के गुणो और दुर्गुणो का बोलबाला रहा है। उन परम्पराओ को अब तक सुरक्षित तथा जनप्रिय बनाये रखने मे बुन्देलखड की चली आई रियासतो का भी हाथ है। बुन्देलखड की

---

१ गढ़ कुडार...[भूमिका] पृ० १४

२. लगन परिचय

३ सगम...[परिचय] पृ० ३१२

४ बिराटा की पद्मिनी [परिचय] पृ० १२

५ अमरबेल परिचय

जीर्ण हो रही पुरातन परम्पराएँ आज भी ठेठ बुन्देलखडी के अन्तरतम मे कहीं आसन जमाये बैठी है। उनमे पहले जैसी अकड, वीरता, स्वाभिमान, देश-प्रेम अनुशासनहीनता, सनक और जाति-पाँति सबधी सकीर्णता के तत्व आज भी वर्तमान है। वर्मा जी ने आधुनिक बुदेलखड निवासियो का सस्कार कर उन्हे मध्ययुगीन साँचे मे ढाला है। आज के बुन्देलखडी पूर्वकालीन जामा पहने ऐतिहासिक उपन्यासो म विचरते दीख पडते है। वर्मा जी की यह प्रतिभा सुप्रसिद्ध अगरेजी ऐतिहासिक उपन्यासकार वाल्टर स्कॉट की पात्र-निर्माण-कला से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। स्कॉट का पुरातन से तादात्म्य था। वह जानता था कि उसके देशवासियो मे पुरातन के सस्कार विद्यमान है। उनमे तथा पूर्वकालीन स्कॉच लोगो म मूलत साम्य है। अत उसने अपने काल के ही व्यक्तियो को ऐतिहासिक पात्रो का स्वरूप प्रदान किया था। वे ऐतिहासिक पात्र पुरानी भूषा से सज्जित स्कॉट के तत्कालीन देशवासी ही है। उसने वर्तमान और पुरातन का समन्वय कर इतिहास की निरन्तर अमिट आन्तरिक शृङ्खला को सामने रखा। वह जानता था कि राष्ट्र के निवासियो का चारित्रिक व्यक्तित्व कुछ काल की सकुचित परिधि मे नही बाधा जा सकता। वह तो शताब्दियो के विकास की महान् देन है। उसके विकास और निर्माण मे भूखड के न जाने कितने रीति-रिवाजो तथा परम्पराओ का हाथ रहता है।[1]

(द) स्थूल चरित्र-रेखाये

इतिहास मे मानवचरित्र का विस्तृत विश्लेषण नही मिलता। वहाँ पात्र के ढाचे को खडा करने वाली गिनी-चुनी कुछ मोटी रेखाये भर मिलती है। इन्ही रेखाओ के आधार पर वर्माजी ने अपने ऐतिहासिक पात्रो के स्पष्ट और पुष्ट व्यक्तित्व का निर्माण किया है। उनका स्वरूप पहले से निश्चित रहने के कारण उपन्यास मे पदार्पण करते ही वे पात्र तुरन्त अपनी स्थूल रूप-रेखा प्रस्तुत कर देते है। इस रूप-रेखा के आधार पर उनका सम्पूर्ण चरित्र विकसित होता है। वर्माजी ने पात्रो मे यत्र-तत्र मनोवैज्ञानिक अन्तर्द्वन्द्व दिखाते हुए भी उनके चरित्र को आधुनिक पात्रो की भाँति अधिक उलझने नही दिया है। उन्होने गत काल के पात्रो और घटनाओ को मोटे तौर पर देख पाया है मीनार पर से झाँकते दर्शक की भाँति। मीनार पर चढा व्यक्ति नीचे चलते-फिरते नर-नारियो के लाल, पीले, नीले वस्त्र और उनके स्थूल भेद ही देखने मे समर्थ होता है। अपनी कल्पना तथा अनुभव का आश्रय लेकर वह उन प्राणियो के स्पष्ट तथा

---

१ ए हिस्ट्री ऑफ इगलिश लिट्रेचर—(आर्थर कॉम्पटन रिकेट)—पृ० ३२४

सजीव स्वरूप की कल्पना करने मे सफल हो सकता है। इससे अधिक झाँक कर देखने वाले को मीनार से नीचे आ गिरने की आशका रहती है। इसी प्रकार पग पग पर उलझते चलते विरोधी गुणो से पूर्ण पात्रो की सृष्टि करने पर उनकी ऐतिहासिकता नष्ट होने तथा उनमे कृत्रिमता आ जाने का भय रहता है।

वर्माजी ऐतिहासिक पात्रो मे मानवसुलभ गुणो को उभार कर उन्ह स्थायी और चमकदार बनाते हैं, पत्थर पर की लकीर जैसे। प्रारम्भ मे ही उन्हे तराश कर रख देते है। अत उनके अधिकाश पात्र निश्चित लक्ष्य की ओर सतुलित गति से बढते है। पाठक पहली झलक से ही उनके भविष्य का बहुत कुछ अनुमान लगा सकता है। रामदयाल (बिराटा की पद्मिनी), ताँत्या टोपे (झाँसी की रानी), दलीपसिंह (कचनार) तथा नूरबाई (टूटे काँटे) जैसे परिवर्तनशील पात्र अवश्य अपवादस्वरूप कहे जा सकते है किन्तु इनके परिवर्तन के बीज व्यक्तित्व के मूल मे प्रारम्भ से छिपे हुए है। वाल्टर स्कॉट की पात्र-निर्माण-कला के विषय मे भी आलोचको का यही मत है। वह पात्र को जीवन प्रदान करने के उपरान्त उसे मौलिक गुणो के आधार पर विकसित होने के लिए छोड देता है। वे पात्र अन्त तक प्राय बदलते नही है, अपने स्वभाव के विरुद्ध नही जाते।[1]

(इ) चित्रण-कला और विकास

वर्मा जी ने भारी सख्या मे छोटे-बडे पात्रो की सृष्टि की है। ऐतिहासिक उपन्यासो मे तो पात्रो का जमघट है किन्तु सबकी रूप-रेखा इतनी उभरी हुई और स्पष्ट है कि उनके व्यक्तित्व की स्वतत्रता और भिन्नता सुरक्षित रहती है। पात्रो की सूक्ष्म चारित्रिक विशेषताओ के साथ बाह्य स्वरूप का बारीक विवरण देकर उनका सजीव चित्र पाठको के कल्पना-नेत्रो के समक्ष खडा करने का बराबर प्रयत्न रहा है। 'गढ कु डार' मे नागदेव और अग्निदत्त के पदार्पण करते ही उनके शारीरिक गठन, प्रकृति और रूप-रग आदि का लगभग दो पृष्ठो मे चित्रण किया गया है। इस चित्रण मे नाप-तोल तथा निश्चयात्मक विवरण की झलक मिलती है किन्तु पात्र का पूर्ण स्वरूप एकाएक खडा कर देने पर उसका आकर्षण भविष्य मे कम रह जाता है। मानो चरित्र-चित्रण घोल कर एक साथ पाठक के गले उतारा गया हो। यदि पात्र उपन्यास मे आगे चलकर रोचक प्रतीत होता है तो इस रोचकता का श्रेय घटना-वैचित्र्य

---

१. ए हिस्ट्री ऑफ इ ग्लिश लिट्रेचर—(एमिली लिग्वे एण्ड लुई कैजामिआ)—पृ० १०२५

को देना उचित होगा। अपना रहस्य तो वह पहले ही खो बैठता है।

चरित्र-उद्घाटन-कला की दृष्टि से 'बिराटा की पद्मिनी' मे महत्वपूर्ण परिवतन के दर्शन होते है। कुजरसिह को ले लीजिए। वह एकाएक पूर्ण-रूपेण प्रकट नही हो जाता। कुछ सूक्ष्म, सक्षिप्त रेखाये खीच कर उसका रेखाचित्र तैयार किया गया है। विभिन्न स्थलो से उसकी चारित्रिक रूप-रेखा इस प्रकार सकलित की जा सकती है।—

कुजरसिह राजा की दासी का पुत्र था। वह राज्य का उत्तराधिकारी न था, तो भी राजा उसे बहुत चाहते थे।[1] कुजरसिह आया। २०-२१ वर्ष का सौंदर्यमय बलशाली युवा था।[2] कुजरसिह के मन मे देवी के दर्शन की इच्छा तो हुई, परन्तु लज्जाशील होने के कारण अकेले जाने की हिम्मत नही पडी।[3] कुजरसिह को सिंहासन की आशा कम थी, परन्तु उपेक्षा न थी। उसने लोगो से प्राय सुना था कि ससार मे पासा पलटते विलब नही होता।[4] षड्यन्त्र की सृष्टि के लायक कुजरसिह मे न तो यथेष्ठ मानसिक चपलता थी, और न किसी षड्यन्त्र की सृष्टि के प्रबल नायकत्व के लिये पूरी नैतिकहीनता।[5] आदि यत्र-तत्र कौशलपूर्वक प्रस्तुत वाक्यो से कुजर के व्यक्तित्व की रूप-रेखा कथा के साथ स्पष्ट होती चलती है। अपने कार्यकलाप द्वारा वह स्वय अपने चरित्र मे रग भरता है। आगे अन्य उपन्यासो मे प्राय इसी चित्रण विधि का आश्रय लिया गया है।

वर्मा जी के नारी पात्र विशेष रूप से आकर्षक बन पडे है। नायिकाओ के गम्भीर व्यक्तित्व मे प्रछन्न राग उन्हे मोहक बना देते है। वर्मा जी की नारी सबधी धारणा और उपन्यासो मे क्रमश उसके विकास का विस्तृत विश्लेषण नारी पात्रो की चर्चा करते समय किया जा चुका है।

———

१ बिराटा की पद्मिनी ' पृ० १४
२ वही'' पृ० १५
३ वही पृ० १८
४. वही' 'पृ० ५०
५ वही'''पृ० ७३

अध्याय ५

वर्मा जी के उपन्यासों में कथोपकथन

कथोपकथन और अपेक्षित गुण

पात्रो के परस्पर वार्तालाप—'सवाद' या 'कथोपकथन' कहे जा सकते है। सवाद पाठक को पात्रो के व्यक्तित्व के समीपतर ले आते है। इनके कारण उपन्यास मे अभिनीत नाटक जैसी विशदता और स्वाभाविकता अपने आप आ विराजती है। कथावस्तु के विकास एव पात्र-चित्रण दोनो की दृष्टि से सवादो का महत्व उपन्यास मे है। यदि सम्वाद कथासूत्र को अग्रसर करने अथवा वक्ता के चरित्र पर प्रकाश डालने मे असमर्थ है तो भले ही वे मनोरजक, उपयोगी अथवा स्वाभाविक हो उपन्यास के लिये निरर्थक है, उसकी गति और एकाग्रता के मार्ग मे रोडे अटकाने वाले है। उपन्यासकार कभी-कभी कथा तथा चरित्र की सीमाओ का अतिक्रमण कर सम्वादो के द्वारा अपने निश्चयो, सिद्धान्तो, कल्पनाओ तथा ज्ञान-भण्डार का दिग्दर्शन कराने लगते है। यह अधिकार का दुरुपयोग है। यदि उन्हे कथा से असम्बद्ध किसी बात की विवेचना करनी है तो वह अलग से निबन्ध लिख सकते है। किसी ने क्या खूब कहा है कि उद्धरण—चिह्न मात्र लगा देने से ही कोई उचित सम्वाद नही हो जाती।

दैनिक वार्तालाप का यथातथ्य स्वरूप अनाकर्षक और ऊबाने वाला रहेगा। पाठक का मन उसमे नही रमेगा। साधारण नर-नारियो की बातचीत को नाटकीय गति एव शक्ति प्रदान करना आवश्यक हो जाता है। यदि कथोपकथन को नाटकीय और प्रभावशाली बनाने का जानबूझ कर प्रयत्न किया जाएगा तो उसमे कृत्रिमता आ जाने की आशका रहती है। ऐसे कृत्रिम कथोपकथन से पाठक तादात्म्य स्थापित करने मे असमर्थ रहेगे। अत उपन्यासकार वार्तालाप की सामग्री जन-जीवन से चुनकर उसकी आत्मा को सुरक्षित रखते हुए नवीन रूप प्रदान करता है। वह स्वाभाविकता तथा रमणीयता इन दोनो

होते है। सम्वाद वक्ता के विचार एव विषय के अनुसार दीर्घ अथवा सक्षिप्त होते है। जहाँ वह किसी समस्या पर विचार प्रकट करता है कोई विश्लेषण अथवा विवेचन प्रस्तुत करता हे, कथन बडे तथा वाक्य लम्बे हो जाते है। जहाँ तीखापन है, तीव्रता है,गति हे वहाँ कथन अत्यन्त सक्षिप्त तथा वाक्य छोटे-छोटे और पैने है। सम्वादो के साथ वक्ता के हाव-भाव का सूक्ष्म निरीक्षण भी चलता हे। इस सूक्ष्म विवरण के सहारे सम्वाद नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करने मे सहज ही सफल हो जाते है। उक्त दृष्टि मे बालमित्र नागदेव तथा अग्निदत्त की प्रणय सम्बन्धी वार्ता उल्लेखनीय हे। दोनो प्रेमी हे। नाग हेमवती के प्रति आकृष्ट है। उसमे जिज्ञासा, उत्सुकता, व्याकुलता, आवेग है तो गम्भीर प्रणयी अग्निदत्त मे सकोच, फूक-फूक कर पग रखने की सतकता, आशका तथा दृढता है। दोनो के मनोभावो तथा चरित्र की अभिव्यक्ति सम्वादो मे पूर्णरूपेण हुई हे। सम्वादो मे नाटकीय शक्ति कुछ ऐसी सीमा तक विकसित हो जाती है कि पाठक के कल्पना-पट पर नाग और अग्निदत्त के सजीव व्यक्तित्व उभर आते है और वह दोनो के राग-विराग के अनुकूल निश्वास और उच्छ्वास लेने लगता है।

नागदेव प्रणय मे अपनी व्याकुलता का वर्णन करने के बाद उत्सुकतावश एकाएक अग्निदत्त से पूछ उठता है—'पाडे, तुमने क्या कभी इस भाव का, इस कोमल कष्ट का अनुभव किया है ?'

पाडे ने सिर नीचा किया। अँगडाई ली । जमुहाई ली । कहा—'सो जाइए। रात बहुत हो गई।' और साधारण हँसा।

नाग की उत्सुकता सहसा बहुत उत्तेजित हुई । बडे आग्रह के साथ अनुरोध किया—'पाडे, तुम्हे मेरी सौगन्ध है। सच बतलाओ, वह कौनसी सौभाग्यवती है, जो तुम्हारे सदृश तेजस्वी युवा के अक की प्रतीक्षा कर रही

कार्य के भगिमा या अभिनय द्वारा साक्षात् प्रदर्शन मे नाटक की नाटकीयता निहित है। अवस्था के अनुकरण को नाट्य कहा ही गया है।

श्रव्य-काव्य मे शब्दो द्वारा कल्पना को जाग्रत् कर श्रोता या पाठक के मानस-पटल पर चित्र बनाये जाते हैं। अत उपन्यास मे नाटकीयता से तात्पर्य है वास्तविकता के आभास से। नाटकीय स्थल पर घटना का वर्णन मात्र न हो वरन् वहाँ घटना स्वय घटित होती जान पडे, वार्तालाप तथा कार्य मे सजीवता का बोध हो। जहाँ अमूर्त मे मूर्त्त का आभास है, वास्तविक जीवन से होड लेने वाली स्वाभाविक गति है और जहा जड लेखनी से भी रग मच पर अभिनीत दृश्यो जैसी सजीवता उत्पन्न करने की क्षमता है वही नाटकीयता है।

हे ? तुम्हारी जाति की ही होगी ? तुम्हे तो कठनाई नही होगी ?'

अग्निदत्त एकाएक गभीर हो गया। होठ कापने से लगे। उसकी एक आख अध-मुदी सी और दूसरी खुली हुई सी थी। गर्दन जरा टेढी हो गई और जिस हाथ के सहारे पलग पर बैठा था, वह कुछ कडा हो गया। उसने स्पष्ट परन्तु कपित स्वर मे कहा—'यदि आप मेरे ऊपर कुछ भी स्नेह रखते हो, तो जितना मै बतलाना चाहूँ, उससे अधिक मत पूछिएगा, क्योकि मैने उस समय तक पूरा ब्योरा न बतलाने का निश्चय कर लिया है, जब तक कि सफलता की पूरी आशा न हो जाय।'

नाग ने टोक कर कहा—'तो आप कुछ भी न बतलाएँगे ?' और उसका मुह उतर गया।

अग्निदत्त ने अपने भाव को कुछ नरम करके कहा—'अवश्य बतलाऊँगा, परन्तु जहा जिस स्थान पर निषेध कर दू, उससे आगे आप कुछ न पूछिएगा।'

नाग के आख से आख मिलाने पर अग्निदत्त मुस्करा दिया।

नाग ने कहा—'मै प्रण करता हूँ बाबा, बतलाओ भी।'

अग्निदत्त ने कापते हुए हृदय को बल देने के लिये एक लबी सास खीची और कहा—'पूछिए।'

नाग ने एकाग्र मन और प्रोत्साहनमय ढग से पूछा—'क्या आयु है ? कौन जाति की है ?'

अग्निदत्त ने जरा नीचे देखकर और मुस्कराकर उत्तर दिया—'पन्द्रह-सोलह वर्ष से अधिक नही हे।'

'कौन जाति की है ?'

अग्निदत्त ने दृढता के साथ कहा—'जाति नही बतलाऊँगा। परन्तु यह कह सकता हू कि वह मेरी जाति की नही हे।'

'रग कैसा है ?'

अग्निदत्त ने बहुत लजाकर, बिना आँख से आँख मिलाए, उत्तर दिया—'बहुत खरा गोरा—जैसे तपा हुआ सोना। सारे शरीर से आभा झलकती है।'

'वह तुम्हे चाहती है ?'

अग्निदत्त ने गला साफ करके मुस्किराकर कहा—'हाँ।'

'तुम्हे कैसे मालूम है ?'

अग्निदत्त बहुत खिलखिलाया। नाग ने अपने प्रश्न को दुहराया। पाडे और भी अधिक हँसा। फिर दबी जबान से कहा—'उसने एक बार कहा था तुम्हे नही देखती हू, तो बेचैन हो जाती हूँ।'

नाग का मुख किसी गुप्त हर्ष के कारण खिल उठा। बोला—'क्रूर सौन्दर्य, दुष्ट हृदय। किस बेचारी को इतना सताया करता है? उसका नाम क्या है?'

'नाम नही बतलाऊँगा।' अग्निदत्त ने उत्तर दिया, और एक हाथ से बिस्तर की चादर उलटने-पलटने लगा।

इस उत्तर पर नाग ने बुरा नही माना। पूछा—'अच्छा, यह बतलाओ शास्त्री जी उस बेचारी को रखेली करके घर मे डालोगे या किसी तरह का ब्याह सम्बन्ध स्थापित करोगे?'

अग्निदत्त की आँख चमक उठी। बोला—'चाहे ससार इधर का उधर हो जाय परन्तु यदि कर्म मे विवाह करना बदा है, तो उसी के साथ होगा।'[1]

उक्त सवाद मे सबसे बडी विशेषता है पात्र के अनुभावो की सूक्ष्म पकड। प्रेम की चर्चा चल रही थी। एकाएक अपने विषय मे प्रश्न हो जाने पर अग्नि-दत्त का युवक प्रणयीसुलभ हृदय क्षण भर के लिए रोमाचित हो उठता है। गुप्त हर्ष मिश्रित सकोच उस पर छा जाता है। उत्तेजना शरीर भर मे दौड जाती है। कुछ अचकचा जाता है जैसे कही एकान्त मे प्रेमिका के साथ किसी ने उसे देख लिया हो। उत्तर मे केवल इतना कहना है—'सो जाइए। रात बहुत हो गई।' किन्तु उसका सिर नीचा करना, अगडाई लेना, जमुहाना और साधारण रूप से हसना बिना कहे बहुत कुछ कह जाता है। इन सब हाव-भावो मे ध्वनि है कि अग्निदत्त किसी से प्रेम करता है। एकाएक चर्चा छिड जाने से सकुचा गया है फिर भी उसे प्रसग यह अच्छा लगा है। बताना चाहता है किन्तु टाल रहा है। मानो मनुहार कराना चाहता हो, किसी हिचक को पहले दूर करना चाहता हो। ऐसी अवस्था मे उसके वे दो वाक्य अत्यन्त स्वाभाविक जान पडते है। अन्तरतम के किसी गूढ कोने मे छिपे जीवन के महान् रहस्य का उद्घाटन करते समय अग्निदत्त के चेहरे पर भावो की आती-जाती अनोखी धूप-छाँह उत्सुक पाठक के लिए निराला महत्व रखती है। उसकी आकस्मिक गभीरता, होठो का काँपना, अधमुदी आँख, टेढी गर्दन, हाथ का कडा होना, लम्बी साँस लेना, आशका तथा सतर्कता और आँख मिलने पर मुसकराना, लजाना, मर्मभेदी प्रश्न पर खिलखिला कर हसना, हाथ से चादर उलटना-पलटना प्रणयीसुलभ सकोच की द्योतक क्रियाएँ है। भाव चित्रण-शैली की दृष्टि से इस विवरण का महत्व है ही किन्तु भावो को प्रकट करने वाली भाषा की सकुचित सीमाओ को लाधकर पाठक के मानस तल पर वक्ता और

---

१ गढ कुण्डार" पृ० १०२ से १०४

उसके भावो, अनुभावो का रंग-बिरगा स्पष्ट सजीव चित्र खीच देने मे अद्वितीय महत्व रखता है ।

नाग-अग्निदत्त के वार्तालाप मे जहाँ नाग की अनुनय और अग्निदत्त की सतर्कता है सवाद लम्बे है और वाक्य भी लम्बे व्याख्या करते हुए से है । फिर नाग शीघ्रतापूर्वक प्रश्न करता जाता है नपे-तुले । उसमे मात्र उत्सुकता है । उसके प्रश्नो के साथ किसी प्रकार की टीका-टिप्पणी नही है । जहाँ वह अपने विचार या प्रतिक्रिया प्रकट करता है वहाँ उसकी शारीरिक प्रतिक्रिया की सूचना दी गयी है । अग्निदत्त के उत्तर सक्षिप्त है, उसके मम को छूकर बाहर निकलने वाले । मुख से कम बोल पाता है किन्तु वह कहना क्या चाहता है यह सूचना उसके हाव-भाव के चित्रण द्वारा अविलम्ब मिल जाती है । नागदेव द्वारा किये गये परिहास के कारण सवाद मे निकटता और आत्मीयता बढ जाती है । ये एक अन्य स्थल पर इसी प्रकार का वार्तालाप करते है ।[1] उसमे परिहास का विशेष पुट है ।

'बिराटा की पद्मिनी' का प्रारम्भ वार्तालाप मे होता है । विक्रमपुर मे राजा नायकसिंह के दरबार मे गपशप के लिए दरबारी आ जमते है । वार्तालाप के द्वारा राजा तथा दरबारियो की चारित्रिक विशेषताये सामने आती है ।[2] ये पृष्ठ कथानक की भूमिका का कार्य करते है । राजा नायकसिंह का सहज कोप, सनक, ठाकुर लोचनसिंह का मुँहफटपन, निडरता, अक्खडपन, वाचालता जनार्दन शर्मा की सतर्कता, दबूपन और हकीम आगा हैदर की सहज गम्भीरता तथा सावधानी, उनके कुछ ही सवादो से पाठक के हृदय मे उतर जाते है । एकाएक एक सामन्तयुगीन राजा और उसके विभिन्न मनोवृत्तियो के दरबारियो का चित्र आँखो के आगे खिच जाता है । वहाँ खुशामद है, सनक है, निडरता तथा गम्भीरता सब कुछ है—और सबसे ऊपर है सजीवता । वार्तालाप का विषय रोचक है । नदी मे स्नान से बात प्रारम्भ होती है । नदी मे जल कम होने की समस्या पर विवाद छिड जाता है । उस चख-चख मे प्रत्येक पात्र के स्वभाव की एक झलक मिलती है । बातचीत में सीधासादापन है । कोई भी पात्र अपने कथन को अनावश्यक रूप से सजाने का प्रयत्न नही करता । वह जो उचित समझता है या जो उसकी समझ मे आता है तुरन्त कह बैठता है । उत्तर-प्रत्युत्तरो की चुस्ती दृश्य की नाटकीयता मे चार चाँद लगा देती है ।

---

१ गढ कुण्डार ..पृ० १६६ से १७३

२ बिराटा की पद्मिनी पृ० १३ से १६

मानसिंह तथा डरू (कचनार) के मित्रसुलभ विभिन्न विषयो पर वार्तालाप[1] मे उनके सहज ज्ञान, मानसिंह की कुण्ठा, यौन-पिपासा या लालसा, परस्पर मैत्री तथा निर्द्वन्द्वता का चित्रण हुआ है। उनकी आठ पृष्ठो की बातचीत मे एक क्रम और प्रवाह है। वार्तालाप का मुख्य विषय है—स्त्रियाँ। सवाद बहुत संक्षिप्त है एक या दो वाक्यो के। यहाँ हाव-भावो का कोई सकेत नही है किन्तु पात्र सक्षिप्त चुस्त उत्तर-प्रत्युत्तरो के द्वारा क्षण-क्षण बदलते हुये अपने मनोभावो को स्पष्ट करते चलते है। बातचीत की यह चुस्ती और गति सवाद को सजीवता प्रदान करती है।

ग्रामीण मित्र गिरधारी तथा पचम (अचल मेरा कोई) के मध्य हिंसा-अहिंसा को लेकर सवाद विचारो की स्पष्टता और प्रवाह की दृष्टि से उल्लेखनीय है। दोनो को शहर की हवा लग चुकी है। भाषा शहरी है। विचार-विनिमय मे बेतकल्लुफी, बेफिक्री, मस्ती और काँइयाँपन है। वार्तालाप रोचक विधि से विकसित होता है।[2]

मुल्लाओ तथा सुल्तान के घोर नियत्रण मे बधे हुए लोलुप शाहजादा नसीरुद्दीन तथा चलते-पुर्जा सिद्धहस्त दरबारी ख्वाजा मटरू (मृगनयनी) की एकान्त चर्चा अपने विषय तथा ढग के कारण नाटकीय दृश्य प्रस्तुत करने मे सफल हो जाती है। सवाद सधे हुए है। एक-एक वाक्य चुना हुआ और वक्ता की प्रवृत्ति का द्योतक है।

—'शाहजादा नसीर ने बगले झाँकते हुये मटरू से पूछा, 'शराब तो बुरी चीज कही जाती है फिर लोग क्यो पीते है ?'

'जान आलम !'—मटरू ने फूककर कदम रखा—'बुजुर्गों ने जमाने से इसको बुरा कहा है, मगर लोग नही मानते है, इसलिये पी लेते है।'

'बुरी कहते है तो पीने मे भी बुरी होती होगी ?'

'जान आलम, बुरी चीजे जब बादशाहो के हाथ छू लेती है तब उतनी बुरी नही रहती। बन्दा तो गुलाम है कह ही क्या सकता है ? लेकिन हाँ सुना है कि बाज लोग दवा के तौर पर कभी-कभी पी लेते है।'

'तुमने कभी पी ?'

'जान आलम के सामने बयान करने मे गुस्ताखी होगी।'

(नसीर) 'जी चाहता है कि मै भी कुछ दुनियाँ को देखूँ। किताबे तो बहुत सी पढ ली, मगर दुनियाँ समझ मे नही आ रही है।'

'जान आलम जिन्दाबाद। मै कुरबान जाऊँ हुजूर तो इतना देखेगे कि न खुद अघायेंगे न दुनियाँ अघायेगी।'

---

१ कचनार, पृ० १० से १७

२. अचल मेरा कोई...पृ० ५२, ५३

(नसीर) 'सख्ती अभी क्या कम है— मर जाने को भी जी चाहता है। मगर तुम ठीक कहते हो। यही तै रहा। तो फिर सच-सच बतलाओ कि बुरी कही जाने वाली उस चीज मे कुछ मजा भी था वाकई बुरी है ?'

'जान आलम, अगर उसमे मजा न होता तो बादशाहो के मुह ही क्यो लगती ?'

'तब—फिर एक तो यह। पर थोडी सी ही, बहुत ही थोडी, वरना पकड मे आ जाने का अन्देशा है। और दूसरी—तुम खुद समझ लो।'

'कुछ भी मुश्किल नही जान आलम।'[1]

नसीर के प्रश्नो मे कोरी जिज्ञासा नही वरन् तीव्र लालसा है। उसकी अनुभवहीन लोलुपता उत्सुकता का समाधान ही नही उस दिशा मे प्रोत्साहन भी चाहती है। उसके इस वाक्य मे—'बुरी कहते है तो पीने मे भी बुरी होती होगी ?' मटरू को रहस्यमय सकेत है कि वह अपने अनुभव की छाप लगाकर शराब को ग्राह्य घोषित कर दे। फिर वह बिलकुल स्वाभाविक प्रश्न जिज्ञासु भोले बालक की भाँति कर बैठता है—'तुमने कभी पी ?' डरता भी है। उसकी सहम, सतर्कता, पिपासा और दबी जबान केवल इस आधे वाक्य मे सजीव हो उठती है—'पर थोडी सी ही, बहुत ही थोडी,' उसकी दबी-भिची वासना यही तक फूट कर सतुष्ट नही होती। भिचे गले से कह ही बैठता है—'और दूसरी—तुम खुद समझ लो।' यहाँ सवादो के साथ वक्ता के हाव भावो की सूचना नही दी गई है। भावो को व्यक्त करने वाले कथनो को कुछ ऐसे सधे हुए मनोवैज्ञानिक ढङ्ग से रखा गया है कि वक्ता की भाव-भगिमा पाठक की कल्पना मे स्वत साकार हो उठती है। एक चित्र बनता है जिसमे एक शाहजादा है आत्म-पीडित। घबराया हुआ, झलाया हुआ। डरा हुआ, चौकन्ना। ललचाया और सकपकाया सा। इधर उधर झाँक कर धीरे धीरे बात करता हुआ। बेताबी उसकी आँखो मे झाक रही है। दूसरा है सीखा-सिखाया मजा हुआ दरबारी मटरू। पूर्णतया सतर्क और बात बात पर शतरज के खिलाडी जैसे चालें चलने वाला। वह शिकार को मुट्ठी मे आया समझता है। उसे तनिक खिलाकर पजो मे दबोचना चाहता है। खुशामद से भरपूर, दरबारी शिष्टाचार का पुतला। शाहजादे की लालसा को चरम पर लाकर गोलमोल ढङ्ग से शराब के विषय मे अपना स्पष्ट निर्णय दे देता है, 'अगर उसमे मजा न होता तो बादशाहो के मुह ही क्यो लगती ?' यह सवाद चरित्र-चित्रण, कथा-विकास तथा नाटकीय सौन्दर्य इन तीनो गुणो से युक्त है। ऐसे सवादो

---

१ मृगनयनी पृ० २२२ से २२४

को किसी अन्य विवरण की अपेक्षा नही वे अपने आप म पूर्ण है, शक्तिशाली हे। साकेतिकता उनकी प्राण है।

पेने सवाद

वर्मा जी के कथोपकथनो की दूसरी विशेषता है उनका पैनापन। वे सक्षिप्त होते ह और नुकीले। इस पैनेपन मे एक गति रहती है जिसके प्रभाव से पाठक अछूता नही रह पाता। सवादो की चुस्ती और हाजिरजवाबी उनमे स्फूर्ति सी भर देती हे। सहजकोपी योद्धा पुण्यपाल अपनी वाग्दत्ता, हेमवती (गढ कु डार) से एका त मे रसमय वार्तालाप की आशा मे मिलने जाता हे। हेमवती को जुझौती की स्वतन्त्रता की धुन हे। वह पुण्यपाल की रसधारा को तीखे वार्तालाप से स्तब्ध कर देती है।[1] दोनो की, विशेषकर हेमवती की बात मे स्पष्टवादिता, तीव्रता और कुछ रुखाई हे। उसमे दूसरे को निरुत्तर कर देने की शक्ति हे। वयोवृद्ध राजनीतिज्ञ धीर प्रधान तथा तीव्रबुद्धि-युवा अग्निदत्त (गढ कु डार) की खगार-नाश सबधी मत्रणा मे रहस्य और कूटनीति का पुट है।[2] दोनो अपने विचारो को तीखे ढङ्ग से व्यक्त करने मे कुशल ह। सवाद लम्बे हे किन्तु उनकी चुस्ती म कमी नही आती।

उक्त प्रकार के सवादो के सूक्ष्म कलेवर मे एक निश्चित क्रम रहता है। उसके अन्तर्गत कथा-सूत्र प्रस्फुटित होता चलता हे। वक्ताओ के कुछ ही वाक्य उनके साधारण ज्ञान, चरित्र तथा काय करने की रीति को प्रकाश मे ले आते है। अपनी थोडी सी बातचीत से पात्र पाठक के समीप आ जाते है और उनका अजनबीपन देर तक नही टिक पाता। सनकी राजा नायकसिंह तथा मुँहलगे भृत्य रामदयाल (बिराटा की पद्मिनी) के केवल बारह वाक्यो के सक्षिप्त सवाद मे दोनो के व्यक्तित्व स्पष्ट कर कथा के एक रोचक पहलू को प्रस्तुत करने की विलक्षण शक्ति है।[3] राजा अपनी वासनापूर्ति के हेतु कुमुद के विषय मे प्रश्न कर उसे ले आने की आज्ञा देता है। राजा की असाधारण कामुक जैसी घोर आतुरता, सौन्दर्य-पिपासा तथा विवेकहीनता और सेवक की धूर्तता, फुसलाने का कौशल, कायतत्परता और ढीठता उन पक्तियो मे साकार हे। इन सक्षिप्त उत्तर-प्रत्युत्तरो मे स्फूर्तिमय गति है।

सवादो का पैनापन और सक्षिप्तता, छोटी रानी और लोचनसिंह (बिराटा

---

१. गढ कुण्डार...पृ० १७६, १८०

२. वही.. पृ० ३६० से शेष परिच्छेद

३ बिराटा की पद्मिनी पृ० २६

की पद्मिनी) के वार्तालाप मे विशेषत बन पडे है। उत्तर-प्रत्युतरो मे हाजिर-जवाबी है। छोटी रानी की अधिकारप्रियता, अधैर्य तथा अनुभवहीन स्वार्थ परता और लोचनसिंह की निस्पृहता, निर्द्वन्द्वता, अकड तथा बेलाग बात एक-एक वाक्य से टपकती है। बात को किसी प्रकार तनिक भी न घुमा फिराकर ज्यों की त्यो तुरत कह देने की प्रवृत्ति इस सवाद मे मुख्यतया है।—

'रानी ने कहलवाया—'लोचनसिंह, भगवान न करे कि महाराज का अनिष्ट हो, परन्तु यदि अनहोनी हो गई, तो राज्य का भार किसके सिर पडेगा ?'

'जिसे महाराज कह जाँय।'

'तुम्हारी क्या सम्मति है ?'

'जो मेरे स्वामी की होगी।'

'या जनार्दन की ?'

'महाराज की आज्ञा से जनार्दन का सिर तो मै एक क्षण मे काटकर तालाब मे फेक सकता हूँ।'

'यदि महाराज कोई आज्ञा न छोड गए तो ?'

'वैसी घडी ईश्वर न करे, आवे।'

'और यदि आई ?'

'यदि आई तो उस समय जो आज्ञा होगी, या जैसा उचित समझूँगा, करूँगा।'

रानी कुछ सोचती रही। अन्त मे उसने यह कहलवाकर लोचनसिंह को विदा किया कि 'भूलना मत कि मै रानी हू।'

'इस बात को बार बार याद करने की मुझे आवश्यकता न पडेगी।' यह कहकर लोचनसिंह चला। रानी ने फिर रुकवा दिया। दासी द्वारा कहलवाया– 'सिंहासन पर मेरा हक है, भूल तो न जाओगे ?'

उसने उत्तर दिया—'जिसका हक होगा, उसकी सहायता के लिये मेरा शरीर है।'

'और किसी का नही है।'

'मैं इस समय इस विषय मे कुछ नही कह सकता।'

'स्वामिधर्म का पालन करना पडेगा।'

'यह उपदेश व्यर्थ है।'

'तुम्हारे आँखें और कान है। किस पक्ष को ग्रहण करोगे ?'

'जिस पक्ष के लिये मेरे राजा आज्ञा दे जायगे, और यदि वह बिना कोई आज्ञा दिए सिधार गए, तो उस समय जो मेरी मौज मे आवेगा।' लोचनसिंह

चला गया। रानी बहुत कुढी।'[1]

अन्त के दो वाक्य—'लोचनसिंह चला गया। रानी बहुत कुढी।' शैली की संक्षिप्तता और तीखेपन को चरम पर ले आते हैं।

राजा गंगाधरराव तथा नारायण शास्त्री (झाँसी की रानी) के वार्तालाप में इस प्रकार की चुस्ती दर्शनीय है। राजा न्यायकर्ता है और शास्त्री अपराधी। न्यायकर्ता के प्रश्नों में आतंक है और व्यंग्य। अपराधी बोलते समय सकपकाता नहीं, स्पष्ट उत्तर देता है तटस्थता और कुछ निस्पृहता का भाव लिए। प्रश्नों की तीव्र बौछार को उतनी ही तीव्रता से झेलने के लिए वह सन्नद्ध है। उत्तर-प्रत्युत्तर परस्पर चुनौती देते जान पड़ते हैं।—

'नारायण शास्त्री और छोटी महतरानी के अनुचित सम्बन्ध का न्याय राजा गंगाधरराव करने बैठे। पूछ ताछ प्रारम्भ की—

राजा—'यह क्या हुआ शास्त्री ?'

शास्त्री—'जो होना था हो गया सरकार।'

राजा—'कैसे हुआ ?'

शास्त्री—'क्या कहूँ श्रीमंत।'

राजा—'बतलाना तो पड़ेगा। न बतलाने से ज्यादा नुकसान होगा।'

शास्त्री—'क्या बतलाऊँ महाराज ?'

राजा—'यह कैसे हुआ ?'

शास्त्री—'तप और संयम के अतिरेक से। जब शरीर ने ताड़ना न सह पाई, तब जो-जो कुछ उसके सामने आया, ग्रहण कर लिया।'

राजा—'तुमको तो लोग बहुत दिन से शृङ्गार शास्त्री कहते हैं।'

शास्त्री—'वह तो उपकरण मात्र था।'

राजा—'सुनता हूँ कोकशास्त्र का भी अध्ययन किया है।'

शास्त्री—'हाँ सरकार।'

राजा—'क्यों ?'

शास्त्री—'उस शास्त्र में अपने सम्बन्ध के प्रसंग ढूँढने के लिये, और यह जानने के लिये कि इसमें ऐसा क्या है, जिसने महर्षि वात्स्यायन से कामसूत्र की रचना करवाई।'

राजा—'क्या पाया ?'

शास्त्री—'प्रकृति के साथ जीवन की टक्कर।'

राजा—'आगे क्या पाओगे ?'

शास्त्री—'यह मेरे हाथ में नहीं है सरकार।

---

१ विराटा की पद्मिनी···पृ० ४२—४३

राजा—'तब किसके हाथ मे है ?'

शास्त्री—'सरकार के ।'[१]

बालक नाना तथा मनू (झाँसी की रानी) के वार्तालाप मे मनू का आत्म-विश्वास और तीव्र बुद्धि तथा नाना की आशका और चिढ छोटे छोटे वाक्यो मे व्यक्त हुए है ।[२] कामुक दूल्हाजू के आवाहन तथा निडर सुन्दर के तिरस्कार मे तीखापन देखते ही बनता है । । पर्याप्त वार्तालाप के बाद दूल्हाजू (झाँसी की रानी) अपना नियन्त्रण करने पर भी स्पष्ट प्रस्ताव कर बैठता है—'सुन्दर मै तुमको अपने हृदय से लगाना चाहता हूँ । क्या कहती हो ?' उस का उत्तर भी तुरन्त स्पष्टतर, तीव्रतर शब्दो मे सुन्दर से मिलता है—'यही कि आप बहुत नीच है ।'[३] सुहागरात के अवसर पर दलीपसिंह के कलावती (कचनार) से गाने के आग्रह तथा विमन कलावती के बहानो मे तीखापन है ।[४] कलावती के उत्तरो मे तर्क है और इठलाहट भी । दलीपसिंह निरुत्तर हो जाता है । वार्तालाप मे कचनार दलीपसिंह (कचनार) की कामुकता को अपनी दृढता, हाजिर-जवाबी और तीखेपन से स्तब्ध कर देती है । कचनार के उत्तरो मे आत्म-विश्वास है और कामुकता के प्रति उपेक्षा का भाव । बुद्धिमत्तापूर्वक दलीप के वाग्जाल को छिन्न-भिन्न कर देती है ।

अचल तथा दिवाकर (अचल मेरा कोई) के विवाह सम्बन्धी वार्तालाप मे मित्रसुलभ विनोद और हाजिरजवाबी है ।[६] असतुष्ट पति-पत्नी, सुधाकर तथा कुन्ती (अचल मेरा कोई) के वाद-विवाद मे चुभन है ।[७] वार्तालाप मे कुन्ती की चुभन, उपेक्षा और सुधाकर की बौखलाहट और पिपासा प्रमुख है । तीव्रता की दृष्टि से नई रोशनी की बहू कुन्ती और रूढिवादिनी सुधाकर की बुआ (अचल मेरा कोई) का विवाद उल्लेखनीय है ।[८] बूआ का गर्व, असहिष्णुता, नये जमाने के प्रति तिरस्कार, शासनप्रियता तथा कुन्ती की बडे-बूढो के प्रति उपेक्षा, वाचालता, वाक्-असयम और व्यग्य ये सब उन दोनो के उत्तर-

---

१. झाँसी की रानी—लक्ष्मीबाई . पृ० ५५, ५६

२ वही'' पृ २०

३ वही' 'पृ० ३७१

४. कचनार'''पृ० २०-२१

५. वही'''पृ० २६ से २८

६ अचल मेरा कोई'''पृ० ५५

७. वही'''पृ० १७७

८. वही'''पृ० १६४ से १६६

प्रत्युत्तरो मे उभर आए है। दो विभिन्न पीढियो की प्रतीक इन दोनो स्त्रियो के विवाद मे नाटकीय गति है।

नादिरशाह और मुहम्मदशाह (टूटे काटे) के वार्तालाप मे कूटनीतिज्ञो जैसा कृत्रिम शिष्टाचार और बगल मे छुरी है।[1] दरबारी शिष्टाचार की आड मे नादिर का धन के लिये कठोर आग्रह और मुहम्मदशाह का विषय को टालने का प्रयास है। दोनो की चालो मे तीखापन है। सवाद चुस्त है।

वर्मा जी की सक्षिप्त सवाद लिखने की कला का एक उत्कृष्ट उदाहरण नूरबाई तथा रोनी (टूटे काँटे) का वार्तालाप है। इसमे एक शब्द का एक वाक्य है और एक वाक्य का एक कथन।—

(रोनी) बोली, 'कुछ बाते करे और बाते करते-करते सा जॉय।'

'अच्छा। करो।'

'तुमने कभी भैस दोही है?

'नही।'

'खेत काटे?

'नही।'

'उपले पाथे?'

'हाँ।'

'कुए से पानी भरा?'

'हाँ।'

रसोई तो अच्छी बनाती होगी?'

'नही।'

'चक्की पीसी?'

'नही।'

'तो क्या अभी तक झख ही मारती रही?'[2]

इन मे प्रारम्भ से प्रवाह है, गति है जो रोनी के अन्तिम कथन, 'तो क्या अभी तक झख मारती रही।' पर आकर गुदगुदी सी दे जाती है। पाठक एकाएक मुसकरा उठता है।

भावानुकूल सवाद (अ) प्रणय

वर्मा जी ने पात्रो के भावुकतामय क्षणो मे उनके सवादो को विशेष रूप से सवारा है। वक्ता के भावो के अनुसार उसके कथनों मे तीव्रता, रूक्षता,

---

१ टूटे कॉटे, पृ० १७०, १७१

२. वही—पृ० ३५२

अथवा कोमलता, सरसता का पुट रहता है। कुछ उल्लेखनीय परिस्थितियों के सवादो के सूक्ष्म विश्लेषण के उपरान्त यह तथ्य स्पष्ट हो जाएगा। उपन्यासो मे प्रणय के प्रसग प्राय है। सर्वप्रथम उन्हे लेना उपयुक्त रहेगा। दिवाकर और तारा (गढ कुण्डार) के प्रणय-वार्तालाप मे सरलता प्रमुख रूप से है।[1] दोनो निष्कपट है और वासनाजन्य सकोच से दूर। भाव हृदय से सीधे निकलने के कारण सवाद सक्षिप्त, प्रवाहपूर्ण और मार्मिक है। वाक्य छोटे है और कृत्रिमता के आडम्बर से शून्य। अवसर विछोह का है और भविष्य अन्धकारमय है। ऐसी पीडाजनक स्थिति मे दोनो की अभिव्यक्ति मे तीव्रता और बलिदान की भावना है। एक दूसरे के लिए सब कुछ न्योछावर कर देने को कटिबद्ध है किन्तु उन्हे अपने लिए कुछ भी नही चाहिए।

रामा और देवीसिह (लगन) मिलन के समय विह्वल है।[2] विवाहित होने के कारण उनका भविष्य मे मिलन प्राय निश्चित है। उल्लास तथा परिस्थिति की आकस्मिकता के कारण दोनो के गले रुध जाते है। सक्षिप्त वाक्य उनके कठ से नि सृत हो पाते है। उनमे हृदय के आवेग के कारण क्षिप्रता है। वार्तालाप का स्तर सहज आकुलता तथा प्रणयीसुलभ विनोद से ऊपर नही उठ पाता।

कुजरसिह तथा कुमुद (बिराटा की पद्मिनी) के प्रणय-सवाद निर्मलता तथा नाटकीय प्रभाव की दृष्टि से अद्वितीय है। कुजर के हृदय मे कुमुद के प्रति महान् श्रद्धा है, तीव्र प्रेम है। वह कुमुद को देवी के अवतार के रूप मे स्वीकार करता है। दोनों के मध्य स्व-नियत्रण की अदृश्य खाई रही है। सन्ध्या के समय नदी किनारे एकान्त मे हृदय की कुछ बात कहने का एकाएक अवसर पाकर कुजर भावुक हो उठता है। उसमे आवेग है, प्रवाह है। बोलता है मानो बीच-बीच मे हाँफ जाता है। वह हृदय के बड़े से बड़े चिर सचित रहस्य को सुन्दरतम ढग से बाहर निकालकर रख देने का भगीरथ-प्रयत्न करता है। उसके कथन लम्बे है और वाक्य भी। अभी दोनो के मध्य दूरी है। अत वह अपने प्रेम को स्पष्ट अभिव्यक्ति नही दे पाता वरन् स्नेही भक्त के नाते कुमुद के चरणो की रक्षा के हेतु प्राण क्षण मात्र मे उत्सर्ग कर देने की कामना बारम्बार दोहराता है। उसके साथ सदा छाया की भाँति रहने का निश्चय प्रकट करता है। उसकी साध नियन्त्रण के बाँध को तोड समर्पण के बेटोक प्रवाह मे फूट पडती है, कुमुद अपेक्षाकृत स्थिर है। वह परिस्थिति की

---

१ गढ कुण्डार' पृ० ३५४-३५५

२. लगन'' पृ० ८२ से ८५

३. बिराटा की पद्मिनी'''पृ० २११ से २१४

अपरिपक्वता तथा गम्भीरता का ध्यान रखती है। उसके हृदय मे प्यार है। वह मन ही मन विचलित हो उठती है किन्तु नियन्त्रित रहती है और बोलती सक्षेप मे है। कुंजर की स्पष्ट भावुकता का उस पर कुछ न कुछ प्रभाव होता ही है। अत वह अन्त मे आस-पास की पावन प्रकृति का विश्लेषण करते समय भावुक हो उठती है। उसका कथन काफी लम्बा हो जाता है।

कुमुद-कुंजर के सवाद एक अन्य स्थल पर उल्लेखनीय है। दोनो की प्रणय-साधना पुष्ट हो चली है। मृत्यु सिर पर खडी है। अन्दर खोह मे दोनो का क्षणिक मिलन होता है। बाहर तोपो की धूम-धडाम जारी है। हृदयो के बाँध टूट जाते है। कण्ठ रुद्ध हो जाते है। दोनो प्रेम प्रकट करते है किन्तु भिन्न रीति से, कुंजर हृदय की बात होठो पर ले आता है और कुमुद मूक रह कर। कही भी सीमा और सयम का उल्लघन नही होता, यह तथ्य दर्शनीय है।—

कुंजर ने कहा—'तो जाऊँ ?' परन्तु गमनोद्यत नही हुआ।

कुमुद बोली—'जाइए, मै पीछे पीछे आती हू।'

'तब मै न जाऊँगा।'

'यह मोह क्यो ?'

'मोह' कुंजर ने जरा उत्तेजित होकर कहा—'मोह ! मोह ! मोह न था। अब मरने का समय आ रहा है, इसलिये मुक्त होकर कह डालूँगा कि क्या था ।' परन्तु आगे उससे बोला नही गया।

कुमुद उसकी ओर देखने लगी।

कुछ क्षण बाद कुंजर ने कहा—'तुम मेरे हृदय की अधिष्ठात्री हो मालूम है ?'

कुमुद का सिर न-मालूम जरा-सा कैसे हिल गया। आँख फिर तरल हो गई।

'तुम मेरी हो ?' आवेशयुक्त स्वर मे कुंजर ने प्रश्न किया।

कुमुद ने कुछ उत्तर न दिया।

कुंजर ने उसी स्वर मे फिर प्रश्न किया—'मै तुम्हारा हूँ ?'

कुमुद नीचा सिर किये खडी रही।

कुंजर बोला—'केवल एक बात मुँह से सुनना चाहता हूँ।'

बहुत मधुर स्वर मे कुमुद ने पूछा—'क्या ?'

'तुम मुझे भूल जाना।'

नीचा सिर किए हुए ही कुमुद ने कुंजर की ओर देखा। थोडी देर देखती रही। आँखो से आँसुओ की धार बह चली।

कम्पित स्वर मे कुंजरसिंह ने पूछा—'भुला सकोगी ?'

कुमुद के होठ कुछ कहने के लिये हिले, परन्तु खुल न सके। आँखो से और भी अधिक वेग से प्रवाह उमडा।

कुंजर की आँखे भी छलक आई। बडी कठिनाई से कुंजर के मुँह से ये शब्द निकले---'प्राण प्यारी कुमुद सुखी रहना। एक बार मेरी तलवार की मूठ छू दो।'[1]

यहाँ सवाद सक्षिप्त है। जहाँ कथन सक्षिप्त है या पात्र मूक है वही वह अनकहे न जाने क्या क्या कह जाता है। उसकी भाव-भगिमा बहुत कुछ कह देती है---वह कथन, वह अभिव्यक्ति प्रयासपूर्ण रचित लम्बे-लम्बे सवादो मे भी देखने को नही मिलती। कुंजर का आकुल आवेग प्रश्न करता है उत्तर मे कुमुद का आकुल नियत्रित हृदय करता है मूक इङ्गित। कुमुद का कुंजर के कथन के उत्तर मे केवल उसकी ओर देखना, जरा सिर हिलाना, आँखो का तरल होना, कुछ उत्तर न देना, सिर नीचा किए खडा रहना, उत्तर देने के प्रयास मे होठो का न हिलना न खुलना और 'भुला देने' के प्रस्ताव पर नेत्रो से अश्रुधारा बह निकलना---इन सबमे कितना आवाहन, कितना समपरण, कितनी स्वीकृति और कितनी पीडा सचित है।

कलावती-मानसिह (कचनार) के प्रणयालाप मे, कलावती मे अधिक सकोच नही है।[2] उसमे मादकता का बाहुल्य है। प्रत्यक्ष रूप से वह मानसिह को इस दिशा मे अग्रसर होने के लिए प्रोत्साहित करती है। फिर भी प्रणय की स्वीकृति देते समय वह स्त्रियोचित सकोच का अनुभव करते हुए रहस्यमय अस्पष्ट सकेत का प्रयोग करती है। विवाहित सुधाकर तथा कुन्ती (अचल मेरा कोई) की प्रेम-चर्चा मे छेड-छाड और उल्लास है।[3] उनकी प्रफुल्लता को बात करने के लिए किसी विषय विशेष की अपेक्षा नही है। उनकी उफनाती उमग को बाहर बहा निकलने मे कोई भी प्रसग सहायक बन सकता है। बात कुन्ती की कृत्रिम उपेक्षा और सुधाकर द्वारा उसकी मनुहार से प्रारभ होकर नृत्य के लिए घुँघरुओ, कहानी-लेखन, एकाकी नाटक, नारी-व्यायाम पर होती हुई बन्दूक चलाने के अभ्यास पर जाकर समाप्त होती है। मानसिंह तथा मृगनयनी (मृगनयनी) के वार्तालाप मे मानसिह की छेड-छाड, चुहल और मृगनयनी की गम्भीरता तथा मर्यादा के प्रति सजगता है।[4] वह मानसिह

१. बिराटा की पद्मिनी...२६८-२६६

२ कचनार पृ० १४४ से १४६

३ अचल मेरा कोई.. पृ० १५७ से १६२

४ मृगनयनी ...पृ० २४५ से २५०, ३८५ से ३६३

की आठवी रानी है। अधिक नैकट्य मे अपनी मर्यादा खो जाने की उसे आशका है। उसकी व्यग्यात्मकता और स्थिरता के कारण वार्तालाप भावुकता छोड मस्तिष्क प्रधान हो जाता है। शनै शनै बातचीत का प्रवाह प्रेम और सयम, शिल्पकला, सगीत तथा कला और कर्तव्य जैसे विषयो की ओर मुड जाता है।

अटल तथा लाखी (मृगनयनी) निष्कपट, सरल देहाती है। उनकी प्रेमाभिव्यक्ति मे सवाद स्पष्टता, सक्षिप्तता, भोलेपन, मार्मिकता तथा स्वाभाविकता की दृष्टि से उल्लेखनीय है। जगल मे तनिक एकान्त मिलने पर अटल ने लाखी को कुछ स्थिरता से देखा। लाखी ने आँख नीची नहीं की। उसने अटल से धीरे से पूछा, 'क्या बात है ?'

'क्या कहूँ ? कैसे कहूँ ? बक नही फटता।'

'फिर भी ?'

'मैं तुमको बहुत चाहता हूँ। बहुत प्यार करता हूं।'

'मैं जानती हूँ।'

लाखी ने आँखें नीची करली। अटल ने उसके कन्धे को एक बाँह मे भर लिया।

'हम तुम एक होकर सदा साथ रहना चाहते है। कभी अलग नही होगे।' अटल ने कापते हुये स्वर मे कहा।

'कैसे हो सकता है ऐसा ? हमारी तुम्हारी जात-पाँत अलग है।'

'तुम मुझको चाहती हो या नही। पहले यह तो बतलाओ।'

'मैं क्या कह सकती हूँ ? तुमको कैसा जान पडता है ?'

'मुझको जान पडता है हम-तुम एक हो जायगे।'

(अटल) 'तुम्हारा मन पक्का है।'

'मेरे मन से नही, अपने मन से पूछो।'

'बस अब और कुछ नही पूछना है।'[१]

दोनो की भावाभिव्यक्ति मे नितान्त सरलता है। कृत्रिम सकोच प्रकट करना उनसे आता नही। सीधी-सादी बात कहना उनके स्वभाव के अनुकूल है। हाँ, प्रणयी-सुलभ असमजस उन्हे अभिभूत कर लेता है। इस असमजस को भी अटल इन निष्कपट शब्दो मे व्यक्त कर देता है—'क्या कहूँ ? कैसे कहूँ ? बक नही फटता।' जाति-वैभिन्य सबधी आशका मे लाखी की सरल समाज-भीरुता व्यक्त हुई है। अटल लाखी के मूक समर्पण को पहचान कर भी उससे

---

१ मृगनयनी.. पृ० २७

स्पष्ट शब्दो मे स्वीकृति चाहता है। यह उसका भोलापन है। लाखी उत्तर मे सकेत का आश्रय ग्रहण करती है।

(ब) क्रोधावेश

क्रोधावेश मे किए गए वार्तालाप अपने तीव्र प्रवाह मे उत्तेजना और आतक की छाप रखते है। पुण्यपाल तथा मुकुटमणि चौहान (गढ कु डार) के वार्तालाप मे क्रोध और शान्ति दो विरोधी पक्षो का प्रदर्शन है।[1] पुण्यपाल के कथनो मे अदम्य उत्तेजना है। वह किसी भी समस्या पर शातिपूर्वक विचार करना नही जानता। परिस्थिति की गभीरता को भूलकर क्रोधावेश मे उन्मत्त सा हो जाता है। उसके प्रत्येक कथन मे उग्रता तीव्रता से बढती जाती है और अन्त मे पूर्ण मनमुटाव या युद्ध पर आकर दम लेती है। उससे विवाद करने वाले प्राय उत्तेजित हो जाते है किन्तु यहाँ विचारशील, दूरदर्शी और कुछ शिथिल मुकुटमणि है। वह अन्त तक वाक्-सयम धारण किए रहता है। उसके सतुलित, सयमित कथन पुण्यपाल की तप्त वाग्धारा के समक्ष शीतल चट्टान जैसे जान पडते है। मुकुटमणि क्षुब्ध होकर सभा त्याग करता है किन्तु शान्ति-पूर्वक बिना किसी प्रकार की उत्तेजना का प्रदर्शन किए हुए।

अग्निदत्त को अपनी बहिन मानवती को ले भागने के प्रयास मे सलग्न देखकर नागदेव (गढ कु डार) आगबबूला हो उठता है।[2] सवाद मे अग्निदत्त की घोर निराशा, मरण की आकाक्षा और व्यग्यात्मकता है, नागदेव के कथनो मे क्लेश है, क्रोध है जो कि अन्त मे रौद्र रूप धारण कर लेता है। सवाद लम्बे है, वक्ता अपने भाव को पूर्णरूपेण स्पष्ट करना चाहते है। बैज-नाथ और डरू (कचनार) से सोनेसाह की कहासुनी तथा प्राण-घातक झगडे मे नाटकीयता अधिक है[3]। सोनेसाह की उग्रता और अपशब्द प्रजा पर अत्याचार करने वाले जागीदार के किसी कारिंद का स्मरण करा देते है। एक ओर सोनेशाह का अत्याचार है तो दूसरी ओर सर्वहारा-वर्ग के प्रतीक डरू की प्रतिक्रिया है। बातचीत की गरमागरमी द्वन्द्व की सीमा तक पहुँच कर डरू द्वारा सोनेसाह का वध करा देती है।

शैव विजय जगम तथा ब्राह्मण वैष्णव (मृगनयनी) का क्रोधमय वार्तालाप विलक्षण है। दो विभिन्न सम्प्रदायावलम्बियो की मूर्खतापूर्ण कट्टरता, अहमन्यता, असहिष्णुता तथा हिसा इन सवादो मे मूर्त्त है। इन्हे पढ कर

---

१ गढ कु डार ...पृ० २५२ से २५४

२ वही पृ० ३५० से ३५२

३. कचनार—पृ० ५० से ५२

पाठक को विवादियो की मूढता पर क्षोभ होता है, दया आती है और हँसी भी। इन उत्साही शास्त्रार्थियो के सवाद के कुछ अश यहाँ उद्धृत करना रुचिकर होगा।

(विजय) 'कभी नही। असम्भव। शिव के सामने विष्णु की क्या बिसात ?'

'व्यर्थ झगडा करते हो। सब मार्ग एक ही ठौर को पहुँचाते ह।'

'बिल्कुल झूठ। सब माग एक ही ठौर पर ले जाते ह तो गिर पडो कुये मे, नदी मे, पहाड पर से, किले पर से पहुचोगे अन्त म वैकुठधाम। यही न ?

'अर्थ का अनर्थ तुम जैसे तिलगाना वाले करते ह, वैसा तो कोई नही कर सकता।'

(विजय) 'नदियो, पेडो, साप के बिलो, टौरियो, पहाडो, भेडियो, बिलावो ग्रोर चाहे जिस पत्थर के टुकडे का ध्यान और मन से पूजा करो कि मिला मोक्ष ! अरे तुमने ही इस युग को कलियुग बनाया !! धिक्कार है तुमको !!!'

'धिक्कार हे तुमको और तुम्हारे बाप को। अज्ञान के वश समझते हो कि तुम्हारा शैवमत ही सब कुछ है !! नितान्त भ्रम मे पडे हो। नरक मे जाओगे।'

(वैष्णव) 'कहाँ लिखा है कि शिव की भी अलग गायित्री है ?'

'वासव पुराण मे, मूर्ख।'

'और अधिक गाली बकी तो ढेले से खोपडा खोल दूँगा।'

'ढेले से खोपडा खोलने के पहले त्रिशूल से तुम्हारी आँते हम पहले ही बाहर कर देगे।'[1]

बात शिव, विष्णु और गायित्री से प्रारभ होकर धिक्कार, ढेले और त्रिशूल तक जा पहुँचती है। धर्मान्धो का हठ, दुराग्रह और अपशब्द सभी कुछ यहाँ है।

ग्रामीण स्त्रियो के पारस्परिक झगडो मे उनके सवाद विशेष रूप से स्वाभाविक बन पडे है। उग्रता और घरेलू गालियो का स्पर्श उनमे रहता है। झगडालू बहिनो रूपा तथा (सोना) की आपसी गाली-गलौज मे तीव्रता है।[2] हरखो और उसकी जिठानी (अमरबेल) मे कटु शब्दो का आदान-प्रदान, ढोग, कोसना और हाथा-वाही रोना पीटना, सब कुछ है।[3] कर्कशा स्त्री रोनी (टूटे काँटे) के कथन उसके व्यक्तित्व को सजीव कर देते ह। उसके शब्दो

१ मृगनयनी . पृ० ३६,३७,३६

२ सोना.. पृ० १३ से १५

३ अमरबेल. पृ० १६० से १६२

का चयन और वाक्यो का प्रवाह दुर्दमनीया वाचाल स्त्री की वाग्धारा के अनुरूप है। पति उससे तनिक धीरे बोलने को कहता है। रोनी का उत्तर है–'हे राम ! हे भगवान !! मेरा भाग कैसा खोटा है !!! कहाँ पटका गाँव वालो ने मुझको ? आग लग जाय गाँव भर मे ! छाती जल जाय उन निपूतो की !!' [१] और इस एक ही वाक्य मे उसके प्रिय शब्दो के एक साथ दर्शन होते है—'उस मुँह जले, नासमिटे, छाती जले, निपूते कुढिया से तुम बात करोगी।[२]

युवती–वार्तालाप

उपन्यासो मे युवतियो के पारस्परिक वार्तालाप के अनेक अवसर प्रस्तुत किए गये है। इनसे सम्वादो मे प्राय यौवन का अल्हड़पन और कुछ कुटिलता लिए हुए परस्पर छेडछाड रहती है। छेडछाड का विषय कल्पित या वास्तविक प्रेमी के रूप मे कोई पुरुष रहता है। छेडछाड जब असह्य हो जाती है वार्तालाप मे तीखापन आ जाता है किन्तु अन्त सद्भाव या सहानुभूति मे होता है। सुभद्रा रमा (लगन) पर उसके तथा पन्नालाल के कल्पित सम्बन्ध को लेकर रह-रह कर कटाक्ष करती है। [३] तत्सम्बन्धी जनापवाद की चर्चा भी करती है। रमा के उदास होने पर सुभद्रा चचलता त्याग देती है। उजियारी और सरस्वती (प्रेम की भेंट) के वार्तालापो मे चुहल रहती है। दोनो नटखट है और हँसने-हँसाने की अभ्यासिन। उजियारी ईर्ष्यालु है। वह सरस्वती और नन्दन के कल्पित सम्बन्ध को लेकर प्राय छेडछाड करती है। अपने सन्देह की पुष्टि मे सरस्वती की गतिविधि के निरीक्षण का पूरा ब्योरा इन शब्दो मे देती है—'अकेले मे पानी भरके लोटा रख आना। भोजन कराने के लिये जल्दी-जल्दी बार-बार बुलाना। आख बचाकर देखना। कक्का और वह जब अकेले मे बातचीत करते हो, तब कोने से चिपककर चुपचाप सुनना। बोहनी करते-करते इधर-उधर दृष्टि फेकना और कहूँ ?'[४] मन्ना, कलावती और ललिता (कचनार) के वार्तालाप मे साधारण विषयों पर हास-परिहास है। [५] कुन्ती और निशा (अचल मेरा कोई) शहर की शिक्षित युवतियाँ है। उनका वार्तालाप भी विवाह सम्बन्धी छेडछाड से प्रारम्भ होकर तलाक आदि विषयो की ओर मुड जाता है। जहाँ तहाँ परिहास है, और परस्पर कटाक्ष करते-करते कटुता

१. टूटे काटे.. पृ० ५
२. वही.. पृ० ३५३
३ लगन.. पृ० २२ से २५ तथा ३४ से ३६
४ प्रेम की भेंट...पृ० ३५
५. कचनार...पृ० ३६ से ४१

और अशिष्टता की सीमा तक पहुच जाती है। उनकी परस्पर साधारण ठिठोली का विषय भी पुरुष अचल रहता है।[१] ग्रामीण निष्कपट सहेलियो निन्नी और लाखी (मृगनयनी) के वार्तालाप होली के उल्लासमय हुल्लड के वातावरण म प्रारम्भ होते ह। उनमे हास-परिहास है और छीना-झपटी भी। निन्नी अपने भाई अटल तथा लाखी के सम्बन्ध को लेकर लाखी को प्राय छेड़ती रहती है।[२] दोनो बालको की भाँति छोटी-छोटी बातो पर उलझ पड़ती हैं किन्तु विवाद समाप्त होता है आसुओ और अटूट स्नेह में।

लोकभाषा का प्रयोग

उपन्यासो का वर्गीकरण करते समय चर्चा की जा चुकी है कि वर्मा जी के अधिकाश उपन्यास ग्राम्य जीवन से सम्बन्ध रखते है। ऐसे उपन्यासो के कुछ पात्र ठेठ ग्रामीण भी होते हैं। उन सब की भावाभिव्यक्ति का माध्यम साधारणतया खडी बोली को रखा गया है। पाठको की ग्रहण-शक्ति को दृष्टि में रखते हुए यह प्रयोग व्यवहारिक है। विदेशी अथवा वर्ग विशेष के (विशिष्ट भाषा-भाषी) पात्रो के वार्तालाप को खडी बोली मे लिखते समय उपन्यासकार उनमे स्वाभाविकता अथवा सजीवता का स्पर्श देने के लिए उन पात्रो की वास्तविक भाषा के कुछ शब्दो, मुहावरो या प्रचलित वाक्यो को ला रखता है। पात्र द्वारा लोकभाषा मे सवाद कहलवाकर वातावरण मे स्थानीय-स्पर्श देने मे सहज ही सफलता मिल जाती है। पाठको को कथा से लोक-जीवन का परिचय मिलता है और ऐसे सवादो से लोकभाषा की एक झलक मिल जाना सभव है। लोकभाषा के सवाद यत्र तत्र आ जाने से उपन्यास की एक-रसता मे तनिक वैचित्र्य आ जाना स्वाभाविक है। लोकभाषा-भाषी कुछ पात्र तो अपनी इसी विशेषता के बल पर आकर्षण के केन्द्र बन जाते हं। सम्पूर्ण पाठक-वर्ग को दृष्टि मे रखते हुए यह प्रयोग कठिनाई भी प्रस्तुत कर सकता है। बोली का क्षेत्र सीमित है और भाषा का विस्तृत।[३] अत उस भाषा को बोलने और समझने वालो का एक भाग विशेष ही किसी बोली के सम्वादो का रसास्वादन कर सकेगा। बोली के क्षेत्र से जो पाठक जितनी दूर होगा उसके लिए वे सम्वाद उतने ही दुर्बोध होगे।

अपने क्षेत्र की लोकभाषा या बोली बुंदेलखडी के सम्वादो का वर्मा जी ने

---

१ अचल मेरा कोई.. पृ० ६२ से ६८, १००, १०१

२ मृगनयनी ..पृ ४ से ७, १४४

३ सामान्य भाषा विज्ञान (डा० बाबूराम सक्सेना) पृ ११७, ११८

उपन्यासो मे कही कही प्रयोग किया है। ऐसे स्पर्शों से कथा, चरित्र और वातावरण मे बु देलखण्डीपन ग्रा गया है। लोक-भाषा-भाषी पात्रो मे अर्जुन (गढ कुण्डार) विशेष रूप से उल्लेखनीय है । उसके भोलेभाने, उजड्ड, निडर, वाचाल व्यक्तित्व का सौन्दर्य सवादो मे निहित है। बु देलखडी सवादो की स्पष्टता और प्रवाह, अर्जुन के बाके स्वभाव को मनोरजक और निराला बनाने मे योग देते है। अर्जुन की कर्कशता बुरी नही लगती वरन् अपने भोलेभालेपन के कारण पाठको को गुदगुदा जाती है। उसकी वाचालता के अदम्य वेग मे आत्मश्लाघा, व्यग्य और ढीठता सब कुछ है।

अर्जुन भरतपुरा गढी का पहरेदार है, सामन्त का विश्वासपात्र। सध्या के अधकार मे दो अनजान घुडसवारो, नागदेव और अग्निदत्त, की फाटक खोलने की आज्ञा पर वह बुर्ज से अपना परिचय इस मुँहफट ढङ्ग से देता है—'मै हो अर्जुन, जानत कै नई। कै महाभारत मे अर्जुन हते, कै अब मै हो । 'फाटक खोा जल्दी।' जैसे इनके बापई को दग्रो खान होउ।' बीच मे अग्निदत्त के बोलने पर उसकी वाग्धारा फूट पडती है—'मोहो, एक जे पिन्न पिन्न बोले। नाव बताग्रो, नाव। नाव बडे दर्सन छोटे। दिल्ली मे राय पिथौरा ग्राए है जू खोलत हो मै फाटक, सो ग्राके लट्ठगा खा लियो। लो, अब टर जाग्रो। गाव मेढ लो डेरा काऊ के इते। भोर ग्राइयो, तब मिल है सावत। भैरो को कौल जो अब तुमने लुप्प लुप्प करी, तो फोरड देउँ। अर्जुन को बान खाकै कोऊ राम को नाँव लो नई लै पाउत।'[१] इस कथन मे प्रवाह है । विचारो का क्रम पैनापन लिए है। व्यग्य का वेग मुहावरो के प्रयोग से मुखर हो उठा है। अन्तिम वाक्य की उसकी शेखी मनमौजीपन की द्योतक है।

नागदेव के समक्ष अपने सामन्त की प्रशसा करते समय वह भाव विभोर हो उठता है।[२] नागदेव के लिए बोटी-बोटी कटाने को तैयार है । अपनी वीरता पर उसे गर्व है किन्तु हेमवती के पास नागदेव का पत्र ले जाने के आग्रह पर घबरा जाता है। उस सीधे-सादे देहाती को राजजनसुलभ भीरुता दबा लेती है। अपनी भीरुता पर व्यग्य होने पर आवेश से भर उठता है । उसकी भाव-विभोरता, वाचालता, भीरता तथा आवेश की अभिव्यक्ति का प्रदर्शन कथनो द्वारा स्वाभाविक बन पडा है। शेखी बघारते समय लम्बे वाक्य बोलता है किन्तु घबराहट मे छोटे और साध-साध कर। सामन्त को पत्र का हाल बताते समय कथनो मे चालाकी और सरलता दोनो एक साथ है।[३]

---

१. गढ कुण्डार...पृ० २५

२. वही.. पृ० ७१

३. वही...पृ० ८६ से ६१

बोलियो से तनिक भी परिचित पाठक को इन्हे हृदयगम करने मे विशेष श्रम नही पडता है।

'कुडली चक्र' मे प्रयुक्त लोकभाषा के सवादो मे शिथिलता है। उसमे बुद्धा और पैलू दो ग्रामीण पात्र बुन्देलखण्डी का व्यवहार करते है। उनके वार्तालाप मे अर्जुन की बातचीत जैसी सजीवता और चमत्कार नही है। वे यहाँ सर्वहारा-वर्ग के प्रतीक है जमीदार और उसके मुखतार के अत्याचारो से पीडित। उनकी बातो मे अर्जुन जैसी मनमौज, वाचालता और स्पष्टवादिता कहाँ ? अर्जुन सदैव बुदेलखडी मे ही बोलता है किन्तु बुद्धा, पैलू एक दो स्थल पर बुदेलखडी का प्रयोग करते है[1] अन्यथा खडी बोली मे ही वार्तालाप करते है। भावावेश मे भी उन से खडी बोली का प्रयोग कराया गया है।[2] इस प्रकार भाषा-प्रयोग मे वैषम्य की दृष्टि से भी उनके वार्तालाप अस्वाभाविक हो जाते है।

'झाँसी की रानी' मे झलकारी कोरिन के कथनो मे अर्जुन की सी सजीवता है। झलकारी मे मनमौज, स्वामिभक्ति, मुँहफटपन और ढीठता है।[3] रानी के दरबार मे अग्रेजो के सरिश्तेदार के सामने कोरिया, काछिया, चमार, अहीर, आदि के मुखियो के वार्तालाप मे मुहतोड उत्तर देने की प्रवृति स्पष्ट है।[4] राजा के मृत्योपरान्त झाँसी के भविष्य की चर्चा बाजार मे ग्रामीण करते है।[5] उनकी बातचीत मे सीधासादापन, निष्कपट आलोचना और स्नेह है। यह वार्तालाप जन-मत के मनोवैज्ञानिक पहलू का परिचय देता है। 'कचनार' मे गोसाइयो की चिलम के दम लगाते हुए परस्पर बुन्देलखण्डी, अवधी मे धार्मिक चर्चा, विवाद और मारपीट विशेष रूप से मनोरजक बन पडे है।[6] उसमे वक्ताओ की कूपमडूकता, वाचालता और कहासुनी दर्शनीय है।

मुसलमान पात्रो की अस्वाभाविक भाषा

मुसलमान पात्रो के 'गढ कुडार', 'विराटा की पद्मिनी', 'झाँसी की रानी-

१ कुडली चक्र—पृ० ६३, ६४

२ वही—पृ० ६२ से ६४, १८०, २१६, २२०

३ झाँसी की रानी— लक्ष्मीबाई— पृ० ६७, ६८, ३२६, ३३०, ४२४ से ४२७

४ वही—पृ० २६४, २६५

५ वही—पृ० १४६, १५०

६. कचनार—पृ० २६६, २६७

लक्ष्मीबाई' के सवादो मे भाषा सबधी पात्रानुकूलता बनाये रखने मे वर्मा जी को सफलता प्राप्त नही हो सकी है। कही ये ठेठ अरबी, फारसी के शब्दो का प्रयोग करते है और कही ठेठ हिदी के। युद्ध-बन्दी करीम (गढ कुडार) नागदेव आदि के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत किए जाने पर कथनो मे हिन्दी के उच्च स्तर के अनेक शब्दो का प्रयोग करता है। वह अरब देश का है और कालपी का मुसलमान सेना का सैनिक। उसके मुख से—प्रसन्न, प्रयोजन, दड, आज्ञा, हानि, वध, दया, युद्ध, कर्म, अग, जन्म, बदीगृह, शक्ति, कुटुम्ब, यद्यपि आदि शब्दो को सुनकर पाठक का अचकचा उठना स्वाभाविक है।[1] हिन्दू पात्रो से वार्तालाप करते समय उसका हिन्दी शब्दो के प्रयोग का प्रयत्न उचित किन्तु उक्त शब्दो का ज्ञान और प्रयोग उस जैसे पात्र के लिए असम्भव है। यही करीम पुण्यपाल और अलीबेग से वार्तालाप करते समय अपने स्वभावानुकूल अरबी, फारसी शब्दो का प्रयोग करता है।[2] 'बिराटा की पद्मिनी' मे सेना-नायक अलीमर्दान भी प्रयोजन, शरण, धर्म, शुभचिन्तक, कुशल, मनुष्य, भविष्य, कार्यविधि, सैन्य-सचालन, सेनापतित्व आदि शब्दो का प्रयोग करता है।[3] इसी उपन्यास मे काले खाँ के कथनो मे भी यही अस्वाभाविकता है।[4]

'झाँसी की रानी' मे अलीबहादुर कम्पनी सरकार की झाँसी मे राज्य-स्थापना की प्रशसा मे प्रजा के प्रमुख जनो के समक्ष बोलने समय कहता है—'हम लोग परमात्मा को धन्यवाद देते है, कि महान कम्पनी सरकार का राज्य हो गया है। हमारे हाकिम बहुत नेक है। वे शहर और इलाको का बहुत अच्छा बेमिसाल बन्दोबस्त कर रहे है। सब लोग चैन से सोते है। चोर, उठाईगीरे लापता हो गए है। किसी को कोई कष्ट नही। '[5] इस कथन मे शब्दो का प्रयोग असतुलित है। जहाँ वह वक्ता हाकिम, नेक, बेमिसाल, बन्दो-बस्त, लापता जैसे शब्दो का प्रयोग करता है वही प्रारम्भ मे परमात्मा, धन्यवाद, महान्, राज्य, का प्रयोग कर अन्त मे फिर 'कष्ट', शब्द का प्रयोग करता है। यदि पहला वाक्य इस प्रकार होता—'खुदा का शुक्र है कि कम्पनी सरकार की हुकूमत कायम हो गई है।' तो वह सम्पूर्ण कथन मे कही अधिक खपता। आगे चलकर पीरअली और अलीबहादुर परस्पर वार्तालाप मे केवल

---

१ गढ़ कुडार—पृ० ८३ से ८६

२. वही—पृ० १८३ से १८५ तथा ३०३ से ३०५

३ बिराटा की पद्मिनी—पृ० ९४, ९५ तथा १०१, १०२

४ वही—पृ० १८६, १८७

५. झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई—पृ० १७७

अरबी, फारसी शब्दो का प्रयोग करते है।[1]

मुसलमान पात्रो के कथनो मे उक्त प्रकार के शाब्दिक असतुलन और एक ही वक्ता के विभिन्न स्थलो पर कथनो मे शब्द-प्रयोग की भिन्न रीतियो के कारण उनके सवादो मे भाषा सबधी विषमता आ उपस्थित हुई है। यह वैषम्य उपन्यासकार के पात्रानुकूल भाषा-प्रयोग मे शिथिलता का द्योतक है। आगे चलकर 'मृगनयनी' मे ऐसी शिथिलता प्राय नही दीख पडती। महमूद बघरा हिन्दुओ के मन्दिर म स्थापित मूर्तियो के विषय मे विचार करते और बोलते समय हिन्दी शब्दो का प्रयोग नही करता[2] बुत, फन, कमाल, हासिल, कुफ्र, काफिर आदि शब्दो का स्वाभाविक ढङ्ग से प्रयोग करता है। उसकी बात क्लिष्ट नही हो पाती। प्रबन्ध मे अन्यत्र उल्लिखित नासिर और मटरू (मृगनयनी) की वार्ता म भी यही गुण है। यही बात 'टूटे काटे' मे है।

निष्कर्ष

अन्त मे वर्मा जी की कथोपकथन-लेखन कला सबधी तथ्य इस प्रकार सामने आते है। सवाद रोचक है, उनकी शब्दावली प्राय सरल रहती है। समझने तथा उनके रसास्वादन मे पाठक को विशेष मानसिक श्रम अपेक्षित नही। कथोपकथन उपन्यासो मे प्राय कथानक के अविभाज्य अग बन कर आते है।[3] इनमे कथा का प्रवाह निहित रहता है। कुछ उपन्यास वार्तालाप से ही प्रारम्भ होते है। वहाँ पात्रो की परस्पर बातचीत कथानक की भूमिका प्रस्तुत करती है। कथन विषय तथा वक्ता के विचार के अनुसार लम्बे अथवा संक्षिप्त रहते है।

सवादो मे प्राय पैनापन रहता है। वे वक्ता के भाव को नुकीले ढङ्ग से व्यक्त करते है। उत्तर-प्रत्युत्तरो मे एक गति, एक प्रवाह रहता है चुस्ती और हाजिरजवाबी से भरपूर। कथन की सक्षिप्तता पैनेपन को बल प्रदान करती है। वक्ता उपन्यास मे पदार्पण करता है और उसके कुछ ही वाक्य उसके सहज ज्ञान, चरित्र और कार्य करने की रीति को स्पष्ट कर देते है। लम्बे कथन परिस्थिति के अनुसार रखे गये हैं। कुछ स्थलो पर अति लम्बे सवाद भी दीख पडते है। भाषण जैसे [1] रानी लक्ष्मीबाई (झाँसी की रानी)

---

१ झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई—पृ० २९६, २९७

२ मृगनयनी – पृ० ७८ से ८० तथा देखिए गयासुद्दीन और ख्वाजा मटरू का वार्तालाप—पृ० ६७ से ७२

३ अपवादो की चर्चा आगे की गयी है।

अपनी सहेलियो को ढाँढस बधाते तथा 'कर्मयोग' का सदेश देते समय लगभग दो पृष्ठो तक निरन्तर बोलती जाती है ।[1] यही नही, कही-कही पात्र उपन्यास-कार के प्रिय विषयो पर लम्बी-चौडी दलील प्रस्तुत करते समय कई पृष्ठो तक कथानक के प्रवाह से दूर हटकर वार्तालाप करते है । क्लब मे सुधाकर और उसके मित्र (अचल मेरा कोई) स्त्री स्वातन्त्र्य, तलाक, विवाह आदि विषयो को लेकर दस पृष्ठो तक बात करते रहते है ।[2] यह वार्तालाप उपन्यास की मूल समस्या को कुरेदता है किन्तु कथा-प्रवाह से नितान्त अलग हो जाने के कारण वाद-विवाद-प्रतियोगिता सा बन कर रह जाता है । डा० सनेही-टहल (अमरबेल) की इतिहास की उपयोगिता तथा हिंसा-अहिंसा आदि विषयो पर चर्चा मे प्रचार की गन्ध स्पष्टतया आने लगती है ।[3] यह वार्तालाप उपन्यास की भिन्न विचारधाराओ के सघर्ष का परिचायक है किन्तु है कथा की गति म रोडे जैसा । पहले कह आये है कथा तथा चरित्र-चित्रण के क्षेत्र से वाहर सवाद भले उपयोगी हो किन्तु वे उपन्यास की गति मे बाधक रहगे ।

स्वगत कथन का वर्मा जी ने एक स्थल पर प्रयोग किया है, बडे अस्वा-भाविक ढङ्ग से । वह है प्रणयी धीरज (प्रेम की भेट) का एकान्त मे तर्क-वितर्क ।[4] वह सरस्वती के प्रति आकर्षण को अपनी हार मानता है । बच्चो की तरह रोने लगता है । फिर 'चिल्लाकर बोला—'मै इसलिये रोता हू कि सरस्वती पराई है । हो तो इससे क्या ? खबरदार, जो अब रोया ।' धीरज एकाएक हस पडा । प्रगट रूप मे बोला—'क्यो जी, आज कौन-सा दिन है ? जो कुछ भी हो, आज उद्धार का दिन है ।' धीरज ने बडी जोर से माथे को मला । चिल्लाकर पूछा—'इसको आज क्या हो गया ? क्यो फटा सा जाता है ?' एकान्त मे सोचते समय मनुष्य भावावेग मे कभी-कभी कुछ बुदबुदा उठता है । कभी उसके होठो पर स्मित खेल जाती है तो कभी आँखो मे सूनापन किन्तु धीरज का यह चिल्लाना, हसना पागलो जैसा है । वर्मा जी के उपन्यासो मे कई स्थलो पर पात्रो का एकान्त मे तर्क-वितर्क चित्रित किया गया है । वहाँ वे सोचते ही है चिल्लाते, रोते नही । उनका

---

१ झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई—पृ० १६२ से १६४ तथा देखिए नाना भोपटकर का कथन पृ० ४१८ से ४१९

२ अचल मेरा कोई—पृ० १८४ से १९३

३ अमर बेल—पृ० ३११ से ३१५

४ प्रेम की भेंट—पृ० ९३ से ९५

सोचना भी किसी निराश हृदय की उच्छ्वास और बड़बड़ाहट जैसा है।[1] वे प्रकट बोलते कम हैं।

वर्मा जी हृदयस्पर्शी परिस्थितियों में वक्ता के कथनों के साथ उसके हावों या अनुभावों की सूक्ष्म पकड़ करते हैं। जहाँ वाणी मूक है, अस्पष्ट है वहाँ वक्ता के अङ्ग-प्रत्यङ्ग मुखर हो उठते हैं। वह अनकहे सब-कुछ कह जाता है, कहीं अधिक मार्मिक भाषा में। दूसरी ओर ऐसे भी संवाद हैं जो अपने आप में पूर्ण और हाव-भाव के विवरण से निरपेक्ष हैं। पात्रों के सधे संवाद, उनका धीमा-तीखा प्रवाह—यह सब स्वतः वक्ता की आकृति और हाव-भाव का चित्र पाठक के मानस पटल पर खींच देते हैं। एक ओर हाव-भाव में संवाद निहित हैं तो दूसरी ओर संवादों में वक्ता के हाव-भाव मुखर हैं।

प्रणय-संवाद मार्मिक और सजीव हैं। क्रोधावेश में निःसृत वाक्य उत्तेजना और आतंक से भरपूर हैं। ग्रामीण स्त्रियों के परस्पर झगड़ों में वाग्युद्ध का मनोवैज्ञानिक महत्व रहा है। युवतियों की ठठोली में अल्हड़पन, छेड़छाड़, मान मनौवल सब कुछ है। लोक-भाषा के संवादों में स्पष्टवादिता, वाचालता और रूखे आवरण में ढका हृदय का स्नेह है। इनसे लोक-जीवन स्पष्ट होता है और पाठकों का मनोरंजन। मुसलमान पात्रों की भाषा में विषमता है किन्तु अन्तिम उपन्यासों में यह दोष लुप्त हो गया है।

———

१ गढ़ कुंडार—दर्प दलित नागदेव (पृ० ३२०, ३२१), सतप्त प्रणयी दिवाकर (पृ० ४५८ से ४५९)

अध्याय ६

वर्मा जी के उपन्यासों में वातावरण-सृष्टि

वातावरण

वातावरण पात्रो का ससार है, यही रहकर वे अपने क्रियाकलापो का परिचय देते है। या यो कहिये उपन्यास मे पात्रो के कथोपकथन तथा क्रियाकलाप को छोडकर शेष सामग्री देश-काल या वातावरण से सम्बन्ध रखती है। देश-काल के अन्तर्गत कथा के सभी बाह्य उपकरण, उसकी योजना मे सहायता प्रदान करने वाले पात्रो के आचार-विचार, रीति-नीति तथा रहन-सहन, प्राकृतिक पीठिका और परिस्थिति आ जाते है। इस प्रकार वातावरण की सृष्टि मे मुख्यतया दो तत्वो का हाथ रहता है—उसमे रहने वाले मनुष्यो तथा मनुष्यतर जगत् का।

मनुष्यो के परस्पर सम्पर्क के फलस्वरूप जो परिस्थितियाँ उत्पन्न होती है उन्हे सामाजिक वातावरण की सज्ञा दी जा सकती है। मनुष्येतर जगत् है प्रकृति, प्रकृति या प्राकृतिक का अर्थ है स्वाभाविक। अत प्रकृति के अन्तगत वही वस्तुए आती है जिन्हे सजाने, सवारने मे मानव का हाथ नही लगा है वरन् वे स्वय ही अपनी नैसर्गिक छटा से हमे आकर्षित करती है। ईश्वर या 'उस महान्' की कारीगरी को हम प्रकृति और मनुष्य की कारीगरी को कला कहते है। प्रकृति मे पशु, पक्षी, सरिता, निर्झर, गिरि, गुहा, पृथ्वी, वृक्ष, लता गुल्म आदि की गणना की जा सकती है। इन सबका अनुभव हम अवलोकन, रसास्वादन, श्रवण, सुवास-ग्रहण और स्पर्श द्वारा कर सकते है।[1] इस प्रकार देश-काल अथवा वातावरण के दो भेद किये जा सकते है—सामाजिक तथा प्राकृतिक।

प्रकृति का प्रयोग उपन्यास म विभिन्न लक्ष्यो की पूर्ति के हेतु किया जाता

१ हिदी काव्य मे प्रकृति-चित्रण (डा० किरण कुमारी गुप्ता)—पृ० १० से १६

है। कथा-क्षेत्र को पाठको की कल्पना मे सजीव करने के लिये वहाँ की भौगोलिक विशेषताओं का सकेत आवश्यक हो जाता है। पाठको का उस जगत् मे तादात्म्य स्थापित करने के लिये उपन्यासकार वहाँ के विभिन्न इन्द्रिय-ग्राह्य अङ्गो का सागोपाग वणन करता है। मानवीय अनुभूतियो को मार्मिक स्पश देने के लिए वह प्रकृति को कही पात्रो की भावनाओं के अनुरूप, कही विपरीत और कही सवेदनहीन दशा मे प्रस्तुत करता हे। वह प्रकृति को मानव मन की प्रेरक शक्ति के रूप मे भी चित्रित कर उसके दृश्यो से पात्रो को चेतना प्रदान करता ह।

उपन्यासकार की वातावरण सृष्टि का मूल्याकन करते समय उसकी वर्णन, सूक्ष्म-विवरण, सजीव कल्पना तथा सतुलन-शक्ति पर विचार किया जाता है। यह देखना होगा कि वह सामाजिक तथा ऐतिहासिक परिस्थितियो के वर्णन द्वारा पाठको की कल्पना मे उनके सजीव चित्र अकित कर पाता है या नही, उसकी सतर्क दृष्टि से विवरण की कोई बारीकी छूट तो नही जाती ? यदि वह ऐतिहासिक उपन्यासकार है तो उसमे गत युग मे पैठकर उन परिस्थितियो के पुनर्निर्माण की शक्ति हे या नही। देश-काल द्वारा कथा की आधारभूमि प्रस्तुत की जाती ह, वह साधन हे और कथा साध्य। साधन, साधन ही रहे वर्णनाधिक्य के कारण साध्य न बन जाय, अत वातावरण का चित्रण उपन्यास के अन्य तत्वो मे खपा रहना वाछित हे।

वर्मा जी के उपन्यासो के साथ 'बुन्देलखण्ड' का नाम प्राय लिया जाता हे। उनके उपन्यासो के वातावरण की चर्चा करने से पूर्व यहाँ बुन्देलखण्ड तथा उससे उपन्यासो के सम्बन्ध का निर्देश अभीष्ट है।

बुन्देलखण्ड

बुन्देलखण्ड भारत के उत्तरी भाग मे वह भूखड हे जिसके उत्तर मे यमुना नदी, उत्तर पश्चिम मे चम्बल, दक्षिण मे नमदा नदी तथा सागर, जबलपुर के डिवीजन और दक्षिण पूर्व मे रीवा या बघेलखण्ड तथा मिर्जापुर की पहाडियाँ है।[1] उसकी सीमाओं के विषय मे बुन्देलखण्ड मे एक दोहा भी प्रचलित है—

इत चम्बल उत नरमदा, इत जमुना उत टौंस।
छत्रसाल सौं लरन की रही न काऊ हौस॥

भारत की स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पूर्व बुन्देलखण्ड के उत्तरी भाग मे हमीरपुर, जालौन, झाँसी, ललितपुर, बाँदा के ५ जिले मध्य मे ओरछा, समथर, दतिया के राज्य तथा चरखारी, छत्रपुर, पन्ना, बिजावर की छोटी रियासते और

---

१ इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया (खड ३)—पृ० १५०

दक्षिणी भाग मे सागर, दमोह, जबलपुर के ३ जिले थे।[१] अब स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् राज्यो, रियासतो के विलीनीकरण तथा प्रान्तो के पुनर्गठन के फलस्वरूप बुन्देली बोली एव रीति-रिवाज की दृष्टि से बुन्देलखण्ड मे निम्न-लिखित जिले है–उत्तर प्रदेश के झाँसी, जालौन, ललितपुर, बांदा, हमीरपुर और मध्य-प्रदेश के सागर, दमोह, जबलपुर, टीकमगढ, छत्रपुर, पन्ना, दतिया तथा ग्वालियर जिले का दक्षिणी भाग।

इस भूभाग का नाम बुन्देलखण्ड प्रचलित होने के सम्बन्ध मे एक किम्वदन्ती है। काशी के गहरवार राजा के वशज बीरबहादुर के पाँच पुत्र थे। पाँचवाँ पुत्र पचम था। सन् ११७० ई० म पचम के भाइयो ने उसे राज्य के भाग से वचित कर निर्वासित कर दिया। निराश पचम ने राज्यप्राप्ति के हेतु मिर्जापुर के पास विन्ध्याचल मे दुर्गा की सेवा मे तप किया। अन्त मे उसने गला काट कर देवी को भेंट करना चाहा। इस प्रयास मे पचम के गले से रक्त की बूद टपकी। दुर्गा प्रकट हो गयी और पचम की कामना पूर्ण हुई। बलिदान की रक्त की उस 'बूँद' के आधार पर 'बुन्देला' शब्द प्रचलित हुआ। पचम की सन्तान बुन्देला कहलायी और उनकी राज्य-भूमि बुन्देलखण्ड।[२] कुछ लोग विध्येलखण्ड से बुन्देलखड का सम्बन्ध जोडते है। सन् १२८८ई० म बुन्देलो का शासन स्थापित हुआ। इससे पूर्व महाभारत काल से मौर्य काल तक यह भूभाग दशार्ण के नाम से प्रचलित था। गुप्तकाल मे जेजाक कदाचित् इस प्रान्त का अधिकारी था उसी के नाम पर 'जेजाक-भुक्ति' इसका नाम पडा। चन्देलो के काल मे नाम का अपभ्रश स्वरूप 'जिझौती' या 'जुझौती' हो गया।

बुन्देलखण्ड के इतिहास का यहाँ सक्षेप मे—अत्यन्त सक्षेप मे—उल्लेख कर देना अनुचित न होगा। स्थानीय परम्परा के अनुसार यहाँ के पहले अधिकारी गोड थे। उनके उपरान्त पडिहारो तथा चन्देलो का राज्य स्थापित हुआ। चन्देलो के काल म इस भूखण्ड की आश्चर्यजनक उन्नति हुई। सन् ११८३ मे अन्तिम चन्देल राजा परमाल पृथ्वीराज चौहान से पराजित हुआ और शासन-भार पृथ्वीराज के सूबेदार खगार खेतसिंह पर चला गया। खगार स्वतन्त्र प्राय होगये। उनकी राजधानी कुण्डार थी। सन् १२८८ मे बुन्देलो का राज्य स्थापित हुआ। १५३१ मे राजा रुद्र प्रताप बुन्देला ने ओरछा मे राजधानी बनायी और राज्य का सगठन किया। तभी बुन्देलखण्ड की सम्पूर्ण पृथ्वी एक सूत्र मे बँधी। राजा छत्रसाल ने मुहम्मद खाँ बगश से टक्कर लेने के लिये मरहठो को निमन्त्रित किया और पुरस्कार-स्वरूप उन्हे भूमि का एक भाग

---

१. बुन्देलखण्ड का सक्षिप्त इतिह —पृ० १

२. झाँसी गजेटियर—पृ० १८१

दिया। उसके पश्चात् बुन्देलखण्ड मे मरहठो और अगरेजो की राज्य-सत्ता का काल आता है।[1]

बुदेलखण्डी उपन्यास

वर्मा जी के निम्नलिखित १४ उपन्यासो के घटना स्थलो का सम्बन्ध बु देलखण्ड से इस प्रकार है—

	उपन्यास	मुख्य घटना-स्थल	जिला
१	गढ कुण्डार	कुण्डार	टीकमगढ
२	लगन	बरोल, बजटा	झाँसी
३	सगम	बरुआसागर, झाँसी	झाँसी
४	कु डली चक्र	नौगाव	छत्रपुर
५	प्रेम की भेट	ताल बेहट	झाँसी
६	प्रत्यागत	बादा	बादा
७	विराटा की पद्मिनी	विराटा, दलीपनगर	झाँसी, दतिया
८	मुसाहिबजू	भरतगढ (दतिया)	दतिया
९	कभी न कभी	बलवन्तनगर (झाँसी)	झाँसी
१०	झाँसी की रानी— लक्ष्मीबाई	झाँसी	झाँसी
११	कचनार	धामोनी, सागर	सागर
१२	मृगनयनी	राई, ग्वालियर	ग्वालियर
१३	सोना	देवगढ	झाँसी
१४	अमरबेल	सुहाना, बागुदन, नाहरगढ सिंहगढ	दतिया

शेष तीन उपन्यासो मे 'अचल मेरा कोई' के घटना-स्थान का उल्लेख नही है। 'टूटे काटे' का आगरा, भरतपुर, फतहपुर सीकरी तथा 'अहिल्याबाई' का इन्दौर, महेश्वर से सम्बन्ध है। इस प्रकार वर्मा जी के अधिकाश उपन्यास बुन्देलखण्डी है।

राजनीतिक उथल-पुथल और समाज

वर्मा जी के प्रत्येक ऐतिहासिक उपन्यास का सम्बन्ध भारत की राजनीतिक उथल-पुथल वाले किसी काल से है। इन कालो मे देश किसी सर्वमान्य केन्द्रीय सत्ता के अभाव मे राजा, नवाबो की परस्पर लडाइयो से त्रस्त होता रहा है।

१. इम्पीरियल गजेटियर—पृ० १५४ से १५७

आये दिन के आक्रमणों तथा राज्य-लक्ष्मी की अति चचलता के कारण आज कोई साधारण सामन्त, राजा होता था तो कल कोई कुलीन राजा, गली का भिखारी । दिल्ली के तख्त पर जो शासक होता था वह या तो सरदारो के हाथो मे कठपुतली था या अपना मार्ग निष्कटक बनाने की धुन मे युद्ध और वध-कार्य मे रत था । शासन-काय व्यक्तिगत आकाक्षाओ और वासनाओ का साधन मात्र रह गया था, प्रजा के प्रति कर्तव्य का ध्यान किसी को न था । स्वार्थ तथा अनिश्चितता की उस घडी मे समाज के साधारण जन की शासन-व्यवस्था के प्रति सहज आस्था लडखडा उठी थी । शासक तथा शासित, दोनो वर्गों के मध्य असमानता की गहरी खाई खुद गयी थी । नित्य कुटने-पिसने वाले उपेक्षित प्रजाजन की यही भावना रही होगी—'कोउ नृप होइ हमेहि का हानी ।' इतने अत्याचारो की ज्वाला मे दहकते हुए साधारण जन के हृदय के किसी कोने मे अपने धर्म, अपने कर्तव्य का लेश वर्तमान था । राजनीतिक उथल-पुथल को दृष्टि मे रखते हुए इन उपन्यासो की सामाजिक परिस्थितियो का विश्लेषण रुचिकर एव वैज्ञानिक होगा ।

ऐतिहासिक परिस्थितियाँ

सन् १२८७ के लगभग (गढ कुण्डार का काल) दिल्ली मे गुलाम वश के अन्तिम प्रभावशाली सुल्तान बलबन का सूर्य अस्त हो रहा था । वह समय बडी उखाड पछाड और अशाति का था । मनचले योद्धा युद्ध और अशान्ति के समय का स्वागत किया करते थ । मुसलमान आक्रमक जब-तब हिन्दू प्रजा पर टूट पडते, एक एक किलेबन्द राजा को हरा देते । जहाँ वे पीठ फेरते उन किलो को हिन्दुओ की कोई जाति पुन अपने अधिकार मे कर लेती । उन दिनो एक मनुष्य को दूसरे का भय लगा रहता था । 'जिझौती' मे केवल कुण्डार ऐसा राज्य था जहाँ सत्तर-पचहत्तर वर्षो मे कुछ शान्ति थी किन्तु राजा जिन जागीरदारो को अपने अधीन समझने के भ्रम मे था वे सब अपने को दो दो, चार-चार गावो का स्वतन्त्र नरेश समझते थे । उनके 'राष्ट्र' की परिभाषा कदाचित् अपने गाँवो मे ही सीमित थी । प्रजाजन इस काल मे दबे हुए रहते थे । परस्पर जाति-पाँति और ऊच-नीच का भेद काफी था । एक वर्ग के दूसरे वर्ग से सम्पर्क मे आने के अवसर बहुत कम थे ।

पन्द्रहवी शताब्दी के अन्त मे (मृगनयनी) सिकन्दर लोदी दिल्ली का सुल्तान था । क्या गुजरात क्या मालवा और क्या राजस्थान, बहमनी सल्तनत,

१. गढ़ कुण्डार पृ० ११५, ११६ तथा २५७

बिहार, बगाल—चारो ओर अराजकता तथा जनपीडन का बोलबाला था । स्वण-सचय की कामना, मारकाट की आकाक्षा, स्त्रियो के अपहरण की वासना, राज्य स्थापना के लोभ और किसी भी प्रकार 'अपने मजहब' के विस्तार के मोह को लेकर पठान और तुर्क आक्रमक भारत मे प्रविष्ट हुये थे । इन सब स्वार्थों का सामूहिक नाम था उनका 'बहिश्त' । इस बहिश्त की खोज मे भारत मे स्थान-स्थान पर सल्तनत स्थापित हुई । बाप ने बेटे और बेटे ने बाप को, सल्तनत के तख्त का मार्ग-कटक समझ कर विष द्वारा या किसी सुलभ उपाय से अलग किया उस बहिश्त की प्राप्ति ने सुल्तानो, उनके सरदारो तथा सिपाहियो को निर्बल और निकम्मा बना दिया था । हिन्दू परलोक-भय, निराशावाद और आपसी लडाइयो के कारण दुर्बल हो ही गये थे । मुल्ले मौलवियो ने इस्लाम को जैसा और जितना समझा था उसके अनुसार वे अपने अनुयायियो को उकसाया करते थे । वे सुल्तान, सरदारो, सिपाहियो को भडकाते और षड्यन्त्रो मे भाग लेते थे किन्तु अन्तत उस 'जिहाद' का परिणाम वही बहिश्त ही हो जाता था । वह परिणाम उनका सबसे बडा बल और सबसे बडी दुबलता था ।[1]

अट्ठारहवी शताब्दी के प्रारम्भ म (विराटा की पद्मिनी) दिल्ली का शासन फर्रुखसियर के दुबल हाथो मे था सैयद भाइयो की गुटबन्दी जोरो पर थी । उत्तरी भारत के लिये वह समय बडा सकट का था । दिल्ली के सहायक और शत्रु अपने-अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर चुके थे । वे नाम मात्र के लिय दिल्ली के अधीन थे और परस्पर प्राय लड पडते थे । ऐसी दशा मे प्रजा को उसके भाग्य के भरोसे छोड दिया जाता था । प्रजाजनो को जगलो और पहाडी की भयकर गोद मे छिपे हुए छोटे-छोटे गढपतियो की शरण का ही आसरा था । रह जाते थे अपने घरो मे केवल दीन-हीन किसान, जो हल-खेती छोडकर कही न जा सकते थे । उन्हे पेट के लिये, राजा की लगान के लिये, लुटेरो की पिपासा के लिये खेतो की रखवाली करनी थी । यदि कही से घुडसवार सेना आ जाती तो खेतो मे अन्न का एक दाना और भूसे का तिनका भी न बचता । उस समय जिस प्रकार राजा, नवाब स्वार्थ-रक्षा मे रत रहते हुए दिन मे दो चार घण्टे नाच-रग, दुराचार और सदाचार के लिये निकाल लेते थे उसी प्रकार प्रजा अपनी थोडी-सी भूमि और छोटी सी सम्पत्ति की रक्षा की चिन्ता करते हुए भी देवालयो मे जाती, कथा-वार्ता सुनती और दान पुण्य करती थी । सन्ध्या समय लोग भजन गाते थे । परस्पर सहायता के लिये यथावकाश प्रस्तुत रहते थे । बडो के सार्वजनिक पतन की इस विष-मयी छाया मे भी इन छोटो मे छल-कपट और बेईमानी का विशेष प्रसार ह

१. मृगनयनी.. पृ० ३३१

हो पाया था ।[1]

अठारहवी शताब्दी के मध्य मे (टूटे काँटे) दशा और भी गिरी हुई थी। भरतपुर, आगरा और मथुरा से दूर-दूर के विभिन्न जाटो ने अपने-अपने समूह खडे किये और वे गढपति बनने लगे। अनुशासन मे रहना उन्होने सीखा न था, कभी कभी आपस मे लड बैठते थे। मुसलमान आक्रमको द्वारा बहुधा सताये जाने पर उन्होने भी लूटमार का व्यवसाय बना लिया था। इन गढ-पतियो के आश्रित जन खेती, किसानी के कटकाकीए कार्य करते थे। ये लोग सरदारो के सचालन मे युद्ध मे भाग लेते थे और यथावकाश लूटमार भी करने के लिये निकल पडते थे। किसी का नियन्त्रण इन लोगो को भी दुस्सह था।[2] इसी शताब्दी के अन्तिम भाग मे (अहिल्याबाई) शासन और व्यवस्था के नाम पर घोर अत्याचार हो रहे थे। प्रजाजन—साधारण गृहस्थ, किसान, मजदूर—अत्यन्त हीन अवस्था मे सिसक रहे थे। उनका एक मात्र सहारा—धर्म—अन्ध-विश्वासो, भय-त्रासो और रुढियो की जकड मे कसा जा रहा था। न्याय मे न शक्ति रह गयी थी न लोगो का विश्वास।[3] जनता को उस समय (कचनार) अपनी खेती, किसानी, शिल्प और व्यवसाय के लिये सुदृढ शासन चाहिये था। वह नायक दे सकती थी, परन्तु स्वय नायकत्व का भार ग्रहण नही कर सकती थी। इसलिए कुशासन, अनियम, त्रास और मारकाट के साथ नायको की सख्या बढती गयी। जनता की आर्थिक अवस्था हिलती हुई पानी भरी थाली मे पडे तिनको जैसी थी। फिर भी उसका 'ईमान' बना हुआ था और वह श्रमशील थी।[4] उन्नीसवी शताब्दी मे (मुसाहिबजू) अन्य प्रान्तो की भाँति बुन्देलखण्ड भी अँग्रेजो के चगुल मे आ गया था। फिर भी उसकी परम्परायें और स्थानिक रीतियाँ जीवित थी।[5]

सामाजिक परिस्थिति और मनोवृत्ति

वर्मा जी के ऐतिहासिक तथा सामाजिक उपन्यासो मे साधारण जन राज-नीतिक, सामाजिक और आर्थिक सकटो से घिरा हुआ है। समाज का जन निरुत्सा-हित है फिर भी वह धर्मभीरु और कमशील है। वह शासन के अत्याचार और

१ बिराटा की पद्मिनी—पृ० ६० से ६२

२ टूटे काँटे—पृ० २६०, २६१

३ अहिल्याबाई (परिचय)—पृ० १

४ कचनार—पृ० ३४ से ३६

५ मुसाहिबजू—पृ० ६

शत्रुओ के आक्रमण को झेलते हुए अपनी घोर निधनता से लडता है। इस दुरावस्था मे उसका सम्बल है परलोक-चिन्ता। परलोक-चिन्ता के साथ है धम और धम के साथ लगी हुई है अनेक परम्पराये, रूढियाँ, विश्वास और भीरुता एव मूर्खताजन्य अन्धविश्वास। उदाहरण के लिये जन-जन के हृदय मे व्याप्त जाति-पाँतिगत भेदभाव तथा छुआछूत सम्बन्धी आचार-विचार को ले सकते है। यह विश्वास दुराग्रह की सीमा तक पहुच कर समाज के लिए घातक विष जैसा हो गया है।[1] इसी प्रकार भूत-प्रेत के अस्तित्व मे पहले साधारणतया सबको विश्वास था, आज वह विश्वास ग्रामीण जनता के हृदय में शेष है। लोगो की धारणा है कि प्रेत बिना धुएँ की लपटे उठाते है। किसी देवता का अनादर करने पर शरीर को भूत लग जाता हे। प्रेत-बाधा के निवारण के लिये रात्रि मे पीपल पर मिट्टी की दीपकवाली झिझरी टाँगते है। झिझरी मे गेहू, ताँबे का पैसा और सिंदूर रहता है। मृत व्यक्ति की 'काज-क्रिया' नियमानुसार न करने पर वह प्रेत का रूप धारण कर लेता है, और लोगो को सताता है।[2] धम-भ्रष्ट व्यक्ति का पुन जाति आर धर्म मे प्रवेश नही हो सकता। नकटे-लूले के गये हुए अगो की भाँति गये हुए धम की पुनर्प्राप्ति असम्भव हे।[3]

सदा दमित और त्रस्त रहने के कारण लोगो मे आत्म-विश्वास का अभाव हो गया है। वे अपने आप मे केन्द्रित हो चले हे। आये दिन को सामाजिक एव राजनीतिक घटनाओ के प्रति उनका दृष्टिकोण तटस्थ दर्शक जैसा है। उनमे ऐसी घटनाओ के प्रति बाल-सुलभ कुतूहल और तटस्थता का भाव रहता है। इसीलिये वे दूसरो के गोपनीय रहस्यो को जानने के लिये आतुर रहते है और समाज मे अनेक लोकापवादो की धूम मची रहती हे। पीडित की अत्याचारी से रक्षा करने की बात वे अपने क्षेत्र से वाहर की समझते है। हाँ, उनकी दमित प्रवृत्ति शासक या अत्याचारी के पीठ पीछे उसकी निर्भीक आलोचना करते समय उभर आती है।[4]

जर्जर बुन्देलखण्डी जन कठोर प्रकृति और विषम परिस्थितियो की गोद मे पलते रहने के कारण अपने अन्तर मे एक और व्यक्तित्व छिपाये हुए हैं। वह

---

१ इस विषय पर वर्मा जी के उपन्यासो के जीवन-दर्शन की चर्चा करते समय विशेष प्रकाश डाला गया है।

२. प्रेत विश्वास—गढ़ कुडार—पृ० ९३, ४३०, कुडलीचक्र—पृ० १७६, १८४, १८५, तथा टूटे काँटे—पृ० १२८

३. यह विश्वास 'प्रत्यागत' उपन्यास की मूल समस्या हे।

४ गढ कुडार—पृ० २६८, ३६४, ३७१, ३९२, कुडली चक्र—१३३, २०५ तथा मृगनयनी—पृ० ३४

व्यक्तित्व निर्भीक है, घोर कठिनाइयो से जूझने वाला और मौज का एक क्षण मिलने पर मस्ती से झूम उठने वाला है। मस्ती का एक क्षण ही उसे सजीव बनाये रखता है और शक्ति देता है भविष्य की बाधाओ से भरपूर टक्कर लेने की। उसके त्योहार और उत्सव ऐसे ही सुखद क्षणो को अपने आप मे सजोये हुए है। नवीन रूप धारण करती प्रकृति उसमे उमगो की हिलोरे पर हिलोरे उठा देती है। उसका कृतज्ञ मन परमेश्वर के आगे नत हो उठता है। वह उन अवसरो पर भजन-पूजन करता है, उसके चरणो मे अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करता है। फिर बारी आती है हृदय मे दबे हुए उल्लास की दुगुने वेग से बाहर फूट पडने की। बुन्देलखण्डी नर-नारी फागे और राछर गाते है और नाचते, कूदते मस्त हो जाते है।

त्योहार

वर्मा जी के उपन्यासो के आधार पर बुन्देलखण्ट मे मनाये जाने वाले त्योहारो का स्वरूप इस प्रकार सामने आता है। वसन्तागमन के पश्चात् वर्षारम्भ होता है। चारो ओर फूल खिल जाते है और लोगो को अपनी श्वास तक मे परिमल का आभास होने लगता है। चैत्र की नवरात्र मे गौर की प्रतिमा की स्थापना होती है। हरदी कूँ कूँ (हल्दी कुकुम) के उत्सव पर नगर की नारियाँ सुमन-मालाएँ गले मे डालकर पूजन के लिये एकत्र होती है। गौर की प्रतिमा आभूषणो और फूलो के शृङ्गार से लद जाती है। चारो ओर धूप दीप तथा नैवेद्य की धूम मची रहती है। स्त्रियाँ आपस मे कुकुम-रोरी लगाते समय एक दूसरी से युक्तिपूर्वक उसके पति का नाम पूछती है।[1] ज्येष्ठ की दशमी शुक्ला को गगा-दशहरा के दशन के दिन सर्वत्र त्योहार मनाया जाता है। देहात मे अधिक भजन-भोजन किया, कराया जाता है।[2] वैशाख की शुक्ला तृतीया को 'अक्षय तृतीया' का उत्सव मनाया जाता है। घरो मे विशेष भोजन बनता है और देवी-देवताओ की पूजा होती है। नौकरो को हल्दी के टीके लगाकर खिलाया-पिलाया जाता है। खेतो मे हल का एक 'कूड' डाला जाता है। तीसरे पहर स्त्रियाँ चने के भीगे हुए देवल और बताशे गा-गाकर एक दूसरे को बाँटती है। लडकियाँ और लडके आक के अधखिले फूल तोडकर एक दूसरे पर (भाई बहिन के नाते को छोडकर) फेंकते है। कुछ पुरुष नशा भी कर लेते है। सन्ध्या के समय नृत्य-गान होता है।[3] क्वार की शुक्ला दशमी

१ झाँसी की रानी—पृ० ९५ से १०२

२ लगन—पृ० १९

३. कचनार—पृ० ८४, ८५

रीति-रिवाज

वर्मा जी के उपन्यासो मे वैवाहिक प्रथा का उल्लेख विशेष रूप से हुआ है। लडकी तथा लडके का सम्बन्ध निश्चित करने के लिये दोनो की जन्म-पत्रियाँ, टीपने या कुडलियाँ परस्पर मिलाने का चलन है। वर-वधू के गहो का मेल बिठलाने की दोनो पक्षो को विशेष चिन्ता रहती है। विवाह के अवसर पर टीके के बाद चढावा फिर कच्ची रसोई की पाँत और उसके बाद भाँवर पडती है। टीके के समय द्वार पर स्त्रियाँ गीत गाती है—'सीस नवै, परवत नवै, जब साजन आएँ।' दूल्हे को केसरिया बाना पहनाया जाता है और उसकी पगडी मे मोर मुकुट बाँधा जाता है। साधारणतया विवाह के समय वधू की विदा नही होती, परन्तु वर-वधू की पूरी आयु होने की दशा म इस नियम का व्यतिक्रम भी हो जाता है।[1]

प्रकृति और वर्मा जी

वर्मा जी के उपन्यासो मे युद्ध, आखेट और खेती-पाती के अनेक प्रसग आये है। इन सबकी पृष्ठ भूमि म ग्राम्य तथा वन्य प्रकृति के दर्शन होते है। उनके उपन्यासो की कथाये प्राय बुन्देलखण्डी ग्राम्य जीवन से सम्बन्ध रखती है। ऐतिहासिक उपन्यासों के हृदयग्राही सजीव वातावरण-निर्माण के हेतु पुराने किलो, भग्नावशेषो और साधारण ग्राम्य तथा अन्य वन्य प्राकृतिक सौदय का उपयोग किया गया है। उपन्यासो मे प्रकृति के सक्षिप्त तथा विस्तृत, समस्त उल्लेख, १२२ स्थलो पर मिलते है। सात उपन्यासो—गढ कु डार, सगम, कुडली चक्र, कचनार, मृगनयनी, अमरबेल तथा अहिल्याबाई—मे प्राकृतिक दृश्यो का विशेष रूप से चित्रण हुआ है। वर्मा जी बुन्देलखड मे जन्मे है, उन्होने उसके प्राकृतिक क्षेत्रो का चाव से पर्यटन किया है। तीव्रगामी नदियो, लम्बे चौडे हरे-भरे मैदानो, ऊँची-नीची पहाडियो और टूटे-फूटे खडहरो के भयोत्पादक सौन्दर्य को उन्होने पास से परखा है। प्रकृति की उस गम्भीर रोमाटिक गोद मे घटी अनेक विगत गौरवमयी घटनाये तथा अन्य हृदयस्पर्शी ऐतिहासिक परम्परायें मिल कर एक हो उनके अन्तर मे समा गई है। जिस प्रकार तुलसी ने राम मे हार्दिक तादात्म्य स्थापित कर लिया था वैसे ही वे और बुन्देलखड एक हो गये है। उनकी यह अनुभूति उपन्यासो मे पाठको का हृदय बरबस बुन्देलखड की ओर खीच लेती है। नदियो की गरजती धारे, गहरे भरके,

---

१ कृपया देखिये कु डली चक्र—पृ० ४७, ४८, ७५, २३५, कभी न कभी—पृ० १३७ तथा सगम—पृ० २९, ३३

टौरियो-पहाडियो के उतार चढाव, घने जगल, सुन्दर महकते फूल, वन मे उगते सूय की मनोहर छटा और जल-प्रवाह पर ढलते सूर्य की छितराती किरणे नही भूलती। ये दृश्य पाठको के हृदय के किसी कोने मे अपनी भव्यता, भयानकता और विचित्र सौन्दर्य की एक मीठी टीस छोड जाते है।

बुदेलखड जलवायु की दृष्टि से अच्छा भूखड नही कहा जा सकता। यहाँ खुश्की है और पग-पग पर कठोर प्रकृति की अडचने। गर्म लू के धूलभरे झोंके, सूखे वन, तपती धरती तथा नगी, सूखी पहाडियाँ निवासियो के जीवन-मार्ग मे चुनौती सी देती जान पडती है। किन्तु वर्षा के उपरान्त इस शुष्क क्षेत्र मे अनोखी ताजगी आ जाती है, प्राकृतिक छटा देखते ही बनती है। भरभरा कर बहते हुए तेज नाले, हरी घास ओढे मैदान, भीगी पहाडियाँ और हरियाली से लदे भाप सी छोडते ऊँचे-नीचे पेड दृष्टि को मोह लेते है। वर्माजी के उपन्यासो मे इस सौन्दर्य के साथ लू की लपटो, धूल के झोंको, जलती धरती तथा वृक्षो के काँटेदार ठूठो को भी स्थान मिला है। प्रकृति के सरस और शुष्क दोनो रूपो पर वर्मा जी की दृष्टि रही है।

भौगोलिक विवरण

वर्मा जी के उपन्यासो मे घटना-क्षेत्रो की भोगोलिक स्थिति स्पष्ट करने के लिये प्रकृति के अनेक विस्तृत वर्णन आये हे। ये वर्णन प्राय लम्बे होते हे और साधारण पाठक की दृष्टि मे नीरस। घटना-क्षेत्र के प्रत्येक अङ्ग को ला रखने की धुन मे उपन्यासकार ने उन्ह नाप-तोल और साधारण विवरण की दृष्टि से देखा है। अनेक स्थलो और उनकी अनेक बारीकियो के धारा-प्रवाह वर्णन मे ऊबा देने वाली उलझन उत्पन्न हो जाती है। पाठक एक के बाद दूसरी, तीसरी, चौथी बारीकी मे उलझ कर पिछले विवरण को भूलकर अगली सूचना पर हतोत्साहित दृष्टि डालता हे। अन्तत वह उन उलझन भरे पृष्ठो को पलट कर कथा-सूत्र को ढूँढने लगता है। पाठक की अरुचि का उत्तरदायित्व वर्णनो की विशदता, उनकी विशृखलता और नाप-तोल की अतिशयता पर हे। एक-एक वस्तु की व्याख्या की गयी है। इन सब व्याख्याओं मे परस्पर असम्बद्वता है। वर्णन मे प्रवाह नही आ पाता। विभिन्न वस्तुओं के लम्बे विवरण मे किसी एक अग पर क्षण भर रुक कर उसका स्वरूप साकार करने का प्रयत्न नही रहता। किसी अग का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व न होने के कारण सम्पूर्ण विवरण ब्योरो का घोलमेल सा बन जाता है। वर्णन मे क्षेत्र तथा भग्नावशेषो की बारीकियों के साथ उनके गत रूप तथा विगत वैभव का उल्लेख रहता है। बीते वैभव की चर्चा से वर्णन मे तनिक करुण स्पर्श आ जाता हे। 'गढ़

कुंडार' के प्रथम परिच्छेद 'कुंडार की चौकियाँ' मे चार पृष्ठ ऐसे ही वर्णन को दिये गये है। स्थल के वर्तमान तथा गत स्वरूप के मिश्रित वर्णन की दृष्टि से ये पंक्तियाँ उल्लेखनीय है। इन मे टीस है।

—'यद्यपि जुझौती का सब कुछ चला गया, मान मर्यादा गई, स्वाधीनता गई, समृद्धि गई, बल-विक्रम गया—तो भी चंदेलो के बनाए अत्यन्त मनोहर और करुणोत्पादक मंदिर और गढ़ अब भी बचे हुए है और बची हुई है चंदेलो की झीले, जिनके कारण यहाँ के किसान अब भी चंदेलो का नाम याद कर लिया करते है। यहाँ के प्राकृतिक दृश्य, जिनका सौंदर्य और भयावनापन अपनी-अपनी प्रभुता के लिये परस्पर होड़ लगाया करता है, अब भी शेष है। पलोथर की पहाड़ी पर खड़े होकर चारो ओर देखने वाले को कभी अपना मन सौंदर्य के हाथ और कभी भय के हाथ मे दे देना पड़ता है। ऐसा ही उस समय भी होता था, जब संध्या समय पलोथर के नीचे बेतवा के दोनो किनारो पर शंख और घंटे तथा कुंडार के गढ़ से खंगारो की तुरही बजा करती थी। और, अब भी है जब पलोथर की चोटी पर खड़ा होकर नाहर अपने नाद से देवरा, भरतपुरा इत्यादि के खडहलो को गुंजारता और बेतवा के कल-कल शब्द को भयानक बनाता है। अब कुंडार मे तुरही नहीं बजती। हाँ, टीकम-गढ़ के महाराज के कुछ सैनिक इसकी रक्षा मे अपने दिन बिताया करते है।[1] 'बिराटा की पद्मिनी' मे ऐसे अनेक वर्णन आये है।

प्रकृति-चित्र

वर्मा जी के उपन्यासो के कथा सूत्रो के मध्य मे यत्र तत्र प्रकृति के अनेक संक्षिप्त चित्र आये है। इन स्थलो पर वर्मा जी ने प्रकृति का विवरण मात्र नही दिया है वरन् उसे इन्द्रियो द्वारा ग्रहण कर चित्रित किया है। वे दृश्य की विशेषताओं की सूक्ष्म पकड़, वर्णन की संक्षिप्तता, सजीवता, तथा उपयुक्त शब्दों के चुनाव द्वारा पाठक की कल्पना मे छोटा-सा चित्र खीचने मे सफल हो जाते है। भरतपुरा की गढ़ी के समीप पूस के माह मे तीसरे पहर, संध्या, रात्रि, मध्य रात्रि, उषा तथा प्रातः के क्रमिक ६ सूक्ष्म चित्र दिये गये है।[2] ये वर्णन कथा मे खपे हुये है और पात्रो की मानसिक स्थिति के परिचायक है। इनमे सूर्य-किरणो की चमक, निविड अन्धकार, निस्तब्धता, चाँदनी की शीतलता, उषा की अरुण आभा तथा दिन के प्रकाश मे स्पष्ट भयानक सौंदर्य का दिग्दर्शन है।

१ गढ़ कुंडार ..पृ० २०
२. गढ़ कुंडार...देखिये क्रमशः पृ० २१,२४,३४,५०,६२

प्रकृति अपनी स्वाभाविक गति से चलती रहती है। प्रतिदिन वह अपने अनवरत क्रम को दोहराती है फिर भी उसके प्रत्येक मोड मे, प्रत्येक दृश्य मे एक नवीनता है, एक ताजगी है। प्रकृति के अचल से छूता प्रणयाकुल नागदेव (गढ कुडार) घोडे पर सवार चलता है। वह अपने आप मे व्यस्त है, वातावरण उसे प्रभावित नही कर पाता। एक ओर मुस्कराती, गुनगुनाती प्रकृति और दूसरी ओर आकुल नाग। यह वैषम्य, वर्णन मे अनोखापन ला देता है।

—'नरम नरम दूब पर ओस के कण छाए थे। सूर्य की किरणे मानो उनमे अपना मुँह देख रही थी। पहाडियो की तलहटी मे बसे हुए गाँवो के ऊपर धुँआँ मडरा रहा था। चिडिया धूप ले-लेकर किसी कीर्ति का गान कर रही थी। नाग धीरे-धीरे कुडार को चला।

उसकी आकृति पर एकाएक किसी उत्तेजना के चिन्ह दीख पडे।

उसने अपने आप कहा—'हेमवती मेरी होगी, और फिर होगी। कोई न रोक सकेगा। जैसे बनेगा, तैसे लूंगा। कुडार का राज्य चाहे मिले, चाहे न मिले, हेमवती मिलेगी।'

दूब की ओस के साथ किरणे खेलती रही। पक्षी कुहकते रहे। पहाडियो मे पवन समाता रहा। नाग के प्रण को किसने सुना, किसने समझा?[1] —यहाँ किरणे, पक्षी और पवन नाग की उलझन से अलिप्त है, उन्हे किसी से क्या लेना! छोटे-छोटे क्रमबद्ध वाक्य एक चित्र बनाते है जहाँ पहाडियो के अचल मे एक गाँव है और है ओस कणो की ताजगी, किरणो की दमक, प्रात का धुँआ तथा चिडियो की चहचहाट।

दिवाकर और तारा (गढ कुडार) की चिरकामना पूर्ण होती है। दोनो सदा-सदा के लिये परस्पर आ मिलते है। चारो ओर की वन्य प्रकृति उनकी स्थिरता, शाति और पवित्रता का अनुसरण करती जान पडती है।—'तारा ने आँख उठाकर दिवाकर की ओर देखा। दो बडे-बडे आसू अब भी आँखो मे थे। चाँदनी दमक रही थी। शीतल पवन मद-मद बह रहा था। सुनसान पेड कभी-कभी खरभरा उठते थे। नदी कलकल शब्द करती हुई बहती चली जा रही थी। उसकी विशाल धारा पर चाँदनी की चादरे लहरा रही थी। पलोथर पर्वत अपना सिर ऊँचा किए हुए खडा था।'—यहाँ प्रकृति की नीरवगति मे भी एक निस्तब्धता है, एक गरिमा। मानो वह तारा, दिवाकर को थपकियाँ दे रही हो। चाँदनी की दमक, पवन की मद-मद गति, सुनसान पेडो की खरभराहट, नदी की कलकल तथा उसकी धारा पर चादनी की

---

१. गढ़ कुडार...पृ० १५०

चादरे लहराने मे एक ध्वनि है जो उन सब के स्वरूप को सजीव करने मे सहायक है।

जन-जीवन की पृष्ठभूमि मे प्रकृति के सौन्दर्य और जन मन के उल्लास के चित्र सहज, स्वाभाविक बन पडे है। इन वर्णनो मे प्रवाह और सादगी है। सावन के दिन अनोखी मस्ती, सिहरन लेकर आते है। वधुएँ मायके जाने को लालायित हो उठती है।—'सावन आ गया। मेघ कभी मूसलाधार और कभी फुहारो से बरस कर आते-जाते रहे। हरियाली छा गई। पुरवाई चचलता उत्पन्न करने लगी। स्त्रियाँ मेहदी रचाने लगी। पैरो की गुराई को महदी खरी अरुणता की चकाचौध देने लगी। पवन-मडल झूलो से आन्दोलित और सावन-गान से मुखरित हो उठा। पपीहा किसी मृदुल वेदना का सवाद सुनाने लगा। परन्तु जानकी बरुआसागर (मायके) न जा पाई।'[1] प्रकृति के इस उल्लास का आनन्द ग्राम अथवा नगर मे कही भी उठाया जा सकता है। यहाँ पृष्ठभूमि मे वन, पहाड, नदी नही वरन् जीवन के साधारण प्रवाह मे प्रकृति के सौदर्य को लक्ष्य करने की प्रतिभा है। ऐसा ही एक अन्य वर्णन नवरात्रि के दिनो सूर्यादय से पूर्व बालिकाओ के गायन का है। पक्षी उषा का स्वागत करते है, कलिकाओ के चिटकने की मौन भाषा शरत् के आगमन का नीरव घोष करती है। चिडियो की कुहुक से सूर्यदेव की कोमल रश्मियाँ मानो ओत प्रोत हो उठती है। मद वायु और बालिकाओ के कोमल कठो से नि सृत वह बुन्देलखण्डी गीत—

—'तिल के फूल, तिली के 'दानै',
चदा उगो बडे 'भुन्सारे'।'[2]

भावुक पाठक को रोमाचित कर देने के लिये यथेष्ट है। हमारे आसपास प्रकृति नित्य किसी न किसी रूप मे अपनी मनोहर झाँकी दिया करती है। चाहिये केवल उसे निरखने, परखने वाली भावुक अन्तर्दृष्टि। ये वर्णन उसी अन्तर्दृष्टि के प्रसाद है।

पहाड की गोद मे खेलती झील का एक चित्र देखिये—'वैसी ही लहरे। उसी तरह की आन्दोलित प्रकाश रेखाएँ। नीलिमा और तरगे। पहाडियो की गोद मे निर्भय नाचने वाली जल-राशि। प्रमुदित तरलता। स्वरमय एकातता। ढका हुआ सौदर्य और बधी हुई उन्मुक्तता। झील पहाडो के घर मे चचल-सी जान पडती थी,'[3] ऊँचे पहाड के नीचे विस्तृत झील का चित्र बनता है।

१ सगम..पृ० १०५
१ सगम..पृ० १२१
२ कुडली चक्र..पृ० ८०

उसकी लहरो पर ढलते सूय की किरणे नाच रही है। इस निर्जनता और बधन मे भी सजीवता और गति हे। ऐसा ही अन्धकारमयी रात्रि मे वेगवती बेतवा नदी का एक चित्र है। नदी के प्रवाह मे चहल-पहल हे। बडी मछलियो के दौडने का शब्द स्पष्ट सुनाई पडता ह। बीच-नीच मे टिटहरी चिल्ला उठती है, वैसे सुनसान है। आकाश मे विखरे हुए तारे वहाँ प्रकाश के एक मात्र साधन हैं। पानी पर उनकी कुछ टिमटिमाहट दीख पडती है।[1] इस दृश्य मे प्रकृति का गतिमय चित्र है।

वर्षा के पानी भरे बादलो का सिहरन भरा यह अधकार(अमरबेल) दृष्टव्य है–'तीन चार दिन बाद प्रात काल के समय पानी भरे बादल आगये। टिमटिमाता उजेला जगमगा जगमगा जाता था और अधेरा डिगमगा डिगमगा जा रहा था। हवा के झोके मे वहाँ की चीजे कभी छोटी और कभी बडी जान पडने लगती थी—अधेरा और उजेला अपने अपने को, मानो बढाने के प्रयत्न म हॉफ रहे थे।'—टिमटिमाते उजेले की 'जगमगाहट' तथा अधेरे की 'डिगमगाहट' से घुमडते काले कजरारे बादलो के टीस भरे, मस्ती भरे धु धले अधकार का अनुभव होने लगता है।

वर्मा जी के उपन्यासो मे पकी फसल के चित्र आकर्षक बन पडे है। बसन्त से पूर्व की मध्या के चमचमाते तारे, फसल की सोधी हलकी महक और धुँए के पु ज का यह गधमय चित्र देखिये।—'ठड जाने को थी, परन्तु वसन्त का आगमन नही हुआ था। सन्ध्या होते ही घोर अन्धकार छा गया। ठडी हवा के झोके ने तारो के धूमरेपन को पोछ सा दिया और वे खरेपन के साथ चमचमा उठे। चने के खेतों से नोनी की सोधी गन्ध आई और गेहूँ के खेनो से हरी बालो की चुनॉद की हलकी महक। अरहर पक रही थी, गदरा रही थी और फूल पर थी। पास के खेतो से उसको हरवाइद बीच-बीच मे गुसाइयो की छावनी के समीपवर्ती छोर को छू छू जाती थी। दूर के खेतो मे रखवालो की आग के धुए का पु ज पहले सीधा स्तम्भ सा ऊपर को जाता, फिर छितराकर तन सा जाता जिससे क्षितिज वाले तारो पर पतली धूमरी चादर पड जाती। सागर (शहर) की झील मे नन्ही-नन्ही लहरे तरगित हो रही थी। तारे उन पर तैर से रहे थे।[2] खेती-पाती के ऐसे अनेक दृश्य उपन्यासो मे आये है। पलाश के झडते पत्ते, नीम, करौदी की सुगन्धि, खेतो मे लहराती बालें, आम के बौर, कोयलो की कुहुक, खेतो मे हरे, पीले, लाल, नीले फूल और गेहू, चने, अलसी की सौंध से ये दृश्य अनुप्राणित ह।

---

१ बिराटा की पद्मिनी. .पृ० ११७

२. कचनार पृ०. २६५

लम्बे वर्णन

वर्मा जी के अन्तिम उपन्यासो मे प्रकृति के विस्तृत विश्लेषण की प्रवृत्ति दीख पडती है। इन वर्णन-स्थलो पर कथा की गति रुद्ध हो जाती है। उपन्यासकार दृश्य मे रस लेता है, उपमाओ द्वारा उसके विभिन्न अङ्गो की सादृश्य-वृद्धि का प्रयत्न करता है। वे वर्णन लम्बे है और पढने तथा हृदयगम करने मे श्रमसाध्य। दृश्य कल्पना-नेत्रो मे उभर नही पाता, काव्यात्मक स्पर्श नीरस सा जान पडता है। वहाँ तूलिका के कुछ स्पर्शो द्वारा सीधी-सादी स्पष्ट रेखाये बनाने का नही वरन् अलकृत विवरण द्वारा रग-बिरगा चित्र बनाने का प्रयास रहता है। चाँदनी का यह श्रमसाध्य विवरण देखिये—'चन्द्रमा की रिपटती हुई झिल-मिल जान पडती थी, मानो चाँदी की चादरो के आवरे पर आवरे खिलखिला रहे हो। छोटी-छोटी सी आडी-सीधी लहरे उठ-उठ कर आवरो को पहन-पहन लेती थी। सम्पूर्ण लहरो का समूह चाँदी की उन चादरो को ओढ लेने की होड सी लगा रहा था। पवन के आने-जाने वाले झकझोरे इन आवरो को और भी चचल कर रहे थे। लहरो की कलकल झोकों पर नाचती-खेलती हुई खेत के पौधो की झूम पर उतर-उतर पड रही थी। चन्द्रिका खेत के हरे पौधो की अधपकी बालो को अपनी कोमल उगलियो से खिला सा रही थी।'[1]

चाँदनी के सौन्दर्य को कल्पना या उपमाओं द्वारा अलकृत करने का प्रयत्न है। यहाँ चन्द्रमा की किरणे नदी के जल पर चाँदी की चादरो जैसी दीप्तिमान् हो रही हैं, उनके नीचे है चचल ऊर्मियाँ और ऊपर है पवन के झकझोरे। किरण इधर कलकल करती लहरो पर है तो उधर किनारे खेत मे झूमते पौधो को भी छू लेती है। दृश्य इतना है, इसे स्पष्ट करने तथा मर्मस्पर्शी बनाने के लिये चाँदी की चादरो के आवरो, उन्हे लहरो द्वारा पहनने की होड, पवन के झकझोरो तथा लहर की कलकल के पौधो की झूम पर उतरने का विवरण दिया गया है। बात को तोड-तोड कर कहने तथा विभिन्न अङ्गो को अलग-अलग रखने के प्रयत्न मे उसके सीधे-सादे प्रभाव को धक्का लगा है। चाँदी के आवरो की कल्पना कुछ क्लिष्ट हो गयी है। अत पाठक की कल्पना मे हिलोरे लेती नदी पर खिलखिलाती चाँदनी का चित्र कदाचित् कठिनाई से साकार हो पाएगा। पूर्व-उल्लिखित 'गढ कुडार' का चाँदनी का दृश्य इससे कही अधिक सक्षिप्त और अनुभूति को स्पर्श करने वाला है।

वन जैसे राई ग्राम मे चाँदनी और रात्रि का उक्त वर्णन (मृगनयनी)

---

१ मृगनयनी पृ० १५

तथा तत्सबधी कल्पना कथा प्रवाह को रोक कर लगभग चार पृष्ठो मे चलते है। साधारण पाठक को इन्हे हृदयगम करना श्रमसाध्य हो उठे तो कोई आश्चर्य नही। ऐसा ही सूर्यादय का एक वणन है जिसमे फूल, पौधे, दूर्बा, ओस, चिडियाँ, पहाडियाँ तथा झील आदि है किन्तु पक्षियो तथा पौधो के विस्तृत परिचय देने की धुन मे वर्णन मे वस्तु-परिगणन की गध आने लगती है। फिर आती है भागोलिक सूचना और काव्यात्मक कल्पना। ये सब दो से अधिक पृष्ठ घेर लेते है।[1] प्रकृति के चित्र उपन्यास के रसात्मक स्थल कहे जा सकते है। रसात्मक स्थलो पर उपन्यासकार का अधिक बल देना उचित है। किन्तु उक्त ऐसे वर्णनो पर आकर पाठक का रसानुभूति का कम, श्रम का अनुभव अधिक होता है।

प्रकृति का शुष्क पक्ष

गर्मी के दिनो मे सूखे पहाड, हरी भूमि, महुओ, पलाश, करोदी, जरिया के झाड और आँधी के रेत भरे थपेडो का वणन बुन्देलखण्डी प्रकृति का शुष्क पक्ष सामने रखता है।[2] धूप धरती को तपाने लगती है। लू अवे की लो जैसी जान पडती है। नाले सूख गये, पृथ्वी पर घास का नाम न रहा किन्तु इस शुष्कता, इस तपन मे भी एक सौन्दर्य है अपने ढङ्ग का।—'मैदानो के पलाश के फूल झड चुके थे। अब वे चमकीले हरे पत्तो से छा गये। ललिता नदी के किनारे इन पेडो के बिखरे पु ज अब भी लाल फूल टपका रहे थे कि जिनकी राशि नीचे फैली हुई थी, मानो अपने ब्याह की बारात सजा रहे हो। महुओ के फूल टपक चुके थे। अब वे धूप और लू को चिनौती से देते हुये नये जीवन की दमकदार पत्तियो से लहलहा उठे थे। उधर पहाडो की करधई का सूखा कत्थई रङ्ग, इधर ऊ चे पूरे महुओ और दिग्गज पाखरो के बेगनी रग के किसलय मानो प्रकृति की नई लहर के अपनाने म होड लगा रहे हो। और इनके नीचे करोदी के छोटे-छोटे झाड जिनकी हरे पत्तो से ढकी हुई कटीली टहनियो मे घुँघची के आकार वाले छोटे छोटे फल चिपके हुये से थे।'[3]

गतकालीन वातावरण का सजीव स्पर्श देने के लिये खडहरो, किलो तथा गढियो, नगर, बस्ती, नगरकोट, महल, मन्दिर, तलघरे बाजार, मकान तथा की

१. कु डली चक्र...पृ० ३६ से ३८ तथा ऐसे अन्य दृश्य देखिए, अहिल्या-बाई पृ० ७१,७२,६७

२ सगम...पृ० २०

३. अमर बेल.. पृ० ३१८

चर्चाएँ इन उपन्यासो मे २४ स्थलो पर आई है। इस दृष्टि से 'गढ कुण्डार', 'कुण्डली चक्र', 'मृगनयनी', 'सोना' और 'अहिल्याबाई' उल्लेखनीय है। ये वर्णन प्राय घटनास्थल के स्पष्टीकरण तथा वातावरण-निर्माण मे सहायक होते है। 'मृगनयनी' मे 'गूजरी महल' का वर्णन शिल्पकला की दृष्टि से है।[1] ऐसे ही 'अहिल्याबाई' मे धमनार की पहाडियो की गुफाओ मे स्थित चैत्य, विहार तथा मन्दिरो के वर्णन द्वारा उत्कृष्ट शिल्पकला का परिचय दिया गया है।

निष्कर्ष

वर्मा जी के अधिकाश उपन्यासो का सम्बन्ध बुन्देलखण्ड की भूमि और वातावरण से है। प्रत्येक ऐतिहासिक उपन्यास मे भारत की राजनीतिक उथल-पुथल वाला कोई काल है। इन कालो मे देश मे फैली शासन-अव्यवस्था को उपन्यासो की पृष्ठभूमि मे रखा गया है।

बुन्देलखण्ड की प्रकृति से वर्मा जी का तादात्म्य है। उन्होने उसके सरस और शुष्क दोनो रूपो का चित्रण किया है। प्रकृति का दो दृष्टियो से मुख्यतया उपयोग हुआ है, घटनास्थल की भौगोलिक स्थिति स्पष्ट करने तथा जन-जीवन की पृष्ठ भूमि के रूप मे। मानव-व्यापारो की रगभूमि के रूप मे प्रकृति मानव की भावनाओ के प्रति कभी सहृदयता, कभी विषमता और कभी सवेदनहीनता प्रकट करती जान पडती है। वर्मा जी मे आस-पास की प्रकृति को निरखने, परखने वाली भावुक अन्तर्दृष्टि है, उसके इन्द्रियग्राह्य छोटे-छोटे चित्र पाठक की कल्पना मे खीचने मे उन्हे विशेष सफलता मिली है।

वर्मा जी मे वातावरण के निर्माण की शक्ति है। उन्होने उपन्यासो मे सामाजिक वातावरण का स्वरूप प्रस्तुत करने के लिये राजनीतिक परिस्थितियो का उल्लेख करते हुए उनका समाज पर प्रभाव दिखलाया है। सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ परस्पर एक दूसरे के निर्माण मे सहायता देती दीख पडती है। सामाजिक गत रीति-रिवाजो तथा त्योहारो के स्वरूप-निर्माण मे उन्होने आज के बुन्देलखण्ड मे स्थित उनके अवशिष्टो को ही सूत्र बनाया है।

वातावरण की सृष्टि मे जहाँ तक सूक्ष्म विवरण देने तथा कल्पना-शक्ति का प्रश्न है वर्मा जी इन गुणो से सम्पन्न है। वातावरण के विभिन्न अगो के सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवरणो को रचनात्मक कल्पना-शक्ति द्वारा सजीवता प्रदान करने का कौशल उनमे है। वर्णन की दृष्टि से, जहाँ चित्र सक्षिप्त है वर्मा जी

---

१ मृगनयनी—पृ० ४०७

को चित्रण मे विशेष सफलता मिली है। वे चित्र कथा-प्रवाह मे खपे हुए है और अपने सौंदर्य से उसमे रुपहरी, सुनहरी लकीरो से जान पडते है। किन्तु जहाँ विशदता का आग्रह है लम्बे वर्णन नीरस हो गये है। वे वर्णन कथा के मार्ग मे रुककर अपना विशद रूप प्रकट कर पाठक को थका देते है। इसी प्रकार राजनीतिक परिस्थितियो का परिचय देते समय वर्मा जी उनमे इतने खो जाते है कि उन्हे कथा की चिन्ता प्राय नही रह जाती। कथा-प्रवाह मे उन वर्णनो को घुला मिला कर साधारण पाठक के हेतु उन्हे सरस बनाने की चिंता नही की गयी है।

अध्याय ७

उपन्यासों में वर्मा जी की भाषा और लेखन-शैली

भापा और शैली

भावाभिव्यक्ति की माध्यम भापा है और उस माध्यम के प्रयोग की रीति या विधि शैली है।[1] शैली द्वारा लेखक रचना मे अपनी अवतारणा करता है। शैली मे प्रवाह, ओज और सजीवता ये गुण अपेक्षित है। वाक्यो की योजना में प्रवाह हो, वे स्वाभाविक रूप से परस्पर सबद्ध हो, अनावश्यक शब्दो द्वारा उनकी गति में शिथिलता न आ जाय। उपयुक्त मुहावरो तथा लोकोक्तिया के प्रयोग से इस दिशा मे विशेष सहायता मिलती है। ओज के लिए चाहिये चुस्ती, सक्षिप्तता और भावानुकूल चुने हुए शब्द किन्तु वहाँ वक्तृत्व का आवेश वाछनीय नही है। वर्णन सागोपाग होते हुए भी ऊवाने वाले न हो और अपनी बारीकियो तथा चित्रात्मक विशेपताओं के बल पर पाठक की कल्पना मे साकार, सजीव हो उठे। उपमाओ, उत्प्रेक्षाओ के सफल प्रयोग वर्णन को सहज ही कल्पना-ग्राह्य बनाने मे सहायक होते है।

हिन्दी भापा के कई रूप प्रयोग मे आते हैं सस्कृत तत्सम शब्दो से परिष्कृत भाषा को साहित्यिक हिन्दी कह सकते हैं। दूसरी है बोलचाल की सरल हिन्दी जिसमे किसी विशेप प्रकार के शब्दो के प्रयोग का आग्रह नही रहता वरन् शब्द की कसौटी उसकी भावगत उपयुक्तता होती है। प्रचुर अरबी, फारसी शब्दो से युक्त भाषा उर्दू है। इनके अतिरिक्त हिन्दी मे बोलियाँ या ग्रामीण भाषाये प्रयोग मे आती है। उपन्यास के जन-जीवन के अधिक समीप होने के कारण सरल हिन्दी का प्रयोग उसमे खपेगा फिर भी पात्रानुकूल तथा वातावरण

---

१ उपन्यास मे शैली के अतर्गत वस्तु-चयन, उसके गठन, पात्र सयोजना, पात्रो के वार्तालाप और उपन्यास की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करने की विधि आदि सभी आ जाते है। अन्य अध्यायो मे उपन्यास के विभिन्न तत्वो पर विचार करते समय, उनके प्रस्तुत करने की शैली पर विचार किया गया है।

विशेष के निर्माण के लिये अन्य उक्त प्रकार के शब्दो का प्रयोग आवश्यक हो जाता है। वस्तुत मे सुबोधता और सरसता भाषा की मुख्य कसोटियाँ है।

वर्मा जी की भाषा

वर्मा जी ने अपने उपन्यासो मे खडी बोली का व्यवहार किया है, उनकी भाषा सीधी-सादी है। वे भावो को सुगमता और सरसता प्रदान करने के लिये यथा अवसर सस्कृत, अरबी, फारसी, अँगरेजी तथा बुन्देली शब्दो का व्यवहार करते है। ऐसे शब्दो के प्रयोग मे उन्हे किसी प्रकार का सकोच नही है और न किसी प्रकार का आग्रह। अपनी बात को समझा देना ही उनका लक्ष्य रहता है। जहाँ काव्यात्मक अथवा कलात्मक प्रसग आये है वहाँ भाषा मे सस्कृत तत्सम शब्दो की प्रधानता रहती है। पहले कहा जा चुका है कि वर्माजी के कुछ पात्रो के सवाद बुन्देली मे है। बुन्देलखण्डी वातावरण उत्पन्न करने के लिये उपन्यासो मे बुन्देला के अनेक शब्द बिखरे हुए है। ऐसे कुछ शब्द भाव को सुबोधता प्रदान करने मे विशेष सहायता प्रदान करते है। जैसे चोट खा बद-हवास होकर एक दम गिर पडनेके लिए 'भरभराकर गिरना', ऊँची नीची पहाडियो के गड्ढो के लिये 'भरका' तथा कुछ मिट्टी की और कुछ पथरीली छोटी पहाडियो के लिये 'टौरिया' आदि शब्दो का प्रयोग उपयुक्त एव स्वाभाविक है। ऐसे शब्दो की व्यापकता से हिन्दी समृद्ध होगी।[1] मृगनयनी को ही ले लीजिये उसमे लगभग ७० बुन्देलखण्डी शब्दो का प्रयोग हुआ है। जैसे छबा, पृ० ८, हुकमना १०, आसे १३, आवरा १५, झकूटा १४, झीम १८, बीधना २२, टोरिया, ३३, आदि।

पात्र-चित्र

वर्मा जी की लेखन-शैली उनके निर्द्वन्द्व व्यक्तित्व की परिचायक है। बहुधा

---

१ भाषा साधन है साध्य नहीं। अपनी बात पाठक के पास पहुँचाने के लिए चुस्त भाषा के पयोग का पक्षपाती हूँ। बी० ए० मे सस्कृत लिए था, परन्तु मै सस्कृत बोझिल हिंदी का पक्षपाती नहीं हूँ।' • •

बुन्देलखडी मे जैसे कि हिंदी की अन्य बोलियो मे भी, कुछ शब्द और मुहाविरे बडे ही अर्थपूर्ण और सु दर हैं। इन्हे व्यापकता मिलनी चाहिए। इनसे हिंदी समृद्ध होगी और हमारी रचनायें जनता— 'धरती वाजी' जनता— के घरो तक पहुँच जायँगी। बु देलखडी का प्रयोग स्थानिक रग और वास्त-विकता लाने के लिये करता हूँ। —वर्माजी का पत्र ६-७ ५७

उनके वर्णनो के प्रत्येक शब्द और वाक्य म एक चुस्ती, अलबेलापन और रोमाटिक आकर्षण है। अभिव्यक्ति का कृत्रिम परिष्कार उन्ह भाता नहीं। वे पाठक के समक्ष कहानी सुनाने वाले की भाँति उपन्यास म पदापण करते ह और अन्त तक अपने उसी रूप के निर्वाह मे प्रयत्नशील रहते ह। सीधे सादे ढँग से अपनी बात कहते चलते हैं, पाठक कही भी उलझे बिना द्रुतगति से उनके साथ कथा-प्रवाह मे बह उठता है। 'झाँसी की रानी' और उसके बाद के उपन्यासो मे उनकी लेखन-शैली की चुस्ती और चुटीलापन, दोनो बढ गये है।

पात्रो के सक्षिप्त शब्द-चित्र प्रस्तुत करते समय वर्मा जी विशेषतया सतर्क रहते है। एक एक शब्द, उपमा और उत्प्रेक्षा तोल-तोल कर रखते जाते हैं। वणन मे छोटे छोटे वाक्य होते है ठीक शिल्पकार की छैनी के एक एक कटाव की भाँति स्पष्ट उभरे हुए। लक्ष्मीबाई की दासी, सहेली सुन्दर (झासी की रानी) का चित्र देखिये—'यकायक मनू के सामने एक मराठा कन्या आई। आयु १५ से कुछ ऊपर। शरीर छरेरा। रग हलका साँवला। चेहरा जरा लम्बा। आँखे बडी। नाक सीधी। ललाट प्रशस्त और उजला।'[1] वैद्य निधान (कचनार) का रेखाचित्र है—'अधेड अवस्था का दुबला-पतला छरेरा मनुष्य। आँखो मे सुरमा लगाए हुए। बाँकी पगडी, लम्बा अगरखा। पान खाए हुये।'[2] वैद्य की आँख का सुरमा, बाकी पगडी तथा खाया हुआ पान, ये सब उसकी रसिकता को मूर्त रूप प्रदान करते है। एक साथ कई व्यक्तित्वो की ये मोटी-मोटी रेखाये द्रष्टव्य है—'दुलहिन घूँघट खोले थी। रग गेहुँए से जरा ज्यादा गौर, आँखे बडी, बरौनियाँ लम्बी, नाक सीधी, चेहरा गोल। एक सहेली खरे गोरे रग की और बहुत सुन्दर। दूसरी जरा साँवले रग की, आँख बडी, परन्तु नाक कुछ चिपटी, नथने फूले हुए।'[3]

उपमाओ का प्रयोग

वर्मा जी पात्र के रूप तथा भगिमाओ की छाप पाठको के हृदयो पर उभारने के लिये उपमाओ का प्रयोग करते हैं। नारी-सौन्दय की कोमलता, पवित्रता, दीप्ति को प्रकट करने के लिये उन्होने विभिन्न उपमाये सजोयी है। घाटियो से मैदान मे आती तारा हिमालय से नि सृत गगा जैसी जान पडती है (गढ कुण्डार, पृ० २२३) सरस्वती आई, जैसे सूर्य की पथम रश्मि (प्रेम की भेट,

१ झाँसी की रानी—पृ० ६२

२ कचनार—पृ० १०५

३ कचनार—पृ० ३

पृ० ४७) धुँधले प्रकाश मे कुमुद का मुख दिखलाई पडा, जैसे अँधेरी रात मे बिजली चमक गयी हो (बिराटा की पद्मिनी, १६) (कुमुद) मानो घोर तमिस्रा से एकाएक पूर्ण चन्द्र का उदय हुआ हो (बिराटा की पद्मिनी, २६७)

थकावट या उदासी भरी मुस्कराहट, साधारण और मुक्त हँसी को लेकर की गयी उपमाओ मे वर्मा जी की सूक्ष्म दृष्टि और कल्पना-शक्ति देखते ही बनती है। थके चेहरे पर हर्ष की रेखाओ की चमक धूल मे दमकते सोने जैसी (बिराटा की पद्मिनी, पृ० १००) बरबस हँसी, जग लगे हँसिये की चमक जैसी (कभी न कभी, ८१) रूखे होठो पर मुस्कान, जैसे गर्मियो के सूखे नाले मे पहली छिछली वर्षा की पतली धार हो (मृगनयनी, २३४) उदास मुस्कान, जैसे मुर्झाई हुई घास पर ओस की बूँद (अमरबेल, २८२) अस्वस्थ चेहरे पर थकावट भरी रूखी मुस्कान, जैसे भस्म के त्रिपुण्ड मे रोली बिखर गयी हो (अहिल्याबाई, ११६) निमल मुस्कराहट, जैसे शरद की चाँदनी बादल मे से यकायक निकल कर छिटक गई हो (टूटे काँटे, २४३) अस्वस्थ चेहरे पर हँसी जैसे पीने बादलो मे दामिनी दमक गई हो (झाँसी की रानी, ११६) रोने के पश्चात् यकायक हँसी, जैसे शरद ऋतु की वर्षा के उपरान्त सूर्य की किरण बादल फोडकर निकल पडी हो। (अचल मेरा कोई १४१) प्यार के उल्लास मे मुक्त हँसी जैसे, सारगी की तान पर तबले की मीठी थाप पडी हो (टूटे काँटे' २०६)

सुन्दरी सरस्वती (प्रेम की भेंट) के चेहरे के अवयवो का सूक्ष्म विवरण और उसे स्पष्ट करने वाली उपमाये इस वर्णन मे द्रष्टव्य है—'उन्नत ललाट, स्वर्ण-सदृश कृष्ण केश, भृकुटि को स्पर्श करने वाली बरौनियाँ, किरणो की आभा से होड लगाने वाली लोचन पभा, तपे हुए सोने को भी लजाने वा़ो गोरे कपोल, प्रवाल के रग जैसे होठ, गोष्ठ पल्लवो के किनारो पर सहज, स्वाभाविक, सूक्ष्म, मृदुल मुस्कराहट।'[१] बडा माथा, चमकदार केश, बडी बरौनियाँ, चमकती आँखे, भरे स्वस्थ कपोल, मुस्कराते पतले लाल होठ, ये सब स्वास्थ्य, पवित्रता तथा सुन्दरता के द्योतक है। इनके साथ आयी उपमाये भाव को स्पष्ट करने मे सहायक है। 'स्वण-सदृश कृष्ण केश' पर आलोचको ने आपत्ति उठायी है। उनका मत है, भारत मे सौदय की वृद्धि कृष्ण केशपाश से समझी जाती है। सुनहरी अलके (गोल्डेन कर्ल्स) अँग्रेजी साहित्य मे ही सुन्दर मानी जाती हैं। फिर काले केशो की स्वर्ण से उपमा देना और भी अनुचित है।[२] जान पडता है वर्मा जी ने स्वर्ण की उपमा सूर्य की किरणो मे

---

१ प्रेम की भेंट—पृ० ६४

२ हिंदी उपन्यास—पृ० २२१

दमकते हुए गहरे काले घने चिकने, चमकदार केशो को दी है। यहाँ स्वण से तात्पर्य बालो को दमक से है, सुनहरे बालो स नहीं। जहाँ तक सुनहरे बालो के सौन्दय का प्रश्न है, उसे अभारतीय कह कर टाल देना उचित नही जान पडता। बिलकुल खरे गोरे रग के स्त्री-पुरुषो के बाल प्राय पूणतया काले नही होते। उनके बालो मे कुछ लाली रहने के कारण सुनहरापन आ जाता है, यह तथ्य भारत मे भी देखने मे आता है। उन बालो का अपना सौन्दय है। उपन्यासकार परिपाटी मात्र को अपेक्षा जीवन के अधिक समीप है, उसी दृष्टि से उसके वणनो का मूल्याकन श्रेयस्कर होगा।

वर्मा जी कही कही उपमाओ के प्रवाह मे वणन-सतुलन खो बैठ है। 'मृगनयनी' मे महमूद बघर्रा का विकट योद्धा, भीम जैसे भोजन करन वाले तथा बेढब व्यक्ति के रूप मे चित्रण हुआ है। विलक्षणता की छाप पाठको के हृदया पर बिठलाने के लिए उपन्यास मे उसके स्वर तथा गतिविधि को लेकर पन्द्रह उपमाये और उत्प्रेक्षायें की गई है, 'एक केले के दो कौर करने के बाद बघर्रा ने प्रधान जासूस को ओर मुँह फेर कर ऊँघ की। जैसे बादल गरज गया हो।

'कुछ एक छोटे केलो को समूचा मुँह मे डाल कर बघर्रा बोला, जैसे किसी नाले ने प्रवाह के जोर से बाँध को फोड डाला हो।

'अच्छा है। मरेगा। और आगे।' बघर्रा बोला, जैसे जमीन के नीचे से दरार मे होकर भूकम्प बोला।

'ह ! ह !! ह !!! ह !!!! ह !!!!! बघर्रा हसा। हँसी के साथ ही केले के अधचबाये टुकडे फिक कर दूर जा पडे। दरबारियो को यह हँसी एसी जान पडी जैसे धरती फट पडी हो।

'मालूम है।' बघर्रा ने कहा जैसे जाती हुई आँधी किसी बडे पेड को एक बडा सपाटा दे गई हो •

'पेट पर हाथ फेर कर बघर्रा ने डकार ली जैसे बरसात मे कोई कच्चा मकान गिरा हो।

'बघर्रा ने मुलायम स्वर मे कहा, फिर भी जान पडा जैसे कई बास एक साथ बज उठे हो

'बघर्रा ने फिर डकार ली जैसे कोई बडी धौकनी फटकर बोल गई हो '[1]

—'क्या है यह ?' बघर्रा ने पूछा – जैसे कोई पेट टूटकर गिरा हो।

'लाओ इधर।' बघर्रा ने पाव भर का एक ग्रास मुँह मे डालते हुय मिठास के साथ कहा—जैसे पेड की कोई डाल टूट पडी हो।

---

१ मृगनयनी—७६ से ८०

'बहुत खूब' बघर्रा के मुँह से निकला—जैसे किसी पहाड पर से चट्टान टूट कर लुढकी हो।

'एक ग्रास को चबाते चबाते बघर्रा बोला, 'कहाँ रहती हो ?' पिल्ली के कानो को प्रतीत हुआ जैसे किसी बडे भरे हौज मे भैंसा कूदा हो।

'कहाँ जा रहे हो तुम लोग ?' जैसे कोई चट्टान फटी हो।

'क्यो ?' जैसे लोह के दो गोले आपस मे टकरा गये हो।

'रास्ता और घाट दिखाओ, इनाम मिलेगा।' बघर्रा ने कहा, मानो मोटी भीगी दरी को किसी ने फाडा हो।'[1]

यहाँ बादल के गरजने, नाले के प्रवाह से बाँध फूटने, भूकम्प, धरती फटने, आँधी का पेड को सपाटा देने, बरसात मे कच्चा मकान गिरने, फटे बाँसो के एक साथ बजने, बडी धौकनी के फटकर बोलने, पेड टूट कर गिरने, पेड की डाल टूटने, पहाड पर से चट्टान लुढकने, भरे हौज मे भसा कूदने, चट्टान फटने, लोह के दो गोलो के आपस मे टकराने और मोटी भीगी दरी के फाडने से बघर्रा की ऊँघ, वाणी, हँसी तथा डकार के शब्दो को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। आँधी का पेड को सपाटा देने, पेड टूटकर गिरने तथा पेड की डाल टूटने, और पहाड पर से चट्टान लुढकने तथा चट्टान फटने मे स्पष्ट पुनरुक्ति दोष है। एक ही गुण को स्पष्ट करने वाली इतनी उपमाओ और उत्प्रेक्षाओ के प्रयोग से व्यग्य और वैचित्र्य मे शिथिलता आ गयी है।

वर्णन (अ) भावात्मक

उपन्यासो के भावात्मक स्थलो पर वर्मा जी की शैली मर्मस्पर्शी हो उठती है। कही कही उसमे वे प्रभाव लाने के लिये वक्तृत्व के आवेश का योग देते है। झाँसी-पतन के पश्चात् रानी लक्ष्मीबाई के आँसुओ पर यह मार्मिक टीका देखिये— 'महल की चौखट पर बैठ कर वह रोई। लक्ष्मीबाई रोई। वह जिसकी आँखो का आँसुओ से कभी परिचय भी न था। वह जिसका वक्षस्थल बज्र और हाथ फौलाद के थे। वह जिसके कोश मे निराशा का शब्द न था। वह जो भारतीय नारीत्व का गौरव और शान थी। मानो उस दिन हिन्दुओ की दुर्गा रोई।'[2] यहाँ प्रभाव उत्पन्न करने के लिये घटना की असम्भवता पर कई बार बल दिया गया है। ऐसी ही चुभन, टीस ठुकराये हुए प्रेमी सादतखाँ (टूटे काँटे) की हूक के वर्णन मे है।[3] प्रेयसी नूर की आँख की वह कोर, भाह की वह

---

१ मृगनयनी—पृ० ६४ से ६६

२ झासी की रानी—पृ० ४१५

३. टूटे कांटे—पृ० १३१

बाँक, गर्दन की लचक, उभरे हुए अगो की वह सूक्ष्म थिरक उसकी स्मृति मे रह रह कर कौंध जाती है।

(ब) व्यग्यात्मक

वर्मा जी प्राय व्यग्य करते चलते है, सामाजिक अथवा राजनीतिक कुरीतियो का चित्रण करते समय वे व्यग्य तीखे हो जाते है। 'झाँसी की रानी' मे वर्मा जी की व्यग्यात्मकता सजग हो उठी है। उपन्यास मे अँगरेजो की गतिविधि और तत्कालीन भारतीय समाज के ढोग पर किये गये अनेक व्यग्य दृष्टिगोचर होते है।[1] अँगरेजी सेना के जनरल रोज (झाँसी की रानी) की घोषणा के खोखलेपन और उसके झाँसी मे किये गये अत्याचारो पर यह व्यग्य तीखेपन के साथ मार्मिकता लिये हुए है--

---'आठवे दिन झाँसी मे रोज का ऐलान हुआ, 'खलक खुदा का, मुल्क बादशाह का, अमल कम्पनी सरकार का।'

'परन्तु इन सात दिनो हवा मे जो स्तब्ध घोषणा घूमी थी वह यह थी, 'खलक शैतान का, मुल्क शैतान का, अमल शैतान का।'--

देहाती, पचम और गिरधारी। अचल मेरा कोई शहर की भीडभाड मे पहुँचने पर जिस उलझन मे पड जाते है उसके वर्णन के व्यग्य मे चुस्ती, बाकापन और सरस उपहास है।---'तागे वालो ने टोका---'हटो एक तरफ।' साइकिल वाले ने कहा---'कहाँ देखता है ?' मोटर का भोपू बजा। दाये बाय और बाये से दाय भागे। वे घबराय और मोटर सिटपिटाई। मोटर वाले ने दाँत पीसे। बडबडाया---'कमबख्त मरने को फिरते है।' मुँह उठाये जा रहे थे कि सामने तेजी के साथ आने वाले, किसी जल्दबाज से जा टकराये। उसने कहा, 'क्या भूतखाना खाली हो गया है ?' और वह लाल आँख किये चला गया। किसी ने फिकरा कसा, 'अस्तबल तोडकर भाग निकले है।' कोई कोई कह गया, 'धोबी आता होगा रस्सा लिये पीछे-पीछे।' (अ मे को ---पृ ४१)

(स) युद्ध और प्रणय

युद्ध, आखेट तथा प्रणय के वर्णनो मे वर्मा जी के उपन्यासो के प्राण बसते है। इन उपन्यासो मे युद्ध-वर्णनो की बारीकी देखते बनती है। 'विराटा की पद्मिनी' के समस्त युद्धो के, विशेषत लोचनसिंह की टुकडी के कालपी सेना पर आक्रमण के चित्र सजीव बन पडे है। सैनिको की सतर्कता, परिस्थिति

---

१ झासी की रानी---पृ ५५, १०३, १५५, १६७

की आशका और मुठभेडो की नाटकीयता उस दृश्य को साकार बना देती है।[1] वर्मा जी की कल्पना मे गतकालीन युद्धो के नक्शे स्पष्ट है। वे प्रत्येक युद्ध मे पैदलो, सवारो, हाथियो, घोडो, तोपो, मुठभेडो तथा तलवारो के भाजने और बन्दूको की बौछारो को व्यवस्थित ढग से रखते है। उनके उपन्यासो मे व्यक्तिगत द्वन्द्वो की अपेक्षा सेना की मुठभेडो के चित्र विशद और रोचक बन पडे है।

प्रणय मे वर्मा जी प्रेमी और प्रेमिका के मध्य एक दूरी का वातावरण बनाये रखते है। अत रोमास[2] मे चुभन, आवेग, सौजन्य और दृढता आ विराजे है। जीवनाकाश मे विपत्ति, बिछोह और आशका के घुमडते गरजते बादलो के मध्य प्रणय की कौध कौध जाने वाली दामिनी कितनी लालसा, कितनी टीस दे जाती है। प्रेमी और प्रेयसी को कुछ क्षणो के लिये समीप लाते समय वर्मा जी सहृदय और सतर्क हो उठते है। वहाँ नारी का मूक निश्शब्द, कोमल समर्पण है और प्रेमी भी अत्यन्त विनीत, नियन्त्रित, कोमल और दृढ है। दोनो की हृदय-गति मे सयम और स्थिरता है कि वासना का उद्दाम वेग वहाँ ठिठक सा जाता है। प्रेमियो का हृदय हलकी हिलोरे लेता है जैसे नाव के आसपास का गुनगुनाता सा जल। क्षुब्ध सागर के ज्वार भाटे जैसी उथल-पुथल का वहाँ अभाव है। अन्तिम क्षणो मे कुजरसिह (बिराटा की पद्मिनी) और कुमुद हृदय खोल कर मिलते हैं फिर भी वे सयमित है, स्थिर है।[3] दोनो की वर्षों की प्रणय-साधना की सिद्धि का अमूल्य क्षण आ ही गया। उस समय हो क्या रहा था ? भीषण युद्ध। अलीमर्दान की सेना बिराटा पर चढी आ रही थी, बिराटा के दाँगी जौहर कर चुके थे। दोनो का जीवन अन्तिम मोड ले रहा था। उस पार वन मे सेनाये, मदिर के ऊपर गोलो की धाँय धाँय और नीचे नदी किनारे तलवारो और बन्दूको का बोलबाला। वन्य प्रकृति के प्रागण मे सघर्षों के बीच कुजर, कुमुद के प्रणय की मगलमय पुनीत धारा बह उठी। एक ओर घोर सकट, दूसरी ओर प्यार के गिने-चुने क्षण। अनोखा सयोग है। दोनो की चुप्पी, धीमा स्वर, आवेश और फिर छलकती आँखे। ऊपर गोले साँय-साँय कर रहे है। तोपचियो ने कुजरसिह को पुकारा। जीवन सग्राम का तुमुल अन्धड दोनो को चैन कैसे लेने देता। कुजर ने कुमुद से सदा के लिए

---

१ बिराटा की पद्मिनी—पृ० ३१३ से ३१५

२ रोमास साधारण जीवन से दूर के प्राकृतिक दृश्यो तथा घटनाओ से युक्त प्रणय व्यापारो का सूचक है, इसमे साहस है, शौर्य है, एक नयापन और स्फूर्ति है।

३. बिराटा की पद्मिनी—पृ० २९६ से ३००। कथोपकथन के प्रसग मे इस दृश्य पर विस्तार से विचार किया गया है।

बिदा ली । जीवन के निष्ठुर, निर्मम, निर्बाध प्रवाह के बीच कुजर और कुमुद रूपी दो तिनके पास आये, क्षण भर टकराये, मात्र एक क्षण, फिर अलग बह गये । मरुभूमि मे पियूप की ये बूँद किसे न भायेगी ।

कहावत और उक्ति-प्रयोग

कहावतो और मुहावरो का वर्मा जी की भाषा मे प्रयोग कम है । नवीनतम मुहावरो और कहावतो के अधिक प्रयोग से उपन्यासो के ऐतिहासिक वातावरण के सृजन-कार्य को धक्का लगने की सम्भावना भी रहती है । वर्मा जी द्वारा उपन्यासो मे प्रयुक्त कुछ कहावत इस प्रकार है—

गाँठ मे नही कौडी, और दाम पूँछे हाथी का । (पृष्ठ २८२, ग० कु०)

बुढिया के मरने का कुछ दुःख नही, पर यमदूतो न घर देख लिया । (पृष्ठ २८२, ग० कु०)

राजा करे सो न्याव, पासा पडे सो दाव ।। (पृष्ठ ५३, वि० की प०)

साँप मरे और न लाठी टूटे । (पृष्ठ ४८, मुसाहिबजू)

काल करन्ते आज कर आज करन्ते अब्ब (पृष्ठ ५७, कभी न कभी)

पढो या पिजरा खाली करो । (पृष्ठ ७७, कभी न कभी)

वर्मा जी की विशेषता है, उक्ति कथन । वे मानव-स्वभाव और जीवन सम्बन्धी अपने अनुभवो के आधार पर घटनाओ के साथ एक दो वाक्य की टिप्पणी करते चलते है । ये वाक्य आलोचक की व्याख्या जैसे जान पडते है । इनके द्वारा घटना की सम्भवता सिद्ध करने पर वर्मा जी की दृष्टि रहती है । ऐसी उक्तियाँ उपन्यासो में सख्या मे लगभग ३५ के है । यहाँ उनके कुछ उदाहरण यथेष्ट होगे । एक बार मुँह की खाने पर सेना प्राय नही ठहर पाती । इस पर वे लिखते है—'पहली हार और पहली जीत के समान हराने-जिताने वाला और कुछ नही हो सकता ।' (ग० कु० ४८८)

—अशान्ति और कोलाहल भी सदा और सर्वदा एक रस नही रह सक्ते । (सगम, १०६)

दो स्त्रियाँ पास बैठकर अधिक समय तक कदापि चुपचाप नही बैठ सकती । (सगम, २४५)

मजाक करने वाले लोग कभी कभी मजाक किया जाना पसद नही करते । (प्रत्यागत, २२)

विजय की अपेक्षा पराजय का समाचार ज्यादा जल्दी फैलता है । (वि० की प०, ६८)

बहुत कष्ट के बाद भी एक समय अवश्य ऐसा आता है कि मन कुछ स्थिरता प्राप्त कर लेता है (वि० की प०, २२०)

जो मारने के लिये उतारू है, वह प्राय मरने के लिये भी तैयार रहता है।
(बि० की प०, २७१)

असल मे, जनता को रुष्ट, असन्तुष्ट और क्षुब्ध करके यहाँ (भारत) तो क्या ससार के किसी कोने मे कोई भी राज्य नही कर सकता । (झा० की रा०, २२१)

वादसभा या आपसी वितडावाद मे पुस्तक के वाक्यो का प्रयोग एक बात है और जीवन मे उनको व्यवहारिक रूप देना बिलकुल दूसरी बात।
(अ० मे० को०, ६७]

नाटकीय व्यग्य

भविष्य मे घटित होने वाली घटनाओ का पूर्व सकेत नाटकीय व्यग्यो द्वारा देने मे वर्मा जी दक्ष है। ऐसे व्यग्य उनके सभी उपन्यासो मे प्रयुक्त हुए है । ये परिस्थिति की सशयात्मकता (ससपेन्स) को बढा कर पाठक की उत्सुकता और कल्पना-शक्ति को उत्तजित करने मे योग देते है । वीरज मोटे अनाडी वैद्य चकाफार को देखकर निश्चय प्रकट करता है—'मै मर भले ही जाऊँ, पर इनकी दवा तो कभी न खाऊँगा।' (५, प्रे० की भें०) अन्त मे वह चकाफार की दवा का लाभ बिना उठाये ही प्राण त्यागता है । रूढिवादी पडित टीकाराम विधर्मी को धर्म मे वापिस न लेने के सिद्धान्त की घोषणा करते है (प्रत्यागत, ५४) किंतु बाद मे अपने पुत्र मङ्गल को पुन हिन्दू धम मे लाने के प्रश्न पर उन्हे वही सब कुछ करना पडता है। बालिका मनू और भविष्य की झाँसी की रानी, बाल सुलभ खीझ मे कहती है—'मेरे भाग्य मे एक नही दस हाथी लिखे है।' (झा० की रा०, २३) आगे चलकर यह वाक्य सफल भविष्यवाणी सिद्ध होता है। सतत्त कुन्ती कई स्थलो पर मरने की धमकी देती है (अ० मे० को०, १६७,२१२,२२२) उसका अन्त भी आत्म-हत्या मे होता है। इस प्रकार के सकेत वर्मा जी के नियति और सयोग मे विश्वास के द्योतक हैं।

वर्मा जी के प्रारभिक उपन्यास हिन्दी भाषा के निर्माण-काल मे लिखित होने के कारण उनमे यत्र-तत्र शब्दो के अशुद्ध प्रयोग मिलते है । 'गढ कुडार' को ही ले लीजिये। उसमे गहरी मारकाट, पृ० ५६ (भारी मारकाट), बडी तकिया, १०२ (बडा तकिया) ऐसा आप भान क्यो करते है, १०२ (ऐसा आप को भान क्यो होता है) सम्पूर्ण विश्वास, ११५ (पूर्ण विश्वास) आदि जैसे अपरिपक्व प्रयोग मिलते है। आगे के उपन्यासो, विशेषकर 'झाँसी की रानी' से शब्दों के ऐसे शिथिल प्रयोगो का लगभग लोप हो गया है।

अध्याय ८

वर्मा जी के उपन्यासों में जीवन-दर्शन

जीवन-दर्शन

उपन्यास मे प्रस्तुत किये गये जीवन के चित्रो मे उपन्यासकार जाने या अनजाने कुछ समस्याओ का उद्घाटन तथा विवेचन करता है। उक्त प्रक्रिया के मूल मे उपन्यासकार का जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण है। वह दृष्टिकोण ही उसका 'जीवन दर्शन' है।

अभिव्यक्ति की विधि

उपन्यास मे उद्देश्य-पूर्ति के हेतु दो विधियो का आश्रय लिया जाता है—नाटकीय तथा प्रत्यक्ष। नाटकीय विधि के अन्तर्गत उपन्यासकार नाटककार की भाँति जीवन के प्रस्तुतीकरण मात्र द्वारा उसकी व्याख्या करता है। कथावस्तु के सयोजन तथा चरित्रो के उद्घाटन कार्य से वह जीवन के प्रति अपनी धारणा का परिचय देता है। प्रत्यक्ष विधि मे वह स्वनिर्मित ससार का स्वय व्याख्याता बन बैठता है। जीवन-प्रवाह और मानव-चरित्र की विशेषताओ का विश्लेषण उसी के हाथो होता है।

जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति मे प्रत्यक्ष विधि का उपयोग उपन्यासकार को किसी सीमा तक ही ग्राह्य है। वह उपदेशक नही कलाकार है। उपदेशक उद्देश्य का स्पष्ट प्रचार करता है, कलाकार उसे अपनी रचना मे ध्वनित करता है। कला का उद्देश्य कलाकृति मे, वृक्ष मे हरियाली की भाँति सर्वत्र व्याप्त रहता है। अत उपन्यासकार नाटकीय विधि का अवलम्ब प्राय ग्रहण करता है।

यथार्थ और आदर्श

जीवन का एक स्वरूप कलाकार की कल्पना मे रहता है। वास्तविक जीवन को मनोवाछित स्तर तक लाने के प्रयत्न मे वह जीवन के प्रस्तुत और

काल्पनिक दोनो तत्वो को सजोता है। जीवन मे 'जो है' और 'जो होना चाहिए', इन्हे हम क्रमश यथार्थ और आदर्श की सज्ञा देते है। परन्तु 'जो होना चाहिए' या जो कथित आदर्शवाद है उसके पैर भी यथाथ की भूमि पर टिके है। यदि उसमे जीवन का यथार्थ या उसकी वास्तविकता का अश न होता तो हम उसे पाने के लिए पीछे क्यो दौडते। अत कल्पना का रग चढाये बिना जीवन का यथातथ्य चित्रण यथाथवाद है और कल्पना के स्पश से उसका साफ सुथरा स्वरूप है आदशवाद।

जीवन के वास्तविक गुण, दोष दोनो को उचित अनुपात मे दिखाना यथार्थवाद का अभीष्ट है किंतु उसके नाम पर मानव की दुर्बलताओ मात्र का उद्घाटन उपन्यासकार की एकाङ्गी दृष्टि और अतिरजना का सूचक है। केवल ऐसी दुर्बलताओ का चित्रण पाठक के चित्त पर हानिकर प्रभाव छोड जाता है। नित्यप्रति के दु ख और सघर्ष से जूझने के बाद उसी की उपन्यास मे पुनरावृत्ति देखकर पाठक का हृदय भाराक्रान्त हो उठता है। वह पतन और पीडा के वातावरण से तनिक बाहर निकल कर चैन की साँस लेना चाहता है। उसे जीवन को सुव्यवस्थित बनाने के लिए कुछ सुझाव चाहिए, नई स्फूर्ति चाहिए।

उपन्यासकार मानव जीवन का तटस्थ दर्शक नही उसका निर्माता भी है। वास्तविक जीवन और जगत् को समक्ष रखते हुए उन्हे सुन्दरतर स्थितियो की ओर अग्रसर करना उसका उद्देश्य है। मानव-स्वभाव पूर्ण रूप से न तो श्याम है और न श्वेत। परिस्थितियाँ उसे प्रभावित करती है। यदि वे अनुकूल हुई तो मनुष्य के अच्छे तत्त्व उभरते है, वह देव-तुल्य हो जाता है अन्यथा नराधम। जीवन मे 'जो कुछ है' उसका सजीव दिग्दर्शन कराते हुए उसे 'जैसा होना चाहिए' की ओर उन्मुख कर देना उपन्यासकार का कर्त्तव्य है, उसकी यह प्रक्रिया 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' है।

मानव-जीवन और प्रणय

भिन्न दीख पडने वाले मानव-शरीरो मे परस्पर एकता का एक अदृश्य सूत्र विद्यमान है। शरीरो को धारण करने वाली आत्माये उस महान् सत्ता, परमात्मा की अश है। ससार की रङ्गभूमि मे अभिनय करती इन ससारी आत्माओ पर 'मै और तू' की भावना का अज्ञान रूपी पर्दा पड जाने के कारण वे परस्पर एक दूसरे को भिन्न समझती है। उस अज्ञान, उस आवरण को दूर करने की कुजी है मानव-मानव मे परस्पर खोये हुए स्नेह या एकता के सूत्र

की पुनर्स्थापना। मानव जीवन मे प्रेम के अनेक रूप है, जैसे राष्ट्र प्रेम, बन्धु प्रेम, आदि। इन मे अपनी तीव्रता और प्रभाव की दृष्टि से स्त्री-पुरुष का प्रणय अद्वितीय है। प्रणय के मूल मे प्रारम्भ मे शारीरिक आकर्षण रहता है किन्तु प्रणयी की भावना के परिष्कार एव सस्कार के फलस्वरूप प्रणय-क्षेत्र म भारी विस्तार और प्रवृत्ति मे अनोखा परिवर्तन आना सम्भव है। प्रेम की सच्ची अनुभूति मनुष्य के लिए वरदान है। वह उसे किसी अपूर्व विश्व मे ला पहुँचाती है।

वर्मा जी ने उपन्यासो म पुनीत प्रणय की झाँकियाँ प्रस्तुत की है। उनका प्रणय साधारण व्यापार नही एक साधना है। पीछे हमने कहा है कि वर्मा जी की नारी सम्बन्धी अपनी कुछ धारणाएँ है। नारी के बाह्य सौंदर्य और लावण्य के अतिरिक्त उसमे छिपे हुए आन्तरिक तेज को ढूँढना तथा उसके बाह्य तथा आन्तरिक गुणो मे मेल कराना उनका लक्ष्य रहता है। नारी म दैवी तत्वो का दर्शन वर्मा जी को प्रिय लगता है। उनके प्रेमी पात्र भी प्रेयसी मे परमात्मा की नैसर्गिक झाँकी पाते है। अत यह प्रणय शारीरिक सबधो से ऊपर उठकर एक ऐसे स्तर को स्पर्श करने लगता है जहाँ प्रेमी को अपने देवत्वमय इष्ट की निष्काम आराधना की प्रेरणा मिलती है। ऐसी स्थिति मे प्रेमियो का शारीरिक सम्बन्ध गौण हो जाता है और आत्मिक सम्बन्ध मुखर। इस प्रकार निर्विकार आत्माओ को समीपतम लाने पर वर्माजी की दृष्टि रही है।

प्रणयी दिवाकर (गढ कुडार) के प्रेयसी तारा के प्रति दृष्टिकोण म निष्काम पूजा की भावना प्रमुख है। वह बदले मे कुछ नही चाहता, स्वय को प्रकाश मे भी नही लाना चाहता। उसकी मूक साधना की केवल एक आकाक्षा है, तारा का सुख। सोचता है—'लोग विवाह करके करते ही क्या है ? आफत मोल लेते है। हृदय-सिहासन पर तारा विराजमान रहेगी—और मुझे चाहिए भी क्या ? तारा कही रहे, उसका कोई भी सत्पुरुष पति हो, मेरे लिये कभी क्लेश का कारण नही होगा, परन्तु उस पवित्र छवि को मै रखूगा आजन्म अपने हृदय मे। दिवाकर तुम (तारा) पर प्रकट किए बिना तुम्हारे सुख-साधन मे प्रवृत्त रहेगा और केवल चाहेगा कि तुम दिवाकर को कभी स्मरण न करो और न उसके पहचानने की चेष्टा करो।'[1] साधक दिवाकर की आत्मा इष्ट, तारा की आत्मा मे लय हो जाना चाहती है। दिवाकर के स्वप्न का यह अश देखिये—' प्रकाश वृत्त बढा और बढा। ज्योतिर्मयी तारा और अधकाराच्छादित दिवाकर। परन्तु प्रकाश मडल और बढा।

---

१ गढ कुडार.. पृ० २८६

अधकार कम हुआ, उसका अत हुआ । तारा की ज्योति मे दिवाकर तारामय हो गया । जैसे भास्कर और उषा, रवि और रश्मि, दोनो एक । एक आत्मा का दूसरे मे समावेश । आत्मा का लयकार । अविच्छिन्न, अभिन्न, अखड । इतना प्रकाश इतनी दीप्ति । '[1] वह बढती हुई मूर्छा मे देखता है, 'एक सिंहासन पर कोई देवी बैठी हुई है । आँखो के मृदुल, कोमल तेज से मुख-श्री उज्ज्वल । मुख के चारो ओर छवि-छटा का मडल । सिर पर मुकुट और गले मे बडे-बडे कनेर के फूलो की माला । दिवाकर ने नमस्कार किया । देवी मुस्कराई । बोली—'तेरी तपस्या मे सतुष्ट हुई । माँग क्या चाहता है ?'

'भक्त ने कहा—'और कुछ नही, चरणो का आश्रय ।' और पैरो पर गिरने को हुआ कि देवी ने थाम लिया, और अपने गले की पुष्प माला दिवाकर के सिर पर बाँध दी । माला टूटकर गले मे आ गई । फिर देखा, देवी सिंहासन समेत कही उडी जारही है और वह साथ है । अनन्त स्थान और अनन्त समय ।'[2] —भक्त दिवाकर और देवी तारा, दोनो का स्वरूप यहाँ बिलकुल स्पष्ट है । अन्त मे तारा से भेंट होने पर दिवाकर की भावनाओ का समाहार भी इसी ढग पर होता है । उसका मत है कि वर्णाश्रम धर्म या अन्य किसी बाधा का निषेध उन प्रेमी, प्रेमिका की आत्माओ के सयोग मे अडचन बनकर नही आ सकता । आत्माओ का यह सयोग अखड और अनन्त है । दिवाकर और तारा योग-साधना करने के लिये कटकमय ससार से दूर चले जाते है ।

मरणासन्न धीरज (प्रेम की भेंट) भी कल्पना मे प्रेयसी सरस्वती के दैवी रूप के दर्शन करता है । वह उसकी जघा पर मस्तक रख देता है और सरस्वती के कर-स्पर्श का मस्तक पर अनुभव करता है । सरस्वती अपने गले का हार उतार कर धीरज के गले मे डाल देती है ।[3] धीरज के सब कष्ट दूर हो जाते है । वह इहलोक की यात्रा समाप्त कर देता है, सरस्वती से अगले जन्म या परलोक मे भेंट करने के लिये । प्रणय कुमुद और कुजर (विराटा की पद्मिनी) का इहलोक तथा परलोक, दोनो लोको का एकमात्र सम्बल है । कुजरसिंह जीवन मे सब कुछ खोकर भी कुमुद के समीप स्वर्ग के से आनन्द की अनुभूति प्राप्त करता है । दोनो इसी के सहारे जीवन का कडवे से कडवा घूट सरलता से पी जाते है । जीवन की कठिनाइयाँ उनका कुछ बिगाड नही सकती । वे अमर है, अडिग है । न सही इस जीवन में वे अगले जन्म मे

१ गढ़ कुडार ...पृ० ४५५

२ वही. .पृ० ४५६

३, प्रेम की भेंट.. पृ० १२१ से १२३

एक हो जायेंगे। भले ही आज सफलता न मिले, पग-पग पर ठोकरें खानी पड़े परन्तु वे अन्त मे मिलेंगे, उन्हे विश्वास है। कुजर अपना यह विश्वास प्रकट करता है।—'अगले जन्म मे फिर मिलेंगे—अवश्य मिलेगे अर्थात् आज समाप्त हो गया तो।'[1] कुमुद भी एक अन्य स्थल पर ऐसी ही बात कहती है—'हम दोनो चलेगे उस पार, परन्तु अकेले-अकेले।'

'मैं समझा नही।' कुजरसिंह ने व्यग्रता के साथ कहा।

'मैं उस ओर से जाऊँगी, जहाँ मार्ग मे कोई न मिलेगा।' कुमुद दृढता के साथ बोली—'आप उस ओर से आएँ, जहाँ जौहर हुआ है। हम लोग अन्त मे मिलेंगे।'[2]

प्रेमी युगल खुदाबख्श-मोतीबाई तथा मुन्दर-रघुनाथसिंह (झासी की रानी) शारीरिक सम्पर्क मे नही आ पाते। स्वतन्त्रता-सग्राम उनके जीवन का चरम लक्ष्य है और उनकी प्रेरणा। यहाँ तक वर्मा जी आदर्शवादी रहे हैं। स्त्री-पुरुष की शारीरिक मागो का उन्होने शमन किया है। 'मृगनयनी' मे आकर उन्होने शारीरिक आवश्यकताओ को स्वीकार किया है। वहाँ इस यथार्थ-वादिता मे भी सतुलन की ओर उनकी दृष्टि है। हम पहले कह आये है कि मृगनयनी अपने पति मानसिंह को मन और तन, दोनो की स्वस्थता रखने के लिये सयम पर बल देती है। उनकी शारीरिक वासना का वेग नियन्त्रित रहा आता है।

जातिगत भेदभाव

हमारी सामाजिक परम्परा मे जातिगत भेदभाव बहुत दिनो से चला आ रहा है। वर्मा जी ने इस रूढि को भारतीय इतिहास की कसौटी पर परखा है। उक्त भेदभाव वर्णाश्रम-व्यवस्था के आधार पर उगा और फलाफूला है। वर्ण-व्यवस्था को स्थापित करते समय पूर्वजो ने इसे व्यवहारिक जीवन मे सहायक माना था। किंतु कार्य-विभाजन की यह प्रणाली अपनी उपयोगिता खोकर शनै शनै झूठे भेदभाव की गर्त मे जा पडी। भारतीय जन परस्पर मानवता के मौलिक सबध को त्याग कर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, कायस्थ, शूद्र आदि बन बैठे। अव्यवस्थित समाज की निरन्तर चोटो के फलस्वरूप देश का राजनीतिक ढाँचा हिल उठा। भेदभाव इतना बढा कि एक समय विदेशी भारत मे आए और परस्पर झगडते हुए भारतियो पर चढ बैठे। विजित भारतियो

१ बिराटा की पद्मिनी पृ० ३००
२. वही.. पृ० ३३३

की दृष्टि इसी पर लगी रही कि ब्राह्मण का सम्बन्ध क्षत्रिय और क्षत्रिय का सबध कायस्थ से कैसे हो सकता है। उनकी दासता का सम्बन्ध दिन प्रतिदिन जकड़ता गया।

जातिगत सकीर्णता का अभिशाप आज भी हमारे साथ चला आ रहा है। हमारी अवनति का मूल, भेदभाव, अब भी हममे ज्यो का त्यो स्थित है। मुसलमान और 'किरस्तानी' को जाने दीजिये हिंदुओ मे ही अनेक शाखाये है। ब्राह्मण देवता को अपने पोथी पन्ने पर गर्व है तो ठाकुर साहब को अपने लट्ठ का भरोसा है। गाँवो मे भी यह विष व्याप्त हो गया है। यह जाति-जनित सकीर्णता वर्मा जी को चुभी है। उन्होने परस्पर भेदभाव के उन्मूलन की कुजी सब जातियो मे परस्पर रोटी-बेटी के व्यवहार को माना है, अन्तर्जातीय खानपान और विवाह से सब मे सबध स्थापित होगा और उनकी भावी सतान तो घुलमिल कर बिल्कुल एक हो जाएगी। इस समस्या की चर्चा उनके अधिकाश उपन्यासो मे अगणित स्थलो पर आई है। उन स्थलो पर अलग-अलग प्रयोग करके हल ढूँढने का प्रयत्न किया गया है।

'गढ कुडार' मानव जीवन की जाति-भेद सम्बन्धी घातक प्रवृत्ति, सकीर्णता और अहमन्यता के विषैलेपन की ओर इङ्गित करता है। मनुष्य का बड़प्पन छोटी-छोटी बातो मे सीमित हो गया है। ऊँच-नीच और मान-अपमान की सनक उसे पग-पग पर ठोकरे देती है। जातिवाद जनित सकीर्णता और हृदयहीनता इसी आत्मप्रवचना की देन है। जातिगत भेदभाव सामाजिक क्षेत्र की उपज है। राजनीति ने पद तथा अर्थगत अहकार रूपी दानव को पाला पोसा है। उपन्यास मे इन दो भिन्न क्षेत्रो से उत्पन्न पिशाचो के सघर्ष का चित्रण है। सोहनपाल और उसके साथी (गढ कुडार) बुन्देले जातिगत अभिमान के जीते जागते पुतले है। खगार राजकुमार नागदेव को हेमवती ब्याहने के प्रस्ताव पर विचार करना भी उनके लिये पाप है। दूसरी ओर खगार हुरमतसिंह और उसके दल वाले, शासक होने के नाते किसी को नही गिनते। वह राजा है, टुकड़खोर बुदेले उनके विवाह परताव को ठुकराय ! यह मजाल !! खगार, समाज मे बुन्देलो से नीचे गिने जाने के कारण हीनता की भावना से बुरी तरह ग्रसित है। अपने को रीति-व्यवहार मे बुन्देलो के समान सिद्ध करने के कभी-कभी हास्यास्पद प्रयास तक कर बैठते है। दोनो वर्ग एक दूसरे को छलने की घृणित नीति अपनाते है। नागदेव हेमवती के अपहरण का कुप्रयत्न करता है और बुदेले विवाह के प्रपच द्वारा खगारो का नाश और राज्य चाहते है। अन्त मे विलासी खगारो की कुछ नहीं चल पाती।

जातिवाद के अभिशाप मे पीड़ित जन भी अपने अन्तर्मन को भेदभाव की

इसी कुटेव के हवाले कर बैठे है। नागदेव (गढ कुडार) हेमवती के अपहरण की जुगत लगा सकता है किंतु ब्राह्मण अग्निदत्त और अपनी बहिन मानवती के मध्य प्रेम की बात अवगत कर उसका रोम-रोम जल उठता है। उसे पीडित अग्निदत्त से तनिक सहानुभूति नही रह जाती यद्यपि अग्निदत्त को मानवती से प्रेम मे प्रत्युत्तर मिला था। अग्निदत्त स्वय इस मनोवृत्ति का शिकार है। नागदेव द्वारा अपमानित होने पर उसके हृदय मे खगार द्वारा ब्राह्मण के अपमान का काँटा अन्त तक कसकता रहता है। इस विषय मे उक्त पात्रो के चरित्रों पर विचार करते समय पर्याप्त चर्चा की जा चुकी है। 'गढ कुडार' मे एक तीसरा प्रेमी-युगल है जिसके साथ भी यही कशमकश है। दिवाकर कायस्थ है और अग्निदत्त की बहिन तारा ब्राह्मण। दोनो एक दूसरे को हृदय से चाहते हैं किन्तु समाज उनके लिये उतना ही कठोर है।

तीसरे प्रेमी-युगल की समस्या मे वर्मा जी ने अपना प्रयोग प्रस्तुत किया है। तारा और दिवाकर मे घोर सयम है। वे आत्मिक प्रेम की ऊँचाई तक पहुच जाते हैं। शरीर की प्राप्ति उनके लिये गौण है। अन्त मे निष्ठुर समाज से पलायन कर योग-साधना के लिये चले जाते हैं। वे आत्माओ के सम्बन्ध को वर्णाश्रम के क्षेत्र से बाहर मान लेते है। वर्मा जी ने उनके आत्मिक सम्बन्ध और पलायन की बात दिखाकर ही सतोष किया है। आक्षेपो से बचने के लिये 'योग साधना' को आड ले ली गई है। एक विशेष परिस्थितिवश यह सब कुछ हो सका। साधारणतया जीवन मे प्रेमी, प्रेयसी को ऐसा अवसर नही मिलता और न उनके बीच इतना आदर्श समझौता ही सभव है। इस प्रकार समस्या का कोई ठोस हल सामने नही आता, वह एक कल्पना बन कर रह जाता है। उस युग मे दोनो का विवाह करा देने मे वर्माजी हिचके हैं।

'सगम' मे वर्मा जी ने ब्राह्मण सुखलाल की अहीरिन रखेल के पुत्र रामचरण का नाई जाति की गगा से विवाह करा ही दिया है। 'विराटा की पद्मिनी' मे क्षत्रिय राजा नायकसिंह का दासी-पुत्र कुजरसिंह दाँगी-कन्या कुमुद से प्रेम करता है। बीच मे सामाजिक रोक-टोक की भारी आशका है किन्तु घटनाचक्र मे दोनो के समाप्त हो जाने के कारण किसी हल विशेष की आवश्यकता नही पडती। 'झाँसी की रानी' मे जूही-तात्या, और सुन्दर-रघुनाथ की जाति-विरुद्ध प्रेम कथाये है। ब्राह्मण नारायण शास्त्री और मेहतरानी छोटी के बीच चित्रित प्रेम अनोखेपन मे इन सबको पीछे छोड जाता है। वे घोर अपमान, अगणित कठिनाइयो को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। दोनो एक दूसरे को अपना लेते है। नारायण शास्त्री का यह प्रेम चरित्र का दम्भ भरने वाले

सामन्तो की वासना से कही ऊँचा है। परन्तु इसे नारायण शास्त्री के मुख से 'प्रकृति के साथ जीवन की टक्कर' कहला कर शरीरगत दुर्बलता मात्र स्वीकार कराया गया है। कदाचित् इस चौका देने वाले प्रयोग को रूढिवादियो के प्रहार से बचाने के लिए यह ओट बनाली गयी है। फिर भी स्वीकार करना पडेगा कि ऐसे सम्बन्ध को सहानुभूति के साथ चित्रित करना बडे जीवट का काम हे।

'कचनार' मे दासी कचनार और राजा दलीपसिंह का विवाह करा कर दासियो का समाज मे स्थान स्वीकार किया गया है। यहाँ स्त्रियो की नारीत्व की मर्यादा के प्रति सजगता की आवश्यकता पर बल दिया है। तभी इस कुप्रथा से स्त्रियो का छुटकारा सम्भव है। यह प्रश्न जाति-पाँति की समस्या से मिलता जुलता है यद्यपि इसके मूल मे सामन्तवाद हे।

'मृगनयनी' मे अहीर-कन्या लाखी और गूजर अटल एक दूसरे को अपना लेते है। रूढिवादी समाज का विरोध सहकर वे स्थिर रहते है। राजा मानसिंह उनका परस्पर विवाह करा देता है। यह सब हो जाने पर भी उनमे जातिवाद के प्रति निष्ठा कही न कही बनी रहती है। राई गढी के घेरे मे लाखी काम आती है और मरते समय अटल से टूटे स्वर मे कह देती है—'ब्याह कर लेना। अपनी जात पाँत मे '। दूसरी ओर गूजर जाति की मृगनयनी और तोमर मानसिंह का विवाह हो जाता है। मानसिंह राजा था, वह सब कुछ कर सकता था। कोई उसका विरोध नही करता। उपन्यासकार का यह तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था पर मार्मिक व्यग्य है। वर्णाश्रम-व्यवस्था के अनन्य पोषक बोधन मिश्र से मानसिंह के कहे गये शब्द इस प्रसग मे उल्लेखनीय है, 'शास्त्री सोचो, इस प्रकार का कट्टर वर्णाश्रम हिन्दुओ की कितनी रक्षा कर सका है। रक्षा के लिए ढाल और तलवार दोनो अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं। जातपाँत ढाल का काम तो कर सकी है और कर रही है परन्तु तलवार का काम न तो हाल के युग मे उसने कर पाया है और न कभी कर पावेगी।'[१]

निर्बल प्रबल हो सकते हैं

उपन्यासो मे यत्र-तत्र जीवन के विभिन्न पहलुओ पर चर्चायें हुई है। उन सब को एकत्र करने पर वर्मा जी के तत्सम्बन्धी दृष्टिकोण का विशेष स्पष्टीकरण सम्भव है। ससार मे रहने का सभी को अधिकार है भले ही कोई निर्बल हो या सबल। योग्यतम का अवशेष (सरवाइविल आफ दि फिटेस्ट) वाला सिद्धान्त एकागी है। प्रबल का आतक निर्बल पर स्वाभाविक हे किन्तु

१. मृगनयनी—पृष्ठ ३७९

निर्बल प्रबल हो सकते है और होगे।[१] वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुसार समाज के रक्षक क्षत्रिय का कर्तव्य है दुबलो को सबलो से, पतितो को उत्थितों से, पीडितो को पीडको से, निस्सहायो को समर्थ जनो से बचाने मे अपने को होम देना किन्तु क्षत्रियत्व की डीग हाँकनेवाले मिथ्याभिमानी जन अहकार की झकार और पर-पीडन को बढाने के अतिरिक्त कुछ नही करते।[२]

युद्ध क्यो ?

ये आये दिन के युद्ध क्या सबल सत्तावानो की महत्वाकाक्षा की पूर्ति के साधन है ? नही। युद्ध जीवन और धर्म की रक्षा के लिये अपनी सस्कृति और अपनी कला के बचाने के साधन हैं अन्यथा यह व्यर्थ का रक्तपात है।[३] अपनी रक्षा, अपने खेतो और घरबार की रक्षा, यही सिपाही का धर्म है। परतु दूसरो का गौरव बढाने के लिये निर्दोषो को लूटने-मारने की अपेक्षा खेती किसानी उसके लिये श्रेयस्कर है।[४] तो फिर हिसा का उत्तर क्या हो ? हिसा या अहिसा ? मनुष्य की प्रकृति के भीतर जो परम्परागत लक्षण है उनका दमन नही किया जा सकता। उनके रूप विकृत होकर केवल बदल सकते है। साधु का बाना पहनने पर मानव मन की बर्बरता समाप्त हो जाएगी इसमे सन्देह है। अत अत्याचारी से टक्कर लेते समय अहिसा के साथ हिसा को भी स्थान देना होगा।[५]

उपन्यासो का उद्देश्य

अब वर्मा जी के उपन्यासो के मुख्य उद्देश्यो पर सक्षेप मे विचार कर लेना युक्तिसगत होगा। 'गढ कुडार' मे मानव-जीवन की घातक प्रवृत्ति, सकीणता का उद्घाटन और स्त्री-पुरुष के आत्मिक सम्बन्ध का दिग्दर्शन है। 'लगन' दहेज प्रथा के दुष्परिणाम को सामने रखता है। सम्बन्धियो के वैमनस्य को वर और वधू का पारस्परिक प्रेम दूर करता है। 'सगम' मे दहेज-प्रथा तथा विवाह के अवसर पर किये गये कटु परिहास के दुष्फल पर प्रकाश डाला

---

१. कुडली चक्र—पृष्ठ ३२ तथा ३५८
२. बिराटा की पद्मिनी—पृष्ठ ३०६
३ झासी की रानी—पृष्ठ ३३४
४ टूटे काटे—पृष्ठ ८१ तथा देखिये अहिल्याबाई—पृष्ठ ६६, ६७
५ अचल मेरा कोई—पृष्ठ ५२, ५३, ७०,७१ ७२, २२१, २२२ तथा २२४

गया है। साथ ही जाति-सुधार-आन्दोलनो के खोखलेपन को सामने रखा गया है। 'कुडली चक्र' अनमेल विवाह की करुण कथा है। उसमे वर-वधू की विवाह से पूर्व कुडलियाँ मिलाने के हठ के हानिकर परिणाम का स्पष्टीकरण है। 'प्रेम की भेट' मे प्रेमी-प्रेमिका के आत्मिक मिलन का सकेत है। 'प्रत्यागत' धर्मान्ध कट्टर मुसलमानो की नृशसता और हिन्दुओ द्वारा निरीह जनो पर अत्याचारो की कहानी है। इसमे समाज के खोखलेपन, झूठे आदर्शों और लोगो की हृदय-गत सकीर्णता पर मार्मिक व्यग्य है।

'बिराटा की पद्मिनी' मे नियति के हाथ मे खेलते हुए साधारण पात्र है। वे जो नही मिला है उसके लिये रोते-पीटते नही वरन् भाग्य के दिये हुए को अधिक से अधिक उपयोगी और भला बनाने मे सलग्न है। कुमुद अपने सुकृत्यो द्वारा साधारण नारी के स्तर से उठ दैवी तत्व प्राप्त कर लेती है। उसके जल राशि मे तिरोहित हो जाने पर निष्ठुर कामुक अलीमर्दान तक सिहर उठता है। कुमुद द्वारा गाई हुई अन्तिम पक्तियाँ इसी जीवन-दर्शन को अत्यत मार्मिक रीति से व्यक्त करती है,

'मलिनिया, फुलवा ल्याओ नदन-बन के।
बीन-बीन फुलवा लगाई बडी रास,
उड गए फुलवा रह गई बास।'

'मुसाहिबजू' मे प्रजा के प्रति शासक के कर्त्तव्य पर बल है। 'कभी न कभी' मजदूर-जीवन की असहायावस्था का चित्र है।

'झाँसी की रानी' मे गीता के सदेश, 'कर्मयोग' का प्रतिपादन है। हमारी दृष्टि केवल कर्म अथवा लक्ष्य पर जमी रहनी आवश्यक है, फल की उत्सुकता-पूर्वक प्रतीक्षा करना अनधिकृत चेष्टा होगी। फल की आकाक्षा मे उलझ जाने पर साधना से डिग जाने की आशका है। फल की देखरेख का भार ईश्वर को सौप देना उचित और सुविधाजनक होगा। उद्योग अपना, न्याय अन्तर्यामी का। लक्ष्मीबाई का उद्देश्य देश मे 'स्वराज्य' स्थापित करना है। सबको मानवीय अधिकार प्राप्त हों और जीवन मे स्वस्थ परम्परा के बीज आरोपित हो। यह महान् कार्य पूर्ण हो सकता है सेवा, तपस्या, बलिदान से। इसके लिये अनन्त साधना का क्रम वाछित है। तपस्या का क्रम कभी खडित नही होता। एक युद्ध और एक जन्म से ही कार्य पूरी तौर पर सम्पन्न नही होता, 'सभवामि युगे युगे।' आत्मा अमर है, 'नैन छिन्दन्ति शस्त्राणि नैन दहति पावक।' रानी की मृत्यु पर बाबा गगादास कहते है—'प्रकाश अनन्त है वह कण-कण को भासमान कर रहा है। फिर उदय होगा। फिर प्रत्येक कण मुखरित हो उठेगा। वह अस्त नही हुई। वह अमर हो गई।' मुसलमान

गुल मुहम्मद भी इसी धारणा का समर्थन करता है, 'ओ कबी नही । वो मरा नही । वो कबी नई मरेगा । वो मुर्दा को जान बख्शाता रहेगा ।'[1]

कचनार मे स्त्रीत्व की मर्यादा पर बल है। 'अचल मेरा कोई' मे स्त्री-स्वातन्त्र्य और दाम्पत्य जीवन के सुखद निर्वाह की समस्या सामने आती है। पति-पत्नी मे परस्पर विश्वास और रक्तगत दुर्बलताओ की सहनशक्ति अपेक्षित है। दम्पती को अपना शारीरिक आकर्षण बनाये रखने के लिये इन्द्रिय सयम की आवश्यकता है।

'मृगनयनी' मे सतुलित मानव-जीवन की झाँकी प्रस्तुत करने का प्रयास है। शारीरिक स्वास्थ्य मानवता के निर्वाह की पहली अनिवार्य सीढी है। स्वस्थ शरीर मे ही स्वस्थ मस्तिष्क रह सकता है। मस्तिष्क से उत्पन्न होता है तर्क और तर्क का प्रसाद है कर्त्तव्य। हृदय कोमल भावनाओ और कला-प्रेम आदि को जन्म देता है। जीवन मे प्राय कर्तव्य और भावना के बीच सघर्ष के अवसर आते है। दोनो के सतुलन, समन्वय मे ही क्षेम है। तभी शारीरिक शक्ति बुरा मार्ग नही पकड पाती। इस प्रकार शारीरिक शक्ति, मस्तिष्क और हृदय के उपयुक्त समन्वय मे जीवन की सफलता निहित है। 'सोना' मे जीवन के सच्चे सुख की ओर सकेत है। शान-शौकत का रहन-सहन जीवन नही है। श्रम, स्वच्छता और कला की उपासना से जीवन को सच्चा बडप्पन मिलता है।

'अमरवेल' मे ग्रामीण समाज के ढहते शोषको और ग्राम्य जीवन के जीर्णोद्धार का चित्रण है। दूसरा प्रश्न है हिंसा-प्रयोग का। कुव्यवस्था को व्यवस्था मे परिणत करने के हिंसात्मक और अहिंसात्मक दो प्रकार के साधन है। हिंसा, विरोधी तत्वो का उन्मूलन कर क्रान्तिकारी परिवतनो मे विश्वास रखती है और अहिंसा लोगो के शनै-शनै हृदय-परिवर्तन मे। घृणा हिंसा की जननी है। घृणा से सार्वभौम स्नेह की स्थापना की आशा व्यर्थ है। अत निर्माण-काय मे अहिंसा के प्रमुख महत्व को वर्मा जी ने स्वीकार किया है। इसी प्रकार सामाजिक प्रगति के लिये आध्यात्म तथा विज्ञान दोनो के समन्वय की आवश्यकता है। आध्यात्म के विकास के लिये विज्ञान की सहायता अनिवार्य है और विज्ञान को आध्यात्म के निर्देशन की अपेक्षा है।[2]

'टूटे काँटे' मे कृषक जीवन के अगणित दु खो और शासन सबधी घोर अव्यवस्था का चित्रण है। यहाँ वेश्या-जीवन की यातना और वेश्या के पुनर्स-

---

१. कृपया देखिए, झाँसी की रानी...पृ० १६३, २४६, २४७, ३२०, ४१८, ४७३, ४६२, ४६३, ४६७

२. अमरबेल...पृ० २००, ४५०, ४७६, ४७७

स्कार पर वर्मा जी की दृष्टि विशेष रूप से केन्द्रित है। 'अहिल्याबाई' युग के अन्धविश्वासो और दुराग्रहो मे घिरी हुई एक शासिका की कर्तव्यपरायणता की कहानी हे।

वर्माजी का जीवन सबधी दृष्टिकोण

वर्मा जी मानव-जीवन के निकट हैं, उनकी कला उसी के लिये है। उन्होने जीवन या समाज मे जो कुछ देखा है उसे अपनी रचनाओ मे ला रखा है। उन्हे आज या बीते हुए कल के समाज मे जो अग्राह्य दीख पडा है उसे सामने लाये है किंतु उसकी अभिव्यक्ति मे कही अरुचि या अश्लीलता न आ जाये इसका ध्यान उन्होने सदैव रखा हे। अग्राह्य का दुष्परिणाम सामने रख कर वे ग्राह्य की ओर इंगित करते है। उनकी दृष्टि निर्बल को सबल, अव्यवस्थित को सुव्यवस्थित और कुरूप को सुन्दर बनाने पर रहती है। प्रत्येक पग पर उनमे जन-कल्याण की भावना सजग रहती है। इस प्रकार उपन्यासो मे उनका लक्ष्य 'सत्य, शिव, सुन्दर' की साधना रहता है। जीवन के ठेठ यथार्थ मे आदर्श का गहरा पुट देना उन्हे भाता है।[1] इसी को दूसरे शब्दो मे उनका आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कह सकते है। कला जीवन की प्रेरणा से ही प्रस्फुटित होती है। 'कला के लिये कला' के विषय मे अचल (अचल मेरा कोई) द्वारा वह कहलवाते है—'(यह) एक सुन्दर वाक्य है और कुछ नही। स्वान्त सुखाय कुछ हो सकता है, पर कला के लिये कला तो निरर्थक है। बिना किसी प्रेरणा के कला का विकास हो ही नही सकता।'[2]

वर्मा जी का विश्वास है कि सृष्टि के करण-करण मे एक महान् सत्ता व्याप्त है, भले ही उसे हम ईश्वर कहे अथवा और कुछ। अत सृष्टि के जीवो मे भेदभाव मूलक दृष्टि भ्रम की देन हे। प्रेम एकता का पोषक है। मनुष्य की उत्पत्ति अवश्य किसी कारणवश हुई है। जैसा, जो कुछ मिला है उसी मे

---

१ उपन्यास का लक्ष्य, ऊपर ऊपर से, पूर्ण ,,मनोरंजन और भीतर से सत्य, शिव, सुन्दर की साधना, होना चाहिये। अपनी सस्कृति के इस सूत्र का मै कायल हूँ और यही मेरा आदर्श है। अँग्रेजी मे उसको यों कह दूँ—फोटोग्रेफिक रियलिज्म शुड बी ब्लेंडेड विद ए डामीनेन्ट नोट आफ आइडियलइज्म।—मै इसी का निर्वाह करता हूँ। प्रत्यक्ष उपदेश के मै बिलकुल विरुद्ध हूँ। उसकी कोई एसथेटिक वेल्यू नही, चाहे उपन्यास का क्षेत्र आर्थिक हो सामाजिक, राजनीतिक या नैतिक।

—वर्मा जी का पत्र, २३-११-५०

२. अचल मेरा कोई ..पृ० १३८

सतुष्ट रहकर यथाशक्ति कुछ जोडने का प्रयत्न उसे करते रहना चाहिये। अनवरत प्रयत्न का दूसरा नाम जीवन है । प्रयत्न के फलस्वरूप असफलता मिलने पर कही मनुष्य का साहस न छूट जाय अथवा फल की ओर दृष्टि रखने से प्रयत्न मे बाधा न पहुँचे इसलिये फल की वासना से निर्लिप्त रहना आवश्यक है। उसका सिद्धान्त होना चाहिये, 'निष्काम कर्म' । फल स्वत प्राप्त होगा, देर-सवेर भले ही हो जाय। आत्मा मरती नही। उसका तारतम्य अनेक जन्मों मे सुरक्षित है। सासारिक बधनो से मुक्ति-प्राप्ति के हेतु आगामी जीवन को उत्तमतर बनाने का साधन ही जीवन है। इस जीवन पर हमारा आज और आने वाला कल, दोनो निभर है। मनुष्य के पास शारीरिक शक्ति है। शक्ति का निर्देशन करते है, मस्तिष्क और हृदय। इन दोनो का सतुलन और समन्वय ही जीवन मे कल्याणप्रद हो सकता है।

जीवन की एकरसता को भग कर परिश्रम की थकान को दूर करने के लिये हमे कुछ ऐसे क्षण चाहिये जो ताज़गी दे सके । मानव-मन की इस शाश्वत माँग पर वर्मा जी की दृष्टि गयी है। उपन्यासो मे रोमास की उद्भावना इस दिशा मे उनकी निराली देन है।[1] वे इसके द्वारा पाठको को आये दिन सघर्षों से उत्साहपूर्वक जूझने की अपूर्व शक्ति प्रदान करते है।

वर्मा जी ने अपने उपन्यासो मे जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति नाटकीय माध्यम द्वारा की है। उन्होने जीवन सम्बन्धी अपने दृष्टिकोण को घटनाओ मे यत्र-तत्र छितरा दिया है। उनमे से भले, बुरे को परखने का कार्य वे पाठको पर छोड देते है। प्रत्यक्ष विधि का उन्होने कही अवलम्ब ग्रहण नही किया है। हाँ, 'झाँसी की रानी' मे और उसके बाद के उपन्यासो मे वे पात्रों द्वारा अपने विचारो की घोषणा कराने का लोभ सवरण नही कर पाये हैं। कथोपकथन कथा-प्रवाह से अलग हट कर विभिन्न समस्याओ पर प्रकाश डालने लगते है। इस विषय मे हम पीछे चर्चा कर आये हैं।

---

१ अच्छी नींद के बाद, सबेरे की अरुणिमा देखने के लिये जी क्यों ललचाता है ? चलते रास्ते बगीचे के फूलों को देखकर एक क्षण ठहर जाने के लिये मन क्यों मचलता है ? मानव-प्रकृति। मानव त्याग तक अपनी तात्कालिक एकरूपता (मोनोटनी) पर हावी होने के लिये करता है। रोमास इस प्रवृत्ति का बडा सा साथी है। क्रिकेट और कबड्डी को देखकर बिना हाथ पैर हिलाये, आपका मन खेलो को खेलने लगता है, मन के उस खेल से एक ताजगी आती है, ताजगी से शक्ति। यही उसका उपयोग है। यही, कम से कम, उसकी एक प्रकट आवश्यकता है। —वर्मा जी का पत्र, १२.७.५१

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

वर्मा जी के कुछ पत्र

(१)

झाँसी
२३ ११. ५०

प्रियवर सिंहल जी,

सस्नेह

पहले 'स्वतन्त्रभारत' का आपका भेजा हुआ 'अक' मिला फिर २०।११ का पत्र। अनेक धन्यवाद। 'स्वतन्त्रभारत' मेरे पास आता है। आपका लेख पढ लिया था बहुत अच्छा लिखा गया है। मन को भाया।

आपके स्नेहपूर्ण उद्‌गारो के लिये धन्यवाद देना उनके मूल्य का घटाना है। इस स्नेह को अपने स्नेह मे कैसे सचित करलूँ यह कामना के वृत्त की बात है और उसके केन्द्र की। यह तै है कि उसकी परिधि बढ गई। जब कभी लखनऊ आऊँगा आपसे मिलकर बडा आनन्द प्राप्त होगा।

श्री हरीशकर शर्मा और श्री गुलाबराय से बहुत समय से नही मिला। श्री भगवती चरण वर्मा सन् १९४८ मे मिले थे जब मैं लखनऊ के बलरामपुर अस्पताल मे बीमार पडा था—फूड पोइजनिंग हो गया था। अशोकजी पुराने स्नेही मित्र हैं। उन्होने मुझे भी लिखा था कि 'स्वतन्त्रभारत' मे चर्चा करेंगे। आप जो कुछ भी लिखेगे मैं चाव के साथ पढूँगा।

आप जो प्रश्न भी करेंगे उनका उत्तर लिख भेजूँगा। आपके पत्र मे जो प्रश्न दिये हैं उनका उत्तर इस प्रकार है—

१ मैंने सभी उपन्यास भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणो से लिखे है। विशेष दृष्टि कोण से प्रत्येक उपन्यास को अच्छा मानता हूँ वैसे 'बिराटा की पद्मिनी', 'लक्ष्मीबाई', 'अचल मेरा कोई', 'कचनार', 'मृगनयनी', 'लगन' मुझे सबसे अधिक प्यारे है।

२. उपन्यास का लक्ष्य ऊपर ऊपर से, पूर्ण मनोरजन और भीतर से सत्य, शिव सुन्दर की साधना होना चाहिये। अपनी सस्कृति के इस सूत्र का मे कायल हूँ और यही मेरा आदर्श है। अग्रजी मे उसको यो कह दू — फोटो ग्रेफिक रियलइज्म शुड बी ब्लैडेड विद ए डोमिनैन्ट नोट आफ आइडयलिज्म— मैं इसी का निर्वाह करता हूँ। प्रत्यक्ष उपदेश के मै बिल्कुल विरुद्ध हूँ। इसकी कोई एस्थेटिक वैल्यू नही, चाहे उपन्यास का क्षेत्र आर्थिक हो, सामाजिक राजनीतिक या नैतिक।

३. मैने ऐतिहासिक उपन्यासो मे सामाजिक चित्रण केवल कथा निर्वाह या क्रियेशन आफ द एटमासफियर के लिये ही नही किया है वरन् सामाजिक समस्याओ को दृष्टि मे रखते हुए भी, और इस मामले मे मैं स्काट, ड्यूमा, ह्यूगो, नट हम्पसन से अलग हूँ। मेरा मार्ग इनसे भिन्न है। स्काट आवश्यकता से अधिक विस्तार करता है यद्यपि ऐतिहासिक उपन्यासकारो मे वह प्रथम है। ड्यूमा घटनाओ की आँधी बहाता है, ह्यूगो ने अनातोले फ्रास के शब्दो मे 'मोन्सटस' का सृजन किया है (लाइफ एण्ड लेटर्स बाई अनातोले फ्रास), नट हम्पसन पर स्काट की छाप बेहद है। मेने इस सबसे बच निकलने की कोशिश की है। अपना एक पन्थ बनाया है जो बकिम और राखालदास से भी भिन्न है।

४ स्त्री पात्रो मे लक्ष्मीबाई, बिराटा की पद्मिनी, कचनार, पूना, मृग-नयनी, लाखी, छपे हुये उपन्यासो मे पूर्णतया चित्रित है। अप्रकाशित उपन्यास चार है। जब तक ये छपें दो और आते है। तब देखा जायगा।

आपके पास नाटक भी भेजूँगा। सोचता हूँ जब मिलूँगा तब भेट करने से स्नेह कोप मे जो अर्जन होगा वह योही भेज देने से प्राप्त न होगा, इसलिये तब स्वय दूगा। आप मेरे समीप आ गये है। कभी दूर न समझे। लिफाफा काहे को भेजा! लौटाता हू। मेरे तो पैसे बचते, पर आपका अपमान होता। असम्भव।

स्नेही

वृन्दावनलाल वर्मा

(२)

ग्राम श्यामसी
९ १२. ५०

प्रिय भाई सिंहल जी,

आपका स्नेह पत्र तथा लेख यहाँ आज एक वाहक ले आया। रेल, तार, डाक, पक्की सडक, इत्यादि सबसे यह गाँव दूर है। सन् १९४९ मे जगल ही जगल था। शताब्दियो पहले गॉव था। सन् १९४० से ४५ तक जगल साफ करके फिर बसाने का प्रयास किया है। अब ६, ७ घर हो गये है। कुडार २, ३ मोल की दूरी पर है। यहाँ से दिखलाई पडता है। झाँसी मे वकालत छोड देने पर भी, काम नही कर पाता हू, इसलिये यहा चला आता हूँ।

आपका लेख मुझे बहुत पसन्द आया। आपने तटस्थता के साथ लिखा है और आप मेरी बात तक पहुँचे है।

मैंने लिखना सन् १९०५ से आरम्भ किया था। तीन छोटे छोटे नाटक लिखे, इडियन प्रेस ने लिये और ५० रुपये पुरस्कार मे दिये। नवी कक्षा मे पढता था। बोर्डिंग हाउस मे रहता था। एक सप्ताह मे सारे रुपये मूँगफली मटर और दूध मिठाई मे मित्रो के साथ साफ कर दिये। फिर सन् १९०८ तक पाँच नाटक और लिखे। सिर मुडाते ही ओले पडे। पहला नाटक सरकार ने जब्त कर लिया और दो बरस पुलिस और मैजिस्ट्रेट की कृपा दृष्टि मे काटे। फिर पढने मे उलझ गया। सन् १९१६ मे वकालत शुरू की और सन् १९१७ मे मुराद नाटक का एक अक लिखा। कुछ नाटक पहले के लिखे रक्खे थे। बरसातके दिन थे। घर के आँगन मे एक बडे बर्तन मे बरसाती पानी भरा था। मुराद को श्री कृष्णानन्द गुप्त ले गये जो छुटपन से हीमेरे सम्पर्क मे आगये थे। वे आजकल 'सगम' इलाहाबाद के सम्पादक है। सम्भवत मुराद को 'सगम' में प्रकाशित करेंगे।

आपको लेख मे यह सब लिखने की आवश्यकता नही। केवल यह बतलाने की चेष्टा की है कि कलम घिसने का रोग मुझे १९०५ मे लग चुका था।

'जातपॉत' वाले सवाल पर आपने ठीक ही लिखा है। परन्तु यदि मैं दिवाकर और तारा का ब्याह करा देता तो फिर बात अवास्तविक हो जाती। लारी और अटल का तो करा ही दिया। लेकिन बोधन और उसके साथियो को नही रुचा। मैंने प्रवृत्ति की ओर इङ्गित कर दिया है और पाठको की सहानुभूति उस प्रकार के ब्याह के साथ करदी है। एक दिन जब वकालत करता था, झाँसी के सिविल जज के यहाँ एक अपील की बहस करने गया।

नये ही आए थे। बोले, 'आपका 'गढ़ कुंडार' बहुत पसन्द आया।' मैंने कहा, 'धन्यवाद !'

'परन्तु दिवाकर और तारा की कहानी से जाहिर होता है कि आप अन्त-र्जातीय विवाह के पक्षपाती है।'

'हूँ तो।'

'क्या इस युग में ऐसा सभव था ?'

'असभव भी नही था।'

'ब्याह करा देते तो बहुत अखरता।'

'किसी किसी को अच्छा भी लगता।'

'खैर, अपील की बहस करिये। आपने जिस परिस्थिति तक उन दोनो को पहुँचा दिया, वही क्या कम है।'

यह वार्तालाप मुझे लगभग ज्यो का त्यो याद है। सिविल जज पहाडी ब्राह्मण थे, हिन्दी प्रेमी और वैसे सुधारवादी।

आपके लेख को लौटाता हूँ। शायद आपके पास उसकी प्रतिलिपि न हो। जब 'स्वतन्त्रभारत' मे निकलेगा पढ लूँगा।

आपने विक्टर ह्यूगो के सम्बन्ध मे अनातोले फ्रान्स की पूरी बात लिख दी इसका मुझको बडा हर्ष हैं। मैंने अनातोले को अशत ही उद्धृत किया था।

आशा है कि आप स्वस्थ है।

स्नेही
वृन्दावनलाल वर्मा

(३)

झाँसी
२६ १२ ५०

प्रिय भाई सिंहल जी,

आपका लेख तथा पत्र मिले।

आपका लेख विवेचनापूर्ण है। मै आपका पहला लेख भी रख लेना चाहता था परन्तु सोचा शायद आपको अटक पड जाय, इसलिये भेज दिया था। दूसरे को रख लिया है। जब छपेगा दुबारा पढूँगा ही।

आप जब तक पहले से सूचना न भेज दे श्यामसी आने की बात न सोचें। जैसे ही आपने झाँसी से १६ मील की यात्रा लॉरी द्वारा तै की कि यात्रा करते करते आप दो निश्चयो पर पहुँचे—पहला, मैं ऐसेम्बली का मैम्बर हो जाऊँ, दूसरा—मैम्बर होते ही बिल पेश करूँ कि यातायात के साधनो का

तुरन्त राष्ट्रीयकरण कर दिया जाय—और कही का न हो तो उस मार्ग का अवश्य कर दिया जाय जो झाँसी से उत्तर-पूर्व १६ मील, बेतवा पार, श्यामसी की दिशा मे ले जाता है। उस सोलह मील मार्ग को ज्यो-त्यो उस वाहन द्वारा तै किया, जो लॉरी के डारविन की ओरीजन आफ स्पेसीज रूप की याद दिलाता है तो दस मील विन्ध्याचल जी की परिक्रमा किये बिना आप एक डग मारले, तो सही। इसलिये यदि आपके किसी पूर्वजन्म के कृत्य के कारण और अपने इसी जन्म के पराक्रम के फलस्वरूप मैं उन दिनो श्यामसी मे हुआ जब आप इस ओर आने की ठाने तो—लारी तो खैर एक अमर स्थायी अलकार और भाव है—१६ वें मील पर एक ऐसी बैलगाडी की योजना कर दूँ जो आपको दस मील कम से कम ६ घटे मे तो ले ही आवे। फिर वहाँ मैं आपकी सुनूँ और आप मेरी। गर्ज कि आपको झाँसी मे ही मिल जाऊ तो सब सध जायगा, अन्यथा, श्यामसी जो गढ कुडार से ढाई मील पर है मिलने का 'ठिया' रहेगा ही। है पूर्वजन्म या इस जन्म की गर्दिश पर निर्भर।

आपने 'शरणागत','अचल मेरा कोई'—'झाँसी की रानी' और 'मृगनयनी' 'मुसाहिबजू' के विषय मे जो कुछ लिखा है वह स्नेहसिक्त है। मैंने इनके लिखने मे कोई कसर नही लगाई इतना तो मै भी कह सकता हूँ। वैसे भी, जो कुछ लिखता हूँ उसमे कोई कसर नही लगाता। आप जो कुछ लिखेगे उससे कागज कारा नही होगा—'सत्य कहहुँ लिखि कागद कोरे'

झाँसी की रानी से हम लोगो के कुटुम्ब या पूर्व पुरुषो का इतिहास बधा होने के कारण स्वभावत वैसा लिखना पडा—'कलम ने थोडी सी स्याही खाई।' जब परिचय लिख रहा था, तब यह वाक्य यकायक ध्यान मे आया था।

नाटको की प्रतियाँ भेजी जाती है। लखनऊ के तकल्लुफ की बात कहकर नही टाला जा सकता। आऊँगा तब घर पर (१८, ए० पी० मैन रोड पता याद मे कसकर जमा लिया है) तब इतना खाऊगा खैर, पहले से नोटिस क्यो दू ?

'शरणागत' के बाद 'कलाकार का दड' कुछ और कहानियो का सग्रह भी छप गया है। भेज रहा हूँ। 'सत्तरह सो उन्तीस' 'सरस्वती' मे धारावाही आकार मे छपा था। अच्छा होगा यदि आपको किसी पुस्तकालय से 'सरस्वती' के अक मिल जाय। इसमे आपको मेरे मनोवैज्ञानिक सश्लेषण (साइकोलोजिकल सिन्थेसिस) का पता लगेगा।

जैसा कि मैने आपको एक पत्र मे लिखा था मैने (१९०५ मे) पहले

पहले नाटक ही लिखे थे। फिर सन् १६१७ मे जब वकालत करने लगा था एक दिन कुछ पुराने नाटक हाथ पडे, मैने उन सबको स्वर्ग का प्रवास दे दिया। केवल 'मुराद' विचाराधीन रह गया। उसको कृष्णानन्द जी जो उन दिनो यहाँ कालिज मे पढते थे उठा ले गये। अब वह 'सगम' के सम्पादक है। 'सगम' मे छाप रहे है। अब वे नाटक या उनके 'कोई' स्वर्ग का प्रवास समाप्त करके, आते चले जा रहे है।

परन्तु अभी इस साल के लिये कार्यक्रम मे उपन्यासो का लिखना नै है। इनमे दो ऐतिहासिक होगे और एक १६५१ तक के वातावरण पर होगा। 'कोई' नाटक भी बीच मे कूद पडे तो मै जिम्मेदार नही।

कोटा जाने की बडी इच्छा थी, परन्तु आज जान पड रहा है कि शायद न जा सकू। आगामी कार्यक्रम वाले उपन्यास की ऐतिहासिक सामग्री की खोज मे बाहर गया था। सामग्री तो मिल गई, परन्तु थोडा सा जुकाम लेकर लौटा हूँ। उस पर पानी बरस गया है और सावन भादो जैसे बादल छाये हुये है। सोचता हूँ न जाऊ, कौन ठड और पानी के झमेले मे पडे। वैसे भी सम्मेलन के अखाडे या अखाडो से मेरा कोई सम्बन्ध नही। अशोकजी और फतहसिंहजी से खासतौर पर मिलना था, सो फिर कभी देखा जायगा।

स्नेही

वृन्दावनलाल वर्मा

(४)

झाँसी

२८ २ ५१

प्रिय भाई सिंहल जी,

स्नेह पत्र मिला आपको 'अचल मेरा कोई'—और 'लगन' बहुत रुचे यह जानकर हर्ष हुआ। 'लगन' उपन्यास १६२७ मे लिखा गया था।

'मृगनयनी' की बधाई के लिये धन्यवाद। आपने पत्रो मे ससद की कार्यवाही पढ ही ली होगी। रायकृष्णदास ने जो मेरे बडे पुराने मित्र है, कहा था कि मुँह मे दाँत नही रहे। तुरन्त मैने उनको उत्तर दिया था कि भीतर तो है। मै ६१ वी मे हू—सच मानिये, प्राय लगता है कि १८, २० वर्ष का हूँ और ऐसा ही समझता रहूगा उस समय तक जब एक झटका लगा कि उस पार।

मैने एक बात वहाँ और कही थी कि माता की गोद मे जिस भाषा को सीखा और जिस धरती से शरीर की मिट्टी पाई उसका ऋण कभी नही

चुकाया जा सकेगा—मूल कभी नही, ब्याज सम्भवत चुका सकूँ । अभी तक ब्याज भी अशत ही तो चुका पाया है । ससद की बैठको मे बहुत आनन्द रहा । बगाल और महाराष्ट्र के लेखको के सम्पर्क मे हम सब आये—मै भी । हिन्दी के प्रसार का एक यह अच्छा साधन रहा । परन्तु सबसे बडा साधन है फिल्म । इसको तुरन्त हाथ मे लेने की आवश्यकता है । हिन्दी-भाषा का प्रसार साहित्य और कला की व्यापक जन-प्रियता, समाजसुधार इत्यादि सब इस माध्यम द्वारा बहुत आगे बढेगे । अभी तो उल्टा हो रहा है । मैं इस दिशा मे कदम बढा रहा हूँ । फिल्म निर्माताओ के निहोरे करने से काम बिलकुल नही चलेगा । हम लोग स्वय इस उद्योग को हाथ मे लेगे, या इसका राष्ट्रीयकरण करवायेगे । न हो सके आज तो कल देखा जायगा, क्योकि बुढापा तो कभी आने का नही, और जब चला जाऊँगा तब तक छूत आप सबमे काफी फैल चुकी होगी । दृढ कामना है ।

लखनऊ आऊँगा तब अवश्य ही मिलूँगा । एक उपन्यास आधुनिकतम विषय पर लिखने जा रहा हूँ । दो दिन के लिये बाहर चला गया था, उसके कथानक से सम्बन्ध रखने वाले भौगोलिक-प्राकृतिक वातावरण का अध्ययन करने के लिये । लौटा तो समाचार मिला कि 'मृगनयनी' पर डालमिया पुरस्कार भी मिला है । इसकी बात पहले से नही मालूम थी । और एक चिट्ठी ए० आई० आर० दिल्ली की मिली । उसके साथ १७।२ को ब्रॉडकास्ट की हुई 'मृगनयनी' की आलोचना । आलोचना मे कहा गया कि महमूद बघर्रा को एक मन नित्य खाते और माडू के सुल्तान को १५,००० (पन्द्रह हजार) बेगमे रखते जो दिखलाया है वह अतिरेक है और मेरी लेखिनी को लाछित करता है । इन समालोचक जी ने इतिहास पढा होता तो आलोचना मे इतना अज्ञान-प्रदर्शन न हो पाता । ए० आई० आर० को मैंने अभी अभी लिखा है कि पहले अच्छी तरह पढ लेता हूँ तब ऐतिहासिक विषय पर कलम चलाता हूँ । और, उनको हवाला भी दिया है । कुछ न पढे तो डाक्टर ईश्वरी प्रसाद रचित 'हिस्ट्री आफ मेडीवल इण्डिया' (मुस्लिम पीरियड) ही पढ ले जो इलाहाबाद यूनीवर्सिटी की कोर्स बुक भी है । किसी ऐसे-वैसे पत्र मे यदि यह आलोचना निकली होती तो कुछ भी न कह सकता । जिस देश मे सोहराबमोदी के 'पुकार' और 'सिकन्दर' को ऐतिहासिक चित्र कहा जाता है, साफ है कि उसमे इतिहास का ज्ञान व्यापक नही हुआ है, परन्तु उस देश के ए० आई० आर० मे भी यह लक्षण दिखलाई पडे तो थोडा-सा क्षोभ होता है । मैने परिचय मे कुछ लिखा है, उसको भी ए० आई० आर० के समालोचक ने शायद नही पढा । मन चाहता है कि कुछ छपा डालूँ । फिर सोचता हूँ क्यो समय नष्ट करते हो, ए० आई० आर० को

सुनते कितने ह ? वहाँ तो फिल्मी रेकार्डों के 'अपनी पसन्द' के तकाजे ही इतने है कि परवाह किसे हे ?

आपकी आलोचना जब निकलेगी, रुचि और ध्यान के साथ पढ़ूँगा । 'अमृत पत्रिका' मे जो निकली थी उसको बहुत लोगो ने पढ़ा, ऐसो ने भी जो 'अमृत पत्रिका' का नाम भी नही जानते थे ।

आज सध्या समय गाँव जा रहा हूँ । बस अब चिपटूँगा काम पर ७, ८ घटे नित्य । तभी तो दो जून भोजन पाने का हकदार बन सकूँगा । है न ?

स्नेही

वृन्दावनलाल वर्मा

(५)

श्यामसी

११ ३ ५१

प्रियवर भाई सिंहल जी,

आपके २।३ के पत्र का उत्तर आज दे रहा हूँ । ऐसी है यह श्यामसी । वाहक कल पत्र लाया था । यहाँ गर्मियो मे आपके लिए आना द्रविड प्राणायाम का एक बडा दुस्सह रूप होगा । मैं झाँसी मे ही मिलूँगा । आने के कम से कम पन्द्रह दिन पहले लिख भेजियेगा ।

आपकी रेडियो और फिल्म वाली बात बिल्कुल सही हे । अब तो कुछ करना ही पडेगा ।

जब तक प्रेमचन्द जीवित थे, बहुत थोडो ने इनका यश गाया,—वही काम्पलेक्स—जब बिचारे द्वन्द्वो के क्षेत्र से ऊपर चले गये, तब इन लोगो ने साँस भर भर उनकी प्रशसा की । प्रेमचद स्वय इस दोप से बरी थे । 'लगन' उपन्यास जो आपको बहुत रुचा है, उन्हे भी बहुत पसन्द आया था । उन्होने मुझे अग्रेजी मे पत्र लिखा था । पत्र घर पर है पर बात याद हे । उन्होने खुल कर लिखा था—'इट इज नाट ए नाविल, बट ए पैसटोरल पोइट्री ।' यदि कही यह वाक्य छप जाय, आज तक नही छपवाया गया—तो बस मुझे लेने के देने पड जायेगे, हिन्दी के उपन्यास-जगल मे शायद आग सुलग बैठे ।

मैं इतिहास के तत्वो को सुरक्षित रखने की सदा चेष्टा करता आया हूँ—चाहे वह नाटक हो चाहे उपन्यास, परन्तु हो सकता है प्रोफे० फ्रूड (फायड नही) के शब्दो मे—फैक्ट्स आफ हिस्ट्री आर देयर लाइक प्लेइग कार्डस । वन मे बिल्ड आउट आफ दैम ए हाउस, एनअदर ए चर्च, एण्ड यट एनअदर ए टूम्ब ।—मुझसे भी कही कही यह हो गया हो, यद्यपि मै सदा सतर्क रहता हूँ कि इतिहास के तथ्यो एव तत्वो का मनमाना उपयोग न करूँ । परम्पराये

और किम्वदन्तियाँ इतिहास की प्राय सही व्याख्या करती है। मै इन दोनो के समीकरण और समन्वय करने का प्रयत्न करता हू। परन्तु उन ग्रह वालो को कौन समझाये ? व्यर्थ। अपना काम करता जाऊँगा, कोई कुछ भी कहे।

झाँसी की रानी को यदि मैं झाँसी का किला छोडने के उपरान्त ही समाप्त कर देता तो गीता की मानने वाली रानी कैसे सामने आती ? और जूही तथा मुन्दर उसके सहायक चरित्र ? अन्य भी ? यदि मैं वैसा करता तो शायद किसी दिन आत्म-हत्या की भी बात सोचता !!! फिर ये हजरत इन्द्र से प्रार्थना करते कि इस मूर्ख उपन्यासकार के चेहरे पर एक बूँद भी पानी की न बरसाना।

सोमरसेट मॉम के लिए भी किसी दिल जले ने, बहुत दिन हुए कहा था– 'अमुक उपन्यास उसकी बडी भारी विफलता है—इतनी कि वह मर गया।' (उनकी कृपा के बिना भी वह बिचारा अभी जीवित है।) माम ने इस पर कहा कि माई घोस्ट हैज ए जेन्टिल चकिल आन दैम।

अबकी बार एक प्रयोग करने का विचार है—कम से कम पहले सस्करण का परिचय नही लिखूँगा, देखूँ ये ज्ञान-निधान कितने गहरे जाकर कौन सी कौडी लाते है। कैसा रहेगा ?

'सरिता' मे छपी आलोचना पढी थी। 'सरस्वती' वाली नही पढी। आप लिखिए, आपका लिखा चाव से पढता हूँ। ए० आई० आर० वाली आलोचनाये (एक दिल्ली वाली दूसरी जलन्धर वाली) झाँसी पहुचकर भेज दूँगा। जलन्धर वाली मजे की है। अन्त मे कहा कि मुखपृष्ठ बहुत खटकता है।

'भारत' मेरे पास नही आता। जिस अक मे आपकी कहानी छपी हो भेजियेगा। अवश्य पढूँगा। रस लूँगा।

'मृगनयनी' और 'अचल मेरा कोई' पर उ० प्र० की सरकार ने भी पुरस्कार दिया है, कल की डाक से जो समाचार पत्र आये उनमे पढा। अब आपकी मिठाई मे शक ही क्या रहा ?

स्नेही
वृन्दावनलाल वर्मा

(६)

झाँसी
१७. ३. ५१

प्रिय भाई सिंहल जी,

दिल्ली से आज सबेरे लौटने पर आपका स्नेह पत्र मिला। वहाँ के लड्डू–

अखिल भारतीय सास्कृतिक सगम—के लिए गया था। दो दिन रहकर वापिस हुआ। जा नही गये थे क्या वे वास्तव मे पछता रह होगे ?

बेतवा के उग लेख की एक छोटी कहानी है—जो आपको बहुत रुचा है। मेरे पुराने मित्र श्री बनारसीदास चतुर्वेदी नदियो के बडे प्रेमी है। हृदय से कवि है। एक दिन बोले, नील नदी पर एक जर्मन ने काफी बडी पुस्तक लिखी है, तुम बेतवा की सराहना मे एक छोटा सा लेख ही लिख दो। बेतवा मुझको सुख भी देती है और दुख भी। मुझ सरीखे अनेक लोगो को दुख बहुत। उसी का खाका खीचने का प्रयत्न किया है।

ए० आई० आर० वाली आलोचनाये भेजता हूँ। इनको लौटा दीजियेगा। प्रकाशन वाले मिसिल रखते है।

नाम भी किसी किसी को खटका है। नही तो एक साहब क्यो लिखते ?—'क्या कहने है आपके उपन्यासो के। मैने कई उपन्यास तो अनेक बार पढे है और दर्शन कभी नही किये तो भी अपने को आपके बहुत निकट पाता हूँ—' चिट्ठी मे भीतर और बाहर पते पर लिखा था—वृन्दालाल वर्मा !!! यह जितना निकट आए उतना ही इन्होने पहिचाना। मैने उत्तर मे कृतज्ञता प्रकट की और उनको लिखा—'आप इतने निकट आ गये है कि मेरा नाम तक भूल गये। होता ही है ऐसा। धन्यवाद।' तबसे फिर उन्होने कभी कुछ नही लिखा।

'विराटा की पद्मिनी' मुझे भी बहुत पसन्द है। अर्द्धदेव और अर्द्धमानव की कल्पना का विकास, इतिहास के आश्रय से, किया है। परन्तु मेरे लिए, परछाही को लौट-लौट कर न देखना ही हितकर होगा। अन्यथा ठोकर खा जाने की आशका है। चाहता हू आपके सद्भाव को दिनोदिन पाता रहूँ।

आगे के आधुनिक उपन्यास मे एक छोटा सा चिडिया-घर रखने की सोच रहा हूँ। जिसमे कुछ जाने समझे पी-एच० डी०, डी० लिट्० भी होगे। एक मित्र भी है—जो अपने को मेरा शिष्य कहते है। ग्वालियर के १९ वी सदी वाले एक दीवान की नवाब साहब थे वह–कहानी याद आगई। एक एम० ए० पास उनके सामने नौकरी की अर्जी लेकर पहुँचे। अपने गुण सुनाये। नवाब साहब बेवकूफ न थे —मक्कार थे। पूछा, 'मियॉ तुम एम० ए० पास तो हो पर क्या मिडल भी पास किया कभी ?' नवाब का मतलब था—समझदारी 'मिडल' के बराबर भी है क्या ? सो साहब गपनी अपनी समझ की बात है। नतीजा यह कि या तो वे मिडल नही, या मैं नही। किस्साकोता—इसको आप ही लोगो की कलम तै करेगी। मिठाई और नमकीन के साथ यहाँ के

खट्टे बेर भी। तब तो समन्वय होगा। जल्दी मिलने की इच्छा है। देखिये कब पूरी होती है।

स्नेही
वृन्दावनलाल वर्मा

(७)

श्यामसी
१२ ७. ५१

प्रिय भाई सिहल जी

आपका पत्र यहाँ कल सध्या समय एक वाहक ले आया।

खेद है कि आप अस्वस्थ रहे। आपको स्वस्थ रहने का प्रण कर लेना चाहिए। याद है मैंने झाँसी मे क्या कहा था ?

पुस्तक की भूमिका गुलाबराय जी लिखेगे यह जानकर सन्तोष हुआ।

ए० आई० आर० पर किस विषय पर बोले आप ? जब मिलेगे तब सुन लूँगा। यहाँ तो रेडियो से—श्यामसी गाँव मे—कोई वास्ता ही नही।

अब प्रश्नो के उत्तर—

१ जीवन के प्रति दृष्टिकोण विरक्ति का नही है। पदार्थजन्य सुविधाओ पर भी वह दृष्टिकोण केन्द्रित नही है। मेरा विचार (फिलासफी कहना तो दम्भ होगा) जो कला के सम्बन्ध मे है वह जीवन के उस पहलू से ही उतरा है —

फोटोग्रैफिक रियलइज्म ब्लेंडेड इन दि डामीनेन्ट नोट आफ आइडियलिज्म।—आप इसी का विकास, कभी इस दिशा मे कभी उस दिशा मे मेरे सब उपन्यासो मे पाएँगे। इसी लिए मै वास्तविक जीवन से घटनाओ के खरोचने समेटने मे तत्पर रहता हूँ।

२ उपन्यासों की औपन्यासिकता यानी कहानी वह है जिसमे कहानीपन हो सो आप हर उपन्यास मे पायगे—

फेक्ट मेड टु एपियर फिक्शन
एण्ड फिक्शन मेड टु एपियर फेक्ट
दैट इन शार्ट इज माई क्रैफ्ट

३ अच्छी नीद के बाद सबेरे को अरुणिमा देखने के लिये जी क्यो ललचाता है ? चलते रास्ते बगीचे के फूलों को देखकर एक क्षण ठहर जाने के लिये मन क्यो मचलता है ? मानव-प्रकृति। मानव त्याग तक अपनी तात्कालिक एकरूपता (मोनोटनी) पर हावी होने के लिये करता है। रोमास इस प्रकृति

का बडा साथी है। क्रिकेट और कबड्डी को देखकर बिना हाथ पैर हिलाये आपका मन इन खेलो को खेलने लगता है, मन के ऊपर खेल से एक ताजगी आती है, ताजगी से शक्ति। यही उसका उपयोग है। यही कम से कम, उसकी एक प्रकट आवश्यकता है।

४ 'लक्ष्मीबाई' मे जूही-तात्या की प्रेम कहानी वास्तविक घटना है, मुन्दर-रघुनाथ सिंह और मोतीबाई-खुदाबख्श की प्रेम वाली बात मेरी कल्पना है। जूही-तात्या की प्रेम कहानी, रही उतनी ही है जितनी मैंने बतलाई है। शारीरिक सम्पर्क उन दोनो का कभी नही हुआ।

आशा है आप स्वस्थता की ओर अपना दृष्टिकोण वही बनायेंगे जो मेरा है।

स्नेही

वृन्दावनलाल वर्मा

(८)

श्यामसी

२८.१.५२

प्रिय भाई सिंहल जी,

आपका स्नेह पत्र कल यहा मिला। चुनाव क्या था, मुझे तो ऐसा लगा जैसे थकाने वाला कोई षड्यन्त्र हो। और उस थकान मे कितनी बेशुमार गालियाँ खाने को मिली। अकेली कॉंग्रेस पार्टी ने नही, सभी ने दी !! अब हमी आती है। कुछ गालियाँ छापे मे भी आ गई है। सभालकर सजोती हे। कभी दिखलाऊँगा।

अभी तो अपना जनतन्त्र प्राइमरी स्कूल का बालक सा है पर यह सुधरेगा और बढेगा।

अब जब राजनीति मे आ गया हूँ तब उसमे बने रहकर कुछ न कुछ करते रहना पडेगा—यद्यपि पतजी झाँसी आकर मेरे लिये कह गये थे—'लेखक है, आदर करता हूँ, परन्तु लेखक राजनीति को क्या जाने!'

साथ ही कलम की मजदूरी भी करता रहूँगा। इन्ही दिनो दो नाटक लिख डाले। दूसरा तीसरी नवम्बर को समाप्त किया था। चुनाव के दिनो मे उसका प्रूफ देखा करता था। एक बात सही है कि साहित्य और राजनीति मे घोर अन्तर है।

यह जानकर कुतूहल और हर्ष हुआ कि अगले चुनाव मे आप भाग लेगे। मैं भी कुछ न कुछ करूँगा।

लगता है मै हार गया— यानी मेरे वोट कम आये होगे, मिनिस्टर के अधिक ।

बरेली कालेज के हिंदी परिषद् ने १० तारीख को होने वाले अपने समारोह मे बुलाया है । कुछ अस्वस्थ हूँ । यदि स्वस्थ रहा तो—आशा है कि अब और भी अधिक डड पेलू गा—९ तारीख की रात की गाडी से झाँसी छोड़ूँगा, १० को बड़े सबेरे लखनऊ स्टेशन और दोपहर बाद बरेली । आपसे मिलने की कोशिश करूँगा । झाँसी छोडने के पहले आपको लिखूँगा ।

स्नेही
वृन्दावनलाल वर्मा

(९)

झाँसी
२८.४.५४

प्रिय भाई शशिभूषण जी,

२७।७ का पत्र अभी अभी मिला । 'साहित्य सदेश' का अङ्क भी मिल गया 'मृगनयनी' पर आपने गहराई के साथ लिखा है । मिलने पर बाते करूँगा ।

मुझे हर्ष है कि आपको 'अमर बेल' उपन्यास रुचा । इसके लिखने के पहले मुझे अध्ययन पर काफी परिश्रम करना पडा था । ससार के भिन्न-भिन्न देशो की कृषि व्यवस्थाओ की जाँच पडताल करने मे ही एक वर्ष लग गया । फिर अपने यहाँ की भूमि-व्यवस्था को मथना पडा । रूस के कलैक्टिव फार्म का अध्ययन कुछ और पहले कर चुका था । माइकिल शैलोखौत के 'विरजिन सोइल अपटर्न्ड' की भूलो और पूर्वाग्रहो से बचना था । इत्यादि इत्यादि । मतलब यह कि इस उपन्यास के लिखने के पूर्व द्रविड प्राणायाम करना पडा था । फिर लिखना सहज हो गया । एक बात से मुझे सहायता मिली—सोशलिस्ट एकोनिमी का विद्यार्थी तो रहा ही हूँ जिला कोआपरेटिव बैंक का मैनेजिंग डायरैक्टर २५,२६ वर्ष से हूँ ।

'आजकल' की प्रतीक्षा करूगा ।

स्नेही
वृन्दावनलाल वर्मा

(१०)

ग्राम श्यामसी
९ ५.१९५४

प्रिय भाई शशिभूषण जी,

पत्र मिला, पुस्तक मिली और 'बडे भैया' भी ।।

सब पढ गया ।

पुस्तक बहुत शोध के साथ लिखी गई है । मेरी बधाई और आपकी कलम को मेरी कलम की असीस ।

'बडे भैया' मे तो आपने हद ही करदी ! खूब तो लिखा । ऐसे स्नेह को पाकर ही तो नसो मे जोश उमडता है ।

आजकल एक उपन्यास लिख रहा हूँ । पूर्ति पर आ रहा है । कई महीने सामग्री तैयार करने मे लग गये उत्तरवैदिक काल पर लिखा है । फिर एप्रिल मई की गरमी तो मालूम नही पड रही है । चिपटा रहा हूँ ।

आशा है कि जल्दी छपेगा । छपने पर पहुँचेगा ।

'अमरबेल' उपन्यास १९५३ मे छपा था पहुचा न हो तो पहुच जायगा ।

स्नेही
वृन्दावनलाल वर्मा

(११)

झाँसी
२२ ११ १९५५

प्रिय भाई सिहल जी,

आपका १५।११ का पत्र गाँव से लौटने पर मिला । कल सध्या समय आया हूँ।

इसी बीच मे एक नाटक लिख डाला है । नाम है–'देखादेखी' सामाजिक है । अभिनीत होने के उपरात प्रकाशित होगा । आजकल प्रेस मे 'मृगनयनी' का नया सस्करण छप रहा है ।

धूप मे अधिक रहने के कारण आँखो मे कुछ तकलीफ है । इसलिये लिखना पढना थोडे समय के लिये स्थगित करता हूँ । ठीक होते ही एक सामाजिक उपन्यास लिख डालने की ठानी है ।

मेरे उपन्यासो पर लिखते समय एक बात का ध्यान रखियेगा—'कोतवाल की करामात' मेरा लिखा नही है । गगा पुस्तकमाला वालों ने मेरा नाम गलत डाल दिया है । एक मित्र का लिखा है । प्रकाशन के लिये मैंने भिजवाया बस इतना ही दायित्व था मेरा । कई बार प्रतिवाद भी छपवा चुका हू ।

पाँच छ महीने हुये कुछ मित्रो के आग्रह पर मैंने 'अपनी कहानी' लिखनी शुरू की थी। १९२०,१९२१ तक ही आ पाया हू। कभी कभी ही लिख पाता हू। श्रीमती महादेवी वर्मा ने बहुत आग्रह किया तो क्रमश छपने के लिये इलाहाबाद साहित्यकार ससद द्वारा प्रकाशित 'साहित्यकार' मे टाइप करवा के भेजता रहता हूँ। ऐसे दो अश भेज दिये हे। 'साहित्यकार' मे पढियेगा। १३० पृष्ठ से अधिक लिख चुका हूँ। सभवत १०० और लिखने पडे। कह नही सकता कब तक लिख पाऊँगा। 'अपनी कहानी' मे शिकार सम्बन्धी अनुभव नही दुहराऊँगा क्योकि वह 'दबे पाव' नाम की पुस्तक मे अलग छपगे। पुस्तक तैयार हे। देखू कब तक प्रकाशित हो पाती हे। पिछले महीनो मे चि० सत्यदेव को मोतीभरा हो गया था। हम सब बहुत चिन्तित रहे। अब वह निराग है परन्तु निबल अब भी है। उनकी बीमारी के कारण काम बहुत पिछड गया हे। 'अहिल्याबाई' दिसम्बर के पहले सप्ताह तक, शायद प्रकाशित हो जाय। तीन उपन्यास और छपने को प्रेस मे रक्खे है। आपको जानकर हप होगा कि 'लगन' का कन्नड मे अनुवाद हा रहा हे और 'लक्ष्मीबाई' का भारतीय भाषाओ के अलावा चेकोस्लोवेकिया की भाषा मे अनुवाद हो रहा है। एक चेक विद्वान कर रहे हे। यदि आप अवकाश मिलने पर दो तीन दिन के लिये दिसम्बर के अन्त या जनवरी मे आ जावें तो आपके अनेक प्रश्नो का उत्तर मेरे लिये सहज हो जायगा। वैसे लिख भेजना तो बहुत दुस्तर हे। हे न ? एक नया रोग और हो गया हे। लिखते लिखते कलाही मे दर्द होने लगता है तो थोडी देर ठहर जाना पडता है। अँग्रेजी कोश मे इस रोग का नाम बहुत बढिया है—'राइटर्स क्रेम्प'। आपने जो ब्योरा माँगा है वह लिखवाया तो जा सकता है, परन्तु लिखना तो बस का नही। इसीलिये कहा कि कभी दो तीन दिन के लिये आजाइये।

प्रबन्ध की रूप-रेखा देख ली। ठीक हे। जब मिलेगे चर्चा होगी ही।

मेरा स्वास्थ्य अब ठीक हे।

इ जीनियर साहब को मेरा नमस्कार कहिये।

स्नेही

वृन्दावनलाल वर्मा

पुनश्च—

मेरी जन्म तिथि ९ १ १८८९ है (पौष शुक्ला अष्टमी स० १९४५) आपने जो पहले आलोचना पुस्तक लिखी थी वह और अब जो लिखी हे वह भी, भिजवा दीजियेगा।

(१२)

झाँसी
२० १ १९५६

प्रिय भाई सिंहल जी,

दो दिन के लिये ओर्छा जाना पडा इसलिये उत्तर देर मे आ रहा है।

आप देर सबेर पत्रोत्तर दे तो जरा भी हज नही । बिलकुल खिन्न मत होइये । स्वास्थ्य के प्रति सजग रहने की बडी जरूरत है । आशा है आप पूर्ण स्वस्थ रहने का ध्यान रखेग ।

'अपनी कहानी' मे मै अभी तो सन् १९२०,२१ तक ही पहुच पाया हूँ । इधर उधर की व्यस्तता के कारण आगे नही बढ पाया । अब महादेवी जी का त गजा (इन्हे मै छोटी बहिन की तरह मानता हू और वह मुझे अपना बडा भैया) 'अपनी कहानी' को पूरा कराके छोडेगा । कुछ और भी लिख रहा हूँ । अवकाश मिलने पर 'अपनी कहानी' भी चलाता चलू गा । 'साहित्यकार' मे निरन्तर प्रकाशित होगी । 'दबे पाँव' अभी तक नही छप पाया । वह अपनी कहानी का ही अङ्ग है । सन् १९५६ मे छप जायगा ।

'भुवन विक्रम' १९५४ मे लिखा था । आजकल छप रहा है । आशा है मार्च के अन्त तक प्रकाशित हो जायगा । आपके पास प्रति पहुँचेगी । उत्तर वैदिक काल के समाज का चित्रण है—अर्थात् जैसा मै उसे समझा हूँ ।

'अहिल्याबाई' की प्रति कार्यालय भेजना भूल गया था । अब पहुच गई होगी ।

आपने अपने निबन्ध की जो रूप रेखा बनाई है मुझे ठीक लगी । परीक्षक को भी अच्छी लगनी चाहिये । लगेगी ही ।

मेरे उपन्यासो के अनुवाद अपने देश की विभिन्न भाषाओ मे हो रहे है । चेकोस्लोवेकिया के दो सज्जन मेरे कुछ उपन्यासो का अनुनाद चेक भाषा मे कर रहे है । एक का पत्र अभी हाल मे 'लक्ष्मीबाई' नाटक के चेक अनुवाद की अनुमति हेतु आया था मैने अनुमति दे दी है । वहाँ का एक प्रसिद्ध थियेटर (कार्लोविवरि थियेटर) उसका अभिनय रगमच पर कराना चाहता है । उसकी भी अनुमति मैने दे दी है ।

इ जीनियर साहब को मेरा नमस्कार कहिये ।

स्नेही
वृन्दावनलाल वर्मा

(१३)

झाँसी
२८ १.१९५६

प्रिय भाई सिहल जी,

आपका २०।१ का पत्र उत्तर के लिये रक्खे रहा। आज उत्तर दे पा रहा हूँ।

मुझे हर्ष है कि 'गढ कुडार' आपको बहुत अच्छा लगा। अनेक पाठको को भी बहुत रुचता रहा है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के हाथो इसके लिये ३०,३१ मे स्वर्णपदक भी दिलवाया गया था। परन्तु दो आलोचको ने इसके ऊपर २९ या ३० मे कुछ अजीब सा लिखा था, एक आलोचक जैनेन्द्र कुमार जी और दूसरे, जहाँ तक याद आता है, चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार जी थे। मुझे इनकी आलोचनाओ पर हसी आई थी। प्रत्यालोचना नही की और न करता हूँ। यही हाल अन्य उपन्यासो का भी हुआ। दो का स्मरण ताजा है। एक 'मृगनयनी', दूसरा 'अमरबेल', और ,(याद आ गया!) तीसरा 'लक्ष्मी-बाई' भी। बिना इतिहास पढे ही एक आलोचक ने फरमाया 'मृगनयनी' अति-रजित है। दूसरे बोले सामन्तवाद के पुनर्जीवित करने का 'सफल' प्रयत्न है। 'अमरबेल' के बारे मे कहा उपन्यास नही है सहकारी कृषि पर व्याख्यान है! 'लक्ष्मीबाई' के लिये कह डाला यह तो जीवन-चरित् है! परन्तु जब दूसरी तरह के कुछ लोगो ने नोच खसोट के साथ कुछ लिखा तो चुप रह गए। 'फूलो की बोली' मेरा एक नाटक है। लखनऊ रेडियो से एक आलोचक जी ने बडी प्रशसा करते हुये एक कैंची यह लगादी—'नाटक मे नमस्ते का शब्द कई जगह आया है। लेखक आर्य समाजी नही तो दयानन्दी ख्याल के जरूर है।' मैं सच कहता हू इस पर मुझे बहुत हसी आई थी। अथर्ववेद मे 'नमस्ते' का शब्द आया है, गीता मे है और सस्कृत के 'रत्नावली' नाटक मे भी। बिचारे ऋषि दयानन्द से बहुत पहले ये सब हो चुके है।

मैं आलोचक की अपेक्षा साधारण पाठक को अपनी दृष्टि मे अधिक रखता हू।

कुछ दिन हुये इगलैड के प्रसिद्ध साहित्यकार हेरल्ड निकल्सन ने उपन्यास और कहानी के भविष्य के बारे मे एक बडी कटीली भविष्यवाणी की है। कहता है कि इसका कोई भी भविष्य नही। फिक्शन के सम्बन्ध मे है उसका यह कहना। अर्थात् कल्पना—महज कल्पना— के आधार पर सृजे हुये साहित्य के बारे मे। शुरू मे ही मेरा स्वभाव तथ्यो की खोज और उनके आधार पर लिखने का रहा है। मेरा एक सूत्र है, है अग्रेजी मे—क्रिएटिव ट्रीटमेन्ट आफ

एक्चुअलिटी – तथ्य या वास्तविकता की सृजनात्मक रचना। इसलिये हर उपन्यास या कहानी मे कोई न कोई छोटी बडी समस्या लुके-छिपे या कुछ खुले हुये रख देता हूँ। नही तो 'कोरे फिक्शन' के बारे मे मेरा भी वही मत समझिये जो हेरल्ड निकल्सन का है। मात्र मनोवैज्ञानिक चरित्रो के समावेश या यौन वासनाओ के उद्घाटन वाले फिक्शन का भविष्य तो क्या वर्तमान भी मुझे कुछ अच्छा नही जान पडता, क्योकि, मेरे मत मे, समाज के लिये उनकी उपयोगिता बहुत नही है। मैने अपने लिये जो ध्येय ४० वर्ष पहले स्थापित कर लिया था वह परिधि मे बढ रहा है, घटा नही है।

अब 'अहिल्याबाई' के सम्बन्ध मे आपके 'पाठकीय' दृष्टिकोण के सबध मे —

१ अहिल्याबाई लक्ष्मीबाई नही है और लक्ष्मीबाई अहिल्याबाई नही है। अहिल्याबाई का चरित्र मैने उनके अन्तिम वर्षों से जानबूझ कर बटोरा है। इस आयु और वैसे वातावरण मे भी वह स्त्री इतनी बडी बनी रही यही आश्चर्य है। क्या हम आज उसके चरित्र से कुछ सीख सकते है? मेरा उत्तर हाँ मे है। उपन्यास मे उन परस्थितियो को ज्यादा विस्तृत और केद्रित किया है जिनसे अहिल्या को निरन्तर लडना पडा। अन्य कथाओ का 'पक्का सम्बन्ध एक दूसरे से चाहे न हो पर अहिल्या से तो है—उसी को तो मुझे उजागर करना है। फिर निकल्सन वाली बात—'चरितात्मक उपन्यासो का भविष्य उज्ज्वल और दीर्घ है महज फिक्शन का नही।' छोटे कथानको की जडे उतनी ही पनपाई गई है जो अहिल्या के विकास मे सहायता कर सके। अहिल्याबाई अपनी न्यायप्रियता के लिये प्रसिद्ध थी। जितनी घटनाये उपन्यास मे आई है सब सच्ची है। १०० कैडिल पावर के एक दो बल्ब न लगाकर मैने दस पाँच छोटे छोटे बल्ब लगा दिये है जिससे अहिल्याबाई की मूर्ति पर कई दिशाओ से प्रकाश पडे। ये छोटे बल्ब मूर्ति के बहुत निकट ही लगाये गये है।

आपका कहना सही है कि 'अहिल्याबाई' उपन्यास अहिल्याबाई के चरित्र पर - मजबूत और कमजोर जहाँ जैसा था—प्रकाश डालने के लिये लिखा गया है, परन्तु इससे वह उपन्यास की सज्ञा से वचित नही हो सकता। शुक्ल जी के जिस वाक्य का आपने उद्धरण किया है (कार्य, एक्शन होना चाहिये उपन्यास मे) वह है उसमे। पढिये अब आप उसे इस दृष्टिकोण से।

आश्चर्य है कि आपको मल्हारराव वाला प्रकरण 'शिथिल सा' या निर्जीव सा लगा। अहिल्याबाई को उसे अन्त मे छोडना पडा—'जैसे जान बचाई हो।' (आपके शब्द) बिल्कुल ऐसा ही हुआ है। इतिहास की बात है। मैने तत्सम्बन्धी पत्रो का 'परिचय' मे हवाला दिया है। जैसा हुआ उस पर पाठको

को पहुचाने के लिये, अहिल्याबाई का कष्टो से सघर्ष और तत्कालीन वातावरण को प्रस्तुत करने के लिये, उसे मैने वैसा किया है ।

सिन्दूरी, आनन्दी और भोपत की कथा आपको उपन्यास मे 'जुडी सी' लगी इस पर तो मिलने पर ही बात हो सकेगी । बहुत से पाठक है जिनको ऐसा नही लगा । इधर उधर जब कभी इसके सम्बन्ध मे छपे, पढियेगा ।

'ऐतिहासिक और भौगोलिक वर्णनो की असतुलित भरमार के कारण रोचकता लुप्त हो गई है' – आपके शब्द । इसके सम्बन्ध मे यहाँ क्या लिखू ? यदि यह 'भरमार' अहिल्याबाई के चरित्र विकास मे सहायता करती है तो मुझे कोई पछतावा नही । अग्रेजी उपन्यास पढने वाले पाठक क्या कभी हार्डी, टामस मैन, बरजोरसन (नारवेजियन है, नाम की स्पेलिंग ठीक नही याद है इस समय) उन देशो के भोगोलिक वर्णनो और ऐतिहासिक वर्णन – विस्तारो से (स्काट और ह्यूगो मे है जैसे) घबराते है ? भरमार तो उनमे भी बहुत है । हम लोग अपने आसपास के भूगोल से ही परिचित है, इसलिये मालवा इत्यादि के स्थानो का वर्णन खटक जायगा यह मै मानता हूँ । परन्तु मालवा वालो को बहुत पसन्द आयगा यह मुझे आशा है ।

अहिल्याबाई अपने काल की राजनीतिक समस्याओ से उतनी ही लड सकी जितना एक महानारी लड सकती थी । यही उसकी दुबलता और सबलता है । मल्हारराव को वह अपना वारिस बनाना चाहती थी । वैसे मल्हारराव को ऐसी अहिल्याबाई हृदय मे एक कोमल कोना दिये रही इसमे आश्चय या परिताप की कोई भी बात नही है ।

'गनपतराव के चरित्र मे नाटकीय परिवर्तन बहुत खटकता है'—आपके शब्द । हुआ ही था उसमे नाटकीय परिवर्तन । मल्हारराव का बुरा बर्ताव, आनन्दी का मनमुटाव—इत्यादि कुछ कारण बने । फिर अहिल्याबाई की धर्मानुशीलन सम्बन्धी कीर्ति, उनके दामाद का वह पत्र, चदेरी का धोती जोडा, शिव की मूर्ति और बही खाते मे दर्ज किये गये थोडे से चावल—ये गनपतराव मे वैसा परिवर्तन उत्पन्न करने के लिये क्या कम थे ? वह परिवर्तन ऐतिहासिक घटना है । गनपतराव मे जामघाटी पर—जहाँ वह डाके डालता था और जहाँ उसे ऊपर लिखा सब देखने को मिला था—क्यो न नाटकीय परिवर्तन उपस्थित करते ?

जो चित्र उपन्यास के मुखपृष्ठ पर है वह अहिल्याबाई के एक समकालीन का बनाया हुआ है । अहिल्या-स्मारक-समिति की कृपा से प्राप्त हुआ है । वह अपने जीवन काल मे ही देवी समझी जाने लगी थी इसे मत भूलिये । उपन्यास को कोई धर्म ग्रन्थ समझ ले तो मै क्या करू ? उस समय के चित्रकार ने

अहिल्याबाई को जैसा कुछ समझा वैसा उसका चित्र बना दिया और मैंने अपने उपन्यास पर उसका ब्लाक छपवा दिया। इससे अधिक और क्या कह सकता हू।

किसी भी उपन्यास की रोचकता पाठक के तत्कालीन मूड पर निर्भर है। आपने इस उपन्यास को दो दिन मे पढा। कब कब पढा यह आपसे मिलने पर पूछूँगा। हो सकता है आपने दिन भर की थकान के बाद पढा हो, हो सकता है खूब भोजन करके पढा हो। हो सकता है किसी ऐसे मूड मे पढा हो जब मेरे किसी उपन्यास का रोमास रुचि पर सवार रहा हो !! यह सब मेरा अटकल है। आपने स्वय अपने पत्र के अन्त मे कुछ इसी तरह की बात लिखी है।

मुझे विश्वास है कि जब आप फिर कभी दूसरे मूड मे पढेगे और पहले के जमे किसी भी पूर्वाग्रह या पूर्व भाव को मन मे न रहने देगे तब यह उपन्यास भी कदाचित् रोचक लगे।

पर आपका यह कहना बिलकुल सही है कि अहिल्याबाई के चरित्र पर प्रकाश डालना इस उपन्यास का (या चरित् कह लीजिये) खास ध्येय है।

सच मानिये मैं आपको बिलकुल अपना समझता हू—आप मेरे बहुत समीप रहे है और है। इसीलिये इतना लिख डाला किसी और को कुछ न लिखता। हँसकर रह जाता।

सुखी रहिये। खूब सोचिये और लिखिये। आगे यदि इतना लम्बा पत्र न लिखूँ तो गप्पगोष्ठी मे बातें तो बहुत करूँगा ही।

इजीनियर साहब को नमस्कार कहिए।

स्नेही
वृन्दावनलाल वर्मा

(१४)

झाँसी
१२ २. १९५६

प्रिय भाई सिंहल जी,

पत्र पढकर हर्ष हुआ। दो महीने के भीतर ही 'भुवन विक्रम' आपको मिल जायगा। वर्तमान और भविष्य के लिए मुझे अतीत मे जो प्रेरक, प्रबोधक और ओजवर्धक जान पडा अधिकाश उसको ही सजोया है, परन्तु अतीत मे जो त्याज्य है कुछ तो उसे भी ले आया हूँ। उपन्यास कुछ बडा हो गया है, परन्तु जब लिखने बैठता हूँ तब यह नही सोचता कि जो कुछ लिख रहा हूँ उसका आकार कितना हो जायगा मेरा सबसे छोटा उपन्यास शायद

'लगन' है । प्रेमचन्द जी को बहुत पसन्द था । एक बार उन्होने अँग्रेजी मे लिख भेजा था—'इट इज नॉट ए नावेल बट पेसटोरल पोइट्री ।'—यह केवल आपकी जानकारी के लिए लिख रहा हूँ और कोई उद्देश्य नही । जिस किसी भी उपन्यास मे कोई भी उपमा जो दुबारा आ गई हो नोट कर लेना । दूसरे सस्करण मे सुधार लूँगा ।

इन्जीनियर साहब को मेरा नमस्ते कहिए ।—'नमस्ते' वही प्राचीन !!!

स्नेही
वृन्दावनलाल वर्मा

(१५)

झाँसी
१७. २. १९५६

प्रिय भाई सिहल जी,

'ऐतिहासिक उपन्यासकार वर्मा जी' पुस्तक मिल गई । आपको धन्यवाद क्या दूँ ? प्रकाशक को धन्यवाद ।

अभी तो इधर-उधर से ही थोडी पढी है । अवकाश मिलने पर अवश्य ही आद्योपान्त पढूँगा ।

कानपुर के एक श्री शिवकुमार मिश्र ने मेरे ऊपर, एक मोटी सी पुस्तक लिखी है । आई और एक दिन मेरे पास रही, थोडी सी पढ पाई कि एक मित्र उठा ले गए । इस पुस्तक को आप खरीदना मत । जैसे ही मेरे पास लौटी आपके पास भिजवा दूँगा । उन्होने 'गढ कुण्डार' के अन्त के बारे मे लिखा है कि मुझे तारा और दिवाकर का ब्याह करा देना चाहिए था । शायद यह भी चाहते कि सौ पचास भले आदमियो की बरात और भोजनपान भी बना देता । जो उस युग मे हो ही नही सकता था कैसे करा देता ? आपने इस सम्बन्ध मे ठीक लिखा है ।

'बिराटा की पद्मिनी' के अन्तिम परिच्छेदो के बारे मे कुछ इस तरह की कहते है—

'वर्मा जी रूढिवादी है ।' मैने पद्मिनी को सेमी ह्यूमन सेमी डिवाइन चित्रित किया है न । डाक्टर सुनीति कुमार चट्टोपाध्याय ने 'मृगनयनी' इत्यादि उपन्यासो के सम्बन्ध मे जो कुछ लिखा है उससे तो मै 'रूढिवादी' नही रहता ।

पढकर हँसी आई थी और अपने इन आलोचको पर थोडा सा तर्स । खैर यह तो मेरे आपके बीच की बात रही ।

'अचल मेरा कोइ'—आपको बहुत बहुत पसन्द आया यह जानकर मुझे बड़ा

हर्ष हुआ। आप उस पर कुछ अधिक लिखेंगे अवश्य पढूँगा। 'अचल मेरा कोई' —सच्ची घटना पर आधारित है। बात सन् ४३, ४४ की है। कानपुर के एक परिवार से सम्बन्ध रखता है। मैंने परिचय मे बात गोल कर दी है। मै नही चाहता था कि सुधाकर के असली रूप का जी दुखाया जावे।

जिन सामाजिक समस्याओ (स्त्री स्वातन्त्र्य सम्बन्धी विशेषत) को ध्यान मे रखकर मैने कहानी धुनी बुनी है वे पाठको की समझ मे सहज ही उतर जावेंगी और शायद पाठको को उनके हल ढूँढने मे भी कुछ सहायता मिल जायगी ऐसा मेरा विश्वास है। आपके पत्र मे भी इसी का सकेत है।

आपको शायद यह पहले न बतलाया हो कि काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने 'अचल मेरा कोई' पर २०० रु० का पुरस्कार दिया था। उन दिनो आसाम के बाढ ग्रस्त लोगो की सहायता करने पर बहुत आग्रह था। गाँव मे था। पैसे की जरूरत नही मालूम हो रही थी तो मैंने यह रकम बनारस से सीधी वही भिजवादी। जहाँ तक याद आता है का० ना० प्र० सभा ने इस उपन्यास को उस समय तक के पाँच वर्षों के भीतर के उपन्यासो मे सर्व श्रेष्ठ बतलाया था। परन्तु मुझे यह सर्टीफिकेट अच्छा नही लगा था क्योंकि 'लक्ष्मीबाई' और 'कचनार' इस उपन्यास से पहले लिख चुका था।

पर हाँ है अपने अपने मन की रुचि की बात।

इन्जीनियर साहब को मेरा नमस्कार कहिये।

स्नेही
वृन्दावनलाल वर्मा

(१६)

झाँसी
२३. २ १९५५

प्रिय भाई सिंहल जी,

पिछला पत्र मिला होगा। 'बीरबल' नाटक भेज रहा हूँ। इसके पढ़ने पर आपको पता लग जायगा कि रूढिवादी हूँ या क्या। एक आलोचक का हवाला देकर मैने पिछले पत्र मे चर्चा की थी।

मै अपनी बात कहने का माध्यम कभी उपन्यास को बनाता हूँ, कभी नाटक को। आप मेरे कुछ नाटक भी पढ ले तो आपको अपना थीसिस लिखने मे सहूलियत रहेगी। 'बीरबल' नाटक ऐतिहासिक है। इसलिये भी भेज रहा हूँ। उसमे कुछ समस्याय है।

इन्जीनियर साहब को नमस्कार।

स्नेही
वृन्दावनलाल वर्मा

(१७)

झाँसी
२६ २ १९५९

प्रिय भाई सिहल जी,

आपका २३।२ का पत्र मिला। आपका कॉलेज मैगजीन मिल गया। पहले अपने सम्बन्ध वाला लेख पढा। स्वाभाविक बात। फिर कुछ अन्य लेख पढे— हिन्दी अंग्रेजी के भी। मुझे पत्रिका बहुत पसन्द आई।

आप सबको मेरी हार्दिक बधाई। 'अचल मेरा कोई—' को आप एक दो बार और पढ लेगे। ऐसी आशा है। आपके उठाये प्रश्नो पर मिलने पर बात करूँगा। अचल के चरित्र के सम्बन्ध मे साकेतिक तौर पर निशा और कुन्ती ने जो कुछ कहा है उसे फिर पढ लेना। अचल जैसा आदमी मैंने देखा है— यानी दूर का एक सम्बन्धी ही है। उसने भी लगभग वही किया।। परस्थिति का अन्तर अवश्य थोडा सा है। कुन्ती का आत्मघात करना भी एबनारमल की परिधि मे आता है। मुझे जो समस्या पाठक के गले उतारनी है उसके लिये कुछ इसी प्रकार के व्यक्तियो का उपयोग किया है। कुन्तीवाली घटना भी सच्ची है जैसा कि मैंने आपको लिखा है।

अच्छा तो अब मिलने पर ही अधिक चर्चा होगी, क्योंकि लिखने मे तो बहुत थोडा ही आ सकता है।

आशा है आप स्वस्थ है। हाँ 'बडे भैया' वाला लेख पूरा पढ लिया। बहुत अच्छी तरह लिखा गया है। छापे की एक भूल हो गई है। 'सेनापति ऊदल' नाटक १९०७ मे लिखा था १९०४ मे नही।

इंजीनियर साहब को नमस्कार

स्नेही
वृन्दावनलाल वर्मा

(१८)

झाँसी
२५.७ ५९

प्रिय भाई सिंहल जी,

दो दिन के लिये मै भी नैनीताल गया था। एक मीटिंग के लिये गया था। उधर भी इन गरमियो मे जाना पडा।

आपकी चिट्ठी जिस समय आई उस समय, अकस्मात् ही कहना चाहिये, मै आपकी बाबत सोच रहा था।

मुझे हर्ष है कि आपको 'अमरबेल' उपन्यास अच्छा लगा । गाँवो और अधिकाश पात्रो के नाम भर बदल दिये है । घटनाये सच्ची है । विक्रम और उदेता पात्र ज्यो के त्यो है— नाम सच्चे है । विक्रम ने जो कुछ किया है उस को अधिक नही बढाया । उतना ही उपन्यास के लिये काफी समझा । उसका हाथ एक मुसलमान ने तोड डाला था । उस मुसलमान को नही लाया हू । दो और है वहाँ । ये तीनो घोर प्रतिक्रियावादी है । आजकल ठाकुरो (गत जमीदारो) के साथ है । इनको अच्छा बनाकर पेश करना झूठ होता । ज्यो का त्यो पेश करता तो लोग कहते कि मुसलमानो को गिराने की कोशिश की । हमारे यहाँ के गाँवो मे इस उपन्यास का खूब प्रचार हुआ है, क्योकि लोगो को बहुत सी घटनाये मालूम है । यदि उन मुसलमानो को 'भला' बनाकर खडा करता तो उपन्यास की अपील कमजोर पड जाती । जब आप मिलेगे तब कुछ घटनाये सुनाऊँगा ।

आप तो दो तीन महीने उपरान्त ही आ सकेगे । ठीक है, जब बहुत सा लिखलो तभी मिलना ठीक रहेगा ।

इसी बीच मे मै भी इधर उधर की यात्राये समाप्त कर लू गा ।

आशा है आप स्वस्थ है ।

इन्जीनियर साहब को मेरा नमस्कार ।

स्नेही
वृन्दावनलाल वर्मा

(१९)

झाँसी
२१ १२ ५६

प्रिय भाई शशिभूषण जी,

१९।१२ का पत्र मिला ।

मेरे उपन्यासो के जितने पात्र है–वे सब मेरे जीवन के अनुभवो के परिणाम है । उनमे से बहुत से तो मेरे सम्पर्क मे आये है । फिजिगाग्नामी पर एक पुस्तक कुछ वर्ष हुये पढी थी । उसके कुछ निष्कर्षों से मै सहमत नही हू और न विक्टर ह्यू गो की इस धारणा या भावना से कि कुरूप जन ही उत्कृष्ट होते हे, और न वाल्टर स्काट के इस विश्वास से कि सुरूप ही भले या वीर होते है ।

श्री कृष्ण प्रताप जी को मैं कभी नही भूला । उन्ही के घर तो उस दिन आचार्य जुगल किशोर और उनकी पत्नी एव श्री टी० एन० महेन्द्र से जा मेरे

पुराने परिचित से भेट हुई थी। अब की बार जब लखनऊ जाऊँगा, उनसे मिलू गा। आजकल 'स्वतन्त्रता सग्राम—१८५७' पर फिल्म-स्क्रिप्ट लिख रहा हू। उत्तर-प्रदेश-सरकार उसके आधार पर एक बडा सा फिल्म बनाने जा रही है। इसके उपरान्त एक नाटक लिखने का विचार है फिर उपन्यास।

इजीनियर साहब को नमस्कार।

स्नेही

वृन्दावनलाल वर्मा

(२०)

झाँसी

६ ७ १६५७

प्रिय भाई सिंहल जी,

पहले कुछ अस्वस्थ रहा। फिर आवश्यक कार्य से भोपाल जाना पडा। एक सप्ताह उपरान्त लौटा हूँ। आपके पत्र के उत्तर मे इसी कारण विलम्ब हुआ।

सन् १६२० से १६५७ के बीच मे इतनी घटनाये घटी है, मेरे अनुभव मे इतने विलक्षण या असाधारण-से नारी नर आये है कि अत्यन्त सूक्ष्म मे भी उनका वर्णन करना सम्भव नही है। कुछ बहुत थोडी सी आप बीती घटनाये यहाँ लिखे देता हू—

(१) सन् १६२२ मे झाँसी के कुछ काँग्रेसी नेताओ ने मेरे एक परममित्र का जो क्षयग्रस्त थे 'बाईकाट' किया जिसके कारण उनका देहावसान हो गया। मै काँग्रेस से अलग हो गया और इन नेताओ का विरोध करता रहा। अहिंसा की लम्बी चीख-पुकार करने वाले भी कितना घोर कर्म कर सकते हैं यह मन मे बैठता गया। 'साधुन प्रति साधुन' बिलकुल ठीक है—जो इसका पालन न करे वह नीच है। परन्तु हर एक के प्रति पूर्ण अहिंसा का सिद्धान्त मुझे नही जँचता। कभी कभी हिंसा जरूरी ही नही, बिलकुल उचित भी है।

(२) सन् १६४५ के मई मास मे झाँसी से २७, २८ मील की दूरी पर एक मित्र के भाजे की बरात मे झाँसी से ताँगे से गया। रात को ८, ६ बजे पहुच पाया। बरात मे तडक-भडक थी पचास पचपन बन्दूके और इतने ही गैस के हण्डे होगे। जहाँ बरात गई थी वह गाँव पहाडी पर बसा है। बरात का डेरा एक दूसरी पहाडी के नीचे वृक्ष कुज मे था। दूल्हे पर ४०, ५० हजार के गहने थे। निकट ही डाकुओ का एक बदनाम बडा गिरोह था। मुझे मार्ग मे ही उनकी कुछ आहट मिल गई थी।

पहुंचते ही मैंने अपने मित्र से कहा—'केवल दो डाकू इस बरात को लूट सकते है ।'

मित्र ने आश्चर्य प्रकट किया—'कैसे ?'

म ने बतलाया—'दो डाकू इसी पहाडी पर किसी ओट मे बैठकर दो तीन बन्दूक वालो को मार दे और ४, ५ हण्डे फोड डाल तो सब भाग जायेगे, दूल्हा लूट लिया जावेगा, ऐसे ।' तब क्या किया जाय ? यह सवाल उठा । मैं ने सुझाया—'एक सन्दूक मे बन्द करके सब गहना डेरे पर छोड जाओ । केवल मैं और मेरा शिकारी साथी (करामात उसका नाम है—यही बाद का 'इब्न करीम' 'गढ कुडार' मे बनाया गया है) बन्दूके लेकर यहाँ रहेगे और लेटे लेटे सन्दूक की रक्षा करेगे । आप तिलक आदि का दस्तूर लडकी वाले के घर जाकर कराइये ।' मित्र मान गये । बरात चली गई हम केवल दो वहाँ, उस सन्दूक के पास रह गये । डेरे मे अधेरा कर दिया और बन्दूके साधे हुए हम दोनो लेट गये । डाकू निकट ही टौरियो मे छिपे थे । मैने अपने जीवन की सबसे बडी मूर्खता की, मै चिल्लाया—'है तुममे स किसो मे दम तो आओ ! गहना रक्खा है !! और बन्दूके भी तैयार ह !!!' इस चिनौती को दुहराया भी । पहले दर्जे की मेरी मूर्खता । परन्तु परमात्मा की कृपा थी । जीवन मे कुछ करने को बाकी था । इस लिये डाकू वहाँ से धीरे धीरे चले गये । सबेरा होने के पहले बरात डेरे पर लौट आई । मित्र को सब हाल सुनाया । उनकी आँखो मे आँसू आ गये, और जब दो तीन घण्टे बाद समाचार मिला कि उन डाकुओ को पुलिस ने घेरने का प्रयास किया और वे पुलिस के घेरे से निकल गये तब वह कुछ भयभीत हो गये थें ! था न यह मेरी परम मूखता का कृत्य ?

(३) १९२४ के दिसम्बर मे रात के समय बेतवा नदी के तीर से शिकार की टोह से लौट रहा था कि एक गहरे खड्ड मे जा गिरा । बन्दूक के दस्ते से सध गया अन्यथा हाथ पैर टूट जाते, परन्तु धक्का इतने जोर का पडा कि बाये कान का पर्दा फट गया । दो महीने झाँसी मे अच्छा से अच्छा इलाज कराया परन्तु कुछ न हुआ । कान के पीछे की हड्डी की छोटी सी कोठरी (सैल) मे पीव पड गई । लखनऊ जाना पडा । प० बदरीनाथ भट्ट मेरे मित्र उन दिनो लखनऊ विश्वविद्यालय मे थे । खबर लगते ही आये और मुझे प्रसिद्ध सर्जन डाक्टर निगम के पास ले गये । उन्होने कहा कि १२ घटे की देर लगाते तो तुम्हारे मित्र वर्मा जी समाप्त थे । चीरफाड का किया जाना तै हुआ । फीस भा । मने डाक्टर को चीरफाड के पहले उनकी फीस दिलवा दी,क्योकि मुझेबहुत कम आशा थी कि बच पाऊँगा—हालत बहुत खराब हो चुकी थी । डाक्टर ने मुझे क्लोरोफार्म दिया । मैं देर मे बेहोश किया जा सका । डाक्टर मेरे मित्रो से जो मुझे

झाँसी से ले आये थे, पूछा,—'क्या वर्मा जी शराब पीते है ?' उन्होने बतलाया —'नही कभी नही', फिर मै बेहोश हो गया । चीरफाड रात के १० बजे से आरम्भ हुई थी । मुझे चेत सबेरे आया । बीमारी ने ६ महीने गडबड मे डाला । परन्तु अस्पताल छोडने के बाद ही मै ने पहला साहसिक काम किया था वह एक बडे सुअर की शिकार की ।

(४) शिकार कैसे और क्यो शुरू की यह आपने मेरी, 'अपनी कहानी' मे पढ लिया होगा । यहाँ दुहराना व्यर्थ है । सन् १९२७ की १७ वी अप्रल के दिन 'गढ कु डार' का लिखना आरभ किया था । जुलाई के 'आजकल' मे उसका करण कारण प्रकाशित हो गया है । पढ लीजिएगा । उस लेख मे और बाते भी है ।

(५) सन् १९३० मे कृषि और बागबानी का खब्त सवार हुआ । ऐसा खब्त कि उसे भूत प्रेत ही कह दिया जाय तो गलत न होगा । खब्त को मैने अपने दस बारह वर्ष सौपे । प्रयोग पर प्रयोग करता चला गया । वकालत मे लगभग साठ हजार रुपये कमाये थे वे सब स्वाहा कर दिए और साठ सत्तर हजार का ऋणी हो गया । यह ऋण अन्त मे व्याज समेत एक लाख की चोटी पर पहुच गया !! सन् १९३२ तक तो कुछ लिख पाया, फिर १९४२ तक केवल एक नाटक 'धीरे धीरे' लिख सका, बाकी के समय मे उतना ऋण सिर पर सवार कराता चला गया । पर एक बडी चीज भी हाथ की पकड मे आई । वह चीज है पैपेन । पैपेन पपीते के दूध से तैयार की जाती है । मैने जो पैपेन बनाई वह तब तक सर्वश्रेष्ठ समझी जानी वाली जर्मन पैपन से भी बढिया निकली । उसका रासायनिक विश्लेषण न्यूयार्क और लन्दन मे किया गया । मै फूल उठा, क्योकि वहा से लाखो रुपये की पैपेन की माँग आई । दस हजार पेड पपीते के लगा लिये थे । उत्तरप्रदेशीय सरकार को सिचाई की सुविधा के लिए प्रार्थना पत्र भेजा कि ऐसी पैपेन बनाई है मैने । वहाँ से उत्तर आया —पैपेन यहाँ बन ही नही सकती । मै ने नमूना भेजा तो सरकार चकित हो गई । प्रशसा-पत्र आ गया, परन्तु सिचाई के नाम पर पानी की एक बूंद नही! मैने बडे हठ और व्यय पर कुये खुदवाये थे । उनमे पानी न रहा । इधर इन्द्र देव रूठ गये । परिणाम यह हुआ कि दस हजार पपीते सूख गये । हाथ मे केवल प्रशसा पत्र रह गये !

मेरे पुत्र चि०सत्यदेव ने अपना प्रेस सभाला जो अभी तक यो ही चल रहा था और मैंने अपनी मूर्खताओ मे कमी कर दी । सभाल के क्रम का आरम्भ हुआ ।

(६) सन् १९३६ की जनवरी मे मै झाँसी जिलाबोर्ड का चेयरमैन चुना

गया और सन् १६४८ के अप्रेल तक रहा। इन सत्रा बारह बरसो मे मैं ने भ्रष्टाचार का दमन जिस कठोरता और सावधानी के साथ किया उसको मेरे निन्दक और प्रशसक जानते है। जब बोर्ड छोडा तब उसके पास साठ हजार के ऊपर की रकम बचत खाते मे थी।

(७) खेती, बागबानी और जिलाबोर्ड के माध्यम से मै छोटे से छोटे और गरीब से गरीब मजदूरो से लेकर बडे से बडे कहलाने वालो के निकट सम्पर्क मे आया। एक बार उत्तर प्रदेश के गवर्नर सर मॉरिस हेलैट से झाँसी मे भेट हुई। बातचीत के सिलसिले मे गवर्नर बोला—'यहाँ का किसान सुस्त होता है।'

मेरा खून उबल पडा। तडाक से मैंने कहा,—'फीमैन्टिल की राय कुछ और है, वह जो उत्तर प्रदेश के बोर्ड ऑव रैवेन्यू का सीनियर मैम्बर था और जिसने 'एग्रीकल्चर इन यू० पी०' पुस्तक लिखी है। उसने बुन्देलखण्डी किसान के लिये लिखा है कि वह प्रकृति से सदा सघर्ष करता रहा है, प्रकृति उसे छलती रहती है, परन्तु वह हिम्मत नही हारता, कठिनाइयो के मुकाबिले मे डटा रहता है।' हेलैट ने क्षमा माँगी।

ये बहुत थोडे से लिख दिये।

आपने पूछा कि मेरे पूर्वजो मे कोई साहित्यकार हुआ या नही? प्रपिता-मह दीवान आनन्दराय को (रानी लक्ष्मीबाई ने 'राय' से 'राव' कर दिया था) कविता करने का शौक था। मैने उनकी कवितायें छुटपन मे पढी थी, परन्तु अब गॉठ मे एक भी नही है। हाँ उनकी एक कविता हम लोग कभी नही भूले—केवल एक वाक्य है, परन्तु कौन सा कडखा उसकी बराबरी करेगा?—

रानी लक्ष्मीबाई का देहान्त ग्वालियर की लडाई मे हो गया। लगभग दो महीने उपरान्त अँग्रेजी सेना का दस्ता टीकमगढ से मऊ होकर झाँसी आना चाहता था। दीवान आनन्दराव ने सामना करने की ठानी। कुछ बूढो ने समझाया,—'रानी मारी गई अब क्या रह गया है?'

'अभी मैं तो हूँ, जब तक आनन्दराव जीवित है अँग्रेज यहाँ नही आने पायगा।' उन्होने कहा था। और वह लडते लडते मारे गये। इसीलिए मैने 'लक्ष्मीबाइ' उपन्यास की भूमिका मे लिखा है कि ' आनन्दराव ने रानी के लिए लडते लडते गोली खाइ और मेरी कलम ने थाडी सी स्याही, तो पाठक इस अन्तर को न भूले।'

'बिराटा की पद्मिनी' मे मुख्य घटना पद्मिनी और नवाब कालपी की है जो एक ही युग की ऐतिहासिक घटना है। दूसरी घटनाये भी ऐतिहासिक है। उन्हे सहायक घटनाओ के रूप मे एक युग से उठा कर दूसरे मे रख दिया गया है।

उपन्यास की परिस्थितियाँ सब ऐतिहासिक है और वातावरण को तत्कालीन बनाये रखने मे पूरी सावधानी बरती गयी है ।

कचनार की घटनाये १७६० से १८०० ई० के बीच की है ।

भाषा साधन है, साध्य नही । अपनी बात पाठक के पास पहुँचाने के लिए चुस्त भाषा के प्रयोग का पक्षपाती हूँ । बी० ए० मे सस्कृत लिये था परन्तु मै सस्कृत-बोझिल हिन्दी का पक्षपाती नही हूँ ।

'मेरी भाषा' पर जो आलोचनाये छपी है उनका मै कायल नही हूँ । जवाब किसी को देता नही । क्यो समय नष्ट करूँ ? इन आलोचनाओ को कितने लोग पढते है । मेरे उत्तर को ही कितने पढेंगे ?

बुदेलखण्डी मे जैसे कि हिन्दी की अन्य बोलियो मे भी, कुछ शब्द और मुहाविरे बडे ही अर्थपूर्ण और सुन्दर है । इन्हे व्यापकता मिलनी चाहिए । इनसे हिन्दी समृद्ध होगी और हमारी रचनाये जनता—'धरती वाली' जनता—के घरो तक पहुँच जायँगी । बुदेलखण्डी का प्रयोग स्थानिक रग और वास्तविकता लाने के लिए करता हूँ ।

स्नेही

वृन्दावनलाल वर्मा

—※?※—

परिशिष्ट २

श्री वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासो की रचना-काल-क्रम की दृष्टि से सूची[1]—

क्रम स०	उपन्यास	रचनाकाल
१	गढ कुडार	सन् १९२७ (१७ अप्रेल से १७ जून तक)
२	लगन	१९२७(१९ या २० जून से २८ या २९ जून तक)
३	सगम	१९२७
४	प्रत्यागत	१९ ७
५	कुडली चक्र	१९२८
६	प्रेम की भेट	१९२८
७	बिराटा की पद्मिनी	१९३३ (सन् २९ मे सामग्री-सचय, रचनाकाल ३० से, ३३)
८	मुसाहिबजू	१९३७
९	कभी न कभी	१९४२-४३
१०	झासी की रानी	१९४६
११	कचनार	१९४६ (१६ अप्रेल से १ जून तक)
१२	अचल मेरा कोई	१९४७ (३१ मार्च से २१ अप्रेल तक)
१३	माधवजी सिंधिया	१९४८ (१७ अप्रेल को समाप्त)
१४	टूटे काँटे	१९४९
१५	मृगनयनी	१९५० (१४ जुलाई को समाप्त)
१६	सोना	१९५० (१४ अक्टूबर से ६ नवम्बर)
१७	अमरबेल	१९५२ (१५ दिसम्बर को समाप्त)
१८	भुवन विक्रम	१९५५ (१९ दिसम्बर को समाप्त)
१९	अहिल्याबाई	१९५५

---

१ डा० रामविलास शर्मा के सौजन्य से—शर्मा जी ने यह सूची वर्मा जी के उपन्यासो की उपलब्ध पाँडुलिपियो तथा वर्मा जी एव उनके सुपुत्र श्री सत्यदेव वर्मा से प्राप्य सूचनाओ के आधार पर तैयार की है।

परिशिष्ट ३

(क) श्री वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास

प्रबन्ध मे प्रयुक्त वर्मा जी के उपन्यासो की प्रकाशक तथा सस्करण सहित सूची

१ गढ़ कुडार सप्तमावृत्ति, स० २०१०
गगा ग्र थागार, लखनऊ।

२ लगन द्वितीयावृत्ति, सन् १९५१
मयूर प्रकाशन, झासी

३ सगम द्वितीयावृत्ति, स० १९९६
गगा ग्र थागार, लखनऊ।

४ कुडली चक्र षष्ठावृत्ति, स० २०११
गगा ग्र थागार, लखनऊ।

५ प्रेम की भेट तृतीयावृत्ति, सन् १९५४
मयूर प्रकाशन, झाँसी।

६ प्रत्यागत प्रथमावृत्ति, सन् १९५१
मयूर प्रकाशन, झाँसी।

७ विराटा की पद्मिनी, पचमावृत्ति, स० २००८
गगा ग्रंथागार, लखनऊ।

८ मुसाहिबजू प्रथमावृत्ति, सन् १९४६
मयूर प्रकाशन, झाँसी।

९ कभी न कभी प्रथम सस्करण,
सुषमा साहित्य मन्दिर, जबलपुर।

१० झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई तृतीयावृत्ति, सन् १९४९
मयूर प्रकाशन, झाँसी।

११ कचनार तृतीय सस्करण, सन् १९५४
मयूर प्रकाशन, झाँसी।

१२ अचल मेरा कोई तृतीय सस्करण, सन् १९५४
मयूर प्रकाशन, झाँसी।

१३ मृगनयनी सातवी आवृत्ति, सन् १९५५
मयूर प्रकाशन, झाँसी।

१४ सोना प्रथम सस्करण, सन् १९५२
मयूर प्रकाशन, झाँसी ।
१५ अमरबेल प्रथम सस्करण, सन् १९५३
मयूर प्रकाशन, झाँसी ।
१६ टूटे काँटे प्रथम सस्करण, सन् १९५४
मयूर प्रकाशन, झासी ।
१७ अहिल्याबाई प्रथम बार, सन् १९५५
मयूर प्रकाशन, झासी ।

(ख) सहायक ग्रन्थ (हिन्दी)

१—अपनी कहानी (अपूर्ण, अप्रकाशित) वृन्दावनलाल वर्मा
२—काँग्रेस का इतिहास खड २ डा० पट्टाभि सीता रामय्या
३—ऐतिहासिक उपन्यासकार वर्मा जी शशिभूषण सिहल
४—काव्य के रूप बा० गुलाबराय
५—झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई दत्तात्रय बलवत पारसनीस
(मराठी ग्र थ का अनुवाद)
६—दस्तूर देही (मिसिल बन्दोबस्त, १८६२) बिराटा गाँव , मोठ तहसील—परगना
७—दिल्ली सल्तनत (७११ से १५२६ ई० तक) डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव
८—बुन्देलखड का सक्षिप्त इतिहास गोरेलाल तिवारी
९—ब्रजलोक-साहित्य का अध्ययन डा० सत्येन्द्र
१०—शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा .विशम्भरनाथ त्रिपाठी
११—समीक्षा के सिद्धान्त डा० सत्येन्द्र
१२—सामान्य भाषा-विज्ञान डा० बाबूराम सक्सेना
१३—साहित्यालोचन डा० श्यामसुन्दरदास
१४—सिद्धान्त और अध्ययन . बा० गुलाबराय
१५—हिन्दी-उपन्यास शिवनारायण श्रीवास्तव
१६—हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद .त्रिभुवनसिंह
१७—हिन्दी काव्य मे प्रकृति-चित्रण डा० किरण कुमारी गुप्ता
१८—हिन्दी साहित्य का इतिहास प० रामचन्द्र शुक्ल
१ तपोभूमि
२. इतिहासाची साधनें—भाग १

(ग) सहायक पत्र-पत्रिकाएँ

१—आजकल (मासिक) दिल्ली, अगस्त, १९५८ तथा जुलाई, १९५७
२—आलोचना (मासिक) दिल्ली, अक्टूबर १९५३
३—सरगम (मासिक) बम्बई, ६ मार्च, १९५१
४—साहित्य-सन्देश (मासिक) आगरा, अक्टूबर नवम्बर, १९४०

Books of Reference (English)

1. A History of English Literature—Arthur Compton-Rickot
2. A History of English Literature—Emile Legouis & Louis Cazamian
3. An Introduction to the Study of Literature—W H Hudson.
4 A Treatise on the novel—Robert Liddell
5. Evolution of Indian Culture—B N Luna
6. Educational Psychology—James S. Ross
7. History of Medeival India—Dr Iswari Prasad
8 Indore Gazetteer
9. Jhansi—A Gazetteer Being Volume XXIV of the District Gazatteers of the United Provinces of Agra and Oudh—Compiled and Edited by D L Drake—Brockman I C S
10. Key's History of Sepoy War in India—Vol III
11 Life and Life Work of Devi Ahilyabai Holkar—V. V. Thakur
12. Later Moguls—Irvine—Vol III
13 Modern Educational Psychology—B. N Jha
14 New History of Marhathas—G S Sardesai
15 Psychological Tests of Educable capacity
16 Studies in Indian History Part II—Elliot and Dowson—Sushil Gupta (India) Ltd Calcutta
17. The Encyclopaedia Britannica—Vol XIX
18. The History of India told by its own Historians-The Posthumous Papers of the Late Sir H M Illiot, K. C. B.—Edited & Cont. by Prof. John Dowson—Vol 7
19 The Imperial Gezatteer of India—W W. Hunter C S I., C. I E., L. L. D.

20. The Imperial Treasury of the Indian Moguls— Abdul Aziz
21. The Revolt of Central India— (1857-1859)— Compiled in the Central Intelligence Branch, Division of the chief of staff, Army Head Quarters (India) Shimla Govt

— o —

परिशिष्ट ४

वर्मा जी के नव प्रकाशित दो उपन्यास

भुवन विक्रम (प्र० सन् १९५७)

एव

माधव जी सिंधिया (प्र० सन् १९५७)

१—भुवनविक्रम

कथावस्तु—

१—उद्दण्ड राजकुमार भुवनविक्रम के सुधार तथा उसके एव गौरी के सफल प्रणय की कथा 'भुवनविक्रम' की मुख्य कथा है। भुवन अपने पिता, अयोध्या के राजा रोमक के अत्यधिक लाड-प्यार मे बिगडा उच्छृङ्खल किशोर है। उसके हृदय मे शिक्षक मेघ के प्रति आस्था नही है और न मेघ मे अध्यापक जैसी योग्यता। भुवन के जुए, शिकार तथा उद्दण्डता से चिन्तित हो रोमक उसे नैमिषारण्य के ऋषि धौम्य की सेवा मे शिक्षार्थ सौप आता है। धौम्य के महान् व्यक्तित्व के प्रभाव तथा अनुशासन के फलस्वरूप छ वर्षों मे भुवन मे सतुलन एव एकाग्रता का उदय होता है। वह स्वय स्वीकार करता है, 'गुरुदेव ने मुझे पशु से मनुष्य बनने का मार्ग दिखलाया है।' वह पिता रोमक की शूद्र कपिजल के वध की स्वार्थमयी योजना को विवेकपूर्वक रोककर धौम्य की दृष्टि मे 'स्नातक' हो जाता है।

भुवन नैमिषारण्य मे अयोध्या की एक सुन्दरी, गुणवती निर्धना युवती गौरी के प्रति आकृष्ट हुआ था किन्तु धौम्य के अनुशासन के कारण उसे मूक हो जाना पडा। द्विविधा-ग्रस्त गौरी अयोध्या लौटते समय माता-पिता को मार्ग की बाढ मे खो कर जीविकोपार्जन के लिए अयोध्या मे विदेशी फणिश नील की हृदयहीना कन्या हिमानी की सेविका बनकर रहती है। हिमानी की भुवन से कभी नही बनी, वह भुवन से प्रतिशोध चाहती थी। हिमानी रोमक के विरोधी दल की प्रेरणा से भुवन से विवाह का षड्यन्त्र रचाती है और विवाह के अवसर पर उसके वध की योजना बनाती है। गौरी एव कपिजल द्वारा रहस्य से अवगत हो भुवन तथा उसके सहयोगी हिमानी की योजना को ठीक अवसर पर असफल कर देते है। तदनन्तर बिछुडे हुए भुवन को गौरी पा लेती है, दोनो

विवाहसूत्र मे बँध जाते है ।

२—दूसरी कथा है अयोध्या के घोर अकाल तथा राजा रोमक की अपदस्थता एव पुन राज्यप्राप्ति की। अयोध्या-जनपद अनावृष्टि के कारण पाँच वर्षों से अकाल की पीडा भोग रहा था। रोमक की अपूर्ण योजनाओ, कम वेतन की नीति तथा स्वार्थबुद्धि से श्रमिक वर्ग असन्तुष्ट हो उठता है। रोमक धनिको के अन्न-भाडारो से पीड़ितो का पेट भरने के फेर मे दोनो का अप्रिय बन बैठता है। वह उदार है, विदेशी व्यापारियो की दास-प्रथा तथा ब्राह्मण-वादियो की शोषक 'शूद्र-व्यवस्था' का समर्थक नही है। भुवन का शिक्षक मेघ शिष्य की उद्दण्डता मे रोमक की पृष्ठ-पोपकता तथा उसकी 'शूद्र-नीति' से क्षुब्ध हो विरोधियो का अग्रणी बन जाता है। मेघ के कूटनीतिक प्रचार के फलस्वरूप जनपद-सभा स्थिति सुधरने तक रोमक को राज्य-पद से च्युत कर शासन शक्ति मेघवर्ग को सौप देती है। अपदस्थ निराश रोमक अकाल-सकट मे अपना दायित्व खोजने तथा जनमत से अवगत होने के लिए जनपद का विस्तृत पर्यटन करता है। अन्त मे ऋषि धौम्य का निरालसता, दूरदर्शिता तथा स्वार्थहीनता का उपदेश पा उसे वास्तविक प्रकाश मिलता है। बोध होता है कि दुर्दिनो का कारण किसी शूद्र का तपस्या कर उठना नही वरन् अपने दोषो की वृद्धि है। फलस्वरूप निस्पृह रोमक अपनी प्राय सभी सम्पत्ति और भूमि अकाल-पीडितो को दान कर देता है। दान का क्रम अखड रखने के लिए वह फणिश व्यापारी नील से ऋण की याचना करता है। नील मेघका अनुयायी है, यह वर्ग शक्तिलोलुप है, रोमक को पुन जनपद का राजा नही देखना चाहता। दानी रोमक की बढती लोकप्रियता से चिंतित हो ये लोग छल-छद्म का आश्रय लेते है। नील भुवन से अपनी कन्या हिमानी के विवाह का कपटयुक्त प्रस्ताव भेज कर भारी दहेज का वचन दे रोमक-भुवन की हत्या का षड्यन्त्र रचता है किंतु अन्त मे षड्यन्त्र खुल जाने पर असफल मेघवर्ग को देश से निष्कासन का दण्ड मिलता है और कर्तव्यपालन के इच्छुक जनप्रिय रोमक को पुन राज्य मिल जाता है।

३—तीसरी कथा है 'शूद्र' कपिंजल की दासता, मुक्ति एव तपस्या की। कपिंजल अकाल मे नील का ऋणी हो उसका दास बन जाता है। नील और हिमानी के अत्याचारो से पीडित हो वह अयोध्या से भाग नैमिषारण्य मे ऋषि धौम्य की शरण लेता है। धौम्य तथाकथित शूद्र कपिंजल मे तपस्वी के गुण लक्ष्य कर उसे शिष्य बना लेते हैं। कपिंजल श्रेष्ठ तपस्वी सिद्ध होता है, शूद्र की तपस्या का औचित्य एक काल तक विवादास्पद विषय बना रहता है।

नील का पहला 'रिन' चुकाने के लिए जटा, दाढ़ी वाला कपिंजल पुन

उसका सेवक बन जाता है। वहाँ गौरी की सहायता से भुवन-हिमानी के विवाह का रहस्य जानकर भुवन को षड्यन्त्र से सचेत कर देता है। अन्त मे बन्दी नील को अपने सोने के सिक्के सौप कर उसकी दासता के 'रिन' से पूर्णतया मुक्त होता है।

\+ × × +

मुख्य कथा को दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है, पहला, भुवन का चारित्रिक विकास—उद्दण्ड से सुशील और विवेकी बनना, दूसरा, भुवन-गौरी का प्रेम, वियोग तथा मिलन। कथा के दूसरे भाग के निर्माण मे कई आकस्मिक सयोगो का आश्रय लिया गया है। वे इस प्रकार है—

१—गौरी तथा भुवन का प्रेम परिपक्व होता है और ज्यो ही भुवन गौरी की माता को विवाह का वचन देता है तुरन्त ऋषि धौम्य भुवन की गतिविधि को नियन्त्रित करते है। दोनों का वियोग हो जाता है।

२—जब भुवन स्नातक हो जाता है, गौरी के समक्ष वस्तुस्थिति स्पष्ट होने का अवसर आता है तभी गौरी माता-पिता सहित नैमिषारण्य से अयोध्या के लिये चल पडती है यद्यपि गौरी की माता ने भुवन से गौरी से विवाह की सौगन्ध ली थी। अयोध्या जाते समय माता की इस विषय के प्रति नितान्त उपेक्षा स्वाभाविक नही।

३—अयोध्या पहुँचने के लिए गौरी के पिता की अस्वाभाविक रूप से शीघ्रता। लोगो के मना करने पर भी सध्या के समय नदी पार करने के लिए पुत्री, पत्नी सहित पानी मे धँस जाता है। फिर ठीक नदी के बीच मे एकाएक बाढ का आना, माता-पिता का बह जाना और गौरी का बच रहना। बहने समय वृद्ध का गौरी को रोमक से लिये कुछ अन्न-वस्त्र का ऋण चुकाने का स्मरण दिलाना। (कदाचित् वृद्ध को ज्ञान था कि उपन्यासकार को गौरी की अभी आवश्यकता है, वह बाढ से बच रहेगी और ऋण चुका सकेगी)

४—बाढ से छुटकारा पा गौरी मार्ग मे या अयोध्या मे भुवन से मिलने का प्रयत्न नही करती वरन् कभी 'अच्छा भाग्य' सामने आने की आशा मे अन्यत्र नौकरी कर दिन काटना चाहती है। नौकरी हिमानी के यहाँ करती है जहाँ भुवन के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा जा रहा है। अन्त मे षड्यन्त्र की सूचना भुवन आदि को मिल जाने के कारण षड्यन्त्रकारी असफल होते है, भुवन और गौरी की भेट हो जाती है।

जीवन मे सयोग आते है किन्तु शृङ्खलाबद्ध होकर नही। फिर उपन्यास मे अनेक सयोगो के आधार पर कथा का विकास पाठक की सहज बुद्धि को ग्राह्य होगा, इसमे सन्देह है। वास्तव मे यहाँ पात्र एव परिस्थितियाँ पूर्वनिश्चित

कथा के अधीन हो जाने के कारण स्वत पूर्णतया विकसित होने का अवसर नही पा सके है। इस सयोगो से पाठक कथा के आगामी मोडो का आभास पा जाता है। इस आभास-प्राप्ति के उपरान्त कथा मे उसके लिए विशेष कुतूहल नही रहता, उसकी दृष्टि कथानिर्वाह की निर्माण पर केन्द्रित हो जाती है।

रोमक की विशद कथा उपन्यास मे प्रासगिक है। दोनो कथाये मुख्य तथा प्रासगिक, प्रारम्भ तथा अन्त मे साथ चलती है केवल मध्य मे दूर हो जाती है। रोमक से जनता असतुष्ट है किन्तु भुवन की उद्दण्डता से अप्रसन्न हो मेघ, नील, हिमानी तथा दीर्घबाहु उसके विरोधी बनते हैं। भुवन की शिक्षा-दीक्षा के प्रश्न को लेकर रोमक ऋषि धौम्य के सम्पर्क मे आता है। ऋषि धौम्य 'शूद्र-तपस्या' सम्बन्धी समस्या पर अपना सन्देश रोमक को भुवन के माध्यम से ही देते है। अन्त मे मेघवर्ग का षडयन्त्र भुवन तथा रोमक को दृष्टि मे रखकर रचा जाता है, भुवन के हितैषियो द्वारा रहस्योद्घाटन पर भुवन के साथ रोमक और उसके राज्य की भी रक्षा होती है।

कपिजल की कथा का सम्बन्ध उक्त दोनो कथाओ मे प्रारम्भ, मध्य तथा अन्त, तीनो स्थितियो मे स्थापित होता है। कपिजल की दीनावस्था से भुवन तथा रोमक दोनो को सहानुभूति है। इसी प्रश्न पर दोनो सब के कोपभाजन बनते है। मध्य मे शूद्र कपिजल की तपस्या का प्रश्न पिता-पुत्र के विवेक और निस्वार्थता की कसौटी बन कर आता है। अत मे कपिजल की सहायता से दोनो विरोधियो के षडयन्त्र से अपनी रक्षा कर पाते है।

ऋषि धौम्य का व्यक्तित्व और उनका आश्रम ऐसा केन्द्र है जहाँ उपन्यास की तीनो कथाएँ आकर मिलती है। वही पर भुवन सुधरता है, कपिजल की मुक्ति एव तपस्या होती है तथा रोमक को नया दृष्टिकोण मिलता है। उपन्यास के उत्तरार्द्ध मे भुवन रोमक की सहायता से धौम्य की बुद्धि तथा उनके शिष्यो का श्रम तत्पर रहता है।

पात्र

भुवनविक्रम लाड-प्यार मे पले उच्छृखल किशोर के रूप मे उपन्यास मे पदार्पण करता है। वह पद्रह वर्ष का सुडौल देहवाला है। हिमानी से प्रथम भेट उसके असयत क्रोध तथा मिथ्याभिमान की द्योतक है। अयोग्य चिडचिडे उपाध्याय मेघ के प्रति आस्था का अभाव होने के कारण गुरु से कुछ सीखने मे उसे रुचि नही। तथाकथित गुरु के नियन्त्रण से छुट्टी पाकर जुआरी, शराबी और झगडालू बन जाता है।

ऋषि धौम्य का शिष्य बनने पर भुवन को आश्रम मे सात्विक वातावरण

मिलता है किन्तु अभ्यारागत उद्दण्डता उसमे बना रहती है। धौम्य का गुरु-गभीर व्यक्तित्व और सजग नियन्त्रण उसे सतुलित, सयमित होने पर विवश कर देता है। भुवन के अतस्थल के किसी कोन मे छिपी आस्था और आत्म-शक्ति जाग उठती है। प्रेयसी गौरी के घर के सामने भिक्षुक रूप मे पहुचकर वह उसे अपनी उपस्थिति जताये या नही ? एक ओर गुरु का निषध और दूसरी ओर हृदय की बेताबी। अतर्द्वन्द्व मे म। डिगा, खाँस कर जताने की इच्छा हुई किंतु भीतर से किसी न तुरत कहा—'यह भी एक तरह की भाषा ही है और विद्यार्थी-जीवन वासनाओ के रा.लन का समय नही है।' गुरु की वही पैनी आँख, वही तेजस्विता सामने।'[1]—भुवन वहाँ अधिक नही ठहर सका। इस प्रकार भुवन म आत्म-विश्वास और पौरुष क लक्षण उदित होते है।

वास्तव म भुवन मे पीडित के प्रति दया तथा आत्म-नियत्रण के मूल तन्तु प्रारभ से वतमान थे। परिस्थितियो ने उसके स्वाभाविक प्रवाह को रोककर ऊपर जडता की काई जमा दी थी, केवल उपयुक्त रखवाले की अपेक्षा थी। धौम्य के प्रगतिशील, प्रेरक व्यक्तित्व न भुवन के जीवन को प्रवाह, निमलता और सदुपदेश प्रदान की। वह स्वय प्राश्वस्त है, 'गुरुदेव ने मुझे पशु से मनुष्य बनने का माग दिखलाया ह।'[2] शूद्र कपिजल की रोमक द्वारा वध की योजना भुवन की परीक्षा बनकर आती है। एक ओर पिता की राज्यप्राप्ति का प्रश्न है, दूसरी ओर गुरु का दिया हुआ विवेक। वह स्वाथ की ओर ताकता भी नही, जिसका उनका हो चुका है। भुवन का विवेक पिता रोमक के मुँदे नेत्र खोलने म भी समर्थ होता है। अत मे भुवन माता पिता की आज्ञा शिरोधाय कर मृत (?) प्रेयसी गौरी की स्मृति को हृदय-पटल से हटा गर्विता हिमानी को स्वीकार करने के लिए कटिबद्ध हो जाता है। उसका शुद्ध अत-करण इस अग्निपरीक्षा मे पुकार उठता है—'हे परमात्मा, मुझे उजियाले का मार्ग सुझाओ। म अपने वचन से न डिगूँ। मुझे कतव्यपालन करने की शक्ति दो, मुझे माता-पिता का ऋण चुकाने योग्य बनाओ।'[3]

अन्यत्र कहा जा चुका है कि वर्मा जी नारी को पुरुष की प्रेरणा के रूप म स्वीकार करते ह। हिमानी स्वय शक्ति से पूर्ण है और अपने समीप के कई पात्रो को प्रभावित करने मे सक्षम है किंतु उसकी शक्ति दैवी नही, आसुरी है। फणिश रक्त उसकी रगो म प्रवाहित है, भारतीय नारी की कोमलता, करुणा और समपण-भावना से अछूता। व्यापारी, व्याजप्रेमी, दासो के

१—भुवनविक्रम—पृ० १५७
२—भु० वि०—पृ० १७२
३—वही—पृ० २७४

स्वामी अपने पिता नील से क्षुद्रता, स्वार्थपरता तथा कृपणता की थाती उसने पायी है। भुवन से प्रथम भट—मुठभेड—मे हिमानी का उद्धत स्वभाव साकार हो उठता है, वह भुवन की आजन्म शत्रु बन जाती है।

हिमानी सरीखी हिंस्र नारी के द्रोह के भाव का चित्रण करते समय उपन्यासकार ने मनोवैज्ञानिक सूक्ष्म पकड की कई घटनाए रखकर उसके चरित्र को सजीवता प्रदान की है। हिमानी के घरेलू दास उन लोगो के अत्याचारो से त्रस्त हो भाग जाते है। भुवन और उसका पिता राजा रोमक हिमानी के चिर शत्रु है। इन शत्रुओ से तुरत प्रतिकार का अवसर नही है, उसकी हिंसक वृत्ति नारी-सुलभ अन्य मार्ग पकडती है। उसने कुछ पक्षी पाल रखे है। उन पक्षियो का नामकरण भुवन, रोमक, तथा भागे हुये दास-दासियो के नाम के आधार पर कर उन्हे गालियाँ दे या उनके चपत लगा हृदय के ताप को क्षणिक शान्ति देकर उनसे प्रतिशोध का सकल्प दृढ करती है।[1] और अत मे भुवन से छद्म विवाह का षड्यत्र रचकर उसके सर्वनाश के उद्योग मे कसर नही लगाती।

दासो से भरपूर काम लेना और उनके चित्त पर अपना आतक बिठाना हिमानी का स्वभाव बन गया है। बिच्छू द्वारा काटे गये एक दास के पीडा-स्थल पर लगाने के लिए प्याज के दो गट्टे लाने वाली दासी पर वह बरस पडती है। उधर पीडा से तडपता हुआ दास और इधर प्याज की मात्रा पर उलझती हुई निष्ठुर कृपण स्वामिनी! वह नौकरो के काम पर जैसी सतर्क दृष्टि रखती है वैसी ही उनके भोजन पर, कही वे ज्यादा खाने से बीमार न पड जाएँ या सेवा-कार्य मे न अलसा जाएँ।[2]

हिमानी की आस्था न पुरुष मे है न प्रणय मे, उसकी व्यापार-बुद्धि सतर्क है। दीर्घबाहु उसकी दृष्टि मे बज्रमूर्ख है, यह 'मिट्टी का ढेला' उसे नापसन्द नही। उससे प्रेमालाप का अभिनय करती हुई कहती है, 'हमारे यहाँ नारी नर की बँधुआ होकर नही रहती—काम पहले करती और कराती है, प्रेम पीछे।'[3] और वह दीर्घबाहु को प्रेम का झाँसा देती हुई अनेक बार अपने तथा पिता के व्यापारिक कार्यो मे उससे सेवा-कार्य लेती है। सरला, सुन्दरी गौरी के प्रति दीर्घबाहु को आकृष्ट होता देख उसमे हीनता का भाव आने लगता है। इससे पूर्व भी गौरी को दासी के रूप मे रखते समय गौरी नाम मे महत्व का आभास पा उसका नामकरण 'रेवती' करती है। वह दीर्घबाहु को

१—भुवनविक्रम—पृ० २५

२—भु० वि०—पृ० ८, १३७, १५५

३—भु० वि०—पृ० ३४

पुन चगुल मे लाने का निश्चय करती हुई सोचती है, 'सभव है जीवन भी इसी के साथ बिताना पडे। मूर्ख है। पुरुष अधिकतर होते ही ऐसे है। किसी अन्य दुष्ट मूर्ख के साथ से तो ऐसे सीधे सरल मूर्ख की सगिनी बनना कही अच्छा।'[1]

अन्य गौण पात्र

कपिञ्जल अकाल तथा ऋण से ग्रस्त होकर किसान से साहूकार नील का दास बन जाता है। दासता मे पशुवत् जीवन बिताने पर भी कपिजल स्वाभिमानी एव स्वतत्र प्रवृत्ति का व्यक्ति है। वह नील तथा हिमानी के दुर्व्यवहार के प्रति यथावसर विरोध प्रदर्शित करता है। अन्त मे नील द्वारा बहुत दडित होने पर अयोध्या से भाग कर नैमिषारण्य मे ऋषि धौम्य की शरण लेता है। धौम्य के तेजस्वी व्यक्तित्व की प्रेरणा पा वह पूर्ण तपस्वी बनता है। उसे ज्ञान, आत्म-शक्ति और निर्विकार सेवा-भाव की प्राप्ति होती है।

मेघ उतरती अवस्था का चिडचिडा उपाध्याय है। वह शिष्य भुवन तथा उसके पिता रोमक से असतुष्ट है और वे दोनो उससे अप्रभावित है। मेघ महत्वाकाक्षी है, उसे राजा की शिथिल तथा शूद्र-पोषक नीति प्रिय नही है उसकी सहानुभूति विदेशी व्यापारियो से है। अकाल द्वारा फैले हुए जन-असतोष से लाभ उठाकर वह राजा-विरोधी अथक प्रचार कर रोमक को अपदस्थ करने मे सफल होता है। वह शाप आशीर्वाद के भय-प्रलोभन दिखा कर सरल जन-मन को मुट्ठी मे कर लेने मे सिद्धहस्त है। वास्तव मे वह प्रतिक्रियाशील रूढिवादी ब्राह्मणवर्ग का प्रतीक है। उसके विषय मे लिखा गया है—

'मेघ भय के साधको का साथी था—अन्धविश्वासो का बढाने वाला, इन लकीरो को यो खीचो, उनको यो, इनके भीतर रहो, उनके भीतर मत आओ इत्यादि के द्वारा मानव की विकास-प्रेरणा और निर्भीकता को कुण्ठित करने वाला वेदवादरत कर्मकाडी, क्रिया-विशेष-कुशल।'[2]

अयोध्या का राज्य-सत्ता हाथ मे आ जाने पर मेघ मे कर्कशता, अहकार और पद-लोलुपता और भी प्रबल हो उठते है वह रोमक और भुवन को कभी क्षमा नही कर सकता। पूँजीपतियो का उसे अवलम्ब है। लोकप्रियता का पलडा रोमक की ओर झुकता देख वह रोमक को सपरिवार नष्ट करने का कुचक्र रचने से नही चूकता।

× × ×

'भुवनविक्रम' के इन उल्लेखनीय चरित्रो का विश्लेषण करने के उपरान्त

१—भु० वि०—पृ० २५१

२—भु० वि०—पृ० १०४

कुछ निष्कर्ष इस प्रकार प्राप्त होते है । प्राय सभी पात्रो की चारित्रिक रेखाए स्पष्ट और सरल है । मूल रूप से किसी गुणविशेष को लेकर पात्र चलता है, घटनाओ के चक्र मे पडकर उसकी चरित्र-रेखा उभरती-निखरती जाती है । चारित्रिक गुत्थियो या पारस्परिक विरोधी विशेषताओ को लेकर ये पात्र प्राय नही चलते । पात्रो का चरित्र पाठको के लिए रहस्य या कुतूहल का विषय नही रह जाता । आगामी घटनाये ही कथा को आकर्षण प्रदान करती है । — उपन्यास मे परिवर्तनशील तथा अपरिवर्तनशील दोनो प्रकार के पात्र है । हिमानी, मेघ, नील, दीर्घबाहु आदि पात्र अपरिवर्तनशील है । ये परिस्थितियो की गति से मुडते नही, परिस्थितियो को अपने प्रभाव से मोडने का सफल या असफल प्रयत्न करते है । ये पात्र असद् के द्योतक है । भुवन, रोमक असद् से सद् की ओर जाने वाले पात्र है, ये परिवर्तनशील है । वे विपत्ति मे पडकर अपने चरित्र का विश्लेषण करते है और स्वय को परिवर्तित करते है । कपिजल भी परिस्थितियो के प्रवाह मे बहता-उभरता अपने चरित्र को विकसित करता है । — उपन्यास मे पात्रो के अधिकाश चरित्र को नाटकीय विधि से प्रस्तुत किया गया है यद्यपि पात्रो का परिचय देते समय प्रारम्भ म प्रत्यक्ष चित्रण-विधि का आश्रय लिया गया है ।—पात्रो के चरित्र तथा घटनाएँ परस्पर घात-प्रतिघात करते हुए कथा का विकास करते है ।

वातावरण (अ) समाज-चित्रण

अयोध्या-जनपद का शासन कार्य राजा नगरसभा की सहायता से चलाता है । सभा मे सभी 'श्रेणियो' के लोगो को अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है । सभा की कार्यवाई सचालित करने वाला सभापति रहता है । विशेष आपत्तिकाल मे जनपद समिति अपने बहुमत द्वारा राजा को पद-च्युत या कुछ काल के लिए अपदस्थ कर सकती है । राजा स्वय सर्वेसर्वा नही है, उक्त समितियो के हाथ मे वास्तविक शक्ति रहती है ।[1] तत्कालीन राजनीति मे आर्थिक तत्त्व का महत्व है । अयोध्या-जनपद से उसकी उत्पत्ति का बाहर—बाबुल, फणिश, मिस्र, गरब आदि देशो को—निर्यात होता है और बदले मे विदेशों से कम्बल, सोना चाँदी आदि का आयात होता है अयोध्या उत्तर भारत का व्यापारिक केन्द्र है वहाँ आर्य वणिक और विदेशी पणि छाये हुए है । राजा को इनके करो से प्रचुर आय है । इन व्यापारियो मे समाज, राजा और उसके विरोधियो को प्रभावित करने की क्षमता है । आर्यों की वर्णाश्रम-प्रणाली म शूद्र थे किन्तु दासो का कोई वर्ग न था, वणिक तथा पणि के ऋण-जाल मे फँसे

१. भु०—पृष्ठ ६३ तथा १०८

हुए निर्धन व्यक्ति का ऋण चुकाने के लिए उस साहूकार की दासता स्वीकार करनी पडती है। दासता का यह जूआ उसकी गरदन मे प्राय जीवन-पर्यन्त रहता था। इस प्रकार समाज मे दास-वर्ग के निर्माण का श्रेय, वर्णाश्रम-प्रथा को नही, आर्थिक-व्यवस्था को था। स्वामियो की निर्ममता तथा अत्याचार से ऊब कर ये दास अवसर पाकर भाग निकलते थे।[1]

छात्रो के वेतनभोगी शिक्षक - उपाध्याय—नगरो मे रहते है। नागरिक जीवन के कोलाहल से दूर प्रकृति की गोद मे बसे एकान्त आश्रम-निवासी ऋषि-गण जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति के हेतु साधना करते हुए शिष्यो को ऋषि-परिवार का सदस्य मान कर उन्हे शिक्षा देते है। आश्रम अध्यात्म के केन्द्र थे, उनमे विचार, विवेक, तप, अध्ययन और वर्चस्व बढ रहा था। उनके प्रति बाहरी क्षेत्रो मे श्रद्धा-भाव छाया रहता था। आश्रम के ऋषियो की आध्यात्मिक ऊँचाई वही केन्द्रित हो गयी थी। आश्रम नागरिक तथा ग्रामीण-जीवन से दूर पड गये थे। वे स्वतन्त्र थे और महत्व मे राजा तथा धनिको के प्रभाव से अछूते। आश्रम का शरणागत राज-दण्ड की पहुँच से बाहर था। आश्रम-निवासी परिश्रमी होने के कारण आत्म-निर्भर होते है। समीप के ग्राम उनकी अन्य आवश्यकताओ की पूर्ति करते है। आश्रम तथा उन ग्रामो के निवासी प्रकृति से प्रेम करते है, वह उन्हे स्फूर्ति और उल्लास प्रदान करती है।[2]

अयोध्या नगर तथा गाँवो के समाज मे भिन्न चिन्तन और विचार-धाराएँ प्रमुख है। वहाँ लोगो मे विचार-विनिमय होता रहता है, मतभेद सामने आते है किन्तु युगो से चली आयी सहिष्णुता के कारण आपस मे सिर नही फूटते। उस सहिष्णुता मे पेडो-पहाडो के पूजको और जादू टोनो वालो से लेकर एक ईश्वरवादी और नास्तिको तक के लिए स्थान है। लोगो मे राजनीतिक प्रसगो पर भी बात चलती है परन्तु आध्यात्मिक विषयो पर बहुत अधिक। प्रकृति के अगम्य और अबोध रूप का भय उनके सामने सदा रहता है। इसका उपचार वे पूजन, बलिदान, जादू-टोने आदि से करते है। आश्रमो का ज्ञान-विज्ञान उनकी पहुचसे बाहर है।[3]

(ब) प्रकृति-चित्रण

'भुवनविक्रम' मे अयोध्या नगरी की अकाल एव सुकालावस्था तथा ऋषि कुल के चित्रण के प्रसग मे प्रकृति की चर्चा आयी है। वर्षा के निरन्तर अभाव

१. भु०—पृष्ठ ५, ६, २५
२ भु०—पृष्ठ ९, ४९,
३. भु० —६८, ७५

के कारण अयोध्या और उसके आस-पास के वातावरण मे निर्जीवता की सूचक नीरवता छा गयी है । सरयू नदी की धार पतली और क्षीण हो गयी है, उसके ऊपर मँडराती हुई चिड़ियाँ नदी के उथले स्थलो से मछलियाँ पाने की टाह मे है । नदी के किनारे की सूखी पृथ्वी पर दूर तक झुलसी झाडियाँ फैली दीखती है, नीचे सूखी दूब के मृतप्राय अकुर दीख पडते है । शेष स्थल पर भूरी रूखी धूल के ढेर मात्र है ।[1] उन दिनो ऋषि-कुल मे अवश्य सजीवता रहती है । सध्या के समय हवन के धुएँ की ओढनी अस्ताचलगामी सूर्य की किरणे ओढ़ लेती है । वृक्षो की लम्बी छाया, सुनहली दूबा और मन्थर पवन के झोके, ऊपर से ऋचाओ का गान और चिड़ियो की स्फूर्तिदायक चहक । वहाँ के मानव-मन तथा प्रकृति के मध्य तादात्म्य स्थापित हो जाने के कारण वाता-वरण मे सजीवता मूर्त्त हो उठी है । पास के जगलो मे वसन्त ऋतु के सूचक अधपीले पत्ते, टपकते फूल, दूबा के चकत्ते तथा पवन की मादक उष्णता है ।[2] वर्षा के बाद अयोध्या के वातावरण मे सजीवता आती है । सूर्य की किरणे हरियाली मे खेलती जान पडती है । सूखी झाडियो के शुष्क सिरो के नीचे पत्ते और कोपले सघन हो उठते है । नदी-नाले बह उठे है । उनकी धार के किनारे बारीक मिट्टी के पर्त और सपाट रेत की तहो के कण चमक रहे है । शरद-ऋतु आ गयी, सुगन्धि फैलाती । ऐसी आई की भूतकाल के कष्टो को भुला दिया और भविष्य की आशाओ के पुज लोगो की आँखो के सामने खडे कर दिये ।[3] इस प्रकार उपन्यास मे प्रकृति परिस्थिति की सूचक और मानव-मन की परिचायक है ।

जीवन-दर्शन

'भुवनविक्रम' मे मानव-जीवन के वास्तविक स्वरूप एव उद्देश्य को इगित किया गया है । सीधे सादे ढँग से कहा जाए तो जीवन का उद्देश्य है जीना— अच्छी तरह से जीना । उपन्यास के नर-नारियो के गीतो द्वारा जीवन के इसी उद्देश्य पर बल दिया गया है । उनकी कामना है कि वे सत्कर्म करते हुए सौ बरस जीवित रहे । वे स्वस्थ रहे, प्रसन्न रहे । उनके जीवन मे समृद्धि और सम्पन्नता स्थायी हो ।[4] किन्तु मनुष्य की अत्यधिक स्वार्थ वृत्ति, शिथिलता, अहकार एव अयोग्यता के कारण जीवन का उद्देश्य धूमिल हो गया है, उस

१—भु०—पृष्ठ १ तथा ६
२—भु०—पृष्ठ ४६, ७८
३—भु०—पृष्ठ २१६, २२२, २५०
४—भु०—पृष्ठ ४३

का वास्तविक स्वरूप विकृत हो उठा है । 'भुवनविक्रम' की तीनो कथाओ द्वारा तत्कालीन जीवन के विभिन्न पक्षो पर प्रकाश डालकर उक्त तथ्य की पुष्टि है । साथ ही जीवन की विकृति और इन विकृतियो के निराकरण भी प्रस्तुत किये गये हैं । कथाओ द्वारा प्रकाशित समस्याएँ क्रमश इस प्रकार है—

१—अयोग्य अध्यापक और उच्छृङ्खल शिष्य । योग्य शिक्षक कैसा हो और शिष्य का सस्कार किस प्रकार हो ?

२—कर्त्तव्यच्युत राजा—राजा का उद्देश्य क्या हो ? उसके आश्रितो का भला कैसे हो ?

३—तथा कथित 'शूद्र' नीच नहीं । फिर शूद्र क्या हे ? जो 'शूद्र' कहलाते है,उनका समाज मे क्या स्थान होगा ?

ऋषि धौम्य के व्यक्तित्व से तीनो कथाएँ आकर मिलती है तथा उसी बिन्दु पर कथाओ की उलझन समाप्त होकर किसी सतोषप्रद हल के लिए मार्ग छोड देती हैं । धौम्य प्रचलित शब्दो के प्रवाह पर से निरर्थक परम्पराओ तथा हानिकारक रूढियो की काई हटाने मे सिद्धहस्त है । वे पुराने शास्त्रीय शब्दो के रूढिगत विकृत अर्थों को त्याग उनकी मौलिक—'नयी'—व्याख्या करने के आदी हे । धौम्य का 'प्रगतिशील' व्यक्तित्व उपन्यास की विचारधारा मे व्याप्त होने के कारण विस्तृत विश्लेषण के योग्य है ।

धौम्य के मतानुसार श्रुति की एक बात सब के लिए सदा मान्य है—ऊपर उठना और आगे बढना प्रत्येक जीव का लक्ष्य है । वे प्रगति को जीवन की कसौटी स्वीकार करते हैं । इस कसौटी पर खरी न उतरने वाली शास्त्र की अनुपयुक्त या अनुचित बातें उन्हे ग्राह्य नही । पुराने वस्त्र देखने मे अच्छे लगते और पुराने होने के नाते स्मृति को सुहावना भी बना देते है, परतु बढी हुई देह के लिए ओछे पड जाने के कारण पहने नही जा सकते । बिना ठीक नाप-तोल के नये वस्त्र भी या तो ढीले बैठते है या ओछे पडते है । यही बात पुराने और नये शास्त्रो के उपयोग-प्रयोग मे सभव है । अत शास्त्रो के प्रति समर्पण मात्र की अपेक्षा उन्हे विवेकपूर्वक हृदयगम करना श्रेयस्कर है । वे स्वय दीक्षान्त-समारोह पर कहते है, "विवेक के साथ प्राचीन को जानो पहचानो और समझो, वर्तमान को भलीभाँति देखो परखो और उसमे चलो, और, भूत तथा वर्तमान दोनो की सहायता से भविष्य को प्रबल बनाओ । भय और बाधाओं के सामने कभी न झुको । जीवन की लहरो पर दृढता के साथ आरूढ रहो ।"[1]

धौम्य जीवन मे आगे बढने के लिए शिष्यो को दृढ-सकल्पी होने का उपदेश देते है । नि स्वार्थ भाव से किया गया सकल्प डगमगायेगा नही, उसमे

१ भुवनविक्रम—पृ० १९२ तथा देखिए पृ० ५० और १९३

दृढता होगी । जीवन का दृढ संकल्प और ध्येय होना चाहिए अपने निज को सतुलित रखना । निज के सतुलन का तात्पर्य है मनुष्य के उचित अनुपात म शरीर,मन और आत्मा के समन्वय से, उनके समीकरण से । वे मनुष्य की 'कथनी' और 'करनी' मे साम्य स्थापित करने के दृढ पक्ष मे है । ज्ञान-रहित कर्म और आचरण-शून्य ज्ञान अन्धकार की ओर ले जाने वाले है । ज्ञान और कर्म का सामजस्य जीवन का पर्याय है । सतुलित मन से तन्मयतापूर्वक कर्त्तव्यपालन हो । जब कर्त्तव्यपालन हो चुका फिर उसके लिए मन मे न सताप हो और न उसकी परछाही को लौट लौटकर देखने की आकाक्षा ही ।[1]

समाज मे शूद्र के स्थान की समस्या को लेकर कपिजल की कथा का विकास होता है तथा इसी प्रश्न पर रोमक की उलझन बढती है । वैदिक आर्यो ने श्रम की कोटियो के अनुसार समाज को चार प्रमुख जातियो मे विभाजित किया था । वर्णाश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत ब्राह्मण बुद्धि, क्षत्रिय वीरता एव बलिदान, वैश्य राष्ट्र-सम्पत्ति तथा शूद्र श्रम की पवित्रता के प्रतीक माने गये है ।[2] शनै शनै शब्द शूद्र समाज मे निम्न कोटि के व्यक्ति के लिए रूढ हो गया, शूद्र अछूत और उपेक्षित समझे जाने लगे । कदाचित् इस अव्यवस्था से ऊब कर धौम्य शूद्र नाम की कोई जाति स्वीकार करने मे असमर्थ है । इस विषय पर प्रकाश डालते हुए वे कहते है—"चोर, डाकू, अधर्मी, अत्याचारी, दस्यु ये शूद्र है । श्रम करने वाला शूद्र नही है । जन्म से कोई भी शूद्र नही । स्मृति और श्रुति की मेरी व्याख्या यही है और मै इसी को चलाऊँगा, अहकार, द्वेष, भय परिग्रह और वासनाओ से लिप्त लोग भी दस्यु और शूद्र कहलायेगे ।"[3] इस प्रकार धौम्य की दृष्टि मे 'शूद्र' विशेषण मात्र है । वे कृषि, शिल्प, वाणिज्य और उद्योगो के करने बढाने वाले को वैश्य कहते है । इसीलिए तथाकथित शूद्र कपिजल को अपना शिष्य बनाने तथा योग-शिक्षा प्रदान करने मे उन्हे कोई हिचक नही । राजा रोमक भी धौम्य की प्रेरणा पाकर वर्ण-कल्पना का मूलाधार श्रमविभाजन-मात्र को मानता है । वह 'शूद्रो' को अन्य जातियो मे परिवर्तित करने का इच्छुक है । उनके विषय मे उसका मत है, "वे अपने अन्ध-विश्वासो के वशीभूत रहकर जड बने रहे, वह दूसरी बात है । वैसे मै तो शूद्रो का भी आदर सम्मान करूँगा । वे ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य, अपने अच्छे गुण और वृत्ति के अनुसार, हो सकेगे । मै चारो वर्गो का सामजस्य करके

---

१. भुवनविक्रम—पृ० ४८, ६६, २०४, २६८

२. वही—पृ० ६०

३. वही—पृ० १२५

चलूँगा। अति किसी बात की भी नही करूँगा। परमात्मा के सृष्टि काय को समझने का प्रयत्न करता रहूगा।"[1]

रोमक क्षत्रिय हे और अयोध्या का राजा। अपनी अयोग्यता एव स्वार्थ-वृत्ति के कारण अपदस्थ होने पर भी उसमे आत्म-विश्लेषण का अभाव है। सौम्य उसके दोषो की व्याख्या करते हुए आलस्य, अदूरदर्शिता और अनिश्चयात्मकता राजा के दुर्गुण बताते है। उनके मतानुसार राजा श्रम को समुचित आदर प्रदान करे, लोभ से बचे और लुटेरो आदि असामाजिक तत्वो का दमन कर प्रगति एव विकास के लिए शान्ति स्थापित रखे।[2]

---

१ भुवनविक्रम पृ० —२६६

२ भुवनविक्रम—पृ० १८३

२—माधव जी सिंधिया

कथावस्तु—

उपन्यास की मुख्य कथा अठारहवी शताब्दी के भारत मे प्रभावशाली मराठो की स्थिति-विश्लेषण को लेकर चलती है। स्थिति के दो पक्ष है—पूना स्थित पेशवा तथा अन्य सरदारो की केन्द्रीय राजनीति और दूसरी ओर है मराठो की उत्तरी भारत मे राजनीतिक, सैनिक गतिविधि। पूना की स्थिति कथा मे मौलिक महत्व रखती है। —मनमौजी राजा साहू के देहान्त के उपरान्त महाराष्ट्रीय राज्य-सत्ता ब्राह्मण प्रधानमन्त्री, 'पेशवा' के हाथ मे चली गयी। राज्यधानी सतारा से हटकर पूना पहुँच गयी। महत्वाकाक्षी सरदारो ने कभी मिलकर रहना न सीखा था, उन्होने पेशवा की सत्ता के विरुद्ध सिर उठाया। दूसरी ओर सतारा मे साहू के छोटे भाई की पत्नी, ताराबाई पेशवा-विरोधी षड्यन्त्रो मे रत थी। राज्य की खोखली आर्थिक दशा थी, तथाकथित स्वार्थरत सरदार लुटेरे हो चले थे। ऐसे दुर्दिनो मे पेशवा बालाजीराव के रहे-सहे पौरुष को उसकी अदृढता, कामुकता तथा पत्नी की उद्दडता ग्रस लेती है। निजाम, हैदरअली, दिल्ली, रुहेलो, अवध आदि से आये दिन अल्प-लाभकारी निरर्थक लडाइयाँ और घरेलू षड्यन्त्र, आर्थिक शिथिलता, ये सब पेशवा और मराठो के मूल को जर्जर कर चुकी है।

पेशवा बालाजीराव के देहान्त के उपरान्त उसका उत्साही पुत्र माधवराव पेशवा के रूप मे मराठो की स्थिति दृढ करने मे दत्तचित्त होता है किन्तु अल्पायु मे उसकी मृत्यु के कारण छोटा भाई नारायणराव पेशवा का आसन ग्रहण करता है। षड्यन्त्रकारी सरदार राघोबा नारायण की हत्या करा उसके

नवजात पुत्र का अधिकार छीन स्वय पेशवा बनने का कुचक्र रचता है। नाना फडनीस, उत्तरी भारत के विजेता सरदार माधवजी सिंधिया आदि के प्रबल विरोध के कारण राघोबा को कूटनीतिक क्षेत्र छोडना पडता है। अब सत्ता-सघर्ष मे नारायणराव के पुत्र, किशोर पेशवा माधवराव द्वितीय के सरक्षक नाना फडनीस एव तुकोजी होलकर की माधवजी सिंधिया से टक्कर हुई। सिंधिया दूरदर्शी, देश प्रेमी, निस्पृह व्यक्ति है। वह पेशवा को मुगल बादशाह का मीरबख्शी नियुक्त करा अपने व्यक्तित्व की छाप उसके किशोर-मन पर डालता है। वह बुद्धिमत्तापूवक नाना, तुको के कुचक्रो को विफलप्राय कर पेशवा के व्यक्तित्व को उभारने, निखारने मे रत है। तुको के पुत्र के हाथो विषपान कर सिंधिया प्राण त्यागता है और उसके स्वराज्य, देश के पुर्नानिमाण आदि के स्वप्न अधूरे रह जाते है।

कथा का दूसरा पक्ष मराठो की उत्तरी भारत मे गतिविधि से सबधित है।—उत्तरी भारत मे रुपया एकत्र करने तथा आधिपत्य-स्थापना के ध्येय से मराठा सेनाये किसी न किसी शक्ति से युद्ध करती रहती है। अहमदशाह अब्दाली के भारत-आक्रमण की सूचना पा उससे टक्कर लेने के लिए मराठी सेना सदाशिवराव भाऊ के सेनापतित्व मे उत्तर आती है। भाऊ के मिथ्याभिमान, अदूरदर्शिता, भावुकता, आर्थिक-विपन्नता आदि के कारण मित्र भी शत्रु हो जाते है। पारस्परिक कलह और दुर्बल मोर्चाबन्दी के कारण अब्दाली से युद्ध मे मराठो का घोर पराभव होता है।

मराठा-पराभव के बाद उस राजनीति मे माधवजी सिंधिया का दृढ, दूरदर्शी व्यक्तित्व उभरता है। माधव ने गत अनुभव, निरन्तर चिन्तन के फलस्वरूप देश के पुनर्निर्माण की योजना चित्त मे बिठा ली है। वह एकता, सजगता, निस्पृहता, अनुशासन का हामी है। उसके देश मे 'स्वराज्य' के स्वप्न से स्वार्थी राघोबा, मल्हारराव होलकर, तुकोजी आदि का मेल नही खाता। माधवराव की उपेक्षा कर अपने पौरुष का आश्रय लेता है। वह मुगल शाह शाह आलम को इलाहाबाद के अँगरेजो के सरक्षण से निकाल कर दिल्ली के सिंहासन पर आसीन करता है। माधव की योजना है कि सपूर्ण भारत दिल्ली की केन्द्रीय सत्ता के सूत्र मे बध जाय। उस सत्ता का प्रतीक हो बादशाह और सचालक-शक्ति पेशवा हो प्रधानमन्त्री या मीरबख्शी। माधव के प्रयत्नो से पेशवा की मीरबख्शी-पद पर नियुक्ति होती है और स्वय माधव उत्तरी भारत मे पेशवा का स्थायी प्रतिनिधि स्वीकार किया जाता है। अब माधव को मराठो के असहयोग, अविश्वास तथा उत्तरी भारत की विपक्षी समस्त शक्तियो का लक्ष्य बनना पड़ता

है। निरन्तर कई हारो और चतुर्मुखी प्रहारो से उसकी आर्थिक, सैनिक, राजनीतिक स्थिति अन्तिम साँसें गिनने लगती है। माधव का साहस जवाब दे देता है किन्तु अपने स्वामिभक्त, देशप्रेमी सेनापति रानेखाँ के उद्बोधन से उसमे कर्म-स्फूर्ति पुन द्विगुणित वेग से आ जाती है। माधव और रानेखाँ दिल्ली, राजपूताना आदि पर पुन अधिकार प्राप्त कर उत्तरी भारत मे मराठा-शक्ति की धाक बिठा देते है।

अब माधव के समक्ष पूना मे नाना, तुको के षड्यन्त्रो के हल का प्रश्न उठता है। वह दक्षिण मे रहकर किशोर पेशवा को प्रभावित कर सुव्यवस्था स्थापित करना चाहता है। माधव को कुछ सफलता मिलती है किन्तु विष दिये जाने के कारण उसका स्वप्न अधूरा रह जाता है।

२—दूसरी कथा है दिल्ली की विचलित तथाकथित केन्द्रीय सत्ता की दुर्गति की। मुगल-साम्राज्य के वैभव का दीपक बुझ चुका था केवल बाद का धूँआ शेष था। बादशाह नाम मात्र का था, गुड्डा जेसा। कोई भी, देशी-विदेशी आक्रमणकारी उसे समाप्त करने के लिए यथेष्ट था। कुटिल स्वार्थी वजीरो के हाथ मे उसका अस्तित्व कठपुतली के समान था। वजीर लोग कैद से जीवन की घडियाँ गिनते किसी शाहजादे को बादशाह बनाते, जो उनकी चालो के लिए एक ओट-मात्र होता। और कैदी से जो बादशाह बनता था, वह अपनी वासनाओ मे डूब जाता, कठिनाई से षड्यन्त्रो और घोर दरिद्रता मे घुटली साँस ले पाता। कभी-कभी स्वय षड्यन्त्रो मे भाग ले लेता तो वजीरो के हाथ कुत्ते की मौत मारा जाता।

बादशाह अहमदशाह दिल्ली के कटकाकीर्ण तख्त पर आसीन था। निजाम का कुटिल पौत्र शिहाबुद्दीन कुचक्रो से मीरबख्शी, फिर वजीर बन कर आलमगीर सानी को गद्दी पर बिठाता हे। अहमदशाह अब्दाली आक्रमण कर दिल्ली तथा 'दोआब' मे लूट और अत्याचार करता है। कोई सयुक्त शक्ति अब्दाली का सामना नही कर पाती, न मराठे और न जाट। बाद मे शिहाब अविश्वसनीय बादशाह की हत्या कराके किले को लूटता है और शाहजहाँ सानी को बादशाह बनाता है। अब्दाली का भारत पर पुन आक्रमण होने पर शिहाब दिल्ली से भाग निकलता है, वहाँ 'जम्हूरी सस्था' तथा कट्टर मुसल-मानो का बोलबाला हो जाता हे। अन्त मे, आसफुद्दौला तथा रुहेलो सहित अब्दाली विशृङ्खल मराठो को बुरी तरह हरा कर उत्तरी भारत मे घोर लूट-पाट करता लौट जाता है।

इलाहाबाद मे अँगरेजो से सरक्षित तत्कालीन मुगल 'बादशाह' शाहआलम

द्वितीय को माधव जी सिंधिया दिल्ली लाकर पुन स्थापित करता है। विपत्तिग्रस्त माधव की अनुपस्थिति मे रुहेला गुलाम कादिर दिल्ली पर आक्रमण कर शाहआलम को अनेक पीड़ा देकर उसे अन्धा करा के वैर चुकाता है। बाद मे माधवजी सिंधिया के द्वारा गुलाम कादिर का पूर्ण पराभव होने पर बादशाह को तनिक सान्त्वना मिलती है।

३—तीसरी कहानी है अभागिनी गन्ना बेगम के असफल प्रेम, भग्न हृदय और आत्म-घात की। विधवा माँ की बेटी, असहाया गन्ना भरतपुर के जाट राजकुमार जवाहरसिंह के प्रति आकृष्ट हो जाती है। जवाहर के साथ पलायन की योजना विफल होती है और विवश गन्ना का विवाह कामुक, लम्पट वजीर शिहाबुद्दीन से हो जाता है। गन्ना का वैवाहिक जीवन कुंठा, अवसाद से भरपूर है। जवाहर को उसे ले उड़ने मे पुन असफलता मिलती है। गन्ना किसी प्रकार शिहाब के हरम से भाग कर मिस्र-वेश और गुनीसिंह नाम धारण कर लेती है। गुनीसिंह को जब ज्ञात होता है कि जवाहरसिंह भी लम्पट, वंचक और कामुक मात्र है तो उसका हृदय शीर्ण तरी की भाँति निरावलम्ब जीवन-सागर मे टक्करें खाता है।

गुनीसिंह कलमनवीस के रूप मे माधव जी सिंधिया का आश्रय ग्रहण करता है। वह माधव के महान् व्यक्तित्व पर न्योछावर है और माधव गुनी के शील और स्नेह पर मुग्ध। गुनी के पुरुष-वेश का रहस्य खुलने पर माधव-गन्ना का स्नेह, प्रणय का रूप धारण कर लेता है जहाँ यौवन का उच्छृंखल ज्वार नही प्रौढता की शान्ति और स्थिरता थी। देश मे 'स्वराज्य' स्थापना का स्वप्न दोनो का ध्येय बन गया है। गन्ना माधव के विरुद्ध षड्यन्त्रो से चिंतित है। वह धर्मान्ध कूटनीतिज्ञ मुसलमानो की कार्य सभा मे तत्सबधी भेद लेने जाती है और कुटिल शिहाब के चंगुल मे जा फसती है। शिहाब उससे पुन वासना-पूर्ति चाहता है किन्तु गन्ना अब अपने 'माधव' के अतिरिक्त किसी की नही है। गन्ना विषपान कर मरते समय कागज पर कविता की एक पंक्ति लिखी छोड जाती है—'आह ! गमये गन्ना बेगम !'

४—चौथी कथा है भरतपुर के जाट-राज्य की ह्रासोन्मुखी एकता की। राजा सूरजमल की अपने ज्येष्ठ पुत्र जवाहरसिंह से गन्ना बेगम के प्रश्न पर बिगड जाती है। अब्दाली के भारत पर आक्रमणो के समय सूरजमल मराठो से एकता स्थापित नही कर पाता, वह तनिक स्व-केन्द्रित और अदूरदर्शी है। सूरजमल रुहेलो से एक युद्ध मे मारा जाता है। राज्य-प्राप्ति के प्रश्न पर जवाहरसिंह तथा उसके भाई नाहरसिंह मे युद्ध होने पर नाहर जयपुर मे आश्रय लेता है। दुःखी नाहर के मर जाने पर पतित, शराबी जवाहरसिंह जयपुर मे

आश्रिता नाहर की सुन्दरी विधवा से विवाह का दुराग्रह करता है। जवाहर मार डाला जाता है, रतनसिंह गद्दी पर बैठता है। रतन किसी धूर्त गुसाईं द्वारा मारा जाता है और गद्दी के अधिकारी, रतन के अल्प-वयस्क पुत्र, के अभिभावक के प्रश्न को लेकर दो प्रतिस्पर्द्धी परस्पर लड़ते हैं। जाट-शक्ति तहस-नहस हो जाती है।

× × ×

मराठों की कथा उपन्यास में मुख्य है, इस के दक्षिणी तथा उत्तरी भारत सम्बन्धी दो पक्ष हैं। दक्षिणी राजनीति का उत्तरी भारत में स्थित मराठी गतिविधि पर मौलिक प्रभाव पड़ता है किन्तु उपन्यास में विशेष विकास उत्तर सम्बन्धी पक्ष का हुआ है। 'उत्तरी' कथा का कलेवर (६१ परिच्छेदों में व्याप्त)[1] भी 'दक्षिणी' कथा (२८ परिच्छेदों वाली) की अपेक्षा विशद है।—दक्षिणी कथा प्रारंभिक अवस्था में तनिक विस्तृत है, मराठों के घरेलू झगड़ों तथा पेशवा बालाजीराव की विवशताओं एवं शिथिलता को लेकर कथा के दक्षिणी-उत्तरी पक्षों की भूमिका प्रस्तुत करती है। आगे चल कर मध्य में उत्तरी पक्ष प्रधान हो जाता है, दक्षिणी पक्ष प्रायः नेपथ्य में रह कर तीव्रता से बीतती घटनाओं—दो पेशवाओं की मृत्यु राघोबा के षड्यंत्र आदि—की साधारण सूचना मात्र देता है। अन्त में प्रबल, प्रधान उत्तरी पक्ष माधवजी सिंधिया के साथ एकाएक मुड़ कर दक्षिणी पक्ष में समा जाता है। पुनः कहानी के अन्त में दक्षिणी प्रसङ्ग आ खड़ा होता है, फिर समाप्ति।

उत्तरी कथा को स्पष्ट दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(१) उत्तरी भारत में मराठा-गतिविधि और मराठों का पानीपत के मैदान में अब्दाली से पराभव (२० परिच्छेदों में विस्तार, परिच्छेद संख्या २ से ५१ तक)

(२) मराठों का सम्भलना। माधवजी सिंधिया का मराठा-नायक के रूप में विकास तथा उसकी गतिविधि (३६ परिच्छेदों में, परि० सं० ५४ से परि० सं० १२२)

बाद के ७ परिच्छेदों में यह कथा दक्षिणी कथा से जा मिलती है, जिस समय माधवजी उत्तर से हट कर पूना की राजनीति में व्यस्त हो जाता है।

उत्तरी कथा का पहला भाग अनावश्यक जान पड़ता है यद्यपि इसमें यत्र-तत्र माधव के विकासोन्मुख चरित्र पर प्रभाव डालने वाली घटनाओं का सूक्ष्म

१ उपन्यास में कुल परिच्छेदों की संख्या १३२ दी गयी है, वास्तविक सं० १२६ है। छापे की भूलवश परि० सं० ७६ के स्थान पर ८१ छपा है और आगे चलकर १२७ के स्थान पर १३०।

निर्देश है। यदि दो-एक परिच्छेदो मे गत घटनाओ को भूमिका-रूप मे देकर कथा के दूसरे तथा मुख्य भाग को तुरत प्रारभ किया जाता तो इस कथा मे अधिक गति और नाटकीयता स्वत आ जाती। और, यथावसर कुछ स्थलो पर पहले भाग की मनोवैज्ञानिक प्रभाव उत्पन्न करने वाली तथा मर्मस्पर्शी घटनाओ का स्मरण-रूप (फ्लैश-बैक) मे उल्लेख किया जा सकता था। इन परिवर्तनो के अभाव मे प्रस्तुत कथा का कलेवर बृहत् तथा बहुधा मात्र इतिवृत्तमय हो गया है, इतिहास के रूखे तन्तु अस्त-व्यस्त दशा मे फैल जाने के कारण कथा की गति मे कही-कही घोर शिथिलता आ गई है। साथ ही, दक्षिणी कथा उत्तरी कथा के नेपथ्य मे प्रारभ मे अन्त तक रहती तो कथा-सूत्र की प्रभावोत्पादकता निश्चय बढ जाती।

उत्तरी कथा मे माधव के उत्कर्ष से कथा का मूल सूत्र प्रारम्भ होता है, प्रारभ का कथा-सूत्र पूर्व घटित घटनाओ का अकन मात्र प्रस्तुत करता है। आगे कथा माधव के चरित्र को लेकर चलती है। माधव दूरदर्शी, 'राजदर्शी' है, वह देश को एक सूत्र मे बाधना चाहता है। वह पौरुष के बूते पर शाहआलम द्वितीय को इलाहाबाद से लाकर दिल्ली मे स्थापित करता है। उसकी योजनाये अभी स्वप्न ही हैं कि उस पर मुसीबतो का पहाड टूट पडता है, घर-बाहर के सभी लोग उसके प्राणो के ग्राहक हो जाते है। सार्वजनिक पतन की उस आँधी मे सिंधिया के देश-प्रेम का टिमटिमाता दीपक विचलित हो उठता है, अब बुझा कि तब बुझा। त्रस्त माधव का साहस जवाब दे जाता है, यही इस कथा की चरम परणति है (परि० स० ११५)। राने खाँ के उद्बोधन से माधव सभलता है और द्विगुणित वेग से कर्तव्य-पथ पर अग्रसर होता है। इसके बाद कथा गति खोने लगती है, परि० स० १२१ तक माधव की सफलता दिखायी गयी है। फिर परि० स० १२६ तक माधव के पूना-राजनीति मे केन्द्रित होना तथा मृत्यु का प्रसग, यह सब मुख्य कथा-सूत्र से अलग होकर उसका उपसहार बनकर रह जाता है। माधव की कथा को १२२ से आगे बढाया जाना इस तथ्य का सूचक है कि उपन्यासकार इतिहास—माधव के जीवन-चरित—पर केन्द्रित है।

उपन्यासकार ने उक्त कथा का प्रसार कदाचित् इस दृष्टि से किया है, माधव का 'राजदर्शी'-व्यक्तित्व, उसका निर्माण तथा स्वार्थी-हृदय बादलो मे बिजली की एक कौध की भाँति चमक कर उसका लुप्त हो जाना। मराठो की उत्तरी भारत मे अटपटी गतिविधि के फलस्वरूप अब्दाली द्वारा उनके पराभव सम्बन्धी घटनायें माधव को 'राजदर्शी' माधव जी सिंधिया बनाती है। फिर माधव का उत्तरी भारत मे विरोधी तत्वो से सघर्ष, असफलता और

सफलता। बाद मे माधव को टक्कर लेनी होती है आन्तरिक मराठा-विरोध से। इसी संघर्ष मे माधव की मृत्यु की हृदयस्पर्शी घटना के द्वारा उपन्यास के 'अन्त' का प्रभाव उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया है। उक्त दृष्टि से माधव की मृत्यु की घटना कथा की चरम परिणति स्वीकार की जा सकती है। किन्तु जैसा कि पहले कहा गया है कथा-सूत्र के इतने विशद प्रसार के फल-स्वरूप उसके संगठन, तारतम्य और गति को भारी धक्का लगा है।

उत्तरी भारत की राजनीतिक आदि दशाओ के चित्रण तथा मराठा-कहानी को पूर्णता प्रदान करने के लिए दूसरी कहानी दिल्ली की, उपन्यास मे पदार्पण करती है। दिल्ली की कहानी प्रारम्भ मे प्राय स्वतन्त्र चलती है राजनीतिक षड्यन्त्रो को लेकर। अब्दाली के दूसरे भारत-आक्रमण के समय यह कहानी पहली कथा के विशेष निकट आती है। मराठो के पराभव तथा माधव के उत्कर्ष के बाद दोनो कथाये साथ चलती है। यहीं से दिल्ली की कथा उपन्यास मे प्रासंगिक बनती है।

गन्ना की रोमानी करुण कथा उपन्यास के इतिहास शिथिल तथा इतिवृत्त के मरुस्थल म नदी की छोटी सरस धारा है। यह धारा अन्य कथाओ की शुष्क बीहड़ चट्टानो को काटती-पीटती मन्थर गति से बढती जाती है। गन्ना की कथा जवाहर के प्रति प्रेम तथा तत्सम्बन्धी बाधाओ को लेकर चलती है। गन्ना का शिहाब से विवाह और उस का हरम से निकल भागना। वह स्वतन्त्र होकर देखती है जवाहर का नग्न रूप, उसकी वासना मात्र। दुखिनी गन्ना का हृदय टूट जाता है, स्वप्न चूर-चूर हो जाते है। कथा चरम पर आकर समाप्त होती जान पडती है किन्तु यह धारा झील मे गिर कर पुन निकल नया मार्ग पकडती है। गन्ना गुनीसिंह के वेश मे माधव जी सिंधिया के समीप आती है, दोनो के प्रेम-प्रसग पर कथा गति पकडती है और गन्ना की मृत्यु तथा उसके अन्तिम वक्तव्य 'आह! गमये गन्ना बेगम।' के साथ पुन चरम सीमा पर आकर समाप्त हो जाती है।—गन्ना की कथा प्रकरी है, यह मुख्य कथा मे माधव जी सिंधिया, दूसरी, दिल्ली की कथा मे शिहाब तथा चौथी, जाटो की कथा म जवाहर के जीवन को विस्तार से छूती है किन्तु इसके कारण उल्लिखित तीनो कथाओ के मध्य कोई विशेष सम्बन्ध स्थापित नही होता। गन्ना के प्रसग द्वारा उपन्यास मे सरसता के स्फुरण के साथ नारी-हृदय की सरलता, विवशता, स्निग्धता, समर्पण आदि भावनाओ का परिचय देना अभीष्ट है। गन्ना की करुण कथा तत्कालीन विशृङ्खलित, स्वकेन्द्रित समाज मे निरीह नारी की दारुण अवस्था की द्योतक है।

जाटो की कहानी दिल्ली की कथा की भाँति तत्कालीन उत्तरी भारत की

राजनीतिक दशा की सूचक है। इस कथा का प्रारम्भ विस्तृत है, मध्य भी किसी सीमा तक स्पष्ट है किन्तु अन्त की घटनाओं की सूचना मात्र मिलती है। अत कहा जा सकता सकता है कि जहाँ इस कथा का गन्ना से सम्बन्ध है वहीं तक इसे विशदता प्राप्त हुई है।

पात्र

'माधव जी सिंधिया' का कथावृत्त वर्षों मे फैला होने के कारण अत्यन्त विस्तृत घटना-पट को ढके है। इसीलिए उपन्यास मे केवल सक्रिय पात्रों की सख्या साठ है और घटना-क्रम मे पड कर इनमे लगभग ३३ पात्र कराल काल के गाल मे समा जाते है। इन साठ पात्रों को निम्नलिखित वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है—

(अ) कथा-विकास मे अग्रसर, मुख्य पात्र—माधव जी सिंधिया, शिहाबुद्दीन, नजीब, गन्ना बेगम, सूरजमल।

(ब) कथा-प्रवाह मे सहायक पात्र—राफदर जग, अकीबत खा कश्मीरी रघुनाथराव, उम्दा बेगम, अहमदशाह अब्दाली, जवाहरसिंह, वलीउल्ला फकीर, मरहारराव होल्कर, बालाजीराव पेशवा, सदाशिवराव भाऊ, नाना फडनीस, राने खाँ, माधवराव पेशवा, गुलाम कादिर।

(स) काल विशेष के परिचायक व्यक्तित्व-प्रधान पात्र—कन्नड त्रिम्बक, ताराबाई, बादशाह अहमदशाह, इब्राहीम 'गार्दी', मुगलानी बेगम, गोपिकाबाई विश्वासराव, रामशास्त्री, रामचन्द्र गणेश, शाह नजफ, मन्यारसिंह, रामलाल, कुतुबशाह, शाह आलम का ख्वाजा।

(द) कथा-प्रवाह मे गौण, क्षणिक स्थान ग्रहण करने वाले पात्र—दत्ता जी, माधव जी पन्त पुरन्दरे, सलावत जग, ऊधमबाई, खडेराव, अजीजुद्दौला, अदीना बेग, शिहाब का ख्वाजा, अन्ता जी माणिकेश्वर, शाहजहाँ सानी, जनकोजी, अब्दुल अजीज, शुजाउद्दौला, इगले, नाहरसिंह, जयपुर का दूत, मनीसिह, शाह आराम, विशाजी कृष्ण, नारायणराव पेशवा, जाबितखाँ, मुहम्मद बेग हमदानी, मुहम्मदशाह की विधवा बेगम, बेदारबख्त, देबाई, माधवराव नारायण द्वितीय, मल्हारराव (तुकोजी का पुत्र)।

उपन्यास मे भीड बढाने का उत्तरदायित्व 'द' श्रेणी के पात्रो पर विशेषकर है। साधारण पाठक के लिए इतने पात्रों से परिचित होना और उन्हे स्मृति-कोश मे सजोये रखना प्राय असम्भव है। कथा मे अत्यधिक विस्तार देने की प्रवृत्ति तथा सतर्क कसावट के अभाव के कारण बनैली उपज की भाँति अत्यधिक पात्र उपन्यास मे स्थान पा गये है। फिर भी 'अ', 'ब', 'स' श्रेणी

के तेतीस पात्रों की रूपरेखाय स्पष्ट, स्वतन्त्र एव परस्पर भिन्न है। यहाँ पहली तीन श्रेणिया के कुछ उल्लेखनीय पात्रो के चरित्र एव उनके चित्रण का विश्लेषण कर उपन्यास मे वर्मा जी की पात्र-चित्रण-कला का परिचय देना अभीष्ट है।

माधव जी सिंधिया का उपन्यास मे पदार्पण बीस वष की आयु मे होता है। बडी आँख, गम्भीर स्वभाव, दृढ ठोडी और दृढतर भौहे।[1] कहा जा चुका है माधव का व्यक्तित्व अब्दाली द्वारा मराठो के पराभव के पश्चात् उदय होता है, उपन्यास के पूर्वार्द्ध मे यथावसर माधव के चरित्र-निर्माण के सूत्र सतकतापूर्वक सयोजित किये गये है। माधव को तत्कालीन घटना-चक्र मे जिज्ञासु दर्शक, मनोयोग-युक्त विद्यार्थी के रूप मे चित्रित किया गया है। अपरिपक्व माधव युवक को राजदर्शी 'माधव' बनाने मे सहायक कुछ उल्लेखनीय सूत्र इस प्रकार है।—पेशवा विरोधिनी, महत्वाकांक्षिणी ताराबाई का समाधान करते समय भारत मे स्वराज्य-स्थापन का दृश्य माधव के युवक सुलभ स्वप्नो मे है। पराजित मुसलमानो के प्रति सहृदयता, बडप्पन की चाह नही, 'पटेल' मात्र कहलाने मे सतोप और इब्राहीम 'गार्दी' जेसे देशभक्त, परिपक्व सेनानी की गतिविधि की निरत परख माधव के भावी स्वरूप के द्योतक है।[2] अभी माधव मुखर नही, केवल परिस्थितियो पर उसकी प्रतिक्रिया लक्षित होती है। अभिमानी, अदूरदर्शी मराठा सेनापति सदाशिवराव भाऊ द्वारा हितेषी जाट राजा सूरजमल के अपमान के समय माधव की चिन्ता, विकलता विवशता के निर्देश से यह तथ्य स्पष्ट है।[3] कुछ आगे चल कर माधव स्पष्ट शब्दो मे युद्ध तथा सैनिक अनुशासन के प्रश्न पर भाऊ का उद्बोधन भी करता है।[4]

माधव गतकालीन गौरव या ग्लानि के फेर मे रहने वाला व्यक्ति नही। 'वर्तमान' को सार्थक बनाने मे वह दत्त-चित्त है। जब वर्तमान सुफल होगा तो भविष्य का उज्ज्वल होना अवश्यभावी है।[5] माधव ने अपने युग की समस्या को परखा है। देश की रग-रग मे व्याप्त स्वार्थ और अहङ्कार के विष के कारण पारस्परिक फूट तथा विदेशी आक्रमको के प्रति वह सजग है। वह

१. माधव जी सिंधिया—पृ० ५
२ पृष्ठ—४५, १३२-१ ३, १८३, २५५ से २५७
३ पृष्ठ—२११ से २१३, २१५, २१७ से २२०
४. पृष्ठ—२८८, २३६
५. पृष्ठ—४२३

भारत के अन्तर्सङ्गठन के महत्त्व पर बल देता है , शक्तिशाली मराठे जाटो, राजपूतो आदि को लूट-पीट कर अपना शत्रु न बनाये वरन् सहयोग से भारतीय शक्तियो के सघ—'स्वराज्य'—की स्थापना करे । इस सघ का सरक्षक, केन्द्रीय सत्ता दिल्ली का मुगल बादशाह हो और दक्षिण का पेशवा प्रधान सचालक हो । मुसलमान, जो भारत को स्वदेश समझते है, बिना हिचक के साथ लिए जाएँ । ऐसी सगठित भारतीय शक्ति ही अँग्रेजो जैसी विदेशी घोर घातक आक्रमणकारी विपत्ति का सामना कर सकती है । साथ ही, सर्वहारा वर्ग—किसान, मजदूरो—का शोषण त्यागकर उन्हे सशक्त बनाया जाए । माधव की यह धुन जीवन-पर्यन्त रहती है । वह मरते समय भी अपने इस लक्ष्य को आँखो से ओझल नही होने देता । माधव गम्भीर विचारक के अतिरिक्त कुशल प्रबन्धक है । देश मे सुशासन की स्थापना के हेतु पदो को मौरूसी न रखकर योग्यता के आधार पर दिए जाने के पक्ष मे है । वह लोगो को गाँवटी पचायत, जाति, वर्ग उपवर्ग आदि के सकीर्ण दायरो से बाहर निकाल उनमे राष्ट्रीय भावना फूँकने के पक्ष मे है । उसका उद्देश्य 'राज्य' स्थापित कर सुख भोगने का नही, स्वय को जनता के सुख का साधन बनाये रखने का है । सफल सेनानी माधव के मत मे सैनिक देश का प्रहरी है, शत्रु से लडते समय उसे अन्धकार मे न रखा जाए । उसे लडाई का उद्देश्य स्पष्टतया मालूम हो । वह उद्देश्य ऊँचा हो और स्फूर्तिदायक ।[१]

माधव स्वतन्त्र दृष्टिकोण का व्यक्ति होने पर भी तत्कालीन समाज की दुर्बलताओ से अछूता नही है । वह बहुपत्नी-प्रथा का प्रबल पोषक है । उसने तीन विवाह किए है । पानीपत मे मराठा पराभव एव स्वय घायल होने के बाद पुन एक और विवाह करता है ।[२] स्त्री को भोग्या मात्र समझने वाले माधव तथा गन्ना के मध्य प्रणय सूत्र की स्थापना कर उपन्यासकार ने माधव की हृदयगत कोमलता का निर्देश किया है । गन्ना माधव को गुनीसिह, पुरुष, के वेश मे मिलती है । यहाँ माधव का गन्ना के प्रति आकर्षण स्त्रीगत नही मित्रगत स्नेह है, हृदय की स्निग्धता मात्र । गुनीसिह का रहस्योद्घाटन होने पर माधव मे वासना का ज्वार नही उठता, वह स्थिर है । उसे अभागिनी गन्ना से सहानुभूति है और उसके प्रति निष्कपट प्रेम का भाव है । कहता है, ' (गन्ना) बबूला नही है, प्रकाश बिन्दु है । माधव के प्यार मे ओछापन कभी नही पाओगी गन्ना । अपना गायन माधव को सुनाती रहना और माधव के गाधन

१. दे० पृष्ठ—३६६, ३७३, ३६०, ४३८, ४७४, ५३२, ५३६, ५३६ से ५४१, ५६५, ५७६
२. पृष्ठ—१८४, २६६

को ।'—और दोनो के सासारिक सघर्षों को झेले हुए प्रौढ हृदय परस्पर समीप आते ह, शारीरिक सतोष की अपेक्षा आत्मिक नैकट्य और तृप्ति की खोज मे ।

माधव बहु-विवाह, प्रौढता, निरन्तर सघष एव विरोध-सहन के कारण अत्यधिक गम्भीर और स्थिरप्राय हो गया हे । कही-कही उसकी यह स्थिरता शिथिलता की द्योतकता के साथ युग के विरोधी तत्वो स टक्कर लेने मे अक्षमता की सूचक हे । किसी साधारण फकीर की षड्यन्त्रकारी सभा मे भेद लाने के लिए अकेली अबला गन्ना को जाने की अनुमति दे देना माधव की अदूरदर्शिता, शिथिलता की सूचक हे । गन्ना के न लौटने तथा विवश हो मर जान पर माधव की असमर्थता, असाधारण ठडक की देन हे । बाद मे वह अपनी प्रकृति की चहारदीवारी के भीतर बन्द, आत्म-मग्नप्राय हो जाता है । विद्रोहो-विरोधो से टक्कर लेने समय और गुलाम कादिर, हमदानी जैसे दुष्टो को तत्काल दण्डित करने के प्रश्न पर मर्माहत माधव जडवत् रह कर 'शक्तिहीन' (स्पेट अप फोस) मात्र जान पडता हे । इसी असमर्थता के कारण मल्हार के हाथो विषमय पान खा कर प्राण त्यागता हे ।—वर्माजी ने प्रारम्भ से लेकर अन्त तक माधव के चरित्र को उभारने का प्रयत्न किया हे । जहाँ कही माधव असमर्थ हे, शिथिल है वहाँ भी उसके चरित्र की व्याख्या कर उसके गुणो को उजागर किया गया है । इस प्रकार उसके चरित्र-चित्रण मे प्रत्यक्ष के साथ नाटकीय विधि का मिश्रण है ।

गन्ना बेगम युग की बेडियो मे असमय भावुक युवती हे । किसी सहृदय प्रिय को सर्वस्व अर्पित करने के लिए आतुर हे । कल्पनाशीला, रसिका होने के कारण लीलामय कृष्ण कन्हैया तथा उसके गीत गाने वाले (जन्म मात्र से मुसलमान) गन्ना के हृदय के अधिक समीप हे । वह बाँके जाट राजकुमार जवाहरसिह की पहली झलक पर मुग्ध हो हृदय दे बैठती हे । उसे हिन्दू धम 'खूबसूरत' लगता है, उस धर्म को ग्रहण करना सौभाग्य समझती हे ।[१] गन्ना की इस प्रवृत्ति का विकास नूरबाई (टूटे काँटे) मे प्रत्यक्ष हे । नूर जन्म से मुसलमान और कर्म से वेश्या हे किन्तु उसे वृन्दावन-कन्हैया प्यारे है ।

गन्ना हृदय से जवाहर की होकर भी बलात् वजीर शिहाब से विवाह होन पर शरीर से 'पति' नामधारी कामी दैत्य की है । जवाहर के प्रति उसकी लगन अटूट हे और जब अथक प्रयत्न के फलस्वरूप वह मजिल पर पहुँचने को होती ह तो सामन्तयुगीन उद्दत पुरुष जवाहर का नग्न स्वरूप प्रत्यक्ष हो जाता है । जवाहर को सुरा सुन्दरी की हवस ह, उसके समीप गन्ना प्रेयसी नही

१. पृष्ठ—८९

इच्छापूर्त्ति की साधन मात्र है। अग-विहीना, भग्न-हृदया गन्ना गुनीसिह के वेश मे अपने डूबते जीवन, टूटते हृदय को माधवजी सिंधिया को सौप तिनके का सहारा लेती है। माधव के गम्भीर, शीतलप्रद व्यक्तित्व पर मुग्ध हो माधव और उसके उद्देश्य की रक्षार्थ प्राणो पर खेलती और अन्त मे प्राणो से हाथ भी धो बैठती है।

माधव गन्ना के समीप प्रिय पुरुष या आश्रयदाता मात्र नही है वह उसकी श्रद्धा, स्नेह एव तन्मयता का पात्र है। गन्ना ने माधव मे अपनी आत्मा का विकास पाया है। माधव इष्ट है तो गन्ना उसकी साधिका, गायिका। गन्ना के लिए 'माधव' के साढे तीन अक्षरो मे अपने प्रिय और ब्रज के माधव की युगल मूर्ति का साक्षात् दर्शन है। यही भावना 'टूटे काँटे' की नूरबाई म द्रष्टव्य है, वह 'मोहन' के साढे तीन अक्षरो मे प्रिय और ब्रज के मोहन का तादात्म्य पाती है। प्रिय के माध्यम से प्रभु तक उडान वर्माजी के लिए नयी नही है। वर्माजी के स्त्री पात्रो का विश्लेषण करते समय कह आये है कि उनके दिवाकर (गढ कुण्डार) और कुञ्जरसिह (विराटा की पद्मिनी) क्रमश अपनी प्रेयसिया तारा तथा कुमुद मे देवी झाँकी पाते है। उनकी प्रेयसी साधारण नारी नही देवी—इष्ट देवी—है। वहाँ साधक पुरुष है तो यहाँ नारी। गन्ना और नूर दोनो अपने गत से त्रस्त है, समाज और पुरुष द्वारा दलित, भावुक और भविष्य को सुधारने की इच्छुक। जो उनका आश्रयदाता, प्रेरक और पथ-दर्शक पुरुष—साधन—है साध्य 'कन्हैया' तक पहुचने का, वह साधन शनै-शनै साध्य 'मोहन' या 'माधव' के समान आत्मीय बन जाता है। साधन और साध्य एक हो जाते है।

गन्ना का सुख-स्वप्न टूट जाता है। घृणित शिहाब के हाथो पुन पड जाने पर उसकी वासना का क्षुद्र उपकरण बनना उसे अब सह्य नही है। माधव-पियूष के पान के बाद इस कीचड से गन्ना को क्या लेना। उसे केवल रट है, 'मो प्यारो माधव कहाँ, मोहि बताओ बिसेखि।' और स्वेच्छा से प्राण त्याग देती है।

गन्ना सामन्तयुगीन त्रस्त, पददलिता नारी की प्रतीक है जो तथाकथित पति की क्रीत दासी और लोलुप प्रिय के मन-बहलाव की सामग्री मात्र है। यहाँ तक अत्याचार गन्ना मूक, सिर झुकाए सहती है। शिहाब के हरम मे सपत्नी उम्दा के उच्छृङ्खल, विद्रोही व्यक्तित्व से प्रोत्साहित हो उसमे पौरुष, आत्म निर्भरता का तत्त्व जाग्रत् होता है। अब फिर वह स्वय परिस्थितियो का निर्माण कर अपना भविष्य बनाती है।

शिहाबुद्दीन मध्ययुगीन चरित्रहीन कुकर्मी कूटनीतिज्ञ दरबारो का प्रतीक

है। उसके कुटिल व्यक्तित्व की पृष्ठभूमि का मनोवैज्ञानिक सकेत प्रारम्भ म मिलता है। शिहाब कजूस और अविवेकी पिता का पुत्र है, बचपन मे उसे 'धम' के शिकजो मे कसा गया है। स्त्री मात्र के सपर्क से उसे दूर रखा गया है। स्त्री के प्रति तृष्णा, अतृप्ति उसक अन्तर मे घोर हवस और विकृति बन कर पठ गयी है। स्त्री-निषेध के फलस्वरूप उसका बाल-सहज सौन्दर्य-मोह उसे धम स खीचकर शरीर को सजाने-सवारने म लगाता है। वह स्त्रीत्व को अपने पुरुषत्व पर आरोपित कर लता है।[1] शिहाब का बालपन कठमुल्लाओ की दबोच मे रहने के कारण उसकी कोमल नैतिक भावनाय सूख गयी है और मन अस्वाभाविक रूप से नियन्त्रित हो जाता है। उसके मन का यह नियत्रण, यह एकाग्रता स्वार्थ पर लक्षित है। वह स्वार्थ-केन्द्रित है, लूट-खसोट, हत्या, जाल-फरेब, कृतघ्नता आदि को सफलता के स्वाभाविक साधन मानता है।[2] क्षुद्र स्वार्थ के कारण वाक्-सयमी कुशाग्र-बुद्धि शिहाब अदूरदर्शिता तथा षड्यन्त्रो का पुतला है।

पन्द्रह-सोलह का विषबुझा यह किशोर अपनी कुटिलता मे बडो-बडो का चुटकी मे भूमिसात् कर देता है। वजीर सफदरजग के यहाँ 'धरना' देकर जिसकी सहायता से मीरबख्शी बनता है उसकी जड काट कर भगाता है। फिर बारी आती है सलाहकार-उस्ताद की, उसका वध कराता है और बादशाह अहमदशाह को खजर के घाट उतारता है। खुशामद, मक्कारी मे उसका कोई सानी नही। फकीर शाहवली जैसे निस्पृह, रूखे व्यक्ति को फुसलाना उसका बाँये हाथ का खेल है।[3] अहमदशाह अब्दाली के भारत-आक्रमण के अवसर पर रक्षा का कोई चारा न देख उसी की छावनी मे हरम सहित जा पहुँचता है और अब्दाली जैसे निर्दय आक्रमक से अपने प्राणो और स्वार्थ को सुरक्षित रखने मे सफल होता है। दिल्ली का वजीर होते हुए भी जब-तब किले को लूटने-खसोटने मे कभी पीछे नही रहता।

घटना-चक्र मे पडकर कापुरुष शिहाब वजारत के वैभव और गन्ना के विलास से वंचित हो कुठा, कटुता से भर उठता है। दुराशाग्रस्त हो उम्दा बेगम की स्वय हत्या करता है और गन्ना की मृत्यु का कारण बनता है।

कुछ विशिष्ट (टिपिकल) पात्र चारित्रिक विलक्षणता की दृष्टि से यहाँ उल्लेखनीय है। भारत निवासी किन्तु हृदय से परदेशी क्रूर, लुटेरा नजीब खाँ वचक रुहेला सरदार है। अवसरवादिता और स्वार्थ को येन-केन-प्रकारेण

---

१ पृष्ठ—२, ३

२ पृष्ठ—१६

३. पृष्ठ १००, १०१

पूरा करने के हठ से युक्त है। प्रारभ से अन्त तक भारत को लुटेरे और पीडक की दृष्टि से देखता है। अब्दाली के भारत-आक्रमण म उसका विशेष हाथ है। वह मराठा-पराभव के बाद उनके सरदारो पर अमानुषिक अत्याचार करा अपने अन्तर के पशु को साक्षात् कर देता है। **इब्राहीम खा 'गार्दी'** जैसे देशभक्त मुसलमान सजग सेनानी का उदय उस सार्वजनिक पतन के युग मे एक अपूर्व घटना है। गार्दी ने फ्रेंच-भाषा के माध्यम से तत्कालीन योरोपीय सजगता, सक्रियता को हृदयगम किया है। फ्रासीसी जनरल के साथ काम करने के फल-स्वरूप विचारधारा और कर्म मे भारतीय जन से कही आगे है। वह सेना के मिथ्या आडम्बर-प्रदर्शन के पक्ष मे नही, सच्चे सैनिक को भरपेट भोजन, रात का आराम और मन का काम मिलना चाहिए, बस! सेना सगठित और अनु-शासित हो। इब्राहीम योग्य सेनानी के अतिरिक्त राष्ट्र-प्रेमी विचारक है। वह 'हिन्दुस्थानी मुसलमान है, कोई लुटेरा सरहद्दी नही।' स्वामि-भक्ति से बढकर उसके लिए और कोई भक्ति नही। वह किसी भी मूल्य पर आक्रमक अब्दाली का साथ देने को तैयार नही। भूमि के भूखे जो हिन्दू और मुसलमान अब्दाली से जा मिले है उनका मनोविश्लेषण करते हुए कहता है—' इनका भी इतना कसूर नही है जितना हमारे मुल्क की जागीरदारी, जिमीदारी और मसबदारी का चलन है। उखडे हुए जमीदार हमला करने वाले परदेसी दुश्मन से जा मिलते है।'[1] आगे चलकर वह अब्दाली को स्पष्ट उत्तर देता है—' जो अपने मुल्क के साथ घात करे, जो अपने मुल्क को बरबाद करने वाले परदे-सियो का साथ दे, वह मुसलमान नही है।'[2] उसके मत मे क्या राम खुदा और खुदा राम नही है! गार्दी के इन प्रगतिशील विचारो को अब्दाली सरीखे सकीर्ण-स्वार्थी समझने मे असमर्थ है। वे उसे 'फिरगियो का शागिर्द', 'काफिरो का कायल' और 'कुफ्र' बकने वाला कह कर क्रूरतापूर्वक मौत के घाट उतारते है।

सदाशिवराव भाऊ भावुक अदूरदर्शी सेनापति है, मिथ्याभिमान उसकी रग-रग मे है। शक्ति-मद से मत्त मराठे भाऊ के ऐश्वर्य-प्रदर्शन के थोथे प्रयास हास्यास्पद है। छावनी के राजसी ठाठ तथा मराठा-ध्वज के फहराने आदि जैसे निरर्थक प्रसगो पर केन्द्रित रहना उसे रुचिकर है। अपने वाचाल असयम से हितैषी जाट-राजा सूरजमल और मराठा सरदार मल्हारराव की सहानुभूति खोता है। उसके कुप्रबन्ध के कारण मराठी सेना त्रस्त-व्यस्त हो भाऊ की खीज बढाती है। अन्त तक शत्रु को हेय समझ कर स्व-गर्व मे खोया रहता है।

१—पृष्ठ २५६, २६५

२—पृष्ठ २७७, २७८

अब्दाली से टक्कर लेते समय सभल नही पाते। और भतीजे विश्वासराय की मृत्यु के समाचार पर पागलो जैसा लडता हुआ सेना को उसके भाग्य पर छोड मारा जाता है। पेशवा बालाजीराव की पत्नी गोपिकाबाई गपम उद्दण्ड मरदानेपन के लिए उल्लेख योग्य है। अधेड अवस्था की, सुन्दर आकृतिवाली। कापुरुष पति के नियन्त्रण के अभाव मे स्वय को पुरुष समझ उठने के कारण उसका चेहरा-मोहरा पुरुष जैसा हो चला है। स्वर प्रखर, नेत्र तीक्ष्ण, स्वभाव पर नियन्त्रण नाम मात्र का। पति पेशवा को बात-बात पर झिडकती है, राजनीतिक षड्यन्त्रो-गोष्ठियो मे भाग लेना रोब जमाना उसका परम अधिकार है। गोष्ठियो मे उसकी उद्दण्डता, डाट-डपट देखते बनती है।

वातावरण

'माधव जी सिंधिया' का सम्बन्ध भारतीय अठारहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध से है। इस काल मे मुगल-साम्राज्य अन्तिम साँसे गिन रहा था, दिल्ली की केन्द्रीय सत्ता छिन्न-भिन्न हो चुकी है। किसी सबल शक्ति के अभाव एव सरदारो-सामन्तो के घोर चारित्रिक पतन के फलस्वरूप विशृङ्खलता, अव्यवस्था का बोलबाला है। दिल्ली मे बादशाह पौरुषहीन होकर 'हिजडो-कुजडो' के घरेलू षड्यन्त्रो मे कठपुतली मात्र बन गया है। शहर के मुसलमान ही आपस मे लडते नही अघाते, कही शिया-सुन्नी का झगडा तो कही हिन्दुस्तानी-ईरानी, तूरानी का फसाद। पडोस के जाटो, गूजरो, अहीरो ने सिर उठाया और लूटमार मे लग गये। बिहार, बङ्गाल से दिल्ली को कोई मालगुजारी प्राप्त नही होती। पजाब अब्दाली की दबोच मे जा रहा है, इलाहाबाद के सूबे पर पठानो रुहेलो के दाँत है और गुजरात-मालवा को मराठे दाबते आ रहे है। दक्षिण मे निजाम-मराठो का द्वन्द्व और राजस्थान मे रजवाडो का पारस्परिक तुमुल सघर्ष। चारो ओर मार-काट आपा-धापी की भीषण आग लगी हुई है।[1]

दिल्ली-पतन की इस घडी मे दक्षिण मे मराठा-शक्ति का उदय हो चुका है। मराठो का प्रभाव भारत के दक्षिण से उत्तर तक फैल गया है। ये पेशेवर योद्धा मुगल बादशाह के निमन्त्रण पर उत्तरी भारत की द्रोही शक्तियो को कुचलने जा पहुँचते है और रजवाडो के पारस्परिक झगडो मे किसी न किसी का पक्ष लेकर लडना, धन वसूल करना, लूटना इन का नित्य का धन्धा है। दक्षिण मे इनका चिर शत्रु निजाम है, उससे प्राय युद्ध होते रहते है। साथ ही आतरिक सघर्ष इस शक्ति मे घुन की भाँति लग गया है। स्वार्थी भूमिपिपासु मराठा सरदार तत्कालीन मराठा-नायक पेशवा से निरतर जूझते रहते

१—माधवजी सिंधिया—पृ० २५ से २६

है। कभी छूत-अछूत का प्रश्न तो कभी ब्राह्मण-अब्राह्मण या वर्ग-विद्वेष।[१]

यहाँ 'मराठा'-चरित्र पर प्रकाश डालना युक्तिसंगत होगा। मराठे कठोर प्राकृतिक प्रदेश के निवासी होने के कारण स्व-अस्तित्व-रक्षा में सङ्घर्ष-रत, आत्म-निर्भर एवं स्वाधीन-प्रकृति बन गये हैं। दारिद्र्य ने उन्हें पतित नहीं कर्मठ बनाया निरन्तर सङ्घर्षों ने साहस प्रदान किया। इस कर्मठ जाति में पारस्परिक समता का भाव रहा, इनकी लडाकू प्रवृत्ति को महाराष्ट्रीय सन्त, महात्माओं ने भक्ति से नवाया। मराठों ने दुखियों के लिए त्याग किया और अत्याचारी के लिए अपने भाले की नोक तैयार रखी। मुसलमानों के अत्याचारों और जन-पीडन ने इनमें चुस्ती-चालाकी और अवसरवादिता पैदा कर दी। समस्या का अविलम्ब हल निकालना और हल को तुरन्त कार्य-रूप में परिणत करना इन्हें कठिन न रह गया। हार को क्षणिक मानना और अवसर पाते ही तत्क्षण उसे जीत में परिवर्तित कर देना बायें हाथ का खेल हो गया। एशिया भर की वीर-साहसी कौमों में इनका अधिकतम सादृश्य अफगानों से है। हाँ, ये वैसे बर्बर और निर्दय नहीं है। शिवाजी ने मराठों को सगठित कर शक्तिशाली बनाया किन्तु बाद में सत्ता और नेतृत्व ब्राह्मण पेशवाओं के शिथिल हाथों में चले जाने पर मराठों में ऊँच-नीच का भेदभाव बढ़ गया। स्वार्थ, ईर्ष्या और पर जीवियों की बाढ़-सी आ गयी। जमीन और धन की लूट-मार सब का उद्देश्य बन चला।[२] शक्ति प्राप्त कर मराठों में मुगलों की नकल पर टीमटाम द्वारा सत्ता-प्रदर्शन का रोग आया।[३] उन्हें रुपयों का अभाव खटका विलास-पूर्ति, पारस्परिक झगडों और सैनिक सगठन के लिए। और अखिल भारतीय हिन्दू-साम्राज्य स्थापित करने का स्वप्न कल्पना में होने के कारण उन्होंने भारत में अत्यन्त तीव्रगति से विस्तार किया। इस तीव्र प्रसार में व्यवस्था को स्थिरता देना टेढ़ी खीर था। सामाजिक दोष अव्यवस्था की अनुकूलता पाकर फले-फूले और शेष भारत मराठों की लूट-मार, नोच-खसोट से विपन्न हो उठा।[४] सैनिक-वृत्ति महाराष्ट्रीय युवक की प्रवृत्ति के अनुकूल होने के कारण दशहरे के बाद फसल कटने पर वे सिपाही बन जाते हैं। उन्हें छावनी के नियम-संयम से अरुचि है और लूट मार की लपक। सिपाहीपन से उनकी लुटेरा वृत्ति तुष्ट होती थी और घर पर सरदार या लगान वसूल करने वालों

१—पृष्ठ ११, १२
२—पृष्ठ ४०, ४१, २२
३—पृष्ठ १८६, २६३, २६४
४—पृष्ठ २१

के पजे से सुरक्षित रहते थे ।[१]

इस युग मे भारतीय उत्पादन-कृषि का मुख्य साधन और देश म अत्याधिक त्रस्त प्राणी किसान है । किसान अपने अल्प साधनो द्वारा प्राकृतिक प्रकोपो एव राजकीय-विदेशी अत्याचारो की चक्की मे पिस कर ज्यो-त्यो कुछ पैदा कर पाता है । अपनी मेहनत सभी लोगो द्वारा लूटे जाने पर भी कूट पिट कर किसी प्रकार साँस लिये जा रहा है । उसी निरीह के बूते पर साधु सत, निकम्मे नीच राजा-नवाब तथा महत्वाकाक्षी योद्धा मौज-मजा कर रहे है । इस सब का मूल कारण है शक्तिशालियो का क्षुद्र स्वार्थ । सरदारो, सामन्तो की घोर भूमि-विभुक्षा । बिगडे नवाबो, उजडे राजाओ का शरणार्थी-रूप मे लूट करते हुए घूमना । बे-घर-द्वार साधारण जन का अन्ततोगत्वा उस अराजकता मे सम्मिलित हो चाँदी के टुकडो के लिए अपनी सेवा-वीरता बेचना ।[२] दृढ शासन और प्रेरक नायकत्व के अभाव मे लूट-मार और जागीरदारी जन मन मे गहरी जडे पकडती गयी । व्यक्तित्व और बापौती की धारणा इतनी प्रबल हो गयी कि उसके सामने धर्म, देश, समाज सब तुच्छ हो गये ।[३] स्वार्थ-साधक समाज-सचालको की देन मे भारतीय समाज मे घोर वर्ग-मोह, जाति-पाँति के झगडो को महत्वपूर्ण स्थान मिला । हिन्दू-मुसलमानो की पारस्परिक घृणा जग उठी । मुसलमानो के साथ था दभ और आतङ्क तथा हिन्दुओ के पल्ले मे पुरातन स्मृतियाँ और स्मारको की थाती थी । इस प्रकार उक्त अनवरत द्वन्द्व का हृदयगत मोर्चा भी बन गया ।[४]

इस विपद काल मे उत्तर भारत का किसान यदि चुपचाप खेती कर ले और मन्दिर मे कुछ क्षण पूजा तो मानो राजनीति तथा शासन-व्यवस्था का चरम आदर्श प्राप्त हो गया । बादशाह बडा वह जो इस व्यवस्था को बनाये रखे । आलीशान महल बनवाये और अपने सरदारो, रिश्तेदारो को विद्रोह न करने दे भले पर-जीवी, पर-भोगी कितने ही बढ जाएँ ।[५] घोर अव्यवस्था के बीच अहमदशाह अब्दाली का भारत-आक्रमण और रक्तपात भारतीय चरम दुर्गति का सूचक है । व्रज के निरीह जन आक्रमको की तलवारो की घाट उतरते

१—पृष्ठ ४४० तथा महाराष्ट्रीय मनोवृत्ति के विस्तृत परिचय के लिए देखिए 'माधव जी सिंधिया' के पृष्ठ ११४, ११५, ११७, १२३, १२८, १८१, १८१, १८६, २५४, २६०, २६४, ३७२ ।

२—पृष्ठ ४४४

३—पृष्ठ ३७

४—पृष्ठ ४४८

५—पृष्ठ ४१, ४३

मिटते है। हिन्दू स्त्रियाँ परम्परानुसार डूब कर, विष खाकर प्राण त्यागती है। इन लोगो का पुरुषार्थ कण्ठी-माला तक था, भक्ति और शक्ति के समन्वय का यह अभाव उन्हे ले बैठा। यहा के मुसलमान भी अत्याचार की आग मे जल मरे।[1] इस प्रकार के आक्रमणो के बाद मुसलमान सरदार और हिन्दू सामन्त यथावत् जमीन और सम्पत्ति के अपहरण मे लीन हो जाते थे। जले मकान और वीरान गाँवो को जिन किसानो ने आबाद किया, वे लूटे गये और वे स्वयं भी उदर-पोषण के लिए एक-दूसरे को लूटने लगे। साम्राज्य (?) की राजधानी दिल्ली की और भी दुर्दशा थी। हथियार-बन्द गुण्डे दिन-दहाडे किसी भी घर मे घुस कर जो चाहा उठा लाते। दिन मे दस-पाँच का जत्था भी बिना लुटे-पिटे एक स्थान से अन्यत्र न जा सकता था।[2]

इस राजनीतिक-विपद तथा आर्थिक-विपन्नता के दुष्काल मे समाज त्रस्त हो त्राहि-त्राहि कर रहा है। कदाचित् इसी कारण उपन्यासकार को तत्कालीन रीति व्यवहार, त्योहार आदि के परिचय प्रस्तुत करने का अवसर नही मिला है। मराठो के अवसरवादी आक्रमणो, रक्त भरे युद्धो तथा निकम्मे राजनीतिज्ञो के षड्यन्त्रो के तुमुल गन्धड मे समाज का सलोनापन अन्तर्हित हो गया है।

प्रकृति

'माधव जी सिंधिया' मे युद्धो, राजनीतिक वर्णनो की भरमार के कारण उपन्यासकार को प्रकृति-पर्यवेक्षण के बहुत कम अवसर मिले है। ५७७ पृष्ठो के इस बृहदाकार उपन्यास मे केवल १८ स्थलो पर प्रकृति-चर्चा आयी है, उसमे ११ स्थलो पर युद्ध-क्षेत्र आदि के प्रसग मे तत्कालीन ऋतु या वातावरण का निर्देश मात्र है। कही-कही प्रकृति का यह निर्देश सक्षिप्त होते हुए भी उपन्यासकार की सूक्ष्म पकड का द्योतक है। जैसे शरद ऋतु मे फूल बहार पर है और यमुना का जल गदलेपन से स्वाभाविक नीलेपन पर आ रहा है फिर भी जल-धारा की मात्रा और वेग वर्षा-ऋतु जैसे है।[3] चार स्थलो पर प्रकृति में रस लेते हुए उसका प्राय स्वतन्त्र रूप से चित्रण हुआ है।[4] फागुन के महीने मे लौट-लौट कर आती ठड, उतरते जेठ मे तपती पहाडी के पास सूखी नदी, विकट जाडे में हिमालय-श्रेणियाँ और सूर्यास्त से पूर्व पहाडी वन मे

१—पृष्ठ ११६ से १२१
२—पृष्ठ १२९
३—पृष्ठ २३०
४—पृष्ठ १५१, ३३०, ४१३, ५६८

किरणो की छटा से ये दृश्य अनुप्राणित है। जाड़े का यह दृश्य उल्लेखनीय है जिसमे गति और स्पष्टता है।

'जाडा विकट था। दिन मे कुहरा गगा की तीव्र धारा के ऊपर से नाचता कूदता हिमालय की एक के पीछे दूसरी श्रेणी की चोटियो पर थिरकता। कभी रिमझिम और झिर झिर भी हो जाती। परन्तु रात मे दमकते तारे और चमकती चाँदनी।' (पृ० ४१३)

वर्माजी की प्रकृति-चित्रण-कला के विकास एव स्वरूप पर प्रबन्ध मे विस्तृत प्रकाश डाला जा चुका है, यहाँ अन्य कोई तथ्य विशेष उल्लेखनीय नही है।

जीवन दर्शन

'माधव जी सिंधिया' मे गत युग का विशद चित्र प्रस्तुत कर वर्तमान को राष्ट्रीयता एव स्व-अनुशासन का सदेश देना वाछित है। इस प्रयास मे भूत के अग्राह्य, वीभत्स को उभार कर ग्राह्य का सकेत किया गया है। वास्तव मे अग्राह्य तत्कालीन प्राय सम्पूर्ण स्थिति है और माधव, गार्दी, रामशास्त्री जैसे पात्र ग्राह्य को इगित करते है। परिस्थिति मे ग्लानिमय अग्राह्य के बाहुल्य के कारण उपन्यासकार को प्रयत्नपूर्वक प्रत्यक्ष विधि से ग्राह्य या उद्देश्य को घोषित करना पडा है। उपन्यास मे जीवन के प्रति उचित दृष्टि, अति स्वार्थ-परता से मुक्ति, एकता की भावना तथा सैनिक सगठन पर विशेष प्रकाश डाला गया है।

जीवन जीने लिए—अच्छी तरह जीने के लिए मिला है। इसी सुखी जीवन के लिए जीवन को वास्तविक मान कर मनोयोग से उसका निर्वाह करना होगा। जो तत्सम्बन्धी समस्या सामने आएगी उसे सुलझाने के लिए तन-मन-धन की समन्वित शक्ति अपेक्षित है। जीवन को सरल, सुखमय बना कर भी उसके किसी अंग, किसी पक्ष मे आसक्तिवश फँस कर रह जाना प्रगति नही, जडता का द्योतक है। जीवन जैसे अटल प्रश्न का अमिट उत्तर है मृत्यु। मरण को सफल, सन्तोषजनक बनाने के लिए मनुष्य जीवन सरलतापूर्वक निबाहे और उससे निस्पृह बना रहे। अत जीवन का आदर्श उसके प्रति तन्मयता और निस्पृहता जैसे दो विरोधी तत्वो के समन्वय मे निहित है।

उपन्यास के भारतीय जन मे भक्ति और शक्ति के समन्वय का अभाव है। ब्रज-निवासी कठी-माला म मानव-पुरुषार्थ की इति मान बैठे हैं। अब्दाली के रक्त-रजित आक्रमण के समय ये व्यक्ति निरीह गौओ की भाँति बिना कोई प्रतिक्रिया किये, बे-मौत मारे जाते है। अरक्षिता स्त्रियाँ अत्याचारो के डर से

विष खा कर, फाँसी लगाकर, यमुना मे डूब कर भार समान अपने प्राण त्यागती है। इस निरीहता, पौरुषहीनता का कारण इन लोगो का जीवन को क्षणिक, अवास्तविकता मात्र मान लेना है। जीवन की कठोर वास्तविकता सामने आने पर दीनता, असमर्थता ऐसे एकांगी दृष्टि वालो की सम्बल है। ईश्वर-भक्ति और स्व नियन्त्रण भले है किन्तु अस्तित्व रक्षा के लिए शक्ति-सचय भी जीवन की माँग है।[1]

जीवन जब तक है उसे वास्तविक मानना उचित है। इसी तथ्य को दृष्टि मे रखकर कृष्ण भगवान ने ब्रज मे जन्म लेकर लीलाये की। कमल, गुलाब का रूप-रस उपेक्षणीय नही उसका भी अपना महत्व है। वह क्षणिक नही क्षणिक से तात्पर्य मानव-जीवन की लम्बाई के अनुपात मे इसके लाघव से है। सूखे पत्तो, काँटो—फूलो का, अपनी जगह पर सबका उपयोग है।[2] जीवन मे रहकर उसे भोग कर भी उसमे डूबना नही है। जैसे आग मे यदि हाथ न डाला जाय तो उससे अधिक उपकारी पदार्थ ससार मे नही।[3] यही सतुलन माधव-गन्ना के सयमित प्रेम मे द्रष्टव्य है। माधव के हृदय मे गन्ना का सौन्दर्य अक्षुण्ण है। वह स्वय कहता है—'वह चमत्कारपूर्ण पानी का बबूला थी, उसे मैं ने कभी नही बुझाया, आलोकमय ओस का कण थी जिसे मैं ने चपल दूर्बादल पर ही बना रहने दिया।' (पृ० ५५२)

जन-मन की अस्वाभाविक विरक्ति और शक्तिशालियो की स्वार्थ-परता के कारण समाज का ढाँचा हिल उठा है। व्यक्ति की समानता और उसके समाज सापेक्ष महत्व की स्थापना से यह समस्या हल हो सकती है। शाहवली इसी समस्या को यथाशक्ति समझ कर शाह, सुल्तान, अमीर, राजा, रूपी बाधा को दूर कर आम लोगो की हुकूमत स्थापित करने की योजना बनाता है।[4] उक्त मार्ग मे जागीरदारी प्रत्यक्ष बाधा है। इसके लोभवश व्यक्ति समाज का शत्रु बन जाता है। और, उखड़े भूमिपति स्वार्थवश देश, समाज का अस्तित्व भूल विदेशी आक्रमको मे जा मिलते है।[5] जागीर किसी की बापौती नही, प्रबन्ध-सुविधा की दृष्टि से जागीरदार के हाथ मे राज्य की धरोहर मात्र है। प्रजाजन की व्यवस्था और शान्ति-सुख का भार उस प्रबन्धक पर है। जनता के नायक यदि अपने लिए जागीर और रियासत स्थापित करने की लालसा

---

१. माधव जी सिंधिया--पृ० ११९, १२०

२ पृ० ५५४

३ पृ० ५५०

४ पृ० १६४

५ पृ० २५०

त्याग दे तो शुभ हो। पुरानी बापौती, वैभव के खडहरो का मोह लोगो को आकृष्ट कर प्रगति नही करने देता। इन खडहरो को गिरा कर ऊपर नया भवन खडा करने में क्षेम है।[1]

पुरस्कार के रूप मे भूमि-राशि का वितरण हानिकारिक है। इससे जन-नायको मे व्यक्ति-मग्नता बढती है। दूसरी ओर किसान, मजदूर इनकी बेगार करते जीवन गवा देते है। समस्या समाज मे परजीवी-वर्ग की वृद्धि को लेकर है। राजा-नवाब, भिखारी ये सब इसी वर्ग मे है। दूसरो का धन खीचकर निकम्मे भिखारियो मे गँवाना, हरिश्चन्द्र जैसे राजाओ की सूझ हो सकती है किन्तु समाज के लिए अहितकर है। मेहनत सब करें, प्रत्येक स्वस्थ पुरुष को नित्य आठ घटे काम करने पर ही भोजन का अधिकार है।[2] इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए दृढता अपेक्षित है। यश मिले या अपयश, धन और प्राण रहे या जाये किन्तु जो उचित है, न्याययुक्त है उसका मार्ग धीर व्यक्ति को न छोडना चाहिए।[3]

सामाजिक व्यवस्था को यह स्वरूप प्रदान करने के लिए माधव के मस्तिष्क मे 'स्वराज्य' की योजना है। भारत की शक्तियो का एकीकरण और सामजस्य करके शक्तिशाली एक सघ की स्थापना हो। अहिन्दू धर्म एव अहिन्दू जनो को हिन्दुओ के समान न्याय मिले। पद मौरूसी न हो केवल योग्यता के आधार पर लोगो को दिये जाये। लोग गाँवटी पचायत, जाति, वर्ग उपवर्ग की सकीर्ण पारधियो से बाहर निकल कर राष्ट्र का स्वरूप पहचाने। देश के 'स्वराज्य' की रक्षा के हेतु सुदृढ सेना की आवश्यकता है। सेना सगठित हो। सिपाहियो मे परस्पर समान व्यवहार हो, वे लूट-मार से बचे। सिपाही को भर पेट भोजन और रात का आराम मिलना चाहिए। उससे कार्य केवल आतङ्क के बल पर न लिया जाय उसके मन को भी काय की ओर आकृष्ट किया जाय। उसका कार्य मे मनोयोग तभी सम्भव है जब उसे लडाई के हेतु का ज्ञान हो, वह हेतु मोहक और ऊँचा हो।[4]

---

१ पृ० २९७, ३०१, ३०२

२. पृ०—२५७, २९९, ३४९, ३५०

३. पृ०—५०९

४. देखिए पृ०—४३८, ३४८, ४७४, ५६५, ५४०, ५४१, ३७३, २५३, ५३१, २५७, २३९, १८८, ५३२